

DUE DATE SLIP**GOVT. COLLEGE, LIBRARY**

KOTA (Raj)

Students can retain library books only for two weeks at the most

BORROWER'S No	DUE DATE	SIGNATURE

विशेष द्रष्टव्य ।

अनुस्वार और चन्द्रबिन्दुके उच्चारणनियमानुसार (यथा—काचन, कौच, दत्त, गौच इत्यादि) 'ह', 'नहीं', 'महा', 'करे', 'क्यों', 'सकियोंका' इत्यादि स्थलोंमें ब्रह्मि प्रयत्नमें अनुस्वार अनुस्वार न हीमर चन्द्रबिन्दु शोना चाहिये । और 'मे', 'दोनों', 'जुगोका', 'परिणामोमें' इत्यादि पाठमवर्णोंके उपर ('ऊपर' नहीं) अनुस्वारका प्रयोग युक्त नहीं ('क्योंकि' 'मे' में अनुस्वार देनेमें Monz होता है), और चन्द्रबिन्दुमा नहीं लगाना चाहिये, कारण पञ्चमवर्णोंका उच्चारण स्वयं नामिकामेरी होता है ।

नामिकामे उच्चारित ध्वनि नहीं बाहर निकल जाती है, वहाँ 'अनुस्वार', और वहाँ नाको भीतरही रह जाती है, वहाँ 'चन्द्रबिन्दु' होगा ।

* * * *

हिन्दीमें प्रयुक्त अविज्ञत मष्टतशब्दका लिखित मष्टतव्याकरणमें निम्नानुसार दी होना चाहिये ।

पृष्ठ १०८ पङ्क्ति ११ में—'अचमम्' शब्दके पञ्चात् 'मत्तम्' शब्द पढ़ना ।

पृष्ठ २०८ पङ्क्ति ८ में—'उम चतुर्दा विभज्य' के स्थानमें 'इद चतुर्दा विभज्य' पढ़ना ।

पृष्ठ २३४ पङ्क्ति ४ में—'अच्चापव' के स्थानमें 'अच्चापयत्' पढ़ना ।





मुखबन्ध ।

“अज्ञानतिभिराच्छन्नं तदाऽस्थास्यच्चराचरम् ।
नाभविष्यद्यदि ज्योतिः संस्कृताहं सुमङ्गलम् ॥”

यह ससार अज्ञानान्धकारसे आवृत हो रहता, यदि संस्कृतभाषाके पत्मनङ्गलमय ज्योति प्रकाशित न होती । इसके द्वारा मनुष्य धर्म और मोक्षके दुर्बिन्देय तत्त्वोंको अवगत होकर सम्यक् कृतार्थ हो सके । इस भास्वरूपमें यह संस्कृतभाषाही हितोपदेशी जननीके तुल्य सच्चे परम आश्रयणीय है । अधिक क्या, वैदिक विद्वान्मो इमे 'सर्वभाषाभोक्तृ जननी' कहते हैं । किन्तु कालके विपर्ययसे हमारी यही मातृभूता देवनीया संस्कृतभाषा भाषान्तरव्याप्तचित्त भोगप्रवण आधुनिक मानसोंसे कुम्भों आदर और सम्मान प्राप्त न होकर उन्हींकी दुर्दशाकी पराकाष्ठा प्रकट करती है । साधारणलोगोंकी ऐसी शोचनीय अवस्था होनेपरभी कर्तव्यता मनुष्योंके हृदयमें संस्कृतसेवाका अभिलाष उत्पन्न होता है । परन्तु अधिकशालोग संस्कृतभाषाके साक्षात्कार-(व्युत्पत्ति-)के द्वास्मृतके प्रवृत्तिकी संस्कृतसूत्रादिनिबद्ध माँगण मूर्ति समर्पण करतेही झूठ हो उस सङ्कल्पको छोड़ देते हैं । यह विषय समीक्षा

सुसयन्ध ।

अन्यत्र गौवर है । और कराकरगदा यह कण्टकमय भयानक धर्म अतिरुम
 न करनेसे संस्कृतवागीके मरु सुगतिरक्षणरा मीमांस्य सम्भावित नहीं ।
 यदि ऐसे कठिन व्याकरणक अवश्यज्ञानव्य विषय इतने भाषामे सार्वभूमे
 विवृत किये जायें, तो संस्कृतशिक्षार्थी ठम "व्याकरण विभीषिका"मे
 मुक्त होकर उगमनाके साथ इसमे प्रविष्ट और व्युत्तर हो सकते । इसी
 आशयको वित्तमे स्थापन कर कः हिन्दीभाषाभाषी भद्रमहोदयोंके साथ
 अनुसोधमे यह व्याकरण हिन्दीभाषामे संपुलित किया गया । इसमे
 हिन्दीभाषाभित्त समा लोग संस्कृतभाषा सीस रामायण महाभारत
 अनुसृति प्रसृति आर्य ग्रन्थोंके अध्ययनमे धर्म और ज्ञानकी उत्पत्ति कर
 सकेंगे । धर्म विहित जीवन निरूपण ; और ठम धर्मानुष्ठानके समग्र रहस्य
 संस्कृतभाषामे रचित ऋषिप्रणीत निबन्धोंके अनुशीलनसेही अभ्रान्तकामे
 जाने जा सकते, अन्यथा नहीं । इसलिये सबको चाहिये, कि अपने अपने
 लक्ष्योंके यह व्याकरण पढाकर स्वल्पमनयमेही दृढधर्मग्रन्थाध्ययनके
 अधिकारी बना पुत्रनिष्पन्न स्वकीय कर्तव्य निर्वाहित करें ।

इसमे शिक्षासौकरार्थं विद्यार्थीके प्रथमहातव्य स्थूल विषय किञ्चित्
 स्थूलाक्षामे, और अन्यान्य विषय तदपेक्षा क्षुद्राक्षामे मुद्रित किये गये
 पहले स्थूलाक्षमुद्रित अतः सम्पूर्ण पढकर व्याकरणमे एकप्रकार स्थूल
 होनेके पश्चात् अवशिष्ट अतः पढनेमे अल्प कालमे और अल्प
 प्रयत्न संस्कृतभाषामे विशेष व्युत्पत्ति होगी, इसमे सन्देह
 संस्कृतमे बोध होनेके लिये, इसमे साथ साथ हिन्दीसे ह
 प्रगाली प्रदर्शित की गयी, और परीक्षाके लिये ह

मुखग्रन्थ ।

नियम और प्रकरणके अन्तमे प्रश्न सङ्ग्रहित किये गये । प्रचलित प्रायः सनस्त धातुओंके उदाहरण समेत अर्थ और उपसर्गोंके योगसे उनके अर्थभेदभी दिखलाये गये ।

यच्चोको प्रथम वर्णज्ञानके अनन्तर शब्दरूप और धातुरूप समग्र अच्छे प्रकारसे कण्ठस्थ कराकर पीठे सन्धि, कारक, समास, और तत्पश्चात् अन्यान्य विषय समझाना चाहिये ।

यह ग्रन्थ केवल अल्पवयस्क बालक अथवा अन्यमापामे प्रविष्ट सम्स्कृतशिक्षार्थियोंके ही उपयोगी नहीं, किन्तु इससे दुरुहसस्कृतसूत्रप्रन्व-पाठी रुस्कृतपरीक्षार्थियोंका भी महोपकार साधित होगा । इत्यलमति-पह्यवितेनेति शम् ।

श्रीरामस्वामी ।

विषय-सूची ।

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
वर्णप्रकरण	१	पठ ✓	६०
स्वरवर्ण	२	विशेष ✓	६०
व्यञ्जनवर्ण	३	विशेषण ✓	६१
बर्णोका उच्चारणस्थान	८	सर्वनाम ✓	६२
प्रश्नमाला	७	अव्यय ✓	६३
सन्धिप्रकरण	७	लिङ्ग ✓	६३
स्वरसन्धि	९	वचन ✓	६४
सन्धिनिषेध	२१	क्रिया ✓	६४
व्यञ्जनसन्धि—(व्यञ्जन और व्यञ्जनमे)	२२	काल ✓	६५
(व्यञ्जन और स्वरमे)	३२	कारक ✓	६६
विमर्गसन्धि	३४	सुबन्तप्रकरण ..	६८
(विमर्ग और व्यञ्जनमे)	३५	'सुप्'-विभक्तिकी आकृति	६८
(विमर्ग और स्वरमे)	४०	पुलिङ्गनिर्णय	६९
निपातनसन्धि	४४	स्वरान्तपुलिङ्गशब्दके	
सन्धिनिर्णय	४५	माधारणसूत्र	७२
सन्धिप्रश्नमाला	५०	सर्वनामपुलिङ्गशब्दके	
णन्त्रविधान	५२	माधारणसूत्र	७५
पन्त्रविधान	५७	अकारान्त पुलिङ्ग	
साधारणसंज्ञा	५९	(शब्द-रूप)	७६
शब्द	८९	सर्वनाम पुलिङ्ग	७९
		आकारान्त पुलिङ्ग	९०

विषय सूची ।

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
इकारान्त पुलिङ्ग	९१	सर्जनाम स्त्रीवलिङ्ग	१२७
ईकारान्त पुलिङ्ग	९५	इकारान्त स्त्रीवलिङ्ग	१२०
उकारान्त पुलिङ्ग	९६	उकारान्त स्त्रीवलिङ्ग	१३२
ऊकारान्त पुलिङ्ग	९७	ऋकारान्त स्त्रीवलिङ्ग	१३२
ऋकारान्त पुलिङ्ग	९९	व्यञ्जनान्त पुलिङ्ग	
ओकारान्त पुलिङ्ग	१०१	शब्दके साधारणमूत्र	१३३
औकारान्त पुलिङ्ग	१०१	व्यञ्जनान्त पुलिङ्ग शब्द	-
स्त्रीलिङ्गनिर्णय	१०२	(चकारान्त इत्थादि)	१३७
स्वरान्तस्त्रीलिङ्गशब्दके		व्यञ्जनान्त स्त्रीलिङ्ग	
साधारणमूत्र	१०३	शब्दके साधारणमूत्र	१६१
सर्वनामस्त्रीलिङ्गशब्दका		व्यञ्जनान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द	१६२
साधारणमूत्र	१०६	व्यञ्जनान्तस्त्रीवलिङ्ग-	
आकारान्त स्त्रीलिङ्ग	१०७	शब्दके साधारणमूत्र	१५९
सर्जनाम स्त्रीलिङ्ग	११०	व्यञ्जनान्त स्त्रीवलिङ्ग	
इकारान्त स्त्रीलिङ्ग	११४	शब्द	१७१
ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग	११५	सर्जनामव्यग्रहार	१७८
उकारान्त स्त्रीलिङ्ग	११८	मह्यवाचकशब्द	१८३
ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग	११८	पूज्यवाचकशब्द	१८०
ऋकारान्त स्त्रीलिङ्ग	१२०	वचननिर्णय	१०-
स्त्रीवलिङ्गनिर्णय	१२२	अव्यय और उनका	
स्वरान्त स्त्रीवलिङ्गशब्दके		व्यग्रहार	१०३
साधारणमूत्र	१२४	प्रश्नमाला	२९६
अकारान्त स्त्रीवलिङ्ग	१२५		

विषय-सूची ।

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
तिङन्तप्रकरण ...	२१७	तुदादि सकर्मक उभयपदी धातु	२६१
'तिङ्' विभक्तिकी आहृति	२१८	तुदादि अकर्मक उभयपदी धातु	२६३
पुरष	२२२	भ्वादि—त्रियाघटनसूत्र ..	२६४
वाच्य	२२३	भ्वादि परस्मैपदी धातुके रूप	२६५
कल्लंवाच्यप्रयोग	२२३	भ्वादि सकर्मक परस्मैपदी धातु	२७५
द्विकर्मकधातु	२२५	भ्वादि अकर्मक परस्मैपदी धातु	२८९
संज्ञा ✓	२२६	भ्वादि आत्मनेपदी धातुके रूप	२९९
उपसर्ग ✓	२२८	भ्वादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु	३००
लकारार्थनिर्णय	२३०	भ्वादि अकर्मक आत्मनेपदी धातु	३०७
धातुसम्बन्धी णत्वविधि .	२३६	भ्वादि सकर्मक उभयपदी धातु	३१७
धातुसम्बन्धी षत्वविधि	२३८	भ्वादि अकर्मक उभयपदी धातु	३२३
गणोक्ते आगमोक्तो परिमृष्ट्या	२४३	दिवादि—त्रियाघटनसूत्र	३२४
तुदादि—त्रियाघटनसूत्र	२४४	दिवादि परस्मैपदी धातुके रूप	३२५
तुदादि परस्मैपदी धातुके रूप	२४६	दिवादि सकर्मक परस्मैपदी धातु	३२६
तुदादि सकर्मक परस्मैपदी धातु	२५२	दिवादि अकर्मक परस्मैपदी धातु	३२८
तुदादि अकर्मक परस्मैपदी धातु	२६०	दिवादि आत्मनेपदी धातुके रूप	३३६
तुदादि आत्मनेपदी धातुके रूप	२६६	दिवादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु	३४१
तुदादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु	२६८	दिवादि अकर्मक आत्मनेपदी धातु	३४२
तुदादि अकर्मक आत्मनेपदी धातु	२६८	दिवादि सकर्मक उभयपदी धातु	३४४
तुदादि उभयपदी धातुके रूप	२६९	दिवादि अकर्मक उभयपदी धातु	३४५

विषय सूची ।

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
स्वादि—क्रियाघटनसूत्र ..	३४६	रधादि सकर्मक उभयपदी धातु	४०३
स्वादि परस्मैपदी धातुके रूप	३४७	अदादि—क्रियाघटनसूत्र	४११
स्वादि सकर्मक परस्मैपदी धातु	३४९	अदादि सकर्मक परस्मैपदी धातु	४१५
स्वादि आत्मनेपदी धातुके रूप	३५०	अदादि अकर्मक परस्मैपदी धातु	४२७
स्वादि उभयपदी धातुके रूप	३५२	अदादि आकारान्त सकर्मक परस्मैपदी धातु	४२६
स्वादि सकर्मक उभयपदी धातु	३५४	अदादि आकारान्त अकर्मक परस्मैपदी धातु	४३९
तनादि—क्रियाघटनसूत्र ..	३५७	अदादि उकारान्त सकर्मक परस्मैपदी धातु	४४७
तनादि सकर्मक उभयपदी धातुके रूप	३५७	अदादि उकारान्त अकर्मक परस्मैपदी धातु	४४९
तनादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु	३६१	अदादि मकारान्त आत्मनेपदी धातु	४४९
क्रयादि—क्रियाघटनसूत्र ..	३६२	अदादि अकर्मक आत्मनेपदी धातु	४४६
क्रयादि सकर्मक उभयपदी धातुके रूप	३६३	अदादि सकर्मक उभयपदी धातु	४४९
क्रयादि सकर्मक परस्मैपदी धातु	३७०	ह्रादि—क्रियाघटनसूत्र ...	४५७
क्रयादि सकर्मक उभयपदी धातु	३७३	ह्रादि सकर्मक परस्मैपदी धातु	४५९
पुरादि—क्रियाघटनसूत्र .	३७६	ह्रादि अकर्मक परस्मैपदी धातु	४६१
पुरादि परस्मैपदी धातुके रूप	३७६	ह्रादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु	४६३
पुरादि सकर्मक परस्मैपदी धातु	३७७	ह्रादि अकर्मक उभयपदी धातु	४६५
पुरादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु	३८०		
सकृन्त अदन्त पुरादि धातु	३९०		
रधादि—क्रियाघटनसूत्र	३९३		
रधादि सकर्मक परस्मैपदी धातु	३९५		

अव्यय-सूची ।

अव्यय	४४	अव्यय	४४
अकन्मात्	१९८	अघ	२०३
अकागटे	१९८	अघमन्तात्	२०३
अग्रत	२०१	अधुना	१९६
अङ्ग	२१०	अधुनाऽपि	१९६
अचिरान्	१९८	अधुनेव	१९६
अजन्तन्	१९८	अनतिपूर्वन्	२०१
अज्ञमा	१९८, २०७	अनिताम्	१९८
अत परम्	२०१	अनु	२००
अति	२११	अनुपदम्	२०१
अतीव	२११	अन्त	२०४
अत्यन्तम्	२११	अन्तरा	२०४, २१४
अत्र	२०२	अन्तरेण	२१४
अथ	२०१	अन्यथा	२०७
अथ किम्	२१०	अन्यदा	१९८
अथवा	१९३	अन्वम्	२०१
अथो	२०६	अपि	१९३, २१०
अद्वा	२०७	अमित	२०३
अद्य	१९९	अमीश्वन्	१९८, २०९
अद्यापि	१९९	अमुत्र	२०६
अद्यैव	१९९	अपि	२१०

अन्यय-सूची ।

अन्यय	पृष्ठ	अन्यय	पृष्ठ
अये	२१६	इत्थम्	२०६
अरे	२१६	इदानीम्	१९६
अंरे	२१०	इदानीमपि	१९६
अर्थे	२०९	इदानीमेव	१९६
अलम्	२१२	इव	१९६
अवश्यम्	२१०	इह	२०२
असकृत्	२०९	ईषत्	२११
अन्तम्	२१३	उच्चक्रे	२०४
अहह	२१४	उच्च	२०४
अहो	२१४	उत	२१०
अहोवन	२१४	उताहो	२१०
अद्वाय	१९८	उत्तरेण	२०३
आम्	२११	उरगि	२०३
आरभ्य	२१६	उपरिष्ठात्	२०३
आरात्	२०६	उपाशु	२००
आवि	२१३	उभयच्छु	१९९
आशु	१९८	उभयेषु	१९९
आ	२१४	अने	२१४
आहो	२१०	एकत्र	२०६
आहोस्वित्	२१०	एकदा	१९८
इतदप्येतश्च	२०६	एकत्रदे	१९८
इत	२०२, २०९	एतदि	१९६
इतम्वत्	२०५	एव	१९०, २१०

अन्यय-सूची ।

अन्यय	पृष्ठ	अन्यय	पृष्ठ
१. एवम्	२०६, २१०	किम्	२१०
२. ऐयम्	१९९	किमुत	२१०
३. ओम्	२१०	किल	२१०
४. कच्चिन्	२१०	कुत	२०२, २०६
५. कपञ्जारम्	२०६	कुत्र	२०२
६. कपञ्जन	२०६	कुत्रयन	२०२
७. कयञ्चिन्	२०६	कुत्रचिन्	२०२
८. कपन्	२०६, २०६	कुत्रापि	२०२
९. कयमपि	२०६	कृतम्	२१२
१०. कदा	१९६	कृते	२००
११. कदाचन	१९७	क	२०२
१२. कदाचिन्	१९७	कचन	२०२
१३. कदाऽपि	१९७	कचिन्	२०२
१४. कर्हि	१९६	सलु	२१०
१५. कर्हिचिन्	१९७	च	१९३
१६. कष्टन्	२१४	चतुर्द्धां	२०८
१७. कित्रा	१९४	चतुः	२०८
१८. किञ्चिन्	२१०	चिरम्	२०१
१९. किञ्चन	२११	चिरस्य	२०१
२०. किञ्चिन्	२११	चिरात्	२०१
२१. किञ्चिन् पूर्वम्	२०१	चिराय	२०१
२२. किन्तु	१९४	चिरं	२०१
२३. किम्	२०६, २१०	चेत्	२१०

अव्यय-सूची ।

अव्यय	पृष्ठ	अव्यय	पृष्ठ
जातु	१९७	दिवा	२००
जोषम्	२१२	दिष्टग	२०१
झटिति	१९८	दोषा	२००
तद्	२०९	डाक्	१९८
तम्कालम्	१९७	दुतम्	१९८
तन्अणम्	१९७	द्वि	२०१
तत्क्षगात्	१९७	धिक	२११
तत्परम्	२०१	ध्रुवम्	२१
तन	२०२, २०९	न	१९
तन परम्	२०१	नक्तम्	२०
तत्र	२०२	नम	२१
तथा	२०६	निकषा	२०
तद्वा	१९७	निदानम्	२१
तद्दर्शनम्	१९७	नितरान्	२१
तार्हि	१९७	निरन्तरम्	१९
तावत्	१९७	नीचै	२०
नि	२६२	नु	२१
निर्व्यंक्	२१३	नूनम्	२१
नु	१९४	नो	१९
स्पर्शाम्	२१२	परत्र	२
प्रिथा	२०८	परन्तु	१९
प्रि	२०८	परम्	२१
इक्षिणेन	२०३	परमम्	२१०, २

अन्य-सूची ।

१	अन्यय	पृष्ठ	अन्यय	पृष्ठ
२	परश्व	१९९	प्राक्	२००
३	परन्व	१९९	प्रात	२००
४	परस्तात्	२०१	प्रादु	२१३
५	परारि	२००	प्रायश	१९९
६	परित	२०३	प्राथ	१९९
७	परत्	२००	प्रायोग	१९९
८	परेद्यवि	१९९	प्रेत्य	२०६
९	परेद्यु	१९९	वन	२१३
१०	पश्चात्	२०१	वन्तु	२११
११	पुन	२०९	बहि	२०४
१२	पुनःपुन-	२०९	बाडम्	२१०
१३	पुरत	२०१	भूय	२०९
१४	पुर-	२०१	भूयोभूय	२०९
१५	पुरस्तान्	२०१	भो	२१६
१६	पुग	१९९	मद्नु	१९८
१७	पूर्वम्	२००	मनारु	२११
१८	पूर्वेद्यु-	१९९	मा	१९६
१९	पृष्टत	२०१	मिथ	२०६, २१६
२०	प्रकामम्	२११	मिथ्या	२१३
२१	प्रगे	२००	सुधा	२१०
२२	प्रति	२०६	सुहुसुहु	२०९
२३	प्रभृति	२१६	सुहु	२०९
२४	प्रसद्य	२०८	सृपा	२१३

अव्यय सूची ।

अव्यय	पृष्ठ	अव्यय	पृष्ठ
यन्	२०९	रह	२०९
यत्परम्	२०९	रे	२११
यत्सत्यम्	२०७	वरम्	२११
यत्	२०९	वपद्	२१२
यत् परम्	२०९	वस्तुत	२०७
यत्र	२०२	वा	१९३
यत्र कुत्रचित्	२०२	दिना	२१४
यथा	२०६	वृथा	२१२
यथाकथञ्चिद्	२०७	दानै	२०८
यथाकथमपि	२०७	दानै दानै	२०८
यथातपन्	२०७	राष्ट्रम्	१९८
यथातथा	२०७	द्य	१९९
यथापपन्	२०७	सकृन्	२०८
यथार्थत	२०७	सननम्	१९८
यथास्त्रम्	२०७	सदा	१९८
यदा	१९७	सद्य	१९७
यदि	२१०	सदादि	१९७
यदिना	१९४	समन्तत	२०३
यदैव	१९७	समन्तात्	२०३
यद्वा	१९४	मनम्	१९८, २१४
यार्हि	१९७	ममया	२०६
यान्	१९७	सम्प्रति	१९६
युगरम्	१९८	मन्यद्	२०७

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पञ्चमी	भास.	भाभ्याम्	भाभ्य.
षष्ठी	भासः	भासो	भासाम्
सप्तमी	भासि	भासो.	भाःसु।
सम्बोधन	भाः	भासौ	भासः

'इस्'-भागान्त-अर्चिस् शब्द* (शिखा, ज्वाला Flame) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अर्चिः	अर्चिषौ	अर्चिषः
द्वितीया	अर्चिषम्	अर्चिषौ	अर्चिषः
तृतीया	अर्चिषा	अर्चिभ्याम्	अर्चिभिः
चतुर्थी	अर्चिषे	अर्चिभ्याम्	अर्चिभ्यः
पञ्चमी	अर्चिषः	अर्चिभ्याम्	अर्चिभ्यः
षष्ठी	अर्चिष.	अर्चिषोः	अर्चिषाम्
सप्तमी	अर्चिषि	अर्चिषो.	अर्चिषु
सम्बोधन	अर्चि	अर्चिषौ	अर्चिषः

सब 'इस्'-भागान्त शब्दके रूप 'अर्चिस्'-शब्दके तुल्य ।

आशिस् शब्द (शुभाकाङ्क्षा , आभिलाष
Benediction, desire) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	आशी	आशिषौ	आशिषः
द्वितीया	आशिषम्	आशिषौ	आशिषः

* 'अर्चिस्'-शब्द स्त्रीवल्गिभ्यो होता है ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
तृतीया	आशिपा	आशीभ्याम्	आशीभिः
चतुर्थी	आशिपे	आशीभ्याम्	आशीभ्यः
पञ्चमी	आशिप.	आशीभ्याम्	आशीभ्यः
षष्ठी	आशिपः	आशिपोः	आशिपाम्
सप्तमी	आशिपि	आशिपो	आशी पु
सम्बोधन	आशी	आशिपौ	आशिपः

शुद्ध करो—पूर्वस्मिन् दिशि निशाकरो राजते । उत्तरस्मिन् दिशि हिमालयवर्चते । सर्वे देवता. मयि शुभ आशी कुर्वन्ति । तेन आशिना अहं सुस्थ भवामि । पश्चिमस्या दिशि चन्द्रमाम् अस्तमितां पश्यामि । ग्रीष्मे काका वाप्या अपि पिबन्ति । य सत्य गिर वदति, स सर्वदा दिवे वसति । तव आशिपस्य अपूर्वं शक्ति ।

हकारान्त ।

उपानह् शब्द (जूता Sandal, shoe) ।

(१मा) उपानत्, उपानहौ, उपानह , (२या) उपानहम्, उपानहौ, उपानह ; (३या) उपानहा, उपानह्याम्, उपानद्भि , (४थी) उपानहे, उपानह्याम्, उपानह्य , (५मी) उपानह, उपानह्याम्, उपानह्य , (६ष्टी) उपानह, उपानहो, उपानह्याम्, (७मी) उपानहि, उपानहो , उपानत्सु , (सम्बो) उपानत् ।



व्यञ्जनान्त क्लीबलिङ्ग शब्दके साधारण सूत्र ।

१९४ । 'ह', 'अम्' और सम्बोधनके 'ह' का लोप होता है,

धातु-सूची ।

धातु		वृष्ट	धातु	वृष्ट
ञ	भ्वा० प०	२७७	ञ्	तु० प० २७३
एञ्	भ्वा० प०	२८९	कृन्	तु० प० ३७८
१ एष्	भ्वा० आ०	३०७	कट्	भ्वा० आ० ३०८
२ कण् (उत्)	भ्वा० आ०	३०७	"	तु० प० ३७८
३ कल्	भ्वा० आ०	३०१	कन्	भ्वा० प० २८९
४ कप	तु० प०	३९०	कम्	भ्वा० प० २७८
५ कम्	भ्वा० आ०	३०१	क्री	क्र्या० उ० ३६३
६ कम्प्	भ्वा० आ०	३०८	क्रीड्	भ्वा० प० २९०
७ कर्ण (आ)	तु० प०	३९०	कृष्	दि० प० ३२९
८ कल्	तु० प०	३९०	कृग्	भ्वा० प० २९०
९ कप्	भ्वा० प०	२७७	कृम्	दि० प० ३२९
१० कस् (वि)	भ्वा० प०	२७७	कृि	दि० प० ३२९
११ काह्	भ्वा० प०	२७७	कृिन्	दि० उ० ३४६
१२ कान्	भ्वा० आ०	३०८	"	क्र्या० प० ३५१
१३ क्तिन्	भ्वा० प०	२७८	कृग्	भ्वा० प० २९०
१४ कुच् (सम्)	तु० प०	२६६	क्षय	तु० प० ३९१
१५ कुल्म	तु० आ०	३८८	क्षाम्	भ्वा० आ० ३०१
१६ कृप्	दि० प०	३२८	"	दि० प० ३२७
१७ कृप्	क्र्या० प०	३७७	क्षर्	भ्वा० प० २९०
१८ कृञ्	भ्वा० प०	२८९	क्षल्	तु० प० ३७९
१९ कृ	त० उ०	३६७	क्षि	स्वा० प० ३६०
२० कृव्	तु० प०	२६३	क्षिप्	तु० उ० २६१
२१ कृप्	भ्वा० प०	२७८	क्षु	अ० प० ४४१

धातु-सूची ।

धातु		पृष्ठ	धातु		पृष्ठ
धुम्	दि० प०	३००	तुह्	भ्या० उ०	३१७
"	भ्या० आ०	३२०	तृष्	दि० प०	३२७
सगद्	तु० प०	३७९	गृ	तु० प०	२०३
सन्	भ्या० उ०	३१७	"	क्र्या० प०	३७१
खाद्	भ्या० प०	३७९	गं	भ्या० प०	२७९
खिद्	दि० आ०	३२०	प्रन्थ्	क्र्या० प०	३७१
खेद्	भ्या० प०	३९०	प्रन्	भ्या० आ०	३०२
ख्या	अ० प०	४३७	प्रह्	क्र्या० उ०	३६८
गा	तु० प०	३९१	लै	भ्या० प०	२९१
गद्	भ्या० प०	२७९	धर्	भ्या० आ०	३०९
गन्	भ्या० प०	२७१	"	तु० प०	३७९
गर्त्	भ्या० प०	२९०	धर्	तु० प०	३८०
गर्ह्	भ्या० आ०	३०२	धुर्	तु० प०	३८०
"	तु० प०	३७९	धूर्त्	भ्या० आ०	३०९
गर्	भ्या० प०	३९१	धृ	भ्या० प०	३७९
गल्मू(प्र)	भ्या० आ०	३०८	घा	भ्या० प०	३८०
गर्ष	तु० प०	३९०	घनाम्	अ० प०	४३६
गाद्	भ्या० आ०	३००	चध्	अ० आ०	४२४
गुब्	भ्या० प०	३९१	चन्	भ्या० प०	३९१
गुा	तु० प०	३९२	चद्(ज्)	तु० प०	३८०
ज्	भ्या० प०	३७९	चन्(जा)	भ्या० प०	३८०
"	तु० प०	३७९	चर्	भ्या० प०	२८०
गुन्द्	तु० प०	२०३	चर्त्	तु० प०	३८०

धातु सूची ।

क्र.	धातु	वृत्	धातु	वृत्
३	घातु		घातु	घृष्ट
४	घर्ष	सु० प०	जम् (उत्)	सु० प०
५	घल्	भ्वा० प०	जातृ	अ० प०
६	घाप्	भ्वा० ङ०	जि	भ्वा० प०
७	घि	स्वा० उ०	जाप्	भ्वा० प०
८	घित्	सु० आ०	जुप्	सु० आ०
९	"	भ्वा० प०	जृम्भृ	भ्वा० आ०
१०	घिन्न	सु० प०	जृ	दि० प०
११	घिन्त्	सु० प०	जा	भ्रा० उ०
१२	घुद्	सु० प०	जर्	भ्वा० प०
१३	घुम्	भ्वा० प०	जल्	भ्वा० प०
१४	घुर	सु० प०	टद् (उत्)	सु० प०
१५	घूर्ण	सु० प०	डी	भ्वा० आ०
१६	घूप	भ्वा० प०	"	दि० आ०
१७	घेष्ट	भ्वा० आ०	टीन्	भ्वा० आ०
१८	घ्यु	भ्वा० आ०	तश्	भ्वा० प०
१९	घ्युत्	भ्वा० प०	तद्	सु० प०
२०	छद्	सु० उ०	तन्	त० उ०
२१	छन् (उप)	सु० प०	तन्त्	सु० आ०
२२	छिद्	सु० उ०	तप्	भ्वा० प०
२३	जश्	अ० प०	"	सु० प०
२४	जन्	दि० आ०	तम्	दि० प०
२५	जप्	भ्वा० प०	तर्ह	सु० प०
२६	जटप्	भ्वा० प०	तर्ज	सु० आ०

धातु-सूची ।

धातु		१४	धातु		१४
तिव्	चु० प०	३८३	दिव्	दि० प०	३२९
तुइ	तु० उ०	२५९	विम्	तु० उ०	२८२
तुर्	चु० प०	३८३	दिह्	अ० उ०	४२५
तुप्	दि० प०	३३०	दीर्	दि० आ०	३४३
वृ	दि० प०	३३०	हु	स्वा० प०	३०
वृप्	दि० प०	३३०	हुर्	चु० प०	३४०
तृह्	र० प०	४०१	हुप्	दि० प०	३३
तृ	स्वा० प०	२८०	हुर्	अ० उ०	४०
त्यव्	स्वा० प०	२८३	दृ	दि० आ०	३४
व्रर्	स्वा० आ०	३१०	दृ (या)	तु० आ०	२०
व्रम्	दि० प०	३३१	दृर्	दि० प०	३३
वुइ	तु० प०	२००	दृग	स्वा० प०	२४
व्रै	स्वा० आ०	३०३	दृ	दि० प०	३३
व्रृर्	स्वा० आ०	३११	"	ऋय० प०	३०
दृण्ड	चु० प०	३९०	दृव्	स्वा० आ०	३५
दन्	दि० प०	३३९	श	अ० प०	४
दप्	स्वा० आ०	३०३	हु	स्वा० प०	२५
ददित्रि	अ० प०	२४०	हुह्	दि० प०	३
दल्	स्वा० प०	२०३	द्विप्	अ० प० (उ०)	४०
दीर्	स्वा० प०	२८३	घा	हा० उ०	४
दृह्	स्वा० प०	२८३	घाव्	स्वा० उ०	३०
दा (दा१)	स्वा० प०	२८३	मिन्व् (धिवि) स्वा० प० †		३
"	हा० उ०	४००			

† पाणिनि-मते—स्वा० प० ।

धातु सूची ।

धातु		पृष्ठ	धातु		पृष्ठ
धु	म्वा० उ०	३६०	तुद्	तु० उ०	२६२
धू	स्वा० उ०	३६६	त्नु	दि० प०	३३२
"	क्र्या० उ०	३७४	पद्	म्वा० उ०	३१८
धृ	तु० आ०	२६८	पद्	तु० प०	३८३
"	म्वा० उ०	३१८	पद्	म्वा० प०	२८६
"	तु० प०	३८३	पद्	म्वा० आ०	३०३
धे	म्वा० प०	२८३	पद्	म्वा० प०	२६६
ध्ना	म्वा० प०	२८४	पद्	दि० आ०	३४१
ध्यै	म्वा० प०	२८२	पा	म्वा० प०	२७२
ध्वन्	म्वा० प०	२९३	"	अ० प०	४३६
ध्वस्	म्वा० आ०	३११	पार	तु० प०	३९२
नद्	म्वा० प०	२९३	पाल्	तु० प०	३८३
"	तु० प०	३७६	विप्	र० प०	४०१
नद्	म्वा० प०	२९३	पीद्	तु० प०	३८४
नन्द्	म्वा० प०	२९३	पुप्	दि० प०	३२७
नम्	म्वा० प०	२८४	"	क्र्या० प०	३७२
नग्	दि० प०	३३२	"	तु० प०	३८४
नह्	दि० उ०	३४४	पुन्	दि० प०	३३२
नाय्	म्वा० आ०	३०३	पृ	क्र्या० उ०	३७४
निञ्	ह्रा० उ०	४०२	पृञ्	तु० प०	३८४
निन्द्	म्वा० प०	२८४	पृर्	तु० प०	३८४
नी	म्वा० उ०	३१८	पृ (व्या)	तु० आ०	२६८
नु	अ० प०	४४०	"	स्वा० प०	३६०

धातु-सूची ।

धातु		पृष्ठ	धातु		पृष्ठ
ष्याय्	भ्वा० आ०	३११	मिद्	र० उ०	४०९
ष्ये	भ्वा० आ०	३०२	मी	ह्रा० ष०	४६१
प्रच्छ्	तु० ष०	२४८	मुञ्	र० ष०	४००
प्रथ्	भ्वा० ङा०	३११	"	र० ङा०	४०३
प्री	दि० आ०	३४३	मृ	भ्वा० ष०	२६७
"	क्र्या० उ०	३७४	"	तु० ष०	३८४
प्लु	भ्वा० ङा०	३११	भृप्	तु० ष०	३८९
पल्	भ्वा० ष०	२९३	भृ	भ्वा० उ०	३१९
पुस्	भ्वा० ष०	२९४	,	ह्रा० उ०	४६९
वन्ध्	क्र्या० ष०	३७२	अम्	भ्वा० ष०	२९४
याध्	भ्वा० ङा०	३०३	"	दि० ष०	३३३
बुध्	दि० आ०	३४२	भ्रंश्	भ्वा० ङा०	३१२
धू	अ० उ०	४०९	"	दि० ष०	३३०
मश्	तु० ष०	३७६	अस्ञ्	तु० उ०	२६२
मञ्	भ्वा० उ०	३१९	आञ्	भ्वा० ङा०	३१२
मञ्ज्	र० ष०	३९९	मञ्ज्	तु० ष०	२०६
मग्	भ्वा० ष०	२८०	मग्द्	तु० ष०	३८०
मर्त्स्	तु० आ०	३८९	मथ्	भ्वा० ष०	३६६
मत् (ति)	तु० ङा०	३८९	मद्	दि० ष०	३३३
मा	अ० ष०	४३९	मन्	दि० आ०	३३६
माप्	भ्वा० ङा०	३०४	"	र० आ०	३६१
माम्	भ्वा० ङा०	३१२	मन्त्र्	तु० ङा०	३८९
मिन्	भ्वा० ङा०	३०४	मन्थ्	क्र्या० ष०	३७०

धातु-सूची ।

क्र.	धातु	संख्या	धातु	संख्या
६	धातु	६४	धातु	५४
१०	”	भ्वा० प० ३७२	”	चु० उ० ३८६
११	मह	चु० प० ३९३	मोक्ष्	चु० प० ३८५
१२	मा	अ० प० ४३८	झा	भ्वा० प० २८५
१३	”	ह्वा० आ० ४६३	झ्लै	भ्वा० प० २९४
१४	मान्	चु० प० ३८५	यञ्	भ्वा० उ० ३९९
१५	मार्गं	चु० प० ३८५	यन्	भ्वा० आ० ३९३
१६	मार्ज्	चु० प० ३८५	” (निर)	चु० प० ३८५
१७	मिर्	तु० उ० २६०	यन्त्र्	चु० प० ३८६
१८	मिथ्र	चु० प० ३९३	यम्	भ्वा० प० २९४
१९	मिष्	तु० प० २५३	यस्	दि० प० ३३३
२०	मील्	भ्वा० प० २९४	या	अ० प० ४३८
२१	मुच्	तु० उ० २६२	याच्	भ्वा० उ० ३२०
२२	मुद्	भ्वा० आ० ३१३	युञ्	दि० आ० ३४३
२३	मुप्	क्रया० प० ३७३	”	र० उ० ४१०
२४	मुद्	दि० प० ३३३	युद्	दि० आ० ३४३
२५	मूत्र	चु० प० ३९३	रक्ष्	भ्वा० प० २८५
२६	मूर्च्छं	भ्वा० प० २९४	रच	चु० प० ३९३
२७	मृ	तु० आ० २५६	रञ्ज्	दि० उ० ३४५
२८	मृग	चु० आ० ३९३	रम् (आ)	भ्वा० आ० ३०४
२९	मृज्	अ० प० ४२०	रम्	भ्वा० आ० ३९३
३०	मृद्	क्रया० प० ३७३	रस्	भ्वा० प० २९५
३१	मृश	तु० प० २५४	रम	चु० प० ३९३
३२	मृष	दि० उ० ३४४	रह	चु० प० ३९३

धातु-सूची ।

धातु		पृष्ठ	धातु		पृष्ठ
रा	अ० प०	१००	रिचि	तु० प०	२५४
राञ्	भ्वा० उ०	२२०	रिञ्, (वा)	भ्वा० प०	२८९
राष्	दि० प०	३३४	रिच्	तु० उ०	२६३
रिच्	र० उ०	४१०	रिह्	अ० उ०	४५५
र	अ० प०	४४१	ली	दि० आ०	३४३
रच्	भ्वा० आ०	३१३	लुञ्	तु० प०	२५५
रञ्	तु० प०	२५४	लृप्	तु० उ०	२६३
रड्	अ० प०	४२८	लृञ्	दि० प०	३२०
रड्	र० उ०	४०३	लृ	भ्वा० उ०	३०५
रह्	भ्वा० प०	२९५	लोकृ	भ्वा० वा०	३०४
रुच	लु० प०	३९३	"	लु० प०	३८०
रुच्	लु० उ०	३८६	लोकृ (आ)	लु० प०	३८०
रुञ्	भ्वा० प०	२९५	वच्	अ० प०	४२२
रुड्	लु० प०	३८६	"	लु० प०	३८०
रुञ्च	तु० आ०	२८८	वञ्	लु० आ०	३८९
रुह्	लु० प०	३८६	वग्	लु० प०	३८०
"	भ्वा० प०	२९६	वह्	भ्वा० प०	२८६
रुच्	भ्वा० प०	२८०	वञ्च्	भ्वा० आ०	३०४
रुम्	भ्वा० आ०	२९९	वृच्	भ्वा० उ०	३२०
रुम्ब	भ्वा० आ०	३१४	वृञ्	भ्वा० प०	२८६
रुप्	भ्वा० उ०	३२०	वृ	लु० प०	३९४
रुप्	भ्वा० प०	२९६	वर्ज	लु० प०	३९४
रु	अ० प०	४१०	वृ	भ्वा० आ०	३१४

घातु सुची ।

घातु		पृष्ठ	घातु		पृष्ठ
बल्ग्	भ्वा० प०	२९६	बृप्	भ्वा० प०	२८६
बग्	अ० प०	४२१	बृ	कृत्वा० उ०	३७२
वम्	भ्वा० प०	२९६	वे	भ्वा० उ०	३२१
"	अ० या०	४४०	वेप्	भ्वा० आ०	३१६
वङ्	भ्वा० उ०	३२१	वेह्	भ्वा० प०	२९७
वा	अ० प०	४३९	वेट्	भ्वा० आ०	३०४
वान्द्	भ्वा० प०	२८६	व्यप्	भ्वा० आ०	३१६
वाम	चु० प०	३९४	व्यप्	दि० प०	३२७
विच्	र० उ०	४११	व्यय	चु० प०	३९६
विज् (उत्)	सु० आ०	२६९	व्रज्	भ्वा० प०	२८६
"	द्वा० उ०	४७२	वक्	भ्वा० प०	३४८
विड्भ्य	चु० प०	३९४	वद्	भ्वा० आ०	३०६
विद्	तु० उ०	०६३	वाम्	भ्वा० उ०	३२१
"	दि० आ०	३४४	वाम्	दि० प०	३३४
"	अ० प०	४२३	वाम्	भ्वा० प०	२८७
विग्	सु० प०	२४०	" (आ)	भ्वा० आ०	३०६
विग्	द्वा० उ०	४७२	शास्	अ० प०	४१८
वीज्	चु० प०	३९४	" (आ)	अ० आ०	४४६
वृ	भ्वा० उ०	३६२	शिश्	भ्वा० आ०	३०६
"	चु० प०	३८७	शिप्	र० प०	४०१
वृन्	चु० प०	३८७	"	चु० प०	३८७
वृन्	भ्वा० आ०	३१४	शी	अ० आ०	४४८
वृप्	भ्वा० आ०	३१६	शील	चु० प०	३९६

धातु-सूची ।

धातु		पृष्ठ	धातु		पृष्ठ
शुच्	भ्वा० प०	२८७	मान्द्य	बु० प०	३८८
शुष्	दि० प०	३३६	मिच्च	तु० उ०	२६३
शुभ्	भ्वा० आ०	३१०	सिच्च	भ्वा० प०	२८८
शुप्	दि० प०	३३६	"	दि० प०	३३६
शू	कृग० प०	३७३	निच्च	दि० प०	३२८
शौ	दि० प०	३२८	सु	भ्वा० उ०	३६६
श्च्युत्	भ्वा० प०	२९७	सृ	दि० आ०	३३९
श्च्य (चि)	बु० प०	३८८	"	अ० आ०	४४२
श्चम्	दि० प०	३३६	सूच	बु० प०	३९०
श्चि	भ्वा० उ०	३००	सृद्	बु० प०	३८८
श्चु	स्वा० प०	३४७	सृ	भ्वा० प०	२८८
श्चल्य	बु० प०	३९६	सृच्च	तु० प०	२६४
श्चलाच्	भ्वा० आ०	३०६	"	दि० आ०	२०४
श्चिच्च	दि० प०	३२८	सृच्	भ्वा० प०	२८८
श्चम्	अ० प०	४३०	नेच्च	भ्वा० आ०	३०६
श्चिच्च	भ्वा० आ०	३१६	गो	दि० प०	३२८
श्चिच्च	भ्वा० प०	२८७	स्फुट् (आ, प्र) भ्वा० प०		२८८
सच्च	भ्वा० प०	२९७	स्फुट्	भ्वा० प०	२९८
सद्	भ्वा० प०	२९७	स्फुट्म्	कृग० प०	३७४
"	बु० प०	३८८	स्तु	अ० उ०	४४९
समाज	बु० प०	३९६	स्तृ	भ्वा० उ०	३४९
सद्	भ्वा० आ०	३०६	स्तृ	कृग० उ०	३७०
साच्	दि० प०	३३६	स्तृन्त	बु० प०	३९६

धातु सूची ।

धातु		शृष्ट	धातु		शृष्ट
स्था	भ्वा० प०	२६९	स्वन्	भ्वा० प०	२९८
स्ना	अ० प०	४३९	स्वप्	अ० प०	४२९
स्निह्	दि० प०	३३६	स्विद्	दि० प०	३३६
स्वन्द्	भ्वा० आ०	३१९	हन्	अ० प०	४१६
स्पर्द्ध्	भ्वा० आ०	३१६	हस्	भ्वा० प०	२६६
स्वृग्	तु० प०	२९०	हा	ह्वा० प०	४६०
स्वृह	चु० प०	३९६	"	ह्वा० आ०	४६४
स्फुद्	तु० प०	२९६	हि	भ्वा० प०	३६०
"	चु० प०	३८८	हिम्	रु० प०	४०९
स्फुर्	तु० प०	२९६	हु	ह्वा० प०	४९९
स्मि	भ्वा० आ०	३१६	ह्	भ्वा० उ०	३२२
स्मृ	भ्वा० प०	२८८	ह्द्	दि० प०	३३६
स्वन्द्	भ्वा० आ०	३१६	हु	अ० आ०	४४३
सम्	भ्वा० आ०	३१६	ह्स्	भ्वा० प०	२९८
सु	भ्वा० प०	२९८	हो	ह्वा० प०	४२२
स्वथ्	भ्वा० आ०	३०६	ह्वाद्	भ्वा० आ०	३१७
स्वद्	भ्वा० आ०	३०६	ह्वे	भ्वा० उ०	३२३
"	चु० प०	३८८	समष्टि		४७४

संक्षेप-रूपटीकरण ।

अनर्घ०	अनर्घराघवम् ।	मालती०	मालतीमाधवम् ।
उत्तर०	उत्तररामचरितम् ।	मालविद्या	मालविकाग्निमित्रम् ।
ऋतु०	ऋतुसंहारम् ।	सुद्रा०	सुद्राशास्त्रम् ।
काद०	कादम्बरी ।	मृच्छ०	मृच्छकटिकम् ।
कु०	कुमारसम्भवम् ।	मेघ०	मेघदूतम् ।
गीतगो०	गीतगोविन्दम् ।	र०	रघुवशम् ।
गीता	धर्मद्वयवर्तीता ।	रत्ना०	रत्नावली ।
दशकु०	दशकुमारचरितम् ।	रामा०	रामायणम् ।
नै०	नैषधचरितम् ।	विक्रमो०	विक्रमोर्वशीयम् ।
पञ्च०	पञ्चतन्त्रम् ।	विद्ध०	विटशालभञ्जिका ।
भ०	भट्टिनायकम् ।	वेणी०	वेणीसंहारम् ।
भक्त०	भक्तूहरिदासकम् ।	शत्रु०	शत्रुघ्न (अग्नि- जानशत्रुघ्न) ।
भा०	भारवि काव्यम् (सिंगतासुनीयम्) ।	सुश्रुत०	सुश्रुतसंहिता ।
भामिनी०	भामिनीविलास ।	हिना०	हितोपदेश ।
मनु०	मनुसंहिता ।	अरु०	अरुणम् ।
महाना०	महाकाव्यम् ।	मरु०	मरुतम् ।
महाभा०	महाभारतम् ।	पु०	पुलिङ्ग ।
महावीर०	महावीरचरितम् ।	श्री-	श्रीलिङ्ग ।
माघ०	माघ काव्यम् (शिशुपालवधम्) ।	ह्रीः	ह्रीरिङ्ग ।

ॐ तत् सत् ।

संस्कृत-

व्याकरण-मञ्जरी ।

१। जिस शास्त्रसे शब्दोंकी व्युत्पत्ति (अर्थात् वाक्यके अन्तर्गत एक एक पद किस प्रकारसे निष्पन्न होता है, उसका विवरण) जानी जाती है, और तदनुसार विशुद्ध भाषामे लिखनेकी ढोलनेकी तथा वाक्यके अर्थ समझनेकी शक्ति होती है, उसको 'व्याकरण'* कहते हैं ।

वर्ण-प्रकरण ।

२। अ आ प्रभृति एक एकको 'वर्ण या अक्षर' (Letter) कहते हैं, यथा—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ए ऐ ओ औ ।
क ख ग घ ङ । च छ ज झ ञ । ट ठ ड ढ ण । त थ द ध
न । प फ य भ म । य र ल व । श ष स ह ।

* व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते साधुशब्दा अस्मिन् अनेन वा इति व्याकरणम् ।

† र् और म् के स्थानमे अनुस्वार, तथा र् और स् के स्थानमे विसर्ग होता है, इसलिये अनुस्वार और विसर्ग अलग वर्णोंमे गिने नहीं गये ।

(क) वर्ण दो-प्रकार—(१) स्वर वा अक्षर (Vowel)
और (२) व्यञ्जन, हल् वा हस् (Consonant) ।

स्वरवर्ण ।

३ । जिन वर्णोंका आपसे आप उच्चारण होता है, अर्थात् जिनके उच्चारणमें और किसी वर्णकी अपेक्षा नहीं, उनको 'स्वरवर्ण' कहते हैं. यथा—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ए पे ओ औ* ।

४ । स्वरवर्ण दो-प्रकार—(१) ह्रस्व (Short) और (२) दीर्घ (Long) । अ इ उ ऋ लृ—ये पाँच ह्रस्व स्वर, आ ई उ ऋ ए पे ओ औ—ये आठ दीर्घ स्वर ।

(क) अक्षर इत्यादि—अक्षर कहनेसे अ आ, इक्षर कहनेसे इ ई, उक्षर कहनेसे उ ऊ, ऋक्षर कहनेसे ऋ ॠ, और लृवर्ण कहनेसे लृ समझना चाहिये ।

(ख) ह्रस्व—आकारका ह्रस्व अक्षर, † ईकार, एकार और

* दीर्घ लृक्षरभी एक वर्ण है, किन्तु उसका प्रयोग नहीं है । अक्षरसे दीर्घ लृक्षरतक दस वर्णोंको 'समान-वर्ण' कहते हैं—दश समान । उनमें दो दो वर्ण परस्पर 'सवर्ण' होते हैं—तेषां द्वौ द्वावन्वोन्यस्य सवर्णौ † । उच्चारणके नियमानुसार ह्रस्वको एकमात्र, दीर्घको द्विगुण, और व्यञ्जनको अर्द्धमात्र कहते हैं ।

† वर्णके उत्तर स्वर्णमें 'कार' प्रत्यय होता है, यथा—अकार, इकार, एकार, गकार इत्यादि । स्वरवर्णके उत्तर विरत्यसे 'तु' प्रत्यय होता है, यथा—अतु, आतु, इतु इत्यादि ।

पेकारका ह्रस्व—इकार, ऊकार, ओकार और औकारका ह्रस्व—उकार, ऋकारका ह्रस्व—ऌकार ।

(ग) लघु, गुरु—ह्रस्वस्वरको 'लघुवर्ण', और दीर्घस्वरको 'गुरुवर्ण' कहते हैं ।

समुक्त वर्ण,* विसर्ग अथवा अनुस्वार परे रहनेमें, ह्रस्वस्व-
रभी गुम्बर्गमे गिना जाता है, यथा—(समुच्चवर्ण परे) इच्चाकु—
यहाँ 'इ' गुरुस्वर, (विनर्ग परे) पति, (अनुस्वार परे) पति ।†

२. व्यञ्जनवर्ण ।

१। जो वर्ण स्वरके साहाय्य बिना स्वयं उच्चारित नहीं
होते, उनको 'व्यञ्जनवर्ण' कहते हैं, यथा—क् स् ग् घ् ङ्, च् छ्
ज् झ् ञ्, ट् ठ् ड् ढ् ण्, त् थ् द् ध् न्, प् फ् ब् भ् म्, य्
ल्य्, श् ष् स् ह् ।‡

* व्यञ्जनवर्ण व्यञ्जनवर्णके साथ युक्त होनेसे, समुदायको 'युक्ताक्षर' वा
'संयुक्तवर्ण' कहते हैं, यथा—क्त, म्य, च्च, ङ्ङ इत्यादि ।

† पादको चारभाग करनेमें, उनके एक एक भागको 'पाद' वा 'धरण'
कहते हैं । पादके अन्तस्थित वर्ण विकल्पसे गुरु होता है । प्र और ह परे रहने-
सेभी लघुवर्ण विकल्पसे गुरु होता है ।

“सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गो च गुरुर्भवेत् ।

वर्ण-संयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा ॥”

‡ स्वरवर्णका योग न होनेसे व्यञ्जनवर्ण उच्चारण नहीं किये जा
सकते, इसलिए उनके अन्तमें अकार-योग करके क ख ग घ इत्यादिरूप-

६ । व्यञ्जनवर्ण तीन भागोंमें विभक्त, यथा—

(१) कू से म् तक पचीस स्पर्शवर्ण चा वर्णावर्ण ।

(२) य र ल व्—ये चार अन्त स्थवर्ण † (Semi-vowel) ।

(३) ज् प् स् ह्—ये चार ऊष्मवर्ण‡ (Sibilant) ।

७ । स्पर्शवर्ण पुन पाँच भागोंमें विभक्त, इनके एक एक भागको 'वर्ग' (Class) कहते हैं, यथा—

—(१) क ख ग घ ङ—कवर्ग ।

—(२) च छ ज झ ञ—चवर्ग ।

—(३) ट ठ ड ढ ण—टवर्ग ।

—(४) त थ द ध न—तवर्ग ।

—(५) प फ ब भ म—पवर्ग ।

से लिखने और पढ़नेकी रीति है । ह्रस्वोंमें स्वर न रहनेसे उनके नीचे (~) ऐमा चिह्न दिया जाता है, इसको 'ह्रस्वन्त चिह्न' कहते हैं ।

* जिह्वाके अग्र, उपाग्र (अग्रभागके समीपस्थ प्रदेश), मध्य और मूल द्वारा तालु-दन्त-प्रभृति स्थान स्पर्श करके इन वर्णोंको उच्चारण करना होता है, इसलिये इनका नाम 'स्पर्शवर्ण' ।

† स्पर्शवर्ण और ऊष्मवर्ण—इन दोनोंके बीचमें निर्दिष्ट होनेके कारण इनको 'अन्त स्थ' (मध्यवर्ती) वर्ण कहते हैं ।

‡ ऊष्मन् (पु०) शब्दका अर्थ—उत्ताप । ऊष्मवर्ण—उत्तापयुक्त वायुप्रधान वर्ण, अर्थात् इनके उच्चारणमें उष्णवायुका प्राधान्य है, इसलिये इनका नाम 'ऊष्मवर्ण' ।

८ । अघोषवर्ण—वर्णके प्रथम और द्वितीय वर्ण तथा श प स—इन तेरह व्यञ्जनोको 'अघोषवर्ण' कहते हैं, यथा—क ख च छ ट ठ त थ प फ श ष स ।[†]

९ । घोषवद्वर्ण—वर्णके तृतीय, चतुर्थ और पञ्चम वर्ण तथा य र ल घ ङ—इन बीस व्यञ्जनोको 'घोषवद्वर्ण' कहते हैं, यथा—ग घ ङ ज झ ञ ङ ढ ण द ध न व भ म य र ल व ह ।[‡]

वर्णोंका उच्चारणस्थान ।

१० । (१) अ आ इ—इनका उच्चारणस्थान कण्ठ, इसलिये इनको 'कण्ठ्य वर्ण' (Guttural or throat-letter) कहते हैं ।

(२) क ख ग घ ङ—इनका उच्चारणस्थान जिह्वामूल, इस लिये इनको 'जिह्वामूलीय वर्ण' (Linguae radical) कहते हैं ।[‡]

(३) इ ई च छ ज झ ञ य क्ष—इनका उच्चारणस्थान तालु, इस

* वर्णाणां प्रथमद्वितीया शपसाथाघोषा ।

† घोषवन्तोऽन्ये ।

‡ वैयाकरणलोग अ आ इ क ख ग घ ङ—इन सभीका उच्चारण स्थान 'कण्ठ' कहते हैं । किन्तु शिक्षाप्रण्यमे अ आ इ—इन तीनोंका उच्चारणस्थान 'कण्ठ', और कवर्णका उच्चारणस्थान 'जिह्वामूल'—ऐसा स्पष्ट निर्देश है, यथा—“कण्ठ्यावहौ”, ‘जिह्वामूले तु कु प्रोक्त’ इति । वास्तवमे अ आ इ—इन तीनोंके और कवर्णके उच्चारणमे बहुत भेद है । उभय भेदके अनुसार विचार करनेमें शिक्षाप्रण्यका निर्देशही सत्प्र प्रतीत होता है । इसलिये यहाँ शिक्षाप्रण्यकी व्यवस्थानुसारही कवर्णका उच्चारण-स्थान जिह्वामूल निर्दिष्ट हुआ ।

लिये इनको 'तालव्य वर्ण' (Palatal or palata-letter) कहते हैं ।

(४) क ख ए ऋ इ ऋ ऌ ड ण र य—इनका उच्चारणस्थान मूर्धा, इसलिये इनको 'मूर्धान्व्य वर्ण' (Cerebral or brain-letter) कहते हैं ।

(५) लृ त थ द ध न ल म—इनका उच्चारणस्थान दन्त, इसलिये इनको 'दन्त्य वर्ण' (Dental or tooth-letter) कहते हैं ।

(६) उ ञ प फ ब म न्न—इनका उच्चारणस्थान ओष्ठ, इसलिये इनको 'ओष्ठ्य वर्ण' (Labial or lip-letter) कहते हैं ।

(७) ष षं—इनके उच्चारणस्थान कण्ठ और तालु, इसलिये इनको 'कण्ठ-तालव्य वर्ण' (Palato-guttural) कहते हैं ।

(८) झं झी—इनके उच्चारणस्थान कण्ठ और ओष्ठ, इसलिये इनको 'कण्ठोष्ठ्य वर्ण' (Labio-guttural) कहते हैं ।

(९) क्षल स्य वकारस्य उच्चारणस्थान दन्त और ओष्ठ, इसलिये इसको 'दन्तोष्ठ्य वर्ण' (Dento-labial) कहते हैं ।*

(१०) ट थ ण न म—वेदिविद्वान्मूल-तालु-प्रसृतिकं साय नामिकासि-
नी उच्चारति होते हैं, इसलिये इनको 'अनुनासिक वर्ण' भी (Nasal or
nose-letter) कहते हैं ।

(११) अनुस्वार (¨), चन्द्रबिन्दु (¨)—ये भी 'अनुनासिक वर्ण' हैं ।

* वर्गीय वकारका उच्चारण अङ्गरेजी F के तुल्य, और अन्त स्य वकार-
का उच्चारण अङ्गरेजी P के तुल्य ।

† चन्द्रबिन्दु अनुस्वारकाही समन्तरमात्र । चन्द्रबिन्दुसुक्तरणको 'सा-
नुनासिक' कहते हैं ।

(१२) विसर्ग (:) आध्वयस्थानभागी, अर्थात् जिम स्वरवर्णको आध्वय करके उच्चारित होता है, उस स्वरवर्णका उच्चारणस्थानही विसर्गका उच्चारणस्थान ।

प्रश्नमाला ।

(१) व्याकरण किमको कहते हैं ? (२) वर्णका द्वितीय नाम क्या है ? (३) अ उ ऋ ओ आ ऊ—इन स्वरोमेसे कौन ह्रस्व, कौन दीर्घ,—कहो । (४) व्यञ्जनवर्ण किसे कहते हैं ? (५) स्वर और व्यञ्जनमे प्रभेद क्या है ? (६) व्यञ्जनवर्ण कितने भागोंमें विभक्त ? (७) स्पर्शवर्णके शोचमे कितने वर्ण हैं ? (८) जिह्वामूलीय वर्ण किनको कहते हैं ? (९) उनका नाम 'जिह्वामूलीय' क्यों हुआ ? (१०) दन्तयौष्ठ्य वर्ण क्या है ? (११) ज झ ढ ट द ध व भ ऐ ओ—इन वर्णोंमे किसका उच्चारणस्थान क्या है,—बतलाओ । (१२) विसर्गको 'आध्वयस्थानभागी' क्यों कहा गया ?

सन्धि-प्रकरण ।

सन्धि (Conjunction of letters or
Euphonic Combination) ।

११ । दो वर्ण परस्पर अत्यन्त निकटवर्ती होनेसे जो मिल जाते हैं, उस मिलनको 'सन्धि' कहते हैं ।*

* जिन दो वर्णोंमे सन्धि होगी, उनके प्रथम वर्णको 'पूर्ववर्ण', और

(क) सन्धिमे कर्मा दो वर्णोंका मिलन होता है, कर्मा पूर्ववर्ण विट्त्व (रुान्तरित) होता है, कर्मा परवर्ण विट्त्व होता है, कर्मा दोनो वर्णही विकृत होते है, कर्मा पूर्ववर्णका लोप होता है, कर्मा परवर्णका लोप होता है, यथा—(मिलन) महान् + भाषह = महानाषह, (पूर्ववर्ण विकृत) तत् + जय = तज्जय, (परवर्ण विकृत) यत् + न = यत्न, (दोनो वर्ण विकृत) तत् + शक्ति = तत्शक्ति, (पूर्ववर्णलोप) ऋषय. + उचु = ऋषय उचु, (परवर्णलोप) सगे + अरोहि = सगेऽरोहि ।

१२ । सन्धि तीन-प्रकार—(१) स्वरसन्धि, (२) व्यञ्जनसन्धि और (३) विसर्गसन्धि ।

(१) स्वरवर्ण और स्वरवर्णमे जो सन्धि होती हे, उसे 'स्वरसन्धि' कहते हे, यथा—मुर + अरि. = मुरारिः ।

(२) व्यञ्जनसन्धि दो-प्रकार—(१) व्यञ्जनवर्ण और व्यञ्जनवर्णमे, यथा—तत् + हितम् = तद्धितम्, (२) व्यञ्जनवर्ण और स्वरवर्णमे, यथा—सत् + आशयः = सदाशयः ।

(३) विसर्गसन्धि दो प्रकार—(१) विसर्ग और स्वरवर्णमे, यथा—नर + अयम् = नरोऽयम्, (२) विसर्ग और व्यञ्जनवर्णमे, यथा—मयूर + नृत्यति = मयूरो नृत्यति ।

(क) एकारदमे, धातु और उपसर्गमे, तथा समासमे नित्य सन्धि होती है, अर्थात् इनमे सन्धि अवश्य करना चाहिये, किन्तु वाक्यमे सन्धि इच्छार्थान, अर्थात् वाक्यके भावमे सन्धिकी सम्भावना रहनेसे, इच्छा

द्वितीय वर्णको 'परवर्ण' कहते हैं । सुतरां पूर्वपदके अन्तमे वर्णको 'पूर्ववर्ण', और परपदके आदि वर्णको 'परवर्ण' समझना चाहिये ।

हो, सन्धि करना, न हो, न करना, यथा—(परपदमे) ने + अन्नम् = नयनम्, (धातु और उपसर्गमे) अनु + एति = अन्यन्ति, (समासमे) नित्य + आनन्द = नित्यानन्द । (वाक्यमे) "कस्मिश्चिद्गने भास्वरको नाम सिंह प्रतिरमति । असौ नित्यमेव अनेकान् मृगशशकादीन् व्यापादयति"—यहां 'कस्मिश्चिद् + गने', 'भास्वरक + नाम' इन दोनो स्थलोंमे सन्धि की हुई है, न करनेसे भी चल सकता, 'नित्यमेव + अनेकान्'—यहां सन्धि नहीं की है, कीर्मा जा सकती, किन्तु 'कस्मिश्चिद्'—इस परपदमे, और 'मृगशशकादीन्'—इस समासमे सन्धि करनीही होगी, 'कस्मिन्-चित्' 'मृगशशक आदीन्'—ऐसा लिपनेसे भूल होगी । *

पद्य (श्लोक)मे भी सन्धि न करनेसे दोष होता है । विषयसन्धि की सम्भावना रहनेसे, सन्धि करनीही अच्छी, न करनेसे ध्रुतिऋ होता है, यथा—'स हि दाशरथि राम'—यहां 'स हि दाशरथी राम' कहनेसे सुननेमे अच्छा लगता है ।

स्वर-सन्धि (Conjunction of vowels) ।

[अ आ + अ आ]

१३ । अकार वा आकारसे परे अकार वा आकार रहनेसे, दोनो मिलके आकार होता है, आकार पूर्ववर्णमे युक्त होता

* सन्धिकेपदे नित्यो, नित्यो धातूपसर्गयो ।

नित्य समासे, वाक्ये तु स विवक्षामपेक्षते ॥

। अ वा के स्थानमे वा, इ ई के स्थानमे ई, उ ऊ के स्थानमे ऊ, ऋ ॠ के स्थानमे ॠ होनेको 'दीर्घ होना' कहते हैं ।

है,* यथा--

अ + अ = आ-मुर + अरिः = मुरारि ।

अ + आ = आ-देव + आलयः = देवालयः ।

आ + अ = आ-दया + अर्थः = दयार्थः ।

आ + आ = आ-विद्या + आलयः = विद्यालयः ।

मन्त्रि करो-पद + अर्थ, रत्न + आका, लता + अन्त, महा + आशय ।

विन्डेय करो-अधारि, कुतामनम्, महार्थ, गदाघात, नयनानन्द, जलद्रागम ।

[अ आ + इ ई]

१५ । अकार या आकारमे परे ह्रस्व इ धा दीर्घ ई रहनेसे दोनो मिलके एकार होता है; एकार पूर्ववर्णमे युक्त होता है, यथा--

अ + इ = ए-देव + इन्द्रः = देवेन्द्रः ।

अ + ई = ए-मय + ईश = भगेशः ।

आ + इ = ए-महा + इन्द्रः = महेन्द्रः ।

आ + ई = ए-महा + ईश्वर = महेश्वरः ।

* समान सवों दोषों भवति, परथ लोपम् । (समानसवोंको वर्णों-सवों परे दोषों भवति परथ लोपमापद्यते ।)

‡ इ ई के स्थानमे ए, उ ऊ के स्थानमे ओ, ऋ ॠ स्थानमे अर् होनेकी 'गुण' धरने हैं ।

‡ अर्ग इवर्ग—२ । (अवर्ग इवर्ग परे एर्भवति, परथ लोपमापद्यते ।)

मन्त्रि कर्णे—पूर्गं + इन्द्रु, गग + ईश, लता + इव, उमा + ईश, पन + ईहा ।

विशेष करो—नान्द्र, भोन्द्र, अवेक्षणम्, दुर्गेश, रमेश, सुप्तेन्धनम् ।

[अ आ + उ ऊ]

१५ । अकार वा आकारसे परे ह्रस्व उ वा दीर्घ ऊ रहनेसे, दोनो मिलके ओकार होता है, ओकार पूर्ववर्णमे युक्त होता है; *यथा—

अ + उ = ओ-ज्ञान + उदय = ज्ञानोदय ।

अ + ऊ = ओ-एक + ऊनविशति = एकोनविशति ।

आ + उ = ओ-गङ्गा + उदकम् = गङ्गोदकम् ।

आ + ऊ = ओ-महा + ऊर्मिः = महोर्मि ।

मन्त्रि करो—व्याघ्र + उत्पान, यमुना + उत्तरणम्, गृह + ऊर्ध्वम्, विद्या + ऊन ।

विशेष करो—काप्योत्पत्ति, प्रोत्तु, कपोपकथनम्, सहोदर, लम्बोदर ।

[अ आ + ऋ]

१६ । अकार वा आकारसे परे ऋकार रहनेसे, दोनो मिलके 'अर्' होता है, अकार पूर्ववर्णमे युक्त होता है, और र् परवर्णके मस्तकमे जाता है, † यथा—

अ + ऋ = अर्-देव + ऋषि = देवर्षि ।

* उवर्णे-ओ । (अवर्णं उवर्णे परे ओ भवति, परस्य लोपमापद्यते ।)

† ऋवर्णे-अर् । (अवर्णं ऋवर्णे परे अर् भवति, परस्य लोपमापद्यते ।)

आ + ऋ = अर्-देवता + ऋपम = देवतर्पम ।

सन्धि करो—पवित्र + ऋत्विक्, महा + ऋश् ।

विश्लेष करो—हिमर्तु, नर्पम ।

[अ आ + ए ऐ]

१७ । अकार वा आकारसे परे 'ए' वा 'ऐ' रहनेसे, दोनो मिलके 'ऐ' होता है*, ऐकार पूर्ववर्णमे युक्त होता है, यिथा—

अ + ए = ऐ-मम + एव = ममैव ।

अ + ऐ = ऐ-धन + ऐश्वर्यम् = धनैश्वर्यम् ।

आ + ए = ऐ-सदा + एव = सदैव ।

आ + ऐ = ऐ-सदा + ऐक्यम् = सदैक्यम् ।

सन्धि करो—तव + एतन्, तथा + एव, मत + ऐश्वर्यम्, महा + एश्वर ।

विश्लेष करो—पूर्वम्, अथैव, वित्तेश्वर्यम्, सदैश्वर्यम् ।

[अ आ + ओ औ]

१८ । अकार वा आकारसे परे 'ओ' वा 'औ' रहनेसे, दोनो मिलके 'औ' होता है, औकार पूर्ववर्णमे युक्त होता है,†

* इ ई ए ऐ के स्थानमे ऐ, उ ऊ ओ औ के स्थानमे औ, ऋ के स्थानमे आर् होनेको 'वृद्धि' कहते हैं ।

† एकार ऐ ऐकारे च । (अक्षरं एकारे ऐकारे च परे ऐमं वृत्ति, परस्मैपदापद्यते ।)

‡ ओकारे औ औकारे च । (अक्षरं ओकारे औकारे च परे औमं वृत्ति, परस्मैपदापद्यते ।)

यथा—

अ + ओ = औ—जल + आघ = जलौघ ।

अ + शौ = औ—चित्त + औदास्यम् = चित्तौदास्यम् ।

आ + ओ = औ—महा + ओपधि. = महौपधि ।

आ + औ = औ—सदा + औत्सुक्यम् = सदात्सुक्यम् ।

सन्धिको—दिव + ओऽम्, हृदय + औदायम् ।

विश्लेष को—महौजस, जलौका, रचिरौपम्यम् ।

[इ ई + इ ई]

१६ । ह्रस्व इकार वा दीर्घ ईकारसे परे ह्रस्व इ वा दीर्घ ई रहनेसे, दोनो मिलके दीर्घ ईकार होता है, ईकार पूर्ववर्णमे युक्त होता है,* यथा—

इ + इ = ई—अभि + इष्टम् = अभीष्टम् ।

इ + ई = ई—प्रति + ईक्षणम् = प्रतीक्षणम् ।

ई + इ = ई—महतो + इच्छा + महतोच्छा ।

ई + ई = ई—पृथ्वी + ईश = पृथ्वीशः ।

सन्धिको—अति + इव, कवि + ईश्वर, मही + इन्द्र, लक्ष्मी + ईश ।

विश्लेष को—गिरीन्द्र, गौरीक्षणम्, क्षितीहा, धात्रीक्षणम् ।

[इ ई + असमान स्वरवर्ण]

२० । ह्रस्व इकार वा दीर्घ ईकारसे परे इ ई भिन्नस्वरवर्ण रहनेसे, ह्रस्व इ और दीर्घ ई के स्थानमे 'यू' होता है, 'यू' पूर्व-

* समान सवर्ण दीर्घों भवति, परस्व लोपम् ।

वर्णमे युक्त होता है,* यथा—

इ + अ = य् + अ — अति + अन्नम् = अत्यन्नम् ।

ई + आ = य् + आ — देवी + आगमनम् = देव्यागमनम् ।

सन्धि करो—अति + जावार, प्रति + पत्रम्, अभि + उदय,
मुनि + पञ्चम् ।

विशेष करो—मल्लुक्ति, नद्यम्बु, मुन्युचितम्, यथेवम्, भवत्येव,
नयेषा ।

[उ ऊ + उ ऊ]

२१ । ह्रस्व उकार वा दीर्घ ऊकारसे परे ह्रस्व उ वा दीर्घ ऊ रहनेसे, दोनो मिलके दीर्घ ऊ होता है, दीर्घ ऊ पूर्ववर्णमे युक्त होता है, यथा—

उ + उ = ऊ — विधु + उदय = विधुदय ।

उ + ऊ = ऊ — लघु + ऊर्मि = लघूर्मिः ।

ऊ + उ = ऊ — वधू + उत्सव = वधूत्सव ।

ऊ + ऊ = ऊ — तनू + ऊर्द्धम् = तनूर्द्धम् ।

सन्धि करो—कटु + उक्ति, स्वयम्भू + उदय, स्वादु + उदकम् ।

विशेष करो—भूर्द्धम्, गुरुद्ध, साधूर्द्धम्, ऊर्द्धवा ।

[उ ऊ + असमान स्वरवर्णा]

२२ । उ ऊ भिन्न स्वरवर्णा परे रहनेसे, ह्रस्व उ और दीर्घ

* इवर्णो यमसवर्णे—न च परो टोप्य । (इवर्णो यम् सावर्ते,
असवर्णे परे ।)

† समान स्वर्णे दापो भवति, परस्य लोपम् ।

ऊ के स्थानमे 'वृ' होता है, 'वृ' पूर्ववर्णमे युक्त होता है,* यथा—

उ + ए = वृ + ए -- अनु + एरणम् = अन्वेषणम् ।

ऊ + आ = वृ + आ -- घृ + आगमनम् = घृत्वागमनम् ।

सन्धि करो—माधु + इदम्, ऋतु + अर्थ, उ + आगतम्, अ-
नु + अय ।

विश्लेष करो—चञ्च्वाघात, गुवांमनम्, तन्वङ्गो, वध्वोऽार्ष्यम् ।

[ऋ + ऋ]

२३ । ऋकारसे परे ऋकार रहनेसे, दोनो मिलके दीर्घ ऋ होता है, दीर्घ ऋ पूर्ववर्णमे युक्त होता है,† यथा—

ऋ + ऋ = ऋ -- पितृ + ऋणम् = पितृणम् ।

सन्धि करो—भ्रातृ + ऋत्विर्ना ।

विश्लेष करो—मातृद्धि ।

[ऋ + असमान स्वरवर्ण]

२४ । ऋ भिन्न स्वरवर्ण परे रहनेसे, ऋ के स्थानमे 'र' होता है, 'र' पूर्ववर्णमे युक्त होता है,‡ यथा—

ऋ + आ = र + आ -- पितृ + आसनम् = पित्रासनम् ।

सन्धि करो—मातृ + अनुमति, सवितृ + उदय, मातृ + इच्छा ।

विश्लेष करो—जामाग्रथंम्, दुहित्रीहितम्, पित्रैश्वर्यम् ।

* वमुवर्ण । (उवर्णो वम् आपद्यते, असवर्णे परे-न च परो लोप्यः ।)

† समान सवर्णे दीर्घो भवति, परश्च लोपम् ।

‡ रमृवर्ण । (अवर्णो रम् आपद्यतेऽसवर्णे-न च परो लोप्य ।)

[ए + स्वरवर्ण]

२५ । स्वरवर्ण परे रहनेसे, एकारके स्थानमें 'अय्' होता है, अकार पूर्ववर्णमें युक्त होता है, और 'य्' परस्वरमें युक्त होता है, यथा—

ए + अ = अय् + अ - ने + अनम् = नयनम् ।

सन्धि कर्तो—शे + इतम्, ने + ममि, ने + ए, अगे + आताम् ।

विशेष कर्तो—जपति, अशयिष्ठ, सञ्चय, शयनम्, लय ।

[ऐ + स्वरवर्ण]

२६ । स्वरवर्ण परे रहनेसे, ऐकारके स्थानमें 'आय्' होता है; आकार पूर्ववर्णमें युक्त होता है, और 'य्' परस्वरमें युक्त होता है, यथा—

ऐ + अ = आय् + अ - नै + अक = नायक ।

सन्धि कर्तो—निर्नै + अ, परिवै + अक ।

विशेष कर्तो—मन्नायक, राय ।

[ओ + स्वरवर्ण]

२७ । स्वरवर्ण परे रहनेसे, ओकारके स्थानमें 'अय्' होता है, अकार पूर्ववर्णमें युक्त होता है, और 'य्' परस्वरमें युक्त होता है, यथा—

ओ + अ = अय् + अ - ओ + अनम् = भयनम् ।

* ए-अय् । (एकार अय् भवति-न च परो लोप्य ।)

† ऐ-आय् । (ऐकार आय् भवति-न च परो लोप्य ।)

‡ ओ-अय् । (ओकार अय् भवति-न च परो लोप्य ।)

मन्धि करो—भो + इत्यति, स्तो + जनम्, गो + प ।

विश्लेष करो—जन, पवित्रम्, प्रमवितुम् धनम् ।

औ + न्यरवर्ग]

२८ । न्यरवर्ण परे रहनेसे, औकारके स्थानमे 'आव्' होता है. आकार पूर्ववर्णमे युक्त होता है, और 'व्' परस्वरमे युक्त होता है,* यथा—

औ + अ = आव् + अ -- पौ + अक = पापक ।

मन्धि करो—नौ + आ, गौ + अ, स्तौ + जन ।

विश्लेष करो—भाविनी, भावुक, गावौ, धावक ।

[पदान्त ए औ + अ]

२९ । पदकी अन्तमे स्थित एकार वा औकारसे परे अकार रहनेसे, अकारका लोप होता है, लोप होनेसे, लुप्त अकारका चिह्न(ऽ) † रहता है, § यथा—

सखे + अर्षय = सखेऽर्षय । प्रभो + अत्र = प्रभोऽत्र ।

* औ-आव् । (औकार आव् भवति—न च परो लोप्य ।)

† प्रकृति और विभक्तिके मिलनेसे जो होता है, उसे 'पद' कहते हैं, यथा—तद् + जस्=ते—यह पद है (तद्—प्रकृति, जस्—विभक्ति) ।

समासमे विभक्तिका लोप होनेसे, पूर्ववर्ती शब्दभी पदमे गिना जाता है, यथा—जगताम् ईश -जगत् + ईश, इम स्थानमे 'जगत्'—यह पद है ।

‡ छत्त अकारके (ऽ) चिह्नको संस्कृतमे 'अवप्रद चिह्न' कहते हैं ।

§ एदोत्तर पदान्ते लोपमकार । (एदोच्चा परोऽकार पदान्ते वर्तमानो लोपमापद्यते ।)

सन्धि करो—विरन्ने + मन्मस्मिन्, विभो + अनुजानोहि ।

विश्लेष करो—नेऽत्र, कोऽरोहि, गुरोऽनुमन्यस्व ।

[पदान्त ए + 'अ'-भिन्न स्वरवर्णा]

३० । अकार-भिन्न स्वरवर्णा परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित एकारके स्थानमे 'अ' वा 'अय्' होता है, 'अ' पूर्ववर्णमे युक्त होता है, 'य्' परस्वरमे युक्त होता है, 'अ' होनेसे, फिर सन्धि नहीं होती, यथा—

ए + इ = अ + इ — ते + इव = त इव ।

ए + इ = अय् + इ — ते + इव — तयिव ।

सन्धि करो—विरन्ने + एव, मने + उच्यताम्, कने + णहि ।

विश्लेष करो—गृहयागच्छ, नरपतयेहि ।

पदान्त ओ + 'अ'-भिन्नस्वरवर्णा]

३१ । अकार-भिन्न स्वरवर्णा परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित ओकारके स्थानमे 'अ' वा 'अय्' होता है, 'अ' पूर्ववर्णमे युक्त होता है, 'य्' परस्वरमे युक्त होता है, 'अ' होनेसे, फिर सन्धि नहीं होती, यथा—

ओ + इ = अ + इ — विभो + इह = विभ इह ।

ओ + इ = अय् + इ — विभो + इह = विभयिह ।

सन्धि करो—मात्रो — णहि, गुरो + उच्यताम्, प्रभो + दूच्छवि ।

विश्लेष करो—प्रम इह, प्रमरोहि, प्रम त्ते ।

पदान्त ए + स्वरवर्णा]

३२ । स्वरवर्णा परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित एकारके

स्थानमे 'आ' वा 'आय्' होता है, 'आ' पूर्ववर्णमे युक्त होता है, 'य्' परस्वरमे युक्त होता है, 'आ' होनेसे फिर सन्धि नहीं होती, यथा—

ऐ + अ = आ + अ—काल्यै + अर्पय = काल्या अर्पय ।

ऐ + अ = आय् + अ—काल्यै + अर्पय = काल्यायर्पय ।

सन्धि करो—देश्यै + इदम्, भक्ष्ये + उत्कण्ठा ।

विश्लेष करो—विद्याया आप्तह, विद्यायुन्नति, मायायायिह ।

[पदान्त औ + स्वरवर्ण]

३३ । स्वरवर्ण परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित औकारके स्थानमे 'आ' वा 'आय्' होता है, 'आ' पूर्ववर्णमे युक्त होता है, 'य्' परस्वरमे युक्त होता है, 'आ' होनेसे, फिर सन्धि नहीं होती, यथा—

औ + अ = आ + अ—रवौ + अस्तदते = रवा अस्तदते ।

औ + अ = आय् + अ—रवौ + अस्तदते = रवायस्तदते ।

सन्धि करो—विद्यौ + उदिते, तौ + ईशरौ, गुरौ + अर्पणम्, गुरौ + आगते ।

विश्लेष करो—गताविनौ, रजवृद्धौ, मता पेक्ष्यम् ।

* * * * *

३४ । कृतीयात्तत्पुत्र्य सनाग्ने अकार वा साकारके परस्थित 'न्त'

* अयादीना य व-लोप पदान्ते, न वा—लोपे तु प्रकृति । (अद् इत्येवमादीना पदान्ते, दत्तं न ना य द्योलोपो भवति, न वा । लोपे तु प्रकृति स्वभावो भवति ।)—३० से ३३ सूत्र ।

शब्दके 'क्त' स्थानमें 'आर्' होता है, यथा-गीत + क्त = गीतार्त्त ,
दृष + क्त = दृषार्त्त , क्षुधा + क्त = क्षुधार्त्त ।

३५ । 'स्व' शब्दके पास स्थित 'इर्' और 'इरिन्' शब्दके ईशरके स्थानमें षेकार होता है, यथा-स्व + ईश्म् = स्वैश्म् , स्व + इरिन् = स्वैरी ,
स्व + इरिणी = स्वैरिणी ।

३६ । 'प्र'-शब्दके परवर्ती 'ऊट' और 'ऊटि' शब्दके ऊकारके स्थानमें औकार होता है, यथा—प्र + ऊट = प्रौट , प्र + ऊटि = प्रौटि ।

३७ । 'अक्ष' शब्दके परवर्ती 'ऊहिनी'-शब्दके ऊकारके स्थानमें औकार होता है, यथा—अक्ष + ऊहिनी = अक्षौहिनी ।

३८ । धातुका एकार वा ओकार परे रहनेमें, उपसर्गके अवर्गका* लोप होता है, यथा—प्र + एषयति = प्रेषयति , परा + ओषति = परोषति ।

(क) इण् और एच् धातुका एकार परे रहनेमें, पूर्ववर्ती उपसर्गके अवर्गका लोप नहीं होता, यथा—प्र + एधते = प्रैधते , अव + एति = अवैति , आ + एति = ऐति ।

३९ । 'प्र' शब्दमें परे 'एष' और 'एष्य' शब्द रहनेमें अकारका विकल्पमें लोप होता है, यथा—प्र + एष = प्रेष , प्रैष , प्र + एष्य = प्रेष्य , प्रैष्य ।

४० । 'आह्' (आ) उपसर्गके योगमें उत्पन्न एकार वा ओकार परे रहनेमें, अवर्गका लोप होता है, यथा—(आ + इहि = ऐहि) अत्र +

* अवर्णान्त उपसर्ग—प्र, परा, अप, उप, अव, आ ।

† एक वार होने और एक वार न होनेको 'विकल्प' कहते हैं ।

एहि = अत्रेहि; (आ + उतम् = ओतम्) सूत्र + ओतम् = सूत्रोतम् ।

४१ । उपसर्गके अवर्गके परसर्गो धातुके ऋकारके स्थानमे 'आर' होता है, यथा—अर + ऋच्छति = अपाच्छति, परा + ऋयति = परारयति ।

४२ । समासमे अवर्गान्त शब्दमे परे 'ओष्ठ' वा 'ओतु' शब्द रहनेसे, अवर्गका विकल्पसे लोप होता है, यथा—विन्ध + ओष्ठ = विन्धोष्ठ, विन्धोष्ठ, उमा + ओष्ठ = उमोष्ठ, उमोष्ठ, स्थूल + ओतु = स्थूलोतु-स्थूलोतु ।

४३ । पदान्तस्थित 'गो'-शब्दके ओकारसे परे अकार रहनेसे, अकार लोप होता है, वा ओकारके स्थानमे 'अव' होता है, अथवा सन्धि नहीं होती, यथा—गो + अद्गम् = गोऽद्गम्, गजाद्गम्, गो-अद्गम् ।

(क) वातायन (अरोत्वा) अर्थमे—गो + अक्ष = गजाक्ष नित्य होता है ।

(ख) अकार भिन्न स्वरवर्ण परे रहनेसे, पदान्तस्थित 'गो'-शब्दके ओकारके स्थानमे 'अव' वा 'अत्' होता है, यथा—गो + ईश = गवेश, गवेश, गो + इन्द्र = गवेश्च नित्य होता है ।

सन्धि-निषेध ।

४४ । स्वरवर्ण परे रहनेसे, ओकारान्त अव्यय और एकस्वरमात्र अवयवी सन्धि नहीं होती, + यथा—अहो ईशान उ उत्तिष्ठ ।

किन्तु सीमा, व्याप्ति वा ईषदर्थ समझानेसे, अथवा क्रियाके साथ योग होनेसे, आङ् (आ) अवयवी सन्धि होती है, यथा—(सीमा)

* ओदन्ता अ इ उ आ निपाता स्वरे प्रकृत्या । (ओदन्ता निपाता अ इ उ आङ् केवला स्वरे परे प्रकृत्या तिष्ठन्ति ।)

जा + अन्प्रस्तात् = आन्प्रस्तात् (अन्प्रस्तात्पर्यन्त), (व्याप्ति) आ +
 ष्कदेशात् = ऐकदेशात् (एकदेश व्यापक), (ईपदर्थ) आ + आलो-
 चितम् = आलोचनम् (ईपत् अर्थात् अल्पमात्र त्रिचारा क्रिया हुआ),
 (त्रिचारायोग) आ + इहि = णिहि ।

४५ । स्वरवर्ण परे रहनेसे, द्विवचन-निष्पन्न ईकारान्त, उका-
 रान्त और एकारान्त पदकी सन्धि नहीं होती, *यथा—गिरी
 इमौ, साधू आगतौ, लते एते । पचेते एतौ, एधेते इमौ ।

४६ । स्वरवर्ण परे रहनेसे, 'अद्म्'-शब्दनिष्पन्न 'अमी'-पदकी
 सन्धि नहीं होती, यथा—अमी अश्वा ।

४७ । ऋवर्ण परे रहनेसे, अत्रर्ण, इवर्ण और उवर्णकी विकल्पसे सन्धि
 होती है, और सन्धि न होनेसे विकल्पसे इम्प होता है, यथा—ब्रह्मा +
 ऋपि = ब्रह्मा ऋपि, ब्रह्मा इपि, ब्रह्मा उपि ।

व्यञ्जन-सन्धि (Conjunction of consonants) ।

(व्यञ्जन और व्यञ्जनमे)

[१ म वर्ण + २ य, ४ र्थ वर्ण, य, र, ल, व, ह]

४८ । वर्गवा तृतीय या चतुर्थ वर्ण, अथवा य र ल व ह
 परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित वर्णके प्रथमवर्णके स्थानमे

* द्विवचनमौ । (द्विवचन यत् अनौभूतम् औकाररूप परिन्ध्यज्य
 स्थान्तर प्राप्तमित्यर्थं, तत् स्वरे परे प्रकृत्या तिष्ठति ।)

† बहुवचनममी । (बहुवचन यत् 'अमी'-रूपम्, तत् स्वरे परे प्रकृत्या
 तिष्ठति ।)

स्वस्ववर्गका तृतीय वर्य होता है

क् + व = ग्व — वार् + विभज = वाग्विभव* ।

ट् + व = ड्व — पट् + विद्वांस = पट्विद्वांस ।

त् + म = ढ् — तत् + भवनम् = तड्वनम् ।

प् + म = ध्म — अप् + भाण्डम् = अन्भाण्डम् ।

मन्धि क्तो—दिङ् + गज, रिङ् + धनगरितम्, जगत् + भार*,
अर् + मात्रनम्, परिवाद् + याति ।

विशेष क्तो—वाप्रेष, द्विद्व्यपहार, वपद्देनेन्द्राय, तडिद्वाह ।

शुद्ध क्तो—नगवन्तु, अट्टङ्गुल, वाहजय ।

[१ म वर्ण + ५ म वर्ण]

४६ । पञ्चम वर्ण (ड, ज, ण, न, म) परे रहनेसे पदके
अन्तमे स्थित प्रथम वर्णके स्थानमे पञ्चम वा तृतीय वर्ण होता
है,† यथा—

क् + न = ड्न वा ग्न — दिक् + नाग = दिङ्नाग., दि-
ग्नाग. ।

ट् + म = ढ्म वा ड्म — पट् + मासा* = पण्मासा*, पड्-
मासाः †

* वर्गप्रथमा पदान्ता स्वरघोषवस्तु तृतीयात् । (आपद्यन्ते इति शेष) ।

† प्रत्ययका पञ्चमवर्ण परे रहनेसे, नित्य पञ्चमवर्ण होता है, यथा—
नत् + मात्रम् = तन्मात्रम्, जगत् + मय = जगन्मय ।

‡ पञ्चमे पद्यमात्तृतीयात् वा । (वर्गप्रथमा पदान्ता पञ्चमे परे पद्य-
मानापद्यन्ते, तृतीयात् वा ।)

मन्वि क्तो—ग्वत् + नि.मात्, वाक् + निजुग, अन्—मन् ।

विष्णो क्तो—दिहसुग्वत्, नन्सुग्वत्, अमन्चयन्, प्राहसुग्वत् ।

[१ म वर्ण + श]

१० । पदके अन्तमे स्थित वर्गके प्रथम पर्यासे परे तालव्य श रहनेसे, 'श' के स्थानमे विकल्पसे 'छ' होता है, और 'व' के स्थानमे 'च्' होता है*, यथा—

क् + श = क्छ — वाक् + शुर = वाक्छूर, वाक्शुरः ।

प् + श = प्छ — त्रिष्टुप् + श्रूयते = त्रिष्टुप्छूयते, त्रिष्टुप्श्रूयते ।

त् + श = छ्त् वा च्श — जगत् + शारयम् = जगच्छरयम्, जगच्छरयम् ।

ट् + श = छ्त् वा च्श — आपट् + शान्ति = आपच्छान्ति*, आपच्छान्ति † ‡ ।

* शकार—स्वरवर्ण और य व र मिला अन्य वर्णसे मिलित रहनेसे, 'छ' नहीं होता, यथा—उत् + क्षमदानम् = उत्क्षमदानम् ।

† पदके अन्तमे स्थित वर्गके वर्णके स्थानमे अपने अपने वर्गके प्रथम वर्ण होता है—इस नियमके अनुसार 'आपट्' शब्दके स्थानमे पहले 'आपत्' होकर पीछे सन्धि हुई ।

‡ वर्गप्रथमेभ्यः शकार स्वर-य-व-र-परदत्तकारं, न वा । (वर्गप्रथमेभ्यः पदान्तेभ्यः पर शकार स्वर-य-व-र-परदत्तकारमापद्यते, न वा ।)

चं शौ । (तकार पदान्त शे परे कम् आतद्यते, यथा—तचञ्जदम् ; तच्छमदानम् । अठवपञ्जे वचननिदम् ।)

सन्धि करो—अच् + गेपम्, पट् + दयामा, महत् + शरटम्, ष-
तद् + शकाब्दीपम् ।

विश्लेष करो—तच्छरीरम्, वृहच्छयनम् ।

[च्, ज् + न]

५१ । पदके मध्यमे स्थित चकार चा जकारसे परे दन्त्य
नकार रहनेसे, 'न' के स्थानमे 'अ' होता है, यथा—

च् + न = च्न—याच् + ना = याच्ना ।

ज् + न = ज्ञ—यज् + न = यज्ञ ।

सन्धि करो—राज् + ना, जन् + नात् ।

विश्लेष करो—राजा, जने ।

[त्, द् + च छ ज झ, ट ठ ड ढ]

५२ । च छ, ज झ, ट ठ, ड ढ परे रहनेसे, पदके अन्तमे
स्थित त् वा द् के स्थानमे यथाक्रमसे च्, ज्, ट्, ड् होने हैं,
अर्थात् च छ परे रहनेसे 'च्', ज झ परे रहनेसे 'ज्', ट ठ परे
रहनेसे 'ट्', और ड ढ परे रहनेसे 'ड्' होता है,* यथा—

त् + च = च्च—महत् + चित्रम् = महच्चित्रम् ।

द् + छ = च्छ—शरद् + छटा = शरच्छटा ।

त् + ज = ज्ञ—जगत् + जीवनम् = जगज्जीवनम् ।

त् + झ = ज्ञ—वृहत् + झटिका = वृहज्झटिका ।

सन्धि करो—तत् + टीका, एतद् + टम्बुर, जगत् + ढरका, उत् +

* परहसं तकारो ल-वटवर्गेषु । (तकार पदान्तो ल-वटवर्गेषु परत
पररूपमापद्यते ।)-५२ और ५३ सूत्र ।

हीने, तत् + टुटनम् ।

विशेष करो—उड्डीयनानम्, महचउत्रम् उच्चाराणम्, तज्जय', मञ्जुमर', उद्भिज्ज ।

शुद्ध करो—त्रिपञ्जालम्, बृहद्दयङ्गार, तद्दका ।

[त्, द् + ल]

५३ । पदके अन्तमे स्थित तकार वा दकारसे परे 'ल' रहनेसे, 'त्' वा 'द्' स्थानमे 'ल्' होता है, यथा—

त् + ल = लल — तत् + लयणम् = तल्लयणम् ।

द् + ल = लल -- एतद् + लीला = एतल्लीला ।

सन्धि करो—महत् + लावण्यम्, बृहत् + ष्णाट्, तत् + लीलायितम् ।

विशेष करो—तद्वय, उल्लेख, समिल्लता, जगद्धुश्री, एतल्लीलोचानम् ।

[त्, द् + ह]

५४ । पदके अन्तमे स्थित त् वा दकारसे परे 'ह' रहनेसे, 'त्' वा 'द्' के स्थानमे 'द्', और 'ह' के स्थानमे विकल्पसे 'ध' होता है,* यथा—

त् + ह = द्ध वा द्दह—ईपत् + हसितम् = ईपद्धसितम्, ईपद्दहसितम् ।

द् + ह = द्ध वा द्दह—तद् + हेयम् = तद्धेयम्, तद्दहेयम् ।

* वर्गप्रथमेभ्यो हकार पूर्वचतुर्थे, न वा । (वर्गप्रथमेभ्यः पदान्तेभ्यः परो हकार पूर्वचतुर्थमापद्यते, न वा, यथा-वाग्धीन, वाग्हीन ।)

सन्धि करो—वगन् + हितम्, सिपद् + टु ।

विश्लेष करो—उद्धत, उद्गणम् ।

[न् + च छ]

५५ । च वा छ परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित नकारके स्थानमे अनुस्वार और तालव्य श् होते हैं, 'श्' परवर्णमे युक्त होता है,* यथा—

न् + च = च्—भास्यान् + चन्द्र. = भास्याश्चन्द्र. ।

न् + छ = च्छ—गायन् + छात्र = गायश्छात्र ।

सन्धि करो—गच्छन् + चकोर, धावन् + छाग ।

विश्लेष करो—महाश्लेद, हृद्यश्लति ।

[न् + ट ठ]

५६ । ट वा ठ परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित 'न्' के स्थानमे अनुस्वार और मूर्द्धन्य प् होते हैं, 'प्' परवर्णमे युक्त होता है,† यथा—

न् + ट = ट्—उद्यन् + टङ्कार = उद्यटङ्कार ।

न् + ठ = ठ्—महान् + ठक्कुर = महांठक्कुर. ।

सन्धि करो—महान् + टीकाकार, जानन् + ठक्कुर ।

विश्लेष करो—बल टिट्टिम ।

* नोऽन्तश्च-छयो शकारमनुस्वारपूर्वम् । (नकार पदान्त च-छयो परयो शकारमापद्यतेऽनुस्वारपूर्वम् ।)

† ट ठयो षकारम् । (नकार पदान्त ट ठयो परयो षकारमापद्यतेऽनुस्वारपूर्वम् ।)

[न + त थ]

५७ । त वा थ परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित 'नृ' के स्थानमे अनुस्वार और दन्त्य सू होते हैं, 'म्' परवर्णमे युक्त होता है,* यथा—

नृ + तृ = स्त—महानृ + तृ = महास्तृ ।

नृ + थ = स्थ—क्षिपनृ + थ्रकारम् = क्षिपस्थ्रकारम् ।

मन्त्रि करो—शाम्भनृ + ताथ, उत्पतनृ + तग्द्, मदानृ + थरार ।

विदग्ध करो—चलस्त्वमवादी, विद्यन्तश्चर, महास्तशग ।

[नृ + ज झ]

५८ । ज वा झ परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित 'नृ' के स्थानमे 'ञ्' होता है, 'ञ्' परवर्णमे युक्त होता है, यथा—

नृ + ज = ज्ञ—राजनृ + जागृहि = राज्ञागृहि ।

नृ + झ = ञ्झ—उद्यनृ + झङ्कारः = उद्यञ्झङ्कार ।

मन्त्रि करो—गच्छनृ + झटिति, विद्वानृ + जयति ।

विदग्ध करो—बुद्धिमाप्तीवतु ।

[नृ + ड ढ]

५९ । ड वा ढ परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित 'नृ' के

* त-थयो सकारम् । (नकार पदान्त त-थयो पर्यो सकारमापयतेऽनुस्वारवपूर्वम् ।)

† ज-झ-ञ्-शकारेषु यकारम् । (नकार पदान्तो ज-झ-ञ्-शकारेषु परतो यकारमापयते ।)

स्थानमे 'ए' होता है,* यथा—

न् + ड = एड—महान् + डमरः = महाएडमर ।

न् + ढ = एढ—राजन् + ढौकसे = राजएढौकसे ।

मन्धि करो—म्बन् + डिग्दिम, म्फुडन् + दिम्य ।

विश्लेष करो—भवाण्डुण्डति, महाण्डोल ।

(न् + ल)

६० । 'ल' परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित 'न्' के स्थानमे स्मानुनासिक 'ल्' (चटविन्दुयुक्त ल्--ँल्) होता है,† यथा--

न् + ल = ँल--महान् + लाग = महाँलाभ ।

मन्धि करो—भवान् + लमते ।

विश्लेष करो—विद्वाँहिवति ।

(न् + श)

६१ । पदके अन्तमे स्थित नकारसे परे तालव्य श रहनेसे, 'न्' के स्थानमे 'ञ्', और 'श' के स्थानमे 'छ' होता है ‡ यथा-

न् + श = छञ्—महान् + शन्द्र. = महाछञ्द्र.‡ ।

* उ-ड-ण-परस्तु णकारम् । (उ-ड-णा परेऽस्मादिति उ-ड-ण-पर । उ-ड-ण-परो नकारो णमापद्यते ।)

† ले लम् । (नकार पदान्तो ले परे लमापद्यतेऽनुस्वारहानम् । कार-हीनत्वादनुनासिकम् ।)

‡ शि शौ वा । (नकार पदान्त शि परे शौ वा प्राप्नोति, षकारं वा ।)

§ अथवा केवल 'न्' के स्थानमे 'ञ्' वा 'ञ्च्' होता है, यथा—महा-ञ्शब्द, महाच्छन्द ।

सन्धि करो—गञ्जन् + दासक ।

विश्लेष करो—चलञ्जशी, निन्दञ्जुष्ट ।

[म् + व्यञ्जनवर्ण]

६२ । स्पर्शवर्ण परे रहनेसे, पदके अन्तमे स्थित 'म्' के स्थानमे अनुस्वार होता है, अथवा जिस वर्णका वर्ण परे रहता है, उसी वर्णका पञ्चम वर्ण होता है, और अन्त.स्य वा लभ्यवर्ण परे रहनेसे, केवल अनुस्वारही होता है, *यथा—

म् + क = क वा ङ्क—किम् + करोपि = किं करोपि, किङ्करोपि ।

म् + द = द, न्द—धनम् + ददाति = धन ददाति, धनन्ददाति ।

म् + व = व—हरिम् + वन्दे = हरिं वन्दे ।

म् + ह = ह—मधुरम् + हन्ति = मधुरं हन्ति ।

सन्धि करो—धर्मम् + पर, नदीम् + तर, गृहम् + गच्छ ।

विश्लेष करो—किं कर्त्तव्यम्, स्तनन्धयति, गुरवन्ति ।

शुद्ध करो—वशाब्द, किञ्चिदन्ती, मन्वाद्, स्वयम्भर, सन्वत्सर

किन्वा, एयमिवा ।

सन्धि करो—अविज्जन् + रमते, ज्ञानम् + लभते ।

विश्लेष करो—सन्ध वदति, कौञ्ज मेरे तुम्हारे ।

* मोडनुस्वार व्यञ्जने । (सकार पुनरन्तो व्यञ्जने परेऽनुस्वारमापद्यते एते तद्वर्गकृत्वा वा । (अन्तोऽनुस्वारो कर्णे परे तद्वर्गवञ्जय वाऽऽनवर्ते ।

६३ । ध्रु^३ वर्ण 'पे' रहनेसे, पदके मध्यमे स्थित 'म्' और 'वृ' के स्थानमे अनुस्वार होता है, यथा—

म् + स्य = स्य—रम् + स्यते = रस्यते ।

वृ + श = श—द्वृ + शनम् = दद्वृशनम् ।

वृ + ह = ह—द्वृ + हितम् = दद्वृहितम् ।

सन्धि कर्तो—अन् + शने, जिमान् + मति ।

विश्लेष कर्तो—रमन्ति, धमन्ते, वृद्धन्ति ।

६४ । जिम वर्गका वर्ण परे रहता है, पदके मध्यमे स्थित अनुस्वारके स्थानमे उस वर्ग का पञ्चम वर्ण होता है, यथा—

' + क = कू—आगं + क्ते = आकाकुते ।

' + उ = उ—वा + उति = वाच्छति ।

सन्धि कर्तो— + ट्यति, उत्कं + ख्ये ।

विश्लेष कर्तो—शन्तवम्, शन्तव्यम्, शान्ति ।

[प + त, थ]

६५ । मूर्द्धन्य पक्षरसे परे 'त' वा 'थ' रहनेसे, 'त' के स्थानमे 'ट', और 'थ' के स्थानमे 'ठ' होता है, यथा—

प + त = ट—उत्तृप् + तम् = उत्तृष्टम् ।

प + थ = ठ—पप् + थ = पष्ठ ।

सन्धि कर्तो—आहृप् + तम् ।

विश्लेष कर्तो—पठ, सृष्टि ।

* य र ल व, क ज ण न न भिन व्यञ्जनवर्गको 'ध्रु^३वर्ण' रखते हैं ।—ध्रु^३व्यञ्जनमन्त स्थानुनासिकम् ।

(व्यञ्जन और स्वरमें)

[१ म वर्ण + स्वरवर्ण]

६६। स्वरवर्ण परे रहनेसे, पदके अन्तमें स्थित वर्णके प्रथम वर्णके स्थानमें तृतीय वर्ण होता है, यथा—

क + ई = गी—वाक् + ईश = वागीश ।

च + अ = ज—अच् + अन्त = अजन्त ।

ट् + आ = डा—पट् + आनन = पडानन ।

त् + ई = दी—जात् + ईश्वर = जगदीश्वर ।

प् + अ = व—ईप् + अन्त = ईवन्त ।

मन्धि करो—भवत् + उक्तम्, त्वत् + इन्द्रियम्, विश्वत् + अमौ ।

विश्लेष करो—जगदिन्द्र, प्रागेव, परिवाडुवाच ।

[न् + स्वरवर्ण]

६७। स्वरवर्ण परे रहनेसे, ह्रस्व स्वरके परस्थित पदान्त नकारका द्वित्व होता है,† यथा—

न् + आ = आ—गायन् + आयाति = गायन्नायाति ।‡

* वर्णप्रथमा पदान्ता स्वर-घोषकन्तु तृतीयान् ।

† 'ह' और 'प्' का भी द्वित्व होता है, यथा—प्रत्यह् + आत्मा = प्रत्यह्वाना, सुगम् + ईश = सुगम्गीश । समोसमे नहीं होता, यथा—तिह् + अन्त = तिलन्त, सन् + अन्त = सनन्त ।

‡ ह-अ-जा ह्रस्वोपधा स्वरे द्वि । (ह-अ-जा पदान्ता ह्रस्वोपधा स्वरे परे द्विर्भवति ।—अन्त्यात् पूर्व उपधा ।)

सन्धि करो—विन्तयन् + आद्, स्मरन् + उवाव, गच्छन् + एव ।

विश्लेष करो—इमन्नागत, दीव्यद्यमर ।

शुद्ध करो—महाज्ञानन्द, भगवान्नधर्मीत् ।

६८ । स्वरवर्णके परवर्ती 'द्यु' के स्थानमे 'च्छ' होता

है,* यथा—

इ + छु = इच्छु—परि + छुद् = परिच्छुद् ।

सन्धि करो—तह + छावा, आ + छत्रम् ।

विश्लेष करो—विच्छेद्, आच्छायम् ।

* * * *

६९ । क ख, त थ, प फ और य परे रहनेसे, 'द्' के स्थानमे,—
और व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, 'ध्' के स्थानमे 'त्' होता है, यथा—द् =
न्—तद् + काल = तत्काल, तद् + मकाशम् = तत्सकाशम् ।

सन्धि करो—विपद् + तारणम्, क्षुध् + पिपामा ।

विश्लेष करो—तत्त्ववनम्, विपत्पात ।

७० । 'उत्' उपसर्गके परस्थित स्था और स्तम्भ धातुके सकारका
लोप होता है, यथा—उत् + स्थानम् = उत्थानम्, उत् + स्तम्भ =
उत्तम्भ ।

७१ । 'ङ्' धातुके पद परे रहनेसे, सम्—सम्म्, और परि—परिप्
होता है, यथा—पम् + ङ्गम् = सम्पङ्गम्, परि + कार = परिष्कार ।

७२ । व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, 'वम्' भागान्त शब्दके 'स्' के स्थानमे

* द्विर्भावं स्वरपरदठकार । (स्वरानु परदठकारो द्विर्भावमापद्यते ।)

'त्',* और 'दिव्' के स्थानमे 'द्यु' होता है, यथा—विद्वस् + जन = विद्वजन, दिव् + लोक = द्युलोक ।

विसर्ग-सन्धि ।

विसर्ग (.) दो प्रकार—(१) 'र्' जात विसर्ग और (२) 'स्'-जात विसर्ग ।

७३ । विराममे अर्थात् कोई वर्ण परे न रहनेसे, अथवा व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, रेफ (र्) और 'स्' के स्थानमे विसर्ग होता है । 'र्' के स्थानमे जो विसर्ग होता है, उसे 'र्'-जात विसर्ग,† और 'स्' के स्थानमे जो विसर्ग होता है, उसे 'स्'-जात विसर्ग कहते हैं, यथा—

('र्' जात) दुर् = द्रु, निरु = नि, अन्तरु = अन्त, प्रातरु = प्रात, स्वरु = स्व, गोरु = गो, धूरु = धू, पुनरु = पुन ।

('स्'-जात) रामस् = राम, हविस् = हवि, पयस् = पय, मुनिस् = मुनि, उच्चैस् = उच्चै, नीचैस् = नीचै ।

* 'त्' पदात्तत् होकर ५२ सूत्रानुसार सन्धिकार्य प्राप्त होता है ।

† 'अहन्'-शब्दके 'न्' के स्थानमे पहले 'र्', पीछे विसर्ग होता है, यथा—अहन् = अह, अहन् + सु ('सुप्' विभक्ति) = अह सु ।

‡ भ्रातृ-पितृ प्रभृति श्रद्धारान्त शब्दके सम्बोधनके एकवचनके पदमे स्थित विसर्गोंको 'र्'-जात ।

' + ठ = ष्ट -- सुन्दर. + ठङ्कुर' = सुन्दरष्टङ्कुरः । (ठङ्कुर. —
देवप्रतिमा) ।

सन्धि क्तो—भीत + दलति, उद्धोत + तिष्ठति, क् + दीकते ।
विच्छेप क्तो—फटकार, स्थिरष्टङ्कुर ।

[+ त थ]

७७ । त थ परे रहनेसे, विसर्गके स्थानमे दन्त्य 'स्' होता
है, 'स्' परवर्णमे युक्त होता है, यथा—

' + त = स्त—नत' + तत' = ततस्तत. ।

+ थ = स्थ—क्षित + थुत्कार. = क्षितस्थुत्कारः ।

सन्धि क्तो—नि + ठार, मर + तीरम्, उन्नत + तर ।

विच्छेप क्तो—विशेषस्तु, मनस्तावम्, सुवस्तलम् ।

[+ श ष स]

७८ । तालव्य श परे रहनेसे, विसर्गके स्थानमे विकल्पसे
तालव्य शू होता है, मूर्द्धन्य ष परे रहनेसे, विकल्पसे मूर्द्ध-
न्य ष् होता है, शौर दन्त्य स परे रहनेसे, विकल्पसे दन्त्य स्
होता है, यथा—

+ श = श्श—शिशु' + शेते = शिशुश्शेते, शिशु शेते ।

+ ष = ष्प—मत्त + पट्पद = मत्तप्पट्पद. ।

+ स = स्स—मन + सुखम् = मनस्सुखम् ।

* ते ये वा नम् । (विसर्जनीयस्ते वा ये वा परे उम् आपद्यते ।)

† शे ये से वा पररूपम् । (विसर्जनीय शे या पे वा से वा परे पर-
रूपमापद्यते, न वा ।)

सन्धि करो—अग्ने + शिखा, माधो + सङ्ग, मधुर + पद्व ।

विश्लेष करो—गौशब्दापत्ते, प्रथमस्सर्गं, द्वाप्पद् ।

(क) वर्गके प्रथम और द्वितीय वर्ण-युक्त ढा प स पर रहनेसे, विसर्गका विकल्पसे लोप होता है, यथा—नि + स्पन्द = निस्पन्द, निस्पन्द, निस्पन्द, मन + स्थ = मनस्थ, मनस्थ, मनस्थ, दु + स्थ = दुस्थ, दुस्थ, दुस्थ, दा. + स्थ = दास्थ, दास्थ, दास्थ ।

[अः + ३ य, ४ यं, ५ म वर्ण, य र ल व ह]

७६। अकारके परस्थित विसर्गसे परे घोषवद्घर्ण (९ सू०) रहनेसे, अकार और विसर्ग—दोनों मिलके ओकार होता है; ओकार पूर्ववर्णमे युक्त होता है, * यथा—

अः + ग = ओ + ग—नरः + गच्छति = नरो गच्छति ।

सन्धि करो—अश्व + धावति, हृद + चन्द्र, मन + हर, नूतनः + षट्, शिव + बन्ध, निर्वाण + दीप ।

विश्लेष करो—शतौ वात, मनोगतम्, मधुरो जङ्गार, पयोबिन्दु, सद्योजात, शान्तो रोप ।

[सः, एष + व्यञ्जनवर्ण]

८०। व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, 'स.' और 'एष'—इन दोनों पदोंके अन्तमे स्थित विसर्गका लोप होता है, † यथा—

* [उम्] अ-घोषवतोश्च । (अकार घोषवतोर्मध्ये विसर्जनीय उम् आपद्यते ।)

† एष-स-गरो व्यञ्जने लोप्यः । (एष-साभ्या परो विसर्जनीयः लोप्यो भवति, व्यञ्जने परे ।)

स + गच्छति = स गच्छति, एप. + गन्धु = एप गन्धुः ।

विश्लेष कर्तो—स याति, एप वाहु, एप इमति ।

शुद्ध कर्तो—एपो महाशय, सो मे पिता, एपो मेते ।

[आ + इ य, उ र्थ, ५ म घर्ण, य र ल व ह]

८१ । घोषवद्घर्ण परे रहनेसे, आकारके परस्थित विसर्गका लोप होता है, *यथा—

आ + ग = आ ग—दिवसा + गता = दिवसा गता ।

सन्धि कर्तो—मधुता + उदूरा, भीता + वता, उग्रता + यतन्ते ।

विश्लेष कर्तो—मानवा लभन्ते, प्रदीपा विवर्णित ।

शुद्ध कर्तो—पाता पुत्रा, नरा क्षन्तव्या ।

(क) घोषवद्घर्ण परे रहनेसे, 'भो.' शब्दके अन्तस्थित विसर्गका लोप होता है, यथा—

भो + इ = भो इ—भो. + देवराज = भो देवराज ।

सन्धि कर्तो—भो + भो । विश्लेष कर्तो—भो राजन् ।

[इ ई उ ऊ ऋ ए ऐ ओ औ. + इ य, उ र्थ,

५ म घर्ण, य र ल व ह]

८२ । घोषवद्घर्ण परे रहनेसे, अ आ भिन्न स्वरघर्णके परस्थित विसर्गके स्थानमे 'र' होता है, 'र' परघर्णके मस्त-

* घोषवदि लोपम् । (आकार-भोशब्दशब्दा परे विसर्जनायो लोपमापद्यते, घोषवति परे ।)

† [नामिपरो] घोषवन्-स्वर शो [रम्] । (नामिन परे विसर्ज-

कमे जाता है , *यथा—

इः + भ = इभं—नि. + भय = निर्भयः ।

उः + नी = उनी—दु. + नीति = दुनीति ।

सन्धि करो—हे + द्या, गुरु + जयति, मुहु + मुहु, गो +
दुग्धम्, हवि + घ्राणम्, मातृ + वदति ।

विश्लेष करो—गोपांति, तपोर्वहि, रवेर्देशनम्, वह्नियोग ।

शुद्ध करो—रामगच्छति, शिशोर्क्रीडा, गुरुपांतु ।

['रू-जात + ३ य, ४ यं, ५ म वर्ण, य र ल व ह

८३ । घोषवद्घर्षण परे रदनेसे, अकारके परस्थित 'रू'
जात विसर्गके स्थानमे 'रू' होता है, 'रू' परवर्णके मस्तकमे

नीयो घोषवत्-स्वर-ररो रम् आपद्यते ।—स्वरोऽवर्णवर्जं नामी—अवर्णवर्जस्वरो
'नामि'-सन्नो भवति ।)

* द्वित्वविधि—(°) रेफयुक्त व्यञ्जनवर्णका विकल्पमे द्वित्व होता
है । किन्तु द्वित्व होनेसे आदिमे स्थित वर्णके द्वितीयवर्णके स्थानमे प्रथमवर्ण,
और चतुर्थवर्णके स्थानमे तृतीयवर्ण होता है, यथा—मूर्च्छां, मूर्छां, मूर्च्छां,
मूर्छां, कर्म, कमं । ऊष्मवर्णका द्वित्व नहीं होता, यथा—दर्शनम्, मर्ष
णम्, अर्हणा ।

जिस वर्णके आदिमे ह्रस्वस्वर, और अन्तमे व्यञ्जनवर्ण रहता है, उस-
काभी विकल्पसे द्वित्व होता है, यथा—य् + अ + त् + र = यत्र, यत्र, प्
+ उ + त् + र = पुत्र, पुत्र इत्यादि । अर्थविशेषमे पदकाभी द्वित्व होता
है; यथा—एहोहि, गच्छ गच्छ, भो भो पान्या इत्यादि ।

जाता है, *यथा—

अ + ग = गर्ग—अन्त + गमनम् = अन्तर्गमनम् ।

सन्धि करो—जामात + वद, दुहित + याहि, मात + देहि, अ-
न्त + दाह, स्व + गत, अन्त + धत्ते ।

विश्लेष करो—स्वनंदा, आतर्दयस्व ।

शुद्ध करो—प्रातर्काल, अन्तर्पुरम् ।

८४ । 'र' परे रहनेसे, विसर्गके स्थानमे जो 'र्' होता है, उसका लोप होता है, और पूर्वस्वर दीर्घ होता है, *यथा—

अ + रा = आरा—स्व + राज्यम् = स्वाराज्यम् ।

सन्धि करो—आत + रङ्गनाथ, नि + रोग, पित + रक्ष मातु +
रोदनम् ।

विश्लेष करो—नारस, पितृ रक्षगम् ।

शुद्ध करो—यहीदेश, नीलज ।

८५ । 'अहन्' शब्दके विसर्गके स्थानमे 'र्' होता है, किन्तु रात्र,
रूप और स्थन्तर शब्द परे रहनेसे, अथवा 'ऊ' और विभक्ति परे रहनेसे,
'र' नहीं होता, यथा—अह + पति. = अहर्षति † । अह + रूपम् =

* 'र'-प्रकृतिरनाभिपरो [घोषवत्-स्वर-परो रम्] । ('र'-प्रकृतिर्विस-
र्जनीयोऽनामिन परो घोषवत्-स्वर-परो रम् आपद्यते ।)

† ८२ आंर ८३ सूत्रोंके अनुसार जो 'र्' होता है ।

‡ रो रे लोपम्—स्वरख पूर्वो दीर्घ । (रो रे परे लोपमापद्यते—स्वरख
पूर्वो दीर्घो भवति ।)

§ अहर्षति, अह पति—ऐसेभी होते हैं ।

अहोरूपम् , ('क' परे) अह + कर = अहस्कर , (विभक्ति परं) अ-
हः + मि = अहोमि ।

सन्धि करो—अह. + रथन्तरम्, अह + भ्य ।

विश्लेष करो—अहोरात्रम् ।

शुद्ध करो—अहोगमः, अहभ्यांम् ।

* * * *

८६ । समासमे—कृ और कम् धातु निष्पन्न पद (कार, कर, काम,
कान्त), और कुम्भ तथा पात्र शब्द परे रहनेसे, अव्यय निम्न अकारके
परस्थित विसर्गके स्थानमे दन्त्य स् होता है, यथा—अय + कार. = अ-
यस्कार, धेय + कर = धेयस्कर, मन + काम = मनस्काम, अय.
+ कान्त. = अयस्कान्त, पय + कुम्भ = पयस्कुम्भ, पय + पा-
त्रम् = पयस्पात्रम् ।

८७ । क ख, प फ परे रहनेसे, 'नम' और 'पुर' शब्दके विसर्गके
स्थानमे दन्त्य स् होता है, यथा —नम + कार = नमस्कार, पुर +
कार = पुरस्कार, पुर + करोति = पुरस्करोति ।

८८ । क ख, प फ परे रहनेसे, 'तिर'-शब्दके विसर्गके स्थानमे विक-
ल्पसे दन्त्य स् होता है, यथा—तिर + करोति = तिरस्करोति, तिर
करोति ।

८९ । पाश, कल्प, क और काम्य प्रत्यय परे रहनेसे, विसर्गके स्था-
नमे दन्त्य स् होता है; यथा—अयस्पाशम्, यशस्कल्पम्, यशस्कम्,
यशस्काम्यति । किन्तु अव्ययके विसर्गके स्थानमे 'स्' नहीं होता,
यथा—प्रात कल्पम् ।

१० । पातादि परे रहनेसे, इत्यं और उवर्गके परस्थित विसर्गके स्थानमे मूर्द्धन्वप् होता है, यथा सर्पिन्पाशम्, सर्पिष्काम्यति ।

११ । क ख, प फ परे रहनेसे, इकार और उकारोपध अव्यय* शब्दके विसर्गके स्थानमे मूर्द्धन्वप् होता है, यथा—नि + प्रत्यूहम् = नि-प्रत्यूहम्, आवि + कृतम् = आविष्कृतम्, बहि + कर्णम् = बहिष्कर्णम्, दु + कृतम् = दुष्कृतम् ।

१२ । क ख, प फ परे रहनेसे, 'इस्' और 'उस्'-भागान्त शब्दके विसर्गके स्थानमे विकल्पसे मूर्द्धन्वप् होता है, यथा—सर्पि + कृती-ति = सर्पिष्करोति, सर्पि करोति, धनुष्करोति, धनु करोति ।

१३ । समासमे—क ख, प फ परे रहनेसे, 'इम्' और 'उस्' भागान्त शब्दके विसर्गके स्थानमे नित्य मूर्द्धन्वप् होता है, यथा—इवि + कुण्डम् = इविष्कुण्डम्, धनु + रण्डम् = धनुष्वरण्डम्, धनुष्पाणि ।

(विसर्ग और स्वरमे)

[अ + अ]

१४ । अकार परे रहनेसे, अकारके परस्थित विसर्ग पूर्ववर्त्ती अकारके साथ मिलके 'ओ' होता है, और परवर्त्ती अकारका लोप होता है, लुप्त अकारका चिह्न (ऽ) रहता है,† यथा—

अः + ओ = ओऽ-नरः + अयम् = नरोऽयम् ।

सन्धि को—म + अणुष, देव + अयम्, वेद + अथीत ।

* इकार और उकारोपध अव्यय-नि, आवि, बहि, दु, प्रादु ।

† उमकारयोर्मध्ये । (द्वयोरकारयोर्मध्ये विसर्जनीय उम् आपद्यते ।)

विश्लेष करो—तोष्णोऽद्भुत , ज्वलितोऽद्भार ।

[अ + 'अ' भिन्न स्वरवर्ण]

९५ । अकार भिन्न स्वरवर्ण परे रहनेसे, अकारके पर-स्थित विसर्गका लोप होता है, लोप होनेसे फिर सन्धि नहीं होती,* यथा—

अः + आ = अ आ—कुत. + आगतः = कुत आगतः ।

सन्धि करो—नर. + इव, राज + औदार्यम् ।

[अ + स्वरवर्ण]

९६ । स्वरवर्ण परे रहनेसे, आकारके परस्थित विसर्ग-का लोप होता है, लोप होनेसे फिर सन्धि नहीं होती,† यथा—

आ. + अ = आ अ—देवाः + अत्र = देवा अत्र ।

सन्धि करो—छात्रा + आगता , आगता + रूपय ।

विश्लेष करो—अद्वा उद्गता , गजा इमे, तारा उदिता ।

शुद्ध करो—मासातीता , बालकेमे ।

[इः ई उ ऊः ऋः एः ऐः ओः औः + स्वरवर्ण]

९७ । स्वरवर्ण परे रहनेसे, अ आ भिन्न स्वरवर्णके पर-

* 'अ'-परो लोप्योऽन्यस्वरे । (अकारात् परो विसर्जनीयो लोप्यो भवति, उक्तादन्यस्वरे ।) न विसर्जनीयलोपे पुन सन्धि ।

† आ-भोभ्यामेवमेव स्वरे । (आकार-भो-शब्दाभ्यां परो विसर्जनीय एवमेव भवति, स्वरे परे ।)

स्थित विसर्गके स्थानमे 'र्' होता है, *यथा—

इ + अ = इर् + अ — हरिः + अयम् = हरिरयम् ।

सन्धि क्रो—नति + इदम्, धनु + आनीतान् . उर्ध्वी + पृषः ।

विश्लेष क्रो—हविर्दिन्, लक्ष्मिरेषा ।

शुद्ध क्रो—धी पृषा ।

['र्'-जात . + स्वरवर्ण]

६ = । स्वरवर्ण परे रहनेसे, 'र्' जात विसर्गके स्थानमे 'र्' होता है † यथा

: + आ = रा—स्वः + आलयः = स्वरालयः ।

सन्धि क्रो—पुन + अरि, अन्त + अङ्गम्, मात - पृषः ।

विश्लेष क्रो—नितन्तम्, दुरासप्त, पुनरेति ।

शुद्ध क्रो—मातो दाहि, पितोऽनुजानोहि ।

* * * *

६६ । निपातन सन्धि ।—ननोपा-प्रकृति शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं, † यथा—

नन + ईषा = ननोषा, कुल + अया = कुलया, सोम + अन्तः = सोमन्त (केशवोषी) ; मार + अङ्ग = मारङ्ग ; पतत् + अञ्जलिः = पतञ्जलिः ; गो + वृत्तिः = गव्यवृत्ति (दो कोस), आ + चर्चन् =

* नामिपरो षोडशत्-स्वर-परो रम् ।

† 'र्'-प्रकृतिषोडशत्-स्वर-परो रम् ।

‡ जो शब्द प्रयोगमे जाते हैं, अथ व उनके साधनके सूत्र नहीं हैं, उन्हें 'निपातन-सिद्ध' कहते हैं ।

आश्रध्वम्, हरि + चन्द्र = हरिश्चन्द्र, आ + पदम् = आल्पदम्, गो + पदम् = गोप्यदम्, वन + पति = वनस्पति, बृहत् + पति = बृहस्पति, ऋत् + कर = तस्कर, प्राय + चित्तम् = प्रायश्चित्तम्, अन्य + अन्यम् = अन्योन्यम्, पर + रम् = परस्परम्, पर + शतम् = पर शतम्, पर + महस्रम् = पर महस्रम्* ; भुव + लोक = भुवलोक, पश्चात् + अर्द्धम् = पश्चाद्दंम्, पद् + दश = पौदश, पर + परा = परस्पर, मध्य + दिनम् = मध्यन्दिनम्, रात्रि + दिवम् = रात्रिन्दिवम्, पुर + धर = पुरन्धर इत्यादि ।

सन्धि-निर्घण्टु ।

अ, आ + अ, आ = आ (१२ सू) ।

अ, आ + इ, ई = ए (१४ सू) ।

अ, आ + उ, ऊ = ओ (१५ सू) ।

अ, आ + ऋ = अर् (१६ सू) ।

अ, आ + ए, ऐ = ऐ (१७ सू) ।

अ, आ + ओ, औ = औ (१८ सू) ।

इ, ई + इ, ई = ई (१९ सू) ।

इ, ई + इ ई भिन्न स्वरवर्ण = इ ई के स्थानमे ऋ (२० सू) ।

* "आश्रध्वम्"-प्रभृते पदोमे सुट् (स्) आगम होता है ।

उ, ऊ + उ, ऊ = ऊ (२१ सू) ।

उ, ऊ + उ ऊ भिन्न स्वरवर्ण = उ ऊ के स्थानमे व् (२२ सू) ।

ऋ + ऋ = ऋ (२३ सू) ।

ऋ + ऋ भिन्न स्वरवर्ण = ऋ के स्थानमे र् (२४ सू) ।

ए + स्वरवर्ण = ए के स्थानमे अय् (२५ सू) ।

ऐ + स्वरवर्ण = ऐ के स्थानमे आय् (२६ सू) ।

ओ + स्वरवर्ण = ओ के स्थानमे अव् (२७ सू) ।

औ + स्वरवर्ण = औ के स्थानमे भाव् (२८ सू) ।

[ए ओ पदान्त + अ = अकारका लोप, एतुअकारका विद्ध (२९ सू) ।]

ए पदान्त + 'अ' भिन्न स्वरवर्ण = 'अय्'के यकारका विकल्पते लोप (३० सू) ।

ऐ पदान्त + स्वरवर्ण = 'आय्'के यकारका विकल्पते लोप (३२ सू) ।

ओ पदान्त + 'अ' भिन्न स्वरवर्ण = 'अव्'के वकारका विकल्पते लोप (३१ सू) ।

औ पदान्त + स्वरवर्ण = 'भाव्'के वकारका विकल्पते लोप (३३ सू) ।

स्वरवर्ण + उ = उ के स्थानमे ञ् (६८ सू) ।

क् + स्वरवर्ण = क् के स्थानमे ग् (६६ सू) ।

क् + ३य, ४थं वर्ण, य र ल व ह = क् के स्थानमे ग् (६८ सू) ।

क् + ९म वर्ण = क् के स्थानमे ग् वा ञ् (६९ सू) ।

क् + रा = क्रा वा कृ (१० सू) ।

च्, ज् + न = न के स्थानमे ज (११ सू) ।

ट् + स्वरवर्ग = ट् के स्थानमे ट् (६६ सू) ।

ट् + ३य, ४य वर्ण, य र ल व ह = ट् के स्थानमे ढ (४८ सू) ।

ट् + १म वर्ण = ट् के स्थानमे ढ् वा ण् (४९ सू) ।

त् + स्वरवर्ण = त् के स्थानमे द् (६६ सू) ।

त् + ग, घ = त् के स्थानमे द् (४८ सू) ।

त् + च, छ = त् के स्थानमे च् (१२ सू) ।

त् + ज, झ = त् के स्थानमे ज् (१२ सू) ।

त् + ट, ठ = त् के स्थानमे ट् (१२ सू) ।

त् + ड, ढ = त् के स्थानमे ड् (१२ सू) ।

त् + द, ध = त् के स्थानमे द् (४८ सू) ।

त् + न = त् के स्थानमे द् वा न् (४९ सू) ।

त् + ब, भ = त् के स्थानमे द् (४८ सू) ।

त् + म = त् के स्थानमे द् वा न् (४९ सू) ।

त् + य, र = त् के स्थानमे द् (४८ सू) ।

त् + ल = त् के स्थानमे ल् (१३ सू) ।

त् + व = त् के स्थानमे व् (४८ सू) ।

त् + श = श् वा ष् (१० सू) ।

वृ + ह = वृह वा ह्र (२४ सू) ।

वृ + स्वरवर्ग = नकारका द्वित्व (६५ सू) ।

वृ + घ = वृघ (२५ सू) ।

वृ + छ = वृछ (२६ सू) ।

वृ + ज = वृज (२७ सू) ।

वृ + झ = वृझ (२८ सू) ।

वृ + ङ = वृङ (२९ सू) ।

वृ + ङ = वृङ् (३० सू) ।

वृ + ङ = वृङ् (३१ सू) ।

वृ + ङ = वृङ् (३२ सू) ।

वृ + ङ = वृङ् (३३ सू) ।

वृ + ङ = वृङ् (३४ सू) ।

वृ + ङ = वृङ् (३५ सू) ।

वृ + ङ = वृङ् (३६ सू) ।

वृ + स्वरवर्ग = वृ के स्थानमे वृ (६६ सू) ।

वृ + उ य, र घे वर्ग, च र ल व ह = वृ के स्थानमे वृ (६७ सू)

वृ + ङ वर्ग = वृ के स्थानमे वृ ङ (६८ सू) ।

वृ + स्वरवर्ग = वृ के स्थानमे अनुस्वार वा ङ न वर्ग (६९ सू) ।

वृ + मन्त्र ङ, ङनवर्ग = वृ के स्थानमे अनुस्वार (७० सू) ।

५ + व = व (६९ सू) ।

५ + थ = थ (६९ सू) ।

+ क = स्क (७४ सू) ।

. + ख = स्ख (७४ सू) ।

: + ग = स्र (७५ सू) ।

. + ङ = स्र (७५ सू) ।

+ ट = ट (७६ सू) ।

. + ठ = ठ (७६ सू) ।

+ त = स्त (७७ सू) ।

. + थ = स्थ (७७ सू) ।

अ + अ = ओऽ (९४ सू) ।

अ + अकार भिन्न स्वरवर्ण = विसर्गका लोप (९५ सू) ।

अ + श्च, ष्च, षम वर्ण, य र ल व ह = अ के स्थानमे ओ (७९ सू) ।

स, एप + अ = सोऽ, एपोऽ (९४ सू) ।

स, एप + अकार-भिन्न स्वरवर्ण = विसर्गका लोप (९५ सू) ।

स, एप + व्यञ्जनवर्ण = विसर्गका लोप (८० सू) ।

आ + स्वरवर्ण = विसर्गका लोप (९६ सू) ।

आ + श्च, ष्च, षम वर्ण, य र ल व ह = विसर्गका लोप (८१ सू) ।

इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ + स्वरवर्ण = विसर्गके

स्थानमे र (१० सू) ।

इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ + इय, ऋर्ष, ऋम वर्ण
य ल व ह = विसर्गके स्थानमे रू (८२ सू) ।

इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ + र = विसर्गके स्थानमे
र, रकारका लोप और पूर्वस्वर दीर्घ (८२, ८४ सू) ।

‘रू’ जात विसर्ग + स्ववर्ण = विसर्गके स्थानमे र (१८ सू) ।

” + इय, ऋर्ष, ऋम वर्ण, य ल व ह = विसर्गके स्था-
नमे र (८३ सू) ।

” + व = श्र (५६ सू) ।

” + उ = इउ (५६ सू) ।

” + ट = छ (५६ सू) ।

” + ङ = छ (५६ सू) ।

” + त = स्त (५० सू) ।

” + ध = स्थ (५० सू) ।

” + र = विसर्गके स्थानमे र, रकारका लोप और पूर्व-
स्वर दीर्घ (८३, ८४ सू) ।

सन्धि-प्रश्नमाला ।

क । (१) अकारसे परे अकार रहनेसे क्या होता है ? (२) अकारसे
परे उकार रहनेसे क्या होता है ? (३) अकारसे परे एकार रहनेसे क्या
होता है ? (४) अकारसे परे औकार रहनेसे क्या होता है ? (५) इकारसे

परे इकार रहनेसे क्या होता है ? (६) उकारसे परे उकार रहनेसे क्या होता है ? (७) उकारसे परे ऋकार रहनेसे क्या होता है ? (८) ऋकारसे परे ऌकार रहनेसे क्या होता है ? (९) ऌकारसे परे औकार रहनेसे क्या होता है ? (१०) एकारसे परे एकार रहनेसे क्या होता है ? (११) एकारसे परे अकार रहनेसे क्या होता है ? (१२) ऐकारसे परे षकार रहनेसे क्या होता है ? (१३) ऐकारसे परे अकार रहनेसे क्या होता है ? (१४) औकारसे परे ओकार रहनेसे क्या होता है ? (१५) औकारसे परे उकार रहनेसे क्या होता है ? (१६) औकारसे परे औकार रहनेसे क्या होता है ?

ख । सन्धि करो—विद्या + एव, ते + आहु, वन्तु + भादर, सुन्दर + उद्यानम्, मुनि + रूपी, कौ + पत्नी, सर्व + उपरि, लो + इत्रम्, एहि + एहि, सा + इयम्, मुनि + ईश्वर, गिरि + अग्रे, सा + एव, पितृ + उक्ति, मातृ + आज्ञा, नौ + उपरि, चारु + अङ्गम्, यदु + आरम्भ ।

ग । (१) 'क्'से परे 'ग' रहनेसे क्या होता है ? (२) 'क्'से परे 'म' रहनेसे क्या होता है ? (३) 'क्'से परे 'न' रहनेसे क्या होता है ? (४) 'क्'से परे 'च' रहनेसे क्या होता है ? (५) 'क्'से परे 'श' रहनेसे क्या होता है ? (६) 'क्'से परे 'ल' रहनेसे क्या होता है ? (७) 'क्'से परे 'ह' रहनेसे क्या होता है ? (८) 'क्'से परे 'त' रहनेसे क्या होता है ? (९) 'क्'से परे 'ल' रहनेसे क्या होता है ? (१०) विसर्गसे () परे 'च' रहनेसे क्या होता है ? (११) 'अ'से परे 'अ' रहनेसे क्या होता है ? (१२) 'इ'से परे 'र' रहनेसे क्या होता है ?

घ । सन्धि करो—धिक् + ऋणकारिणम्, प्राक् + धनोदय, स + अयम्, महान् + अध, तव + एव, स + गति, पुन + रमते, गृह +

उिडम्, विडु + सञ्जे, त्व् + वाति, भाव्यान् + वरति, मुनि + ऋषि, त्व् + याति, मदान् + दाह्नुयुः, म + स, विलग्न + उरै-
ति, त्व् + नागन् ।

६ । मन्वि विच्छेद को—वन्द्राक्षौ, उच्छ्रुतितम्, क्षित्यम्मल्लूष्यो-
मानि, सर्व एव, तद्विज्ञानम्, तान्नाम्, तच्छामनम्, सामोपद्रुषि, गा रत्न,
वर्त्मन्नुष्टे, विधेव, बाद्धवते, अविन्दन, यन्मूर्द्धि, पायादपायाच्छिड ।

णत्व-विधान ।

१०० । ऋ ऋ र् ए—इन चार वर्णोंके परस्थित दन्त्य 'न'
मूर्द्धन्य 'ण' होता है, यथा—

ऋ + न = ऋण—वृ + नम् = वृणम् ।

ऋ + न = ऋण—पितृ + नाम् = पितृणाम् ।

र् + न = र्ण—पूर् + नम् = पूर्णम् ।

ए + न = एण—कृप् + न = कृष्णः ।

(क) स्वरवर्ण, ऊवर्ग, पवर्ग, य व ह और अनुस्वारका
व्यवधान* रहनेसेमी दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य 'ण' होता है, यथा—

* पहले ऋ ऋ र् ए वा ए, पीछे 'न', और इनके बीचमे स्वरवर्ण-प्रत्यये
रहनेसे 'व्यवधान' कहते हैं ।

† इनको छोड अन्य वर्णोंका व्यवधान रहनेसे दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य नहीं
होता, यथा—किर् + (ई + ट + ए) + न = किरटिन, आलैन, बिरलेन,
सर्गेन ।

मूर् + (ख् + ए) + न = मूर्खेण ।

दर् + (प् + ए) + न = दर्पेण ।

र् + (श्र + य् + ए) + न = रयेण ।

गर् + (य् + ए) + न = गर्वेण ।

वृ + (ँ + ह् + श्र) + नम् = वृहस्पतम् ।

(ख) पदके अन्तमे स्थित (व्यञ्जनान्त) 'न' मूर्द्धन्य नहीं होता, यथा—नर् + (आ) + न् = नरान्, पितृ + न् = पितृन्; वृक्ष् + (आ) + न् = वृक्षान्* ।

(ग) त थ द ध प और भ-युक्त दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य नहीं होता, यथा—

कृ + (न्त) + नम् = कृन्तनम् । वृ + (प्रो) + ति = वृप्रोति ।

प्र + (न्य) + नम् = प्रन्यनम् । क्षु + (न्ना) + ति = क्षुन्नाति ।

ऋ + (न्द) + नम् = ऋन्दनम् । र + (न्त्र) + नम् = रन्धनम् ।

(घ) एक पदमे क् क् र् र् प्, और अन्य पदमे 'न' रहनेसे, मूर्द्धन्य नहीं होता; यथा—वृ + यानम् = नृयानम्, त्रि + नेत्र = त्रिनेत्र, सर्व + नाम = सर्वनाम, मुद्रा + अङ्गनम् + मुद्राङ्गनम्, नर + नाथ = नरनाथ, चारु + नेत्रा = चारुनेत्रा, भृङ्ग + नाद = भृङ्गनाद † ।

(ङ) किन्तु परपदमे यदि समासके पश्चात् विभक्तिके स्थानमे जात

* जिनके उत्तर 'मात्र' और 'मयट्' प्रत्यय होते हैं, वे पदमे गण्य, अक्षरलिये 'मुद्गन्मात्र', 'मृन्मय' इत्यादिस्यलमे मूर्द्धन्य 'ण्' नहीं होगा ।

† रपूर्वर्णेभ्यो नो णमनन्त्य. स्वर-ह-य-व-क्वर्ग-पवर्गान्तरोऽपि [समानपदे] । (रेफ-यकार-श्रवर्णेभ्य परोऽनन्त्यो नकारा णमापद्यते, स्वर-ह-य-व-क्वर्ग-पवर्गैर्व्यवहितोऽपि ।)

'न', अथवा विभक्तियुक्त वा 'ईप्' प्रत्ययने मिलित नकारान्त शब्दका 'न' रहे, तो विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है, यथा—(विभक्तिके स्थानमे जात 'न')
 प्र + भाव + (टा = इन) = प्रभावेन, प्रभावेन, (विभक्तियुक्त 'न') हरि
 + भाविन्* + (टा = आ) = हरिभाविना, हरिभाविना, ('ईप्'-प्रत्य-
 यमिलित 'न') हरि + भाविन् + ई = हरिभाविनी, हरिभाविनी ।

(घ) परपदका उन प्रकार 'न' यदि षड्भ्रंशविशिष्ट अथवा कर्ग-
 युक्त शब्दके उत्तर रहे तो नित्यही मूर्द्धन्य होता है, यथा—(षड्भ्रंश)
 प्र + भु + ना = प्रभुगा (कर्ग) धी + कान + इन = धीकानेन,
 नगर + गामिन् + ई = नगरगामिनी ।

(ङ) परन्तु पञ्च, युवन् और अहन् शब्दका नहीं होता; यथा—
 परिपञ्चेन, क्षत्रियपूना, दीर्घाङ्गा ।

* * * * *

१०१ । कर्गके पूर्वस्थित 'न'—त्, र और प्, इनके परस्थित न होनेसे भी मूर्द्धन्य होता है, यथा—कण्ठक, कण्ठ, दण्ड, दुण्ड ।

१०२ । दो वा तीन स्वरवाले वृक्षावक और ओपधिवाचक शब्द-

* हरि भावयति च = हरिभाविन् ।

† हरि भावयति या सा हरिभाविनी ॥ 'स्वर्गामिन - स्वर्गामिन'—
 इस स्थलमे समाससे पहलेही 'न' विभाषयुक्त होनेसे, मूर्द्धन्य नहीं हुआ ।
 'हरे कामिनी—हरिकामिनी'—इस स्थलमभी समाससे पूर्वही 'न' ईप्-प्रत्य-
 यमे मिलनेसे, मूर्द्धन्य नहीं हुआ ।

‡ फल एक जानेसे बिन वृक्षादिकोंका नाश हो जाता है, उन्हें 'ओ-
 धधि' कहते हैं ।—ओषध्य फलपाकान्ता ।”

के परवर्ती 'वन'-शब्दका दन्त्य 'न' विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है । यथा—
(द्विस्वर) लोधवणम्, लोधवनम् । (त्रि-स्वर) मन्दारवणम्, मन्दा-
रवनम्; बदरीवणम्, बदरीवनम् । (ओषधि) रम्भावणम्, रम्भावनम्;
नीवारवणम्, नीवारवनम् इत्यादि ।

किन्तु अग्ने, शर, इधु, प्लक्ष, आम्र और खदिर शब्दके परवर्ती, तथा
प्र, निर् और अन्तर—इन अव्ययोंके परवर्ती 'वन' शब्दका दन्त्य 'न'
नित्य मूर्द्धन्य होता है, यथा—अग्नेवणम्, शरवणम्, इधुवणम्, प्लक्ष-
वणम्, आम्रवणम्, खदिरवणम्, प्रवणम्, निर्वणम्, अन्तर्वणम् ।

१०३ । अन्यरदस्थित 'र्'-प्रभृतिके परवर्ती 'वान'-शब्दका दन्त्य
'न' विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है, यथा—क्षीरवाणम्, क्षीरवानम्, विषवा-
णम्, विषवानम् ।

(क) पूर्वपदके अन्तमे मूर्द्धन्य 'प्' रहनेसे, परपदवर्ती दन्त्य 'न'
मूर्द्धन्य नहीं होता, यथा—निष्पानम्, दुष्पानम्, हविष्पानम्, निष्का-
मेन, निष्कामानाम्, आयुष्कामेन ।

१०४ । प्र, पूर्वं, अपर प्रभृति शब्दोंके परवर्ती 'अह' शब्दका,—
पर, पार, उत्तर, राम, चान्द्र और नार शब्दके परवर्ती 'अयन'-शब्दका,—
तथा अप्र और घान शब्दके परवर्ती 'नी'-शब्दका दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य
होता है; यथा—(अह) प्राह, पूर्वाह, अपराह, (अयन) परायणम्,
पारायणम्, उत्तरायणम्, रामायणम्, चान्द्रायणम्, नारायण, (नी)
अप्रगी, प्रामगी ।

१०५ । वयम् (उग्र) अर्थ ममज्ञानेसे त्रि और चतुर् शब्दके पर-
वर्ती 'हायन'-शब्दका दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य होता है; यथा—त्रिहायगो वत्स,

चतुर्हापणो गौ ।

१०६ । 'चुर्प'-शब्दके परवर्ती 'नस'-शब्दमा,—तथा प्र, डु, ख और वार्धो शब्दके परवर्ती 'नम' शब्दमा दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य होता है, यथा—
शूर्पणखा, प्रगस, ड्रुम, खरणम, वार्धोगस ।

१०७ । गिरिनदी-प्रभृतिका दन्त्य 'न' विकल्परसे मूर्द्धन्य होता है, यथा—गिरिणदी, गिरिनदी, स्वर्णदी, स्वर्नदी, गिरिणितम्ब, गिरिनि-
तम्ब, गिरिणदम्, गिरिनदम् ।

स्वाभाविक णत्व ।

कडूग किट्टुणो कोण कणिका काफिगी कण ।
कचपण कुण कण कपोगिधिविक्कण किण ॥
निक्काणो निकण काणो हावण्य गणिका गण ।
मरुक्कण शोणित शोण पण्य पुण्य पणो मणि ॥
वाणित्य विपणि दाणो वणिमापण उल्लग ।
वाणो वीणा वुणो वेणुस्तूण स्याणु फणा फणी ॥
पनवो लणं गोणा वणकोज्जुत्तंग कुणि ।
माणित्य पकणो रेणी पाणिरणस्तधैव च ॥
आणो वाणो—स्वतो ह्येते शब्दा णत्व प्रपेदि ॥

प्रश्नमाला ।

(१) किम किम वर्णसि दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य 'ण' होता है ? (२)
'खना—इस पदमे दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य क्यों नहीं हुआ ? और 'दोषेण'—
यहां मूर्द्धन्य 'ण' क्यों हुआ ? (३) सूत्रनिर्देश पूर्वक शुद्धपशुदि निगय
करो—अचंता, घेहन, शोण, ड्रुमेन, अधेण, रसेण, मूरेण, कारणम्, करि-

ना । (४) 'आन्ति'—इस स्थानमें मूर्द्धन्य 'ग' क्यों नहीं हुआ ? (+)
'विपरायिणी' और 'प्रभावानाम्'—ये दोनो पद शुद्ध हैं, या नहीं ? शुद्ध
होनेसे, क्यों शुद्ध,—उत्तलाओ । (६) सूत्रनिर्देशपूर्वक पदोंकी शुद्धशुद्धि
निर्णय करो—गृहाण, ग्रिनयन , वृत्रहनी, दोषभागिनी, दुर्गमेन, अन्तर्भा-
मेन, वृषाग् ।

पत्व-विधान ।

१०० । अ आ भिन्न स्वरवर्ण, क और र-इनके परस्थित
प्रत्ययका* दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य 'प' होता है , यथा—

इ + सु = इ + पु — मुनि + सु = मुनिपु ।

रू + सु = र्पु — चतुर् + सु = चतुर्पु ।

क् + सु = क्षु — वाक् + सु = वाक्षु ।

(क) अनुस्वार और विसर्गका व्यवधान रहनेसेभी,
दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य होता है , यथा—

ऊ + () + सि = ऊपि-धनू + () + सि = धनूपि ।

उ + (.) + सु = उ पु-आयु + (.) + सु = आयु पु† ।

• प्रश्न । 'पुषु'-इस पदमें मूर्द्धन्य 'ण' क्यों नहीं हुआ ? (५८ पृष्ठ देखो)

* प्रत्ययसे आदेश और आगमकाभी प्रहण करना चाहिये ।

† नामि-क-र-पर प्रत्ययविकारागमस्थ सि ष नु-विसर्जनीय-यान्तरोऽ-
सि ।—(नामि-क-रेभ्य पर प्रत्ययविकारागमस्थोऽनन्त्य सि पत्वमापद्यते,
नु-विसर्जनीय-यान्तर , 'अपि'-शब्दादनन्तरोऽपि ।)

किन्तु जीवलिक शब्दकी प्रथमा और द्वितीयाके बहुवचनका अनुस्वार छोड़कर अन्य अनुस्वारके व्यवधानसे नहीं होता, यथा-पुस, पुंसा ।

(स) 'साव' प्रत्ययका दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता, यथा—अत्रिमाव, नदीसाव ।

* * * *

१०९ । उवर्गके पूर्वस्थित दन्त्य 'स' प्राय मूर्द्धन्य होता है; यथा—कष्टम्, दुष्ट ।

११० । छ, वि, निर और दुर उवर्गके परवर्ती 'सम' शब्दका दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य होता है, यथा—छपम, विपम, निपम, द्रुपम ।

१११ । समासमे—अम्ब, गो, भूमि, अद्भु, दिवि, द्वि, त्रि और अग्नि शब्दके परवर्ती 'स्य' शब्दका दन्त्य 'म' मूर्द्धन्य होता है, यथा—अम्बष्ट, गांष्टम्, भूमिष्ट, अद्भुष्ट, दिविष्ट, द्विष्ट, त्रिष्ट, अग्निष्ट ।

११२ । समासमे—मातृ और पितृ शब्दके परवर्ती 'स्वसृ'-शब्दका प्रथम दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य होता है, यथा—मातृष्वसा, पितृष्वसा । विभक्ति रहनेसे प्रियत्वासे, यथा—मातृष्वसा, मातृस्वसा, पितृष्वसा, पितृस्वसा । समास न होनेसे नहीं होता, यथा—मातृस्वसा, पितृस्वसा ।

११३ । 'युधि' शब्दके परवर्ती 'स्थिर' शब्दका दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य होता है, यथा—युधिष्ठिर ।

प्रश्न । कारणानिर्देश-पूर्वक शुभ्यशुद्धि निर्णय करो-नरेखु, अहपु, अनेष्टीव, पातिषाव, नौषु, दिक्शु, भ्रातृषु, हवींषि, नदीषु ।

११४ । समासमे—'अद्गुलि'-सब्दके पञ्चमी 'सङ्ग'-सब्दका दन्त्य
'स' मूर्द्धन्य होता है, यथा—अद्गुलिसङ्गा (यथागू) ।

स्वाभाविक पत्व ।

इषव् कोव इषुयोपिद्रुभूपग विपमोषधि ।
उत्कर्षो वषंग हर्ष, पोडत पण्ड उपरम् ॥
अमर्यो दूपग छेपो दोषो द्वेष पडानन ।
पस्य पुक्ष्य छेप्सा पुष्प भीष्मो विशेषणम् ॥
विषयो मूषिको मेपो महिषो घोषणा वृष ।
वषा विशेष्य भाषोष्मा पौष आपाड औषधम् ॥
प्रदोष सप्य प्रेष्यस्तोषण पोषण भिषक् ।
भीषणं शोषणं शेष, कषाय कलुष तुष ॥
अभिलाष ऋषिर्भीष्मो निमेषो निष्काऽऽसिगम् ।
उषा तुषार पाषाण काषायश्च तत परम् ॥
-गङ्गद्वय कल्मष दक्ष्य—स्वत पत्वमिमे गता ।

साधारण-संज्ञा ।

११५ । शब्द—एक वा उससे अधिक वर्ण लेकर एक एक
शब्द घटित होता है । यथा—(एकवर्ण) अ (विष्णु) ।
(अधिक वर्ण) ह् + अ + र् + इ = हरि, र् + आ + म् +
अ = राम ।

धातु और प्रत्यय* भिन्न अर्थयुक्त (वस्तुवाचक अथवा विशेषणवाचक) जो शब्द, उसे 'प्रातिपदिक वा नाम' कहते हैं, यथा—(वस्तुवाचक) घट, पट, तरु, लता, (विशेषण वाचक) उत्तम, अधम, सुन्दर ।

(क) समासनिष्पन्न, कृतप्रत्ययान्त, तद्धितप्रत्ययान्त और स्रो-प्रत्ययान्त होनेसे प्रातिपदिक वा शब्द होता है ।

Parts of Speech

११६ । पद—विभक्तियुक्त शब्द (प्रातिपदिक) और धातुको—अर्थात् शब्दरूप और धातुरूपको—'पद' कहते हैं, यथा—राम + सु = राम, भू + ति = भवति, —ये दोनो पद हैं ।

पद दो-प्रकार—(१) सुबन्त और (२) तिङन्त । पद न होनेसे भाषामें प्रयोग नहीं होता ।

Noun

११७ । विशेष्य—जिससे वस्तु, व्यक्ति, जाति, गुण वा

* भू (होना), स्या (रहना) प्रकृति क्रियावाचकोंको 'धातु' कहते हैं । शब्द और धातुको 'प्रकृति' कहते हैं । प्रकृतिके उत्तर अर्थविशेषमें जो होता है, उसका नाम 'प्रत्यय' । प्रत्यय पाँच-प्रकार—(१) सुप्, (२) तिङ्, (३) कृत्, (४) तद्धित और (५) स्त्रीप्रत्यय । इनके बावमें सुप् और तिङ्-प्रत्ययको 'विभक्ति' कहते हैं ।

शब्द और धातुके उत्तर कई प्रत्यय होनेसे, समुदायमें धातु होता है, उन प्रत्ययोंको 'धात्वययय' कहते हैं । (प्रत्ययान्त धातु दृश्य) ।

क्रियाका बोध होता है, उसे 'विशेष्य' कहते हैं । विशेष्य पाँच-प्रकार, यथा—

(१) वस्तुवाचक (Material)—जलम्, प्रस्तरः, घटः, मठः ।

(२) व्यक्तिवाचक (Proper)—राम, हिमालय, गङ्गा, भारतवर्षम् ।

(३) जातिवाचक (Common)—मनुष्यः, पशु, पत्नी, कीटः ।

(४) गुणवाचक (Abstract)—श्रद्धा, साधुता, मृदुता, धैर्यम् ।

(५) क्रियावाचक (Verbal)—गमनम्, भोजनम्, दर्शनम्, श्रवणम् ।

Adjective

✓ ११८ । विशेषण—जिससे अन्य पदके गुण वा दोष, सहाय्य और अवस्थादि प्रकाशित होते हैं, उसे 'विशेषण' कहते हैं ।

विशेषण तीन प्रकार—(१) विशेष्यका विशेषण, (२) विशेषणका विशेषण और (३) क्रियाका विशेषण ।

(१) जिस पदसे विशेष्यके गुण, अवस्था, आकार, वर्ण, सहाय्यादि प्रकाशित होते हैं, उसे 'विशेष्यका विशेषण' कहते हैं ; यथा—(गुण) सुन्दरः बालकः, दुष्टः मनुष्यः, (अवस्था) सन्निहितः देहः, (आकार) विशालः तरुः, (वर्ण) नीलं

नमः, शुक्ल वसनम्, (सह्या) एक फलम्, पञ्चम पाठः ।

(क) विशेष्य और विशेषणके लिङ्ग, विभक्ति और वचन समान होते हैं,* यथा—सुन्दर. वालक, सुन्दरौ वालकी, सुन्दरा. वालका, सुन्दरम् वालकम् इत्यादि, सुन्दरी वालिका, सुन्दर्यौ वालिके, सुन्दर्य वालिका, सुन्दरीम् वालिकाम् इत्यादि, सुन्दरम् पुष्पम्, सुन्दरे पुष्पे, सुन्दराणि पुष्पाणि ।

(ख) जो मन्द निघतलिङ्ग वा मजहलिङ्ग (अथान् नित्यपुलिङ्ग तित्य खोलिङ्ग वा नित्यकीबलिङ्ग), य विशेषण होनेसे लिङ्गका परिवर्तन नहीं होता, यथा—आदि कृत्यम्, वालमीके कृति रामायणम्, जगत कारण विभु ।

(२) जिस पदसे विशेषणके अर्थको वर्द्धित अथवा सङ्कोचित क्रिया जाता है (बढ़ाया वा घटाया जाता है), उसे 'विशेषणका विशेषण' (Adverb) कहते हैं, यथा—अति सुन्दर., अति मन्दः, अन्यन्तं कोमलम्, नितान्तं क्षुद्रम्, अतिशय महत् ।

(३) जिस पदसे क्रियाके गुण, अवस्थादि प्रकाशित होते हैं, उसे 'क्रियाका विशेषण' (Adverb) कहते हैं, यथा—मधुरं हसति, सत्वर धाव, शीघ्र देहि ।

✓ Pronoun.

११९ । सर्वनाम—जो सब नाम अर्थात् विशेष्यके बदले

* विशेष्येषु हि यद्भिन्नं, विभक्तिवचने च ये ।

तानि वशाणि योग्यानि विशेषणपदेष्वपि ॥

व्यवहृत होता है, ऐसे 'सर्व' प्रभृति शब्दको 'सर्वनाम' कहते हैं।

रूपके वैलक्षण्यानुसार सर्वनाम शब्द पाँच भागोमे विभक्त, यथा—

(१) सर्वादि—सर्व, विश्व, उभ, उभय, एक, एकतर, सम, सिम, नेम।

(२) अन्यादि—अन्य, अन्यतर, इतर, न्तर, कतन, यतर, यतम, ततर, ततम, एकतम।

(३) पूर्वादि—पूर्व, पर, अपर, श्वर, अधर, दक्षिण, उत्तर, अन्तर, स्व।

(४) यदादि—यद्, तद्, त्यद्,* एतद्, किम्।

(५) इदमादि—इदम्, अदस्, युष्मद्, अस्मद्।

Indeclinable or Particle.

✓ १२०। अव्यय—जिन पदोंका किसी भी अवस्थामे रूपान्तर नहीं होता, उन्हें 'अव्यय' कहते हैं, यथा—च, वा, तु, हि, यदि, एवम् इत्यादि।

Gender

✓ १२१। लिङ्ग—शब्दोंका लिङ्ग है। लिङ्ग तीन प्रकार—(१) पुलिङ्ग (Masculine), (२) स्त्रीलिङ्ग (Feminine) और (३) लोबलिङ्ग वा नपुंसकलिङ्ग (Neuter)। सस्कृतभाषामे बहुतेरे स्थलोंमे ही लिङ्ग शब्दगत होता है। यथा—

* तद् और त्यद् शब्द एकार्थक।

आलय, रमति और गृह—ये तीन शब्द एकार्थबोधक होनेपरन्तों, प्रथम शब्द पुलिङ्ग, द्वितीय स्त्रीलिङ्ग, और तृतीय लोबलिङ्ग । दार और कलय शब्द स्त्रायाचक होनेपरन्तों, दार शब्द पुलिङ्ग, और कलय ह्रायलिङ्ग । सन्तान, सन्तति और अस्त्य शब्द—पुत्र और कन्या, इन दोनोंके वाचक होनेपरन्तों, प्रथम शब्द पुलिङ्ग, द्वितीय स्त्रीलिङ्ग, और तृतीय लोबलिङ्ग ।

Number

✓१२२ । वचन—वचन तीन-प्रकार--(१) एकवचन (Singular), (२) द्विवचन (Dual) और (३) बहुवचन (Plural) । एकवचनमें एक, द्विवचनमें दो, और बहुवचनमें तीन वा तदधिक सङ्ख्याका बोध होता है, यथा—स्वम्—तू एक आदमी, युवाम्—तुम दोनो, यूयम्—तुम तीन वा तदधिक । यहाँ हिन्दीसे संस्कृतका इतना भेद, कि हिन्दीमें द्विवचनका व्यवहार नहीं है ।

Verb

✓१२३ । क्रिया—जिससे कर्मका (अर्थान् गमन, भोजन, शयन प्रभृति किसीप्रकार कार्योंका) बोध होता है, उसे 'क्रिया' कहते हैं, यथा—गमन (जाना), गत (गया है, ऐसा), गच्छति (जाता है), गत्वा (जाकर)—ये चारही क्रिया । (क्रियाका नामान्तर भाव, धातुवर्थ) ।

'सृष्टु गमनम्'—यहाँ 'गमनम्' क्रियावाचक विशेष्य, 'गत दिनम्'—यहाँ 'गतम्' क्रियावाचक विशेष्य, 'स गच्छति' (वह जाता है) कर्त्तव्यमे वास्य सनास होता है, अर्थात् धोताकी आकाङ्क्षा-निवृत्ति करता है,

इसलिये 'गच्छति' समापिका क्रिया (Finite), 'स गत्वा' (उभने जाकर) कहनेसे 'गत्वा' क्रिया वाक्यको समाप्त नहीं कर सकती (अर्थात् 'उसने जाकर—स्या क्रिया ?' इस प्रकार श्रोताकी एक आकाङ्क्षा रह जाती है), इसलिये यह असमापिका क्रिया (Infinite) ।*

Tense

१२३। काल—क्रियाके समयको 'काल' कहते हैं । काल तीन प्रकार—(१) भूत, (२) भविष्यत् और (३) वर्तमान । जो क्रिया पूर्वमे हो चुकी, उसके कालको 'भूत वा अतीत काल' (Past) कहते हैं । जो क्रिया पश्चात् होगी, उसके कालको 'भविष्यत् काल' (Future) कहने हैं । और जो क्रिया हो रही है, उसके कालको 'वर्तमान काल' (Pre

* सब तिङन्तपद समापिका क्रिया । स्थानविशेषमे क, क्ववतु, तव्य, अनीय, य प्रभृति कृदन्तपदभी समापिका क्रिया होते हैं ; यथा—स गतः (वह गया), तेन गन्तव्यम् (वह जायेगा) । तुम्, रक्ष, न्यर् और ण-सुल्-प्रत्ययान्त पद असमापिका क्रिया । जिसका विशेषण रहना है, वह विशेष्य होगाही, मुनरा विशेषण रहनेसे समापिका और असमापिका क्रियाभी विशेष्य होती है, यथा—द्रुत गच्छति (शीघ्र जाता है), यहाँ 'गच्छति' विशेष्य, मन्द मन्द गत्वा (धीरे धीरे जाकर), यहाँ 'गत्वा' विशेष्य ; 'सुख स्यात्तुम्' (सुखसे रहनेके लिये), यहाँ 'स्यात्तुम्' विशेष्य, क्योंकि "कृदभिहितो भावो द्रव्यवत् प्रकाशते" अर्थात् भाववाच्यमे कृत्प्रत्ययनिष्पन्न शब्द इ चके नामबोधक शब्दके तुल्य गम्य होता है ('कृ'-धातु + भाववाच्ये तुम्=च्छंम्) ।

sent) कहते हैं ।

Case.

१२५ । कारक—क्रियाके साथ जिसका अन्वय अर्थात् सम्बन्ध रहता है, उसको 'कारक' कहते हैं ।*

कारक छ-प्रकार—(१) कर्त्ता, (२) कर्म, (३) करण, (४) सम्प्रदान, (५) अपादान और (६) अधिकरण ।

✓ (१) कर्त्ता (Nominative)—जो क्रिया निष्पादन करता है, उसको 'कर्त्ता' कहते हैं, † यथा—(राम करता है) रामः करोति, (लड़का रोता है) बाल रोदिति,—यहाँ 'रामः' और 'बालः' कर्त्तृकारक ।

✓ (२) कर्म (Objective or Accusative)—जो क्रिया जाता है, उसको 'कर्मकारक' कहते हैं, ‡ यथा—(काम करता है) काय्यं करोति, (जल पीता है) जल पिबति, (रोटी खाता है) रोटिकुं भुङ्क्ते,—यहाँ 'काय्यम्', 'जलम्' और 'रोटिकाम्' कर्मकारक ।

✓ (३) करण (Instrumental)—जिससे क्रिया सम्पादित की जाती है, अर्थात् जो क्रियानिष्पत्तिका सर्वप्रधान उपाय, उसको 'करणकारक' कहते हैं, § यथा—(माँखसे दे-

* क्रियान्वयि कारकम् ।

† च. करोति, स कर्त्ता ।

‡ यत् कियते, तत् कर्म ।

§ येन कियते, तत् करणम् ।

खता है) चक्षुषा पश्यति, (हाथसे लेता है) हस्तेन गृह्णाति,—
यहाँ 'चक्षुषा' और 'हस्तेन' करणकारक ।

✓ (४) सम्प्रदान (Dative)—जिसको कोई वस्तु दी जाती है, उसे 'सम्प्रदान' कहते हैं,* यथा—(दरिद्रको धन देता है) दरिद्राय धनं ददाति, (भिक्षुकको भिक्षा देता है) भिक्षुवे भिक्षां ददाति,—यहाँ 'दरिद्राय' और 'भिक्षुवे' सम्प्रदानकारक ।

✓ (५) अपादान (Ablative)—जिससे कोई पदार्थ वियुक्त (अलग) होता है, उसे 'अपादान' कहते हैं,† यथा—(पेड़से फल गिरता है) वृक्षात् फलं पतति, (गाँवसे आता है) ग्रामात् आयाति,—यहाँ 'वृक्षात्' और 'ग्रामात्' अपादानकारक ।

✓ (६) अधिकरण (Locative)—कर्त्ता वा कर्मका जो आधार, उसे 'अधिकरण' कहते हैं,‡ यथा—(शिवदत्त घरमें सोता है) शिवदत्तं गृहे शेते, (मा वच्चेको बिल्लौनेमें सुलाती है) जननी शय्यायां शिशुं शाययति,—यहाँ 'गृहे' और 'शय्यायाम्' अधिकरणकारक ।

Possessive or Genitive

✓ २२६ । सम्बन्ध—जो पद और किसी पदके साथ सम्बन्ध

* मत्सं दानं सम्प्रदानम् ।

† यतो विच्छेपोऽपादानम् ।

‡ आधारेऽधिकरणम् ।

प्रकाश करता है, उसे 'सम्बन्ध' कहते हैं, यथा—(वृक्षकी शाखा) वृक्षस्य शाखाः (उसकी पुस्तक) तस्य पुस्तकम्,— यहाँ 'वृक्षस्य' और 'तस्य' सम्बन्धपद ।

Inflectional termination.

१२७ । विभक्ति—शब्दके उत्तर 'सु' औ, जस् प्रभृति, और धातुके उत्तर 'तिप्, तस्, अन्ति' प्रभृति जो प्रत्यय होते हैं, उनको 'विभक्ति' कहते हैं । 'सु, औ, जस् प्रभृतिको 'सुप्-विभक्ति', और 'तिप्, तस्, अन्ति' प्रभृतिको 'तिङ् विभक्ति' कहते हैं ।

सुवन्त-प्रकरण ।

१२८ । प्रयोगकालमें शब्दके उत्तर सुप्-विभक्ति होती है । सुप्-विभक्ति सात प्रकार—प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी । प्रत्येक विभक्तिके तीन तीन वचन* ।

सुप्-विभक्तिकी आकृति (Inflectional termination)

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा (उ) (ः)	औ	जम् (ज)
द्वितीया अम्	औट् (औ)	शस् (श)
तृतीया रा (भा)	भ्याम्	भिम् (भि)

* अतः सुप्-विभक्तिकी संख्या २१ ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
चतुर्थी	हे (ए) .	भ्याम्	भ्यस् (भ्य)
पञ्चमी	इति (भ)	भ्याम्	भ्यस् (भ्य)
षष्ठी	इस् (भ)	ओस् (ओ)	आम्
सप्तमी	इि (इ)	ओस् (ओ)	सप् (स)

आद्य अक्षर 'इ' और अन्त्य अक्षर 'प्' को लेकर इन विभक्तियोंका नाम 'सप्' रखा गया । इनको शब्दके अन्तमें जोड़नेसे जो पद बनता है, उसे 'सप्तम-पद' कहते हैं । स्मरण रहे, कि बन्धनोंके मध्यस्थित आकार (रूप) ही काव्यकालमें अवशिष्ट रहते हैं ।

रूपभेदसे शब्द चार भागोंमें विभक्त—(१) साधारण शब्द, (२) सर्वनाम शब्द, (३) सङ्ख्यावाचक शब्द और (४) अव्यय शब्द ।

साधारण शब्द फिर छ भागोंमें विभक्त—(१) स्वरान्त पुलिङ्ग, (२) स्वरान्त स्त्रीलिङ्ग, (३) स्वरान्त क्लीबलिङ्ग ; (४) व्यञ्जनान्त पुलिङ्ग, (५) व्यञ्जनान्त स्त्रीलिङ्ग, (६) व्यञ्जनान्त क्लीबलिङ्ग ।

पुंलिङ्ग-निर्णय ।

१२९ । (क) पुरुषवाचक शब्द प्रायः पुलिङ्ग ।

(ख) चन्द्र, सूर्य, अग्नि, वायु, प्रस्तर, पर्वत, समुद्र और वृक्ष-पर्व्याय शब्द* पुलिङ्ग । किन्तु प्रस्तर-पर्व्यायके बोधमें शिला और हृष्य—स्त्रीलिङ्ग ।

(ग) स्वर्ग-पर्व्याय शब्द पुलिङ्ग । किन्तु द्यो, दिग्—स्त्री०,

* एक अर्थमें जितने शब्द प्रयुक्त होते हैं, उन सबको 'पर्व्याय-शब्द' कहते हैं ।

त्रिविष्टप—ह्री०, स्वर—अव्यय ।

(घ) मेघ पर्याय शब्द पुलिङ्ग । किन्तु अत्र शब्द—ह्री० ।

(ङ) सप्ताह, मास, रक्षादि वर्ण, रस, काल और कल्प वाचक शब्द पुलिङ्ग ।

(च) ऋतु-वाचक शब्द पुलिङ्ग । किन्तु शरद् और वर्षो स्त्री० ।

(छ) वस्त्र वाचक शब्द पुलिङ्ग । किन्तु शरद्, समा—स्त्री०, हाथन—पु०, ह्री० ।

(ज) शब्द, गर्व, हस्त, गण्ड, ओष्ठ, कण्ठ, केश, नख, दन्त और स्तन-वाचक शब्द पुलिङ्ग ।

(झ) तरङ्ग-वाचक शब्द पुलिङ्ग । किन्तु जर्मि और वीचि शब्द स्त्रीलिङ्गभी होते हैं ।

(ञ) खड्ग, बाण, मनुष्य, शत्रु, सर्प, मत्स्य, कच्छप, भेक, कुम्भीर-वाचक शब्द और किरण वाचक शब्द* पुलिङ्ग ।

(ट) दार, प्राण, मधु, अक्षत, राज और त्रिन्दु शब्द पुलिङ्ग ।

(ठ) तुषार, नोहार, और अयश्वाय शब्द पुलिङ्ग ।

(ड) 'अन्' भागान्त शब्द पुलिङ्ग, यथा—राजन्, मज्जन् इत्यादि । किन्तु द्विस्वर 'अन्'-प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग, यथा—कर्मन् वर्मन् इत्यादि ।

(ढ) 'तु'-अन्त और 'रु'-अन्त शब्द पुलिङ्ग ; यथा—(तु) हेतु, मेलु, केतु, (रु) मेरु, त्तरु । किन्तु (तु) जतु और वस्तु—स्त्री०, (रु) जतु, दाह—स्त्री०, कचेरु—पु०, ह्री० ।

* किन्तु मणोच शब्द-पु०, स्त्री०, दीपोचि शब्द-स्त्री० ।

(ञ) 'वञ्' प्रत्ययान्त शब्द पुलिङ्ग, यथा—त्याग, भाग, पाक इत्यादि ।

(त) 'मच्'-प्रत्ययान्त शब्द पुलिङ्ग, यथा—लय, जय, चयः इत्यादि । किन्तु मय, वर्षे, लिङ्ग, पद और मुख शब्द—ह्रीं० ।

(थ) 'अप्' प्रत्ययान्त शब्द पुलिङ्ग; यथा—ख, स्तत्र, भव इत्यादि ।

(द) 'ग' प्रत्ययान्त शब्द पुलिङ्ग, यथा—व्याघ इत्यादि ।

(ध) 'नञ् (न)-प्रत्ययान्त शब्द पुलिङ्ग, यथा—पत्न, स्वप्न, प्रदन इत्यादि । केवल याञ्जा शब्द—ह्रीं० ।

(न) 'अधु'-प्रत्ययान्त शब्द पुलिङ्ग; यथा—वेद्यु, इवप्यु, इत्यादि ।

(प) 'इमन्'-प्रत्ययान्त शब्द पुलिङ्ग; यथा—लविमन्, गरिमन् इत्यादि । किन्तु प्रेमन् शब्द—पुं०, ह्रीं० ।

(फ) 'ङि'-प्रत्ययान्त शब्द पुलिङ्ग; यथा—विधि, जलपि- इत्यादि । किन्तु इपुवि शब्द—पुं०, ह्रीं० ।

(ब) समासनिष्पन्न 'रात्र'-भागान्त शब्द पुलिङ्ग; यथा—मर्वरात्र, पुग्यरात्र । किन्तु मह्ययावाचक शब्द पूर्वमे रहनेसे ह्रीं० पुलिङ्ग होता है; यथा—द्विरात्रन्, त्रिरात्रन् इत्यादि ।

(म) समासनिष्पन्न 'अह'-भागान्त शब्द पुलिङ्ग, यथा—परमाह । किन्तु पुग्याह शब्द—ह्रीं० ।

(न) समासनिष्पन्न 'अह'-भागान्त शब्द पुलिङ्ग, यथा—सखाह, पूवाह ।

स्वरान्त पुलिङ्ग शब्दके साधारण सूत्र ।

१३० । अकारान्त, इकारान्त और उकारान्त शब्दके 'अम्' के स्थानमे 'म्' होता है, यथा—देव + अम् = देव + न् = देवम्, विधि + अम् = विधिम्, साधु + अम् = साधुम् ।

१३१ । इस्वस्वरान्त शब्दके 'शस्' के स्थानमे 'न्' होता है, और वह 'न्' परे रहनेसे, पूर्वस्वर दीर्घ होता है, यथा—देव + शस् = देव + न् = देवान्; विधि + शस् = विधि + न् = विधीन्, साधु + शस् = साधून्; दातृ + शस् = दातृन् ।

१३२ । अकारान्त शब्दके परस्मित 'टा' के स्थानमे 'इन्', 'भित्' के स्थानमे 'ऐस्', 'ठे' के स्थानमे 'अय', 'ठित्' के स्थानमे 'आत्', 'ठस्' के स्थानमे 'स्य', और 'ओस्' के स्थानमे 'योस्' होता है, यथा—देव + टा = देव + इन् = देवेन, देव + भित् = देव + ऐस् = देवै, देव + ठे = देव + अय = देवाय, देव + ठित् = देव + आत् = देवात्; देव + ठस् = देव + स्य = देवस्य, देव + ओस् = देव + योस् = देवयोः ।

१३३ । 'भ्याम्' परे रहनेसे मकारके स्थानमे आकार, और 'भ्यस्' तथा 'ष्ठप्' परे रहनेसे पृष्ठार होता है, यथा—देव + भ्याम् = देवान्भ्याम्, देव + भ्यस् = देवेभ्य, देव + ष्टप् = देवेषु (१०८ सू) ।

१३४ । इस्वस्वरान्त शब्दके 'आम्' के स्थानमे 'नाम्' होता है; वह 'नाम्' परे रहनेसे, पूर्वस्वर दीर्घ होता है, यथा—देव + आम् = देव + नाम् = देवानाम्, विधि + आम् = विधि + नाम् = विधीनाम्, साधु + आम् = साधुनाम्, दातृ + आम् = दातृणाम् (१०० सू) ।

१३५ । इस्वस्वरान्त शब्दके सम्बोधनमे 'ष' का लोप होता है;

यथा—देव + उ = देव ।

१३६ । 'शस्'-प्रभृतिका स्वरवर्ण परे रहनेसे, धातु-निष्पन्न आकारान्त शब्दके आकारका लोप होता है, यथा—विधपा + शस् = विधपा + अ = विधप् + अ = विधप ।

१३७ । इकारान्त शब्दके 'औ' के स्थानमे 'इ', और उकारान्त शब्दके 'औ' के स्थानमे 'ऊ' होता है, यथा—विधि + औ = विधि + ई = विधी, साधु + औ = साधु + ऊ = साधू ।

१३८ । 'जम्', 'हे', 'उसि', 'उस्' और सम्बोधनके एकवचनमे इकारान्त शब्दके 'इ' के स्थानमे 'ए', और उकारान्त शब्दके 'उ' के स्थानमे 'ओ' होता है, यथा—विधि + जस् = विधि + अ = विधे + अ = विधय (२५ सू), विधि + हे = विधि + ए = विधे + ए = विधये, साधु + जस् = साधु + अ = साधो + अ = साधव (२७ सू), साधु + हे = साधु + ए = साधो + ए = साधने, विधि + उ (सम्बोधन) = विधे (१३६ सू), साधु + उ (सम्बो०) साधो (१३६ सू) ।

१३९ । एकार वा ओकारसे परे 'उसि' और 'उस्' के अकारका लोप होता है, यथा—विधि + उसि = विधि + अ = विधे + अ (१३८ सू) = विधे + = विधे, साधु + उसि = साधु + अ = साधो + अ (१३८ सू) = साधो + . = साधो ।

१४० । इकारान्त और उकारान्त शब्दके 'टा' के स्थानमे 'ना' होता है, यथा—विधि + टा = विधि + ना = विधिना, साधु + टा = साधुना ।

१४१ । इकारान्त और उकारान्त शब्दके 'धि' के स्थानमे 'औ'

होता है, और अन्त्यस्वरका लोप होता है, यथा—विधि + डि = विधि + औ = विष् + औ = विषौ, साधु + डि = साधु + औ = साध् + औ = साधौ ।

१४२ । स्वरचर्ण परे रहनेसे, धातुनिष्पन्न इकारान्त शब्दके 'इ' के स्थानमे प्राय 'इष्', और ऊकारान्त शब्दके 'ऊ' के स्थानमे 'उष्' होता है, यथा—सुधी + औ = सुध् + इष् + औ = सुधिषौ, प्रतिभू + औ = प्रतिभू + उष् + औ = प्रतिभुषौ, प्रतिभू + जष् = प्रतिभू + अ = प्रतिभू + उष् + अ = प्रतिभुज ।

१४३ । ऋकारान्त शब्दके 'ऋ' का लोप, और 'ऋ' के स्थानमे 'आ' होता है; यथा—दातृ + छ = दाता ।

१४४ । 'जम्', 'औ' और 'अम्' परे रहनेसे, ऋकारान्त शब्दके 'ऋ' के स्थानमे 'आर्' होता है, किन्तु 'पितृ'-प्रकृति शब्दके 'ऋ' के स्थानमे 'अर्' होता है, यथा—दातृ + जस् = दात् + आर् + अ = दातार; दातृ + औ = दात् + आर् + औ = दातारौ, दातृ + अम् = दात् + आर् + अम् = दातास्म् । पितृ + औ = पित् + अर् + औ = पितरौ ।

१४५ । ऋकारान्त शब्दके 'ऋ' और 'इष्' के स्थानमे 'उ' होता है; 'उ' परे रहनेसे, ऋकारका लोप होता है; यथा—दातृ + ऋसि = दातृ + उ = दात् + उ = दातु, पितृ + ऋवि = पितृ + उ = पित् + उ = पितु ।

१४६ । सम्बोधनका 'उ', अथवा 'हि' परे रहनेसे, ऋकारान्त शब्दके 'ऋ' के स्थानमे 'अर्' होता है, यथा—पितृ + छ = पित् + अर् = पित् + अ = पित्; दातृ + डि = दात् + अर् + इ = दातरि ।

१४७ । 'छ', 'जस्' अथवा 'औ' परे रहनेसे, ओकारान्त शब्दके 'ओ' के स्थानमे 'औ' होता है, और 'अम्' तथा 'शम्' परे रहनेसे, 'आ' होता है; यथा—गो + छ = ग् + औ + = गौ, गो + औ = ग् + औ + औ = गौ + औ = गावौ (२८ सू), गो + जस् = गौ + अ = गाव, गो + अम् = ग् + आ + अम् = गाम्, गो + शस् = ग् + आ + अ = गा ।

सर्वनाम पुलिङ्ग शब्दके साधारण सूत्र ।

१४८ । अकारान्त सर्वनाम शब्दके 'जम्' के स्थानमे 'इ', 'हे' के स्थानमे 'स्मै', 'इसि' के स्थानमे 'स्मात्', 'डि' के स्थानमे 'स्मिन्', और 'आम्' के स्थानमे 'साम्' होता है, वह 'साम्' परे रहनेसे, अकारके स्थानमे एकार होता है; यथा—सर्व + जम् = सर्व + इ = सर्वे, सर्व + हे = सर्व + म्मे = सर्वम्मै, सर्व + इसि = सर्व + स्मात् = सर्वस्मात्; सर्व + आम् = सर्व + साम् = सर्व + ए + साम् = सर्वे + साम् = सर्वेषाम् (१०८ सू), सर्व + डि = स + स्मिन् = सर्वस्मिन् ।

१४९ । 'पूर्वादि'-शब्दके 'जस्' के स्थानमे 'इ', 'इसि' के स्थानमे 'स्मात्', और 'डि' के स्थानमे 'स्मिन्' विकल्पसे होता है ।

१५० । विभक्ति परे रहनेसे,—'तद्' के स्थानमे 'त', 'एतद्' के स्थानमे 'एत', 'यद्' के स्थानमे 'य', और 'किम्' के स्थानमे 'क' होता है; किन्तु ऊर्ध्वलिङ्गकी प्रथमा और द्वितीयाके एकवचनमे नहीं होता ।

ये शब्द तीनों लिङ्गोमेही 'सर्व'-शब्दके तुल्य, केवल 'छ' परे रहनेसे,—'तद्' और 'एतद्' शब्दके पुलिङ्गमे 'स' और 'एष', तथा श्रीलिङ्गमे 'सा' और 'एषा' होते हैं ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वितीया	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्
तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
चतुर्थी	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
पञ्चमी	सर्वस्मात्	सर्वाभ्यःम्	सर्वेभ्यः
षष्ठी	सर्वस्य	सर्वयो	सर्वेषाम्
सप्तमी	सर्वस्मिन्	सर्वयो	सर्वेषु
सम्बोधन	सर्व	सर्वा	सर्वे

विश्व (सकल), उम, उमय* (दोनो), एका (एक One, कोई कोई, मुख्यः केवल); एकता (दोनोके बीचमे एक); सम (सब); सिम (सकल), नेम (आधा),—इन शब्दोंके और अन्यादि शब्दके रूप 'सर्व' शब्दके तुल्य । केवल 'नेम'-शब्दके प्रथमाके बहुवचनमे 'नेमे नेमा.'—ये दो पद होते हैं ।

पूर्व शब्द (दिक्, देश और कालका विशेषण

Eastern, ancient)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पूर्वः	पूर्वौ	पूर्वे, पूर्वाः
द्वितीया	पूर्वम्	पूर्वौ	पूर्वान्

* 'उम'-शब्द नित्य द्विवचनान्त । 'उमय'-शब्द एकवचन और बहुवचनमेही प्रयुक्त होता है ।

† 'एक'-शब्द एकसङ्ख्यानात्र अर्थमे एकवचन, अर्पान्तरामे—एक-वचन, द्विवचन, बहुवचन ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
तृतीया	पूर्वेण	पूर्वाभ्याम्	पूर्वैः
चतुर्थी	पूर्वस्मै	पूर्वाम्याम्	पूर्वैर्म्य-
पञ्चमी	पूर्वस्मात्, पूर्वात्	पूर्वाम्याम्	पूर्वैर्म्यः
षष्ठी	पूर्वस्य	पूर्वयो	पूर्वयाम्
सप्तमी	पूर्वस्मिन्, पूर्वे	पूर्वयोः	पूर्वेषु
सम्बोधन	पूर्वं	पूर्वौ	पूर्वं, पूर्वा.

पूर्वादि शब्दके रूप 'पूर्व'-शब्दके तुल्य ।

✘ कर्ममे द्वितीया विभक्ति होती है, यथा—(गोपाल चन्द्रको देखता है) गोपाल चन्द्र पश्यति ।

हिन्दीमें 'चन्द्रको देखता है' इसके सिवा 'देखता है चन्द्रको' ऐसा व्यवहार नहीं होता, किन्तु संस्कृतमें 'चन्द्र पश्यति' अथवा 'पश्यति चन्द्रम्'—ये दोनोंही हो सकते ।

अनुवाद करो—रङ्गके चन्द्र देखते है (पश्यन्ति) । सूर्यका प्रखर ताप सह (सोढुम्) नहीं सकता हू (न शक्नोमि) । राम, इयाम्—दोनों इम दिशामे (अनया दिशा) आते है (आगच्छत) । भेड़ा घास खाता है (खादति) । सब देश अवलोकन करो (अवलोक्य) । अच्छा आदमीही दूसरेका (द्वितीया) आदर करता है (आद्रियते) । सब लोग मत्स्य नहीं खाते (खादन्ति) । पुरोहित शङ्ख बजाता है (वादयति) । अभिलाष सबको अभिभूत करता है (अभिभवति) । लोन का (द्वितीया) परिहार करो (छोड़ो—परिहर) । मयूर नाचते है (नृत्यन्ति) । सब खेलते है (खेलन्ति) । पवन बहता है (वहति) । सब समपनेही स-

इन्प्यहार सोना पाता है (सोनते) (हाँ—एव) । धर्म धार्मिक
(द्विर्तोषा) रक्षा करता है (रक्षति) । जहाँ (यत्) धर्म, वहाँ
(तत्र) जय ।

दुद क्तो—मर्दः मत्स्या, पश्चिम देश, अनरं वृक्षा, छन्दरं वेत्त ।

यदादि ।

यद् शब्द (जो Who, which) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	यः	यौ	ये
द्वितीया	यम्	यौ	यान्
तृतीया	येन	यान्याम्	यैः
चतुर्थी	यस्मै	यान्याम्	येभ्यः
पञ्चमी	यस्मात्	यान्याम्	येभ्यः
षष्ठी	यस्य	ययोः	येषाम्
सप्तमी	यस्मिन्	ययोः	येषु*

तद् शब्द (वह He) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सः	तौ	ते
द्वितीया	तम्	तौ	तान्
तृतीया	तेन	तान्याम्	तैः
चतुर्थी	तस्मै	तान्याम्	तेभ्यः
पञ्चमी	तस्मात्	तान्याम्	तेभ्यः

* यदादि शब्दस्य सम्बोधनमे प्रयोग नहीं है ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पृष्ठी	तस्य	तयो	तेषाम्
सप्तमी	तस्मिन्	तयो	तेषु

एतद् शब्द (यह This) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	एष.	एतौ	एते
द्वितीया	एतम्	एतौ	एतान्
तृतीया	एतेन	एताभ्याम्	एतैः
चतुर्थी	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः
पञ्चमी	एतस्मात्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
षष्ठी	एतस्य	एतयो	एतेषाम्
सप्तमी	एतस्मिन्	एतयो	एतेषु

✽ सर्वनामकी सहायता लेनेसे, विशेष्यका बारबार उल्लेख नहीं करना पड़ता, और विशेष्यकी अनुपस्थितिमें सधादि सत्र सर्वनामोका विशेष्यके तुल्य प्रयोग होता है, यथा—(राम शिष्टो बालक, सब उसकी प्रशंसा करते हैं) राम शिष्टो बालक, सर्वे 'त' प्रशंसन्ति—यहा 'राम' के स्थानमें 'त' बैठा है, और 'लोका' इस विशेष्यपदकी अनुपस्थितिमें 'सर्वे' यह पद विशेष्यके तुल्य व्यवहृत हुआ है ।

✽ यद् और तद्—ये दो शब्द नित्यसम्बन्धविशिष्ट, अर्थात् 'यद्'-शब्दका प्रयोग करनेसेही इसके पश्चात् 'तद्'-शब्दका प्रयोग करना होगा, यथा—(जो गुरुभक्त, वही शिष्य) यो गुरुभक्त, स एव शिष्य—यहाँ 'य.' (जो) इस शब्दके पश्चात् 'स' (वह)

इस शब्दका प्रयोग न करनेसे अर्थही सन्वक् उपलब्धि अथवा आकाङ्क्षाकी निवृत्ति नहीं होती ।

अनुवाद करो—छरेन्द्र, नरेन्द्र, गणेश—तत्र अरुणा अरुणा (स्व स्व) पाठ पढ़ते हैं (पठन्ति) । रमेरुने उसे नहीं देखा (न अपश्यत्) । जो आश्रित जनकी (द्वितीया) रक्षा नहीं करता, परमेश्वर उसका (द्वितीया) प्राण नहीं करते (न प्रायते) । बड़ड़े (क्लम) विचरते हैं (विचरन्ति) । दीप जलता है (ज्वलति) । वह जाय (गतु) । वह आदमी वहाँ (तत्र) जायेगा (यास्यति) । घोड़े रथ ले जाते हैं (वहन्ति) । वे पुत्रको दुलार करते हैं (लालयन्ति) ।

किम् शब्द (कौन, क्या Who, what) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	कः	कौ	के
द्वितीया	कम्	कौ	कान्
तृतीया	केत	काभ्याम्	के
चतुर्थी	कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः
पञ्चमी	कस्मात्	काभ्याम्	केभ्यः
षष्ठी	कस्य	कयोः	केषाम्
सप्तमी	कस्मिन्	कयोः	केषु

✧ जहाँ किसी अनरिज्ञात वस्तु, व्यक्ति वा गुणके जाननेकी इच्छासे प्रश्नार्थमे 'क्या' 'कौन' इत्यादि शब्दका व्यवहार होता है, यहाँ नष्टतमे 'किम्'-शब्दका प्रयोग करना चाहिये, यथा—(धर्म क्या ?) क धर्म ? , (कौन जाता है ?) क याति ? , (किसको

मारता है) क प्रहरति ?

अनुवाद करो—कौन मनुष्य ? किमको मिह कहते हैं (वदन्ति) ? क्या उपकार ? कौन हाथ ? कौन किसको पूजता है ? कौन शिक्षक जा ता है (गच्छति) ? कौन कहते हैं (कथयन्ति) । कौन जागता है (जागति) ? कौन लाभ ? किसका हाथ ? कौन बालक हमता है (ह सति) ? किलका (द्वितीया) निन्दा करता है (निन्दति) ? राम किमको देखता है (पश्यति) ?

इदमादि ।

✓ इदम् शब्द (यह This) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अयम्	इमौ	इमे
द्वितीया	इमम्	इमौ	इमान्
तृतीया	अनेन	आभ्याम्	एभिः
चतुर्थी	अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः
पञ्चमी	अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः
षष्ठी	अस्य	अनयो	एषाम्
सप्तमी	अस्मिन्	अनयो	एषु

✓ अदल् शब्द (वह That)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	असौ	अनू	अमौ
द्वितीया	अमुम्	अम्	अमून्
तृतीया	अमुना	अमून्याम्	अमीभिः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
चतुर्थी	अमुष्मै	अमून्याम्	अमोन्यः
पञ्चमी	अमुष्मात्	अमून्याम्	अमोन्यः
षष्ठी	अमुष्य	अमुषो.	अमोषाम्
सप्तमी	अमुष्मिन्	अमुषो	अमीषु*

✽ हिन्दीमें जहाँ विशेष्यसे पूर्व अथवा विशेष्यके स्थानमें 'वह' रहता है, संस्कृतमें वहाँ 'इदम्' वा 'एतद्' शब्दका व्यवहार किया जाता है, और जहाँ 'वह' रहता है, वहाँ 'अदम्'-शब्दका प्रयोग करना होता है। यथा—(वह वृक्ष) अत्र वृक्ष, (वह मनुष्य) अस्मि मनुष्य । विशेष्यके स्थानमें, यथा—(यह जाता है) अयं याति ।

अनुवाद को—यह मत्तार । वह व्यात्र । यह मै (अहम्) हूँ (अस्मि) । वह जाता है (आगच्छति) । वह तालवृक्ष हिलाता है (कम्पते) । वह इन ग्रन्थको पढ़ता है (पठति) । जिनसे (येन) सुना जाता है (श्रूयते), उतें कर्म कहते हैं (करन्ति) । निष्ठुर व्याध उमका (तस्य) हाथ बाँधता है (बध्नाति) ।

* इदम् प्रत्यक्षगत, समीपतरवर्ति चैतदो रूपम् ।

अदधस्तु विप्रकृष्ट, तदिति परोक्षे विजानोपात् ॥

अर्थात् 'इदम्'-शब्दके रूप—अपक्षवस्तुविषयमें, 'एतद्'-शब्दके रूप—अत्यन्तसमीपवस्तुविषयमें, 'अदम्'-शब्दके रूप—दूरस्थवस्तुविषयमें, और 'तद्'-शब्दके परोक्षवस्तुविषयमें जानना ।

युष्मद् शब्द (तु, तुम You—मध्यमपुरुष Second person)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	त्वम्	युवाम्	युष्म
द्वितीया	त्वाम्, त्वा	युवाम्, वाम्	युष्मान्, व
तृतीया	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभि
चतुर्थी	तुभ्यम्, ते	युवाभ्याम्, वाम्	युष्मभ्यम्, व.
पञ्चमी	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्
षष्ठी	तव, ते	युवयो, वाम्	युष्माकम्, व'
सप्तमी	त्वयि	युवयोः	युष्मासु

अस्मद् शब्द (मै, हम I—उत्तमपुरुष First person) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वितीया	माम्, मा	आवाम्, नौ	अस्मान्, न'
तृतीया	मया	आवाभ्याम्	अस्माभि
चतुर्थी	मह्यम्, मे	आवाभ्याम्, नौ	अस्मभ्यम्, न'
पञ्चमी	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
षष्ठी	मम, मे	आवयोः, नौ	अस्माकम्, नः
सप्तमी	मयि	आवयोः	अस्मासु

सब लिङ्गोमेही 'युष्मद्' और 'अस्मद्' शब्दके रूप एक प्रकार ।

✪ कोई पद पूर्वमे रहनेसे, युष्मद् और अस्मद्-शब्द निष्पन्न त्वा, मा, ते, मे, वाम्, नौ, व, न —ये पद विकल्पसे व्यवहृत होते हैं, यथा—(ईश्वर तेरी रक्षा करे) ईश्वर त्वा अथवा त्वा पातु,

(राजा तुझे अर्थ देगा) भूप ते अथवा तुभ्यम् अर्थं दास्यति, (हमारे मनोरथ पूर्ण हुए) पूर्णा न मनोरथा, (वह हम दोनोको उपहार देगा) स नौ अथवा आवाभ्याम् उपहार दास्यति; (परमेश्वर हमारी रक्षा करेगा) परमेश्वर न' अथवा अस्मान् रक्षिष्यति ।

च, वा, एव—इन अव्ययसंज्ञोके योगसे त्वा, मा, ते, मे, वाम्, नौ, व, न—इन पदोंका व्यवहार नहीं होता यथा—(शिक्षक तुझे और मुझे उपदेश देता है) शिक्षक त्वा मा च उपदिशति, (ईश्वर तेरा और मेरा मङ्गल कर) ईश्वर तव मन च मङ्गलं विदधातु, (वह तुम दोनो और हम दोनोको धन देगा) स युवाभ्याम् आवाभ्या च धन दास्यति, (वह तुम्हारा और हमारा पुत्र) स पुप्ताकम् क्षम्नाकं च गुरु । 'वा' और 'एव' वाक्यके योगसेभी ऐसा हागा ।

वाक्यके आरम्भमें और श्लोकके चरणके आदिमें त्वा, मा इत्यादि पदोंका व्यवहार नहीं होता । यथा—वाक्यके आदिमें—(मेरी पुस्तक श्रे) मम पुस्तक इति,—यहाँ 'मम' के स्थानमें 'मे' नहीं होगा । चरण के आदिमें—

त्वा स रक्षति यत्नेन, मा स द्वेष्टि निरन्तरम् ।

ते दोष एव, नैवात्र मे दोषो विद्यते सत्वे ! ॥

ऐसा प्रयोग नहीं होता ।

त्वा स रक्षति यत्नेन, मां स द्वेष्टि निरन्तरम् ।

तत्रैव दोषो, नैवात्र मम दोषोऽस्ति कश्चन ॥

ऐसा प्रयोग होता है ।

शुद्ध करो—माता ते मे च भङ्गल प्रार्थयते । त विना वां नौ च उपायो नास्ति । स ते मे च उपकार करिष्यति । इयाम न एव आलाप शृणोति । न. धन देहि ।

❧ धिक्, प्रति, यावत्, अनु, अन्तरेण, अन्तरा और निकषा शब्दके योगसे द्वितीया विभक्ति होती है, यथा—(दरिद्रके प्रति सदय हो) दरिद्र प्रति सदयो भव, (जो दरिद्रके प्रति सदय नहीं होता, उम निष्ठुरको धिक्कार) यो हि दरिद्र प्रति सदयो न भवति, धिक् अस्तु त निष्ठुरम्, (मृत्युतक आचार्यके अधीन हो) प्राणात्यय यावत् आचार्याधीनो भव, (शिष्यके पीछे जा) शिष्यम् अनुयाहि, (श्रम विना विद्यालाभ नहीं होता) श्रमम् अन्तरेण विद्यालाभो न भवति, (आचार विना धर्म नहीं होता) आचारम् अन्तरेण धर्मो न भवति, (तेरे और मेरे बीचमे वह बैठे) त्वा मा च अन्तरा स उपविशतु, (शिवजीके पास अन्नपूर्णा) शिव निकषा अन्नपूर्णा ।

अनुवाद करो—तुम दरिद्रके प्रति सद्व्यवहार करो (कुरुत) । हम तुम्हें छोड़े (विना) रहनेको (स्थातुम्) असमर्थ । बहुत कालसे (यावत्) तुम्से देखता हूँ (पश्यामि) । राम अत्यन्त धार्मिक, तू उनका (द्वितीया) अनुवर्त्तन कर (अनुवर्त्तस्व) । सूर्यके पास अंधेरा नहीं रहता (न तिष्ठति) । तू और मैं कभी (कदाऽपि) सदालाप छोड़ असदालाप नहीं करेंगे (न करिष्याव) । तू अब (अथुना) पाठके प्रति मनोनिवेश कर (कुरु), मैं भी (अपि) अपना काम (स्वकार्यम्) करूँ (अनुतिष्ठामि) ।

द्वितीय और तृतीय शब्द ।

'द्वितीय' और 'तृतीय' शब्दके रूप 'द्वि-तृ-शब्दके तुल्य, केवल चतुर्थी, पदान्त और स्तनोके एकत्रवने विकल्पसे 'तृ-तृ-शब्दके तुल्य, यथा-

	चतुर्थी	पदान्त	स्तनी
द्वितीय	{ द्वितीयस्मै द्वितीयाय	द्वितीयन्मात् द्वितीनात्	द्वितीयस्मिन् द्वितीये
तृतीय	{ तृतीयस्मै तृतीयाय	तृतीयन्मात् तृतीयात्	तृतीयस्मिन् तृतीये
	*	*	*

आकारान्त ।

हाहा शब्द (गन्धर्व-विशेष* Name of a Gandharva) ।

प्रथमा—हाहा, हाही, हाहा, द्वितीया—हाहान्, हाही, हाहात्, तृतीया—हाहा, हाहान्मान्, हाहाभि, चतुर्थी—हाहै, हाहान्मान्, नान्, पदान्त—हाहा, हाहान्मान्, हाहान्, षष्ठी—हाहाः, हाही, हाहान्; स्तनी—हाहै, हाही, हाहाश्च, स्तनोपन—हाहा !

विश्वपा शब्द (विश्वरक्षक; सूर्य, वज्र, अग्नि Protector of all, sun ; moon, fire)

प्रथमा—विश्वपा, विश्वपौ, विश्वपा, द्वितीया—विश्वपान्, विश्वपौ, विश्वप, तृतीया—विश्वपा, विश्वपान्मान्, विश्वपाभि, चतुर्थी—विश्वपै, विश्वपान्मान्, विश्वपान् पदान्त—विश्वपः, विश्वपान्मान्,

* 'हृह'-शब्दभी इसी लघने होना है ।

विश्वपाम्य , पष्ठी—विश्वपः, विश्वपोः, विश्वपाम्; सप्तमी—विश्वपि,
विश्वपो, विश्वपाष्ठ, सम्बोधन—विश्वपाः ।

सब धातुनिष्पन्न (क्विप् प्रत्ययान्त) आकारान्त शब्दके (यथा—
गोपा, गोदा, अन्तस्था इत्यादि) रूप 'विश्वपाम्'-शब्दके तुल्य । पुलिङ्ग
और स्त्रीलिङ्गमें समान ।

इकारान्त ।

मुनि शब्द (तपस्वी An ascetic) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मुनिः	मुनी	मुनयः
द्वितीया	मुनिम्	मुनी	मुनीन्
तृतीया	मुनिना	मुनिभ्याम्	मुनिभिः
चतुर्थी	मुनये	मुनिभ्याम्	मुनिभ्यः
पञ्चमी	मुनेः	मुनिभ्याम्	मुनिभ्यः
षष्ठी	मुने	मुन्योः	मुनीनाम्
सप्तमी	मुनौ	मुन्योः	मुनिषु
सम्बोधन	मुने	मुनी	मुनयः

प्रायः सब इकारान्त पुलिङ्ग शब्दके रूप 'मुनि'-शब्दके तुल्य । यथा—

विधि (व्रजा, विमान, प्रकार, नियम इत्यादि), ऋषि (मन्त्रप्रदशा
मुनि), हरि (विष्णु), पयोत्रि, वारिषि (सागर, समुद्र), अग्नि,
वद्वि (जन, आग), निधि (स्तन), गिरि (पर्वत), रषि (सूर्य);
ऋषि (गणर), ऋषि (काव्यरूपां और पण्डित), यति (सन्न्यासी);
नरपति (राजा) ।

ॐ हिन्दीमें करणविहित 'से' 'द्वारा' विभक्ति-घटित पदके अनुवादमें [करणे] वृत्तीया विभक्तिका व्यवहार होता है, यथा—(पाँचोसे जाता है) पादाभ्या याति, (यत्रसे निधि मिलती है) यत्नेन निधि प्राप्यते, (परिश्रमसे कार्य सिद्ध होता है) परिश्रमेण कार्य सिध्यति ।

अनुवाद करो—मनोयोगसे पाठ चिन्ता करो (चिन्तय) । अग्नि-द्वारा पाक करता है (पचति) । वानर हाथसे वृक्ष उत्पादन करते हैं (उत्पादयन्ति) । राजा नियमसे शासन करता है (शास्ति) । मुनि छोग सर्वश ईश्वरका (द्वितीया) ध्यान करते हैं (ध्यायन्ति) । अगस्त्य ऋषिने सागर पान किया था (पपौ) । देख (पश्य), वह एक गिरि । मन उस रूपतिको देखा है (दृष्टवान्) । हरिका (द्वितीया-) स्मरण कर (स्मर) ।

पति शब्द (स्वामी, नायक Master, husband) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पति.	पती	पतय.
द्वितीया	पतिम्	पती	पतीन्
तृतीया	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभि.
चतुर्थी	पत्ये	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
पञ्चमी	पत्यु.	पतिभ्याम्	पतिभ्य.
षष्ठी	पत्युः	पत्यो.	पतीनाम्
सप्तमी	पत्यौ	पत्यो	पतिषु
सम्योधन	पते	पतां	पतय.

श्रीपति, वृपति, भूपति प्रभृति समासनिष्पन्न 'पति'-भागान्त शब्दके रूप पुलिङ्गमे 'मुनि'-शब्दके तुल्य ।

सखि शब्द (मित्र, सहचर Friend, Companion) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सखा	सखायौ	सखायः
द्वितीया	सखायम्	सखायौ	सखीन्
तृतीया	सखा	सखिभ्याम्	सखिभिः
चतुर्थी	सख्ये	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
पञ्चमी	सख्युः	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
षष्ठी	सख्युः	सख्योः	सखीनाम्
सप्तमी	सख्यौ	सख्योः	सखिषु
सम्बोधन	सखे	सखायौ	सखायः

कति, यति और तति शब्द ।

कति (कितना), यति (जितना), तति (तितना),—ये शब्द निम्न बहुवचनान्त, इनके रूप तीनों लिङ्गोंमेंही इस प्रकार—कति, कति, कतिभिः, कतिभ्यः, कतिभ्यः, कतीनाम्, कतिषु । इत्यादि ।

शुद्ध कोश—इतय लोका १ यति विधि वचन्ते, सर्वे मनुष्य त षालधन्ति । सखि पश्य । नरपत्यु अपकार मा कुरु । अह पते स्मीपं यास्यामि ।

✧ हिन्दीमें जहाँ 'साध' 'सहित' वा 'सङ्ग' शब्दके योगसे षष्ठी विभक्ति रहती है, संस्कृतमें वहाँ उन्हीं सहायार्थबोधक 'सह'

‘सार्द्धम्’ ‘साकम्’ समम् प्रभृति शब्दोके योगसे अथवा ‘सह’ अथमे तृतीया-विभक्तिका प्रयोग करना चाहिये, यथा—(रामके साथ लक्ष्मण गया था) रामेण सह लक्ष्मण जगाम, अथवा रामेण लक्ष्मण जगाम ।

अनुवाद करो—रामके साथ इयाम जाता है (गच्छति) । पतिके साथ विवाद न करना (न कुप्यात्) । ज्ञातिके सङ्ग कलह करना नहीं चाहिये (न कुप्यात्) । तुम्हारे साथ मैं नहीं जाऊँगा (न यास्यामि) । बालकेके साथ सद्रूप्यहार करना (कुप्यात्) । सखाके साथ सद्भाव रहता है (तिष्ठति) । नरपतिके साथ विरोध नहीं करना । लड़केके शिक्षकके साथ घूमनेको (भ्रमितुम्) जाते हैं (गच्छन्ति) ।

द्वि शब्द (दो Two) । द्विवचनान्त ।

१मा	२या	३या	४थी	५मी	६ष्टी	७मी
द्वौ	द्वौ	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वयो	द्वयोः

त्रिशब्द (तीन Three) । बहुवचनान्त ।

त्रय- त्रीन् त्रिभि त्रिभ्यः त्रिभ्यः त्रियाणाम् त्रिषु ।

✽ ‘एक’ ‘दो’ ‘तीन’ शब्दके संस्कृत अनुवादमे यथाक्रम ‘एक’ ‘द्वि’ ‘त्रि’ शब्दका व्यवहार होता है, यथा—(एक ब्राह्मण) एक ब्राह्मण, (दो हाथ) द्वौ हस्तौ, (तीन आदमी) त्रय लोकाः, (एक साँप जाता है) एक सर्पो याति, (दो हरिण दौड़ते हैं) द्वौ हरिणौ धावतः; (यहाँ तीन छात्र हैं) अत्र त्रय छात्रा सन्ति ।

अनुवाद करो—एक हरिण । दो पाँव । तीन मुनि । दो बालक

हसते हैं (हसत) । एक ऋषि जाता है (गच्छति) । ये तीन आदमी
यहां रहें (तिष्ठन्तु) । दो सहोदर खाते हैं (खादत.) । मनुष्य दो
पावोंसे गमन करते हैं (गच्छन्ति) । एक चन्द्र समस्त संसारको उजाला
करता है (प्रकाशयति) ।

ईकारान्त ।

सुधी शब्द (परिद्धत Wise, learned) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुधीः	सुधियौ	सुधिय.
द्वितीया	सुधियम्	सुधियौ	सुधिय.
तृतीया	सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभिः
चतुर्थी	सुधिये	सुधीभ्याम्	सुधीभ्य.
पञ्चमी	सुधियः	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
षष्ठी	सुधियः	सुधियो.	सुधियाम्
सप्तमी	सुधियि	सुधियो.	सुधीषु
सम्योधन	सुधीः	सुधियौ	सुधिय.

सुधी (शोमान्वित, स्वसूरत), निर्भी (भयहीन), शुद्धधी
(पवित्रबुद्धिसम्पन्न) ; मन्दधी (अल्पबुद्धि) ; हतधी (बुद्धिहीन) ;
अपद्मो (निर्लज्ज) ,—इस प्रकार द्विवन्त (क्विप् प्रत्ययान्त) ईकारान्त
पुलिङ्ग शब्दके रूप 'सुधी' शब्दके तुल्य ।

* * * *

सेनानी शब्द (सेनाध्यक्ष, कार्तिकेय Leader of an army)

प्रथमा—सेनानी, सेनान्यौ, सेनान्य, द्वितीया—सेनान्यम्, सेना-

न्यो, सेनान्य , तृतीया-सेनान्या, सेनानीभ्याम् , सेनानीभि , चतुर्थी-
सेनान्ये, सेनानीभ्यान् , सेनानीभ्य , पञ्चमी-सेनान्य , सेनानीभ्याम्,
सेनानी-य , षष्ठी-सेनान्य , सेनान्यो , सेनान्याम् , सप्तमी-सेनान्याम्,
सेनान्यो , सेनानीषु, सम्बोधन-सेनानी ।

अग्रणी (अग्रण्य), ग्रामणी (ग्रामका प्रधान, नाई) । अग्रणी
प्रभृति 'नी' धातु निष्पन्न शब्दोंके रूप 'सेनानी' शब्दके तुल्य ।

'प्रणी'-शब्दके रूप 'सेनानी' शब्दके तुल्य, केवल सप्तमीके
एकवचनमे 'प्रणिय' होता है । 'वातप्रणी' (वायुवत् वेगगामी मृग)-
शब्दके रूप 'सेनानी' शब्दके तुल्य, केवल द्वितीयाके एकवचन और
चतुर्वचनमे यथाक्रम 'वातप्रणीम्' और 'वातप्रणीन्', तथा सप्तमीके
एकवचनमे 'वातप्रणी' होता है ।

उकारान्त ।

साधु (सत् A noble and virtuous man) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	साधु.	साधू	साधव.
द्वितीया	साधुम्	साधू	साधून्
तृतीया	साधुना	साधुभ्याम्	साधुभि.
चतुर्थी	साधये	साधुभ्याम्	साधुभ्यः
पञ्चमी	साधोः	साधुभ्याम्	साधुभ्यः
षष्ठी	साधो	साधो	साधूनाम्
सप्तमी	साधौ	साधो.	साधुषु
सम्बोधन	साधो	साधू	साधव.

सब उकारान्त पुलिङ्ग शब्दके रूप 'सापु'-शब्दके तुल्य* । यथा—
 प्रभु, विभु (स्वामी), शिपु (बच्चा), विपु (चन्द्र), शिपु,
 सपु (विमान), वपु (बालक, महलचारी), वापु (हवा), भापु
 (सूर्य्य और क्षिरण) ।

गुड कौं—उगोय पुढ्या । सापु मानवा । साधवो ऋषि ।
 उन्ज्वल मानव । पडु मनुष्या ।

ऊकारान्त ।

प्रतिभू शब्द (तन्व्यानीय, ज़ामिन Bul, surety) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	प्रतिभू.	प्रतिभुवौ	प्रतिभुवः
द्वितीया	प्रतिभुवन्	प्रतिभुवौ	प्रतिभुव.
तृतीया	प्रतिभुवा	प्रतिभूभ्याम्	प्रतिभूभिः
चतुर्थी	प्रतिभुवे	प्रतिभूभ्याम्	प्रतिभूभ्यः
*पञ्चमी	प्रतिभुव	प्रतिभूभ्याम्	प्रतिभूभ्यः

* कौष्ट (शृगाल)-शब्दके रूप—३मा—कौष्टा, कौष्टारौ, कौष्टार , २वा
 —कौष्टारम्, कौष्टारौ, कौष्टून्, ३वा—कौष्ट्रा कौष्टुना, कौष्टुभ्याम्,
 कौष्टुभि, ४थी—कौष्ट्रे कौष्टवे, कौष्टुभ्याम्, कौष्टुभ्य, ५ मी—कौष्टुः
 कौष्टो, कौष्टुभ्याम्, कौष्टुभ्य, ६थी—कौष्टु कौष्टो, कौष्ट्यो कौष्ट्यो,
 कौष्टुनाम्; ७मी—कौष्ट्ये कौष्ट्यौ, कौष्ट्यो कौष्ट्यो, कौष्ट्यु, सम्बोधन—
 कौष्टो, कौष्टारौ, कौष्टार ।

प्रश्न । (१) 'विधी'—यह पद सप्तमीके एकवचनमे किञ्च किञ्च
 शब्दके निम्न हो सकता है ? (२) सुप्री और अपडो शब्दके रूप लिखो ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पष्ठी	प्रतिभुवः	प्रतिभुवो	प्रतिभुवाम् ।
सप्तमी	प्रतिभुवि	प्रतिभुवो.	प्रतिभूपु
सन्बोधन	प्रतिभू	प्रतिभुवौ	प्रतिभुव.

मनोन् (कन्दर्पं, कान) , अग्निन् (कार्तिकेय) , स्वन्, स्वन्न् (द्रष्टा, विष्णु, सिर) , अधिन् (प्रभु) ,—एते द्विवचन उदात्त शब्दके रूप 'प्रतिन्'-शब्दके तुल्य* ।

अनुवाद करो—माधुलोग मन् स्यान्ने (मर्दन्) विचरन् करते हैं (विचरन्ति) । साधु द्वारा यह मनार पवित्र । भानु प्रसर किरण वितरण करता है (वितरति) । पशु जो आहार पाते हैं (प्राप्नुवन्ति) , वहां छाते हैं (भक्षयन्ति) । तुमो व्यक्तिम (द्वितीया) मन्लोग सम्मान करते हैं (सम्मानयन्ति) । उन अधी शिशुको अवलोकन करते (अवलोक्य) । अग्नि शुष्क तरको दग्ध करती है (दहति) । ऋषिलोग वेद पढ़ते हैं (पठन्ति) । वे तुमै जानिन मानते हैं (नन्दन्ते) । स्वदन्को प्रणाम करो (प्रणम) ।

*

*

३

*

सुलू शब्द (उत्तम छेदनकारी A good cutter) ।

प्रथमा—सुलू, सुलूयी, सुलूय, द्वितीया—सुलूवन्, सुलूवी, सुलूवः ;
तृतीया—सुलूवा, सुलूव्याम्, सुलूवि, चतुर्थी—सुलूवे, सुलूव्याम्, सुलूव्य,
पंचमी—सुलूव, सुलूव्यान्, सुलूव्य, षष्ठी—सुलूव, सुलूवो, सुलूवाम्,
सप्तमी—सुलूवि, सुलूवो, सुलूपु, सन्बोधन—सुलू !

* 'सुभू'-शब्दभी इसप्रकार ।

खलू (फागन, झाडूदार), वर्षानू (भेरु), करभू (नल)
हनू (नर्प, सूर्य चक्र, बज्र)—इन शब्दोंके रूप 'खलू'-शब्दके
तुल्य । 'हूहू'-शब्दके रूप 'खलू'-शब्दके तुल्य, केवल द्वितीयाके परुव-
चनमे 'हूहून्' और बहुवचनमे 'हूहून्' होता है ।

ऋकारान्त ।

दातृ शब्द (जो दान करता है A giver) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	दाता	दातारौ	दातार
द्वितीया	दातारम्	दातारौ	दानून्
तृतीया	दात्रा	दातृभ्याम्	दातृभि
चतुर्थी	दात्रे	दातृभ्याम्	दातृभ्यः
पञ्चमी	दातुः	दातृभ्याम्	दानृभ्यः
षष्ठी	दातुः	दात्रोः	दानृणाम्
सप्तमी	दातरि	दात्रोः	दातृषु
संभोयन	दातः	दातारौ	दातारः

'पितृ'-प्रभृति*—भिन्न नव ऋकारान्त पुलिङ्ग शब्दके रूप
'दातृ' शब्दके तुल्य । यथा—

कर्तृ (जो करता है), धातृ, विधातृ (जो विधान करता है);
द्रष्टृ (दर्शनकारी), श्रोतृ (श्रवणकारी); ज्ञातृ (जो जानता है, बोद्धा),
सवितृ (सूर्य), जेतृ (जपकारी), हन्तृ (हननकारी), श्रेतृ (जो

* पिता माता ननुन्दा ना सम्येष्ट-भ्रातृ-चातर ।

जामाता दुहिता देवा न तृणन्ता इमे ददा ॥

कर करता है), लृट् (चृष्टिकर्ता) ।

पितृ शब्द (जनक, चाप Father) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पिता	पितरौ	पितरः
द्वितीया	पितरम्	पितरौ	पितॄन्
तृतीया	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः
चतुर्थी	पित्रे	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
पञ्चमी	पितु	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
षष्ठी	पितु	पित्रो	पितृणाम्
सप्तमी	पितरि	पित्रा	पितृषु
सम्योधन	पितः	पितरौ	पितरः

भ्रातृ (भाई), जानातृ (दामाद), देवृ (देवर) सम्बन्धु (सारथि), नृ (नर) .—इन शब्दोंके रूप 'पितृ'-शब्दके तुल्य ; केवल 'नृ'-शब्दकी पष्ठोके बहुवचनने 'नृणाम्, नृणान्'-ये दो पद होते हैं ।

✽ हिन्दीमें जहाँ 'दो, देता है, देता है' इत्यादि दानार्थक धातु-को क्रियाके प्रागसे 'को' विभक्तिका प्रयोग रहता है, सरहृत्तने वहाँ [सम्प्रदाने] चतुर्थी विभक्ति होती है, यथा—(दाता दरिद्रको धन देता है) दाता दरिद्राय धन ददाति, (तू बख्खहीनको बख्ख दे) त्वं बख्खहीनाय बख्ख देहि ।

अनुवाद को—सिध्दको उपहार दो (दहि) । अन्यापक जात्रोंको आहार देते हैं (ददति) । विधाताको पुण्याञ्जलि दो । हे

प्रश्न । 'पितृ' और 'दातृ' शब्दके बोचने ह्यथा क्या वैषम्य है !

विधात । तुझे क्या दूंगा (किं दास्यामि) ? कन्यादाता दामादको उपहार देता है (यच्छति) । पिताको प्रणाम कर (प्रणम) । सारथि योद्धाकी (योद्धृ) (द्वितीया) रक्षा करता है (रक्षति) । हुन्तापर विश्वास न करो (मा विश्वसिहि) । सूर्यको अर्घ्य दो । दुष्टको आश्रय नहीं देना (श्चिघात्) । मुझे दो । शरणागतको अभय दो ।

ऐकारान्त-‘रै’ (घनवाचक)-शब्दके रूप सन्धि-द्वारा साध्य, केवल विभक्तिका व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, ‘रै’-शब्दके स्थानमे ‘श’ होता है, यथा—रा, रायौ, राय, राभ्याम् इत्यादि ।

ओकारान्त ।

गो शब्द (बैल Bull) ।*

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	गौः	गावौ	गावः
द्वितीया	गाम्	गावौ	गा
तृतीया	गवा	गोभ्याम्	गोभि
चतुर्थी	गवे	गोभ्याम्	गोभ्यः
पञ्चमी	गो	गोभ्याम्	गोभ्यः
षष्ठी	गो.	गवो	गवाम्
सप्तमी	गवि	गवोः	गोषु
सम्योधन	गौः	गावो	गावः

श्रीकारान्त-ग्लौ शब्द (चन्द्र, कर्पूर Moon, camphor) ।

प्रथमा-ग्लौ, ग्लौवौ, ग्लौव, द्वितीया-ग्लौवम्, ग्लौवौ, ग्लौव ;

* ‘गाय’ अर्थमे ‘गो’-शब्द स्त्रीलिङ्ग होता है । रूप इसीप्रकार ।

वृतीना-ग्लावा, ग्लौन्वात्, ग्लौमि , वतुपी-ग्लावं, ग्लौन्वात्, ग्लौ
न्व , पत्तनी-ग्लाव, ग्लौन्वात्, ग्लाभ्य , पष्टी-ग्लाव, ग्लावो,
ग्लावान्, सतनी-ग्लावि, ग्लावो, ग्लौपु, मन्वोधन-ग्लौ !

अनुदाद् करो-कालो गौ । यति भावभो दास देता है (ददाति) ।
सत्यवति गावोंको बांधता है (पन्नाति) । चञ्चल बालक गायके साथ
दौड़ने हैं (धावन्ति) । मेघ वायुके साथ धातायाव करता है (गता-
गत करोति) ।



ख्रीलिङ्ग-निर्णय ।

१५१ । (ङ) आकारान्त शब्द प्रायः ख्रीलिङ्ग . यथा-नाल्य,
साखा, बाला, कन्या इत्यादि ।

(ख) खोजार्तीय प्राग्विशब्द शब्द ख्रीलिङ्ग*, यथा-हन्ती, कुनारी।

(ग) एकस्वर ईकारान्त और ऊकारान्त शब्द ख्रीलिङ्ग ; यथा—
धी , नू ।

(घ) नृमि, विद्युत्, नदी, लता, रात्रि, दिक्, धेगि, बुद्धि, बानी,
सोभा, मन्त्र और शिपश्-पध्यांय शब्द ख्रीलिङ्ग ।

(ङ) 'प्रतिपद्'-प्रवृत्ति तिथिवाचक शब्द ख्रीलिङ्ग ।

(च) 'अनविशति' से 'नरनवति' तक लङ्वावाचक शब्दभी ख्रीलिङ्ग ।

(छ) अन्, अन्वाम्, जङ्गलम्, (पुत्रार्थ) एमनम्, और विक्र-
ता शब्द ख्रीलिङ्ग ।

(ज) समूहार्थ और भावार्थमें विहित 'तल'-प्रत्ययान्त शब्द ख्री-

* किन्तु 'दार'-शब्द पुल्लिङ्ग, 'कलत्र'-शब्द स्त्रीवाचक ।

लिङ्ग, यथा—जनता (जनममूह), लघुता, गुल्ता, मूर्खता ।

(झ) कि, भ, अङ्, वनप्, य और अनि प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग, यथा—(कि) नति, (अ) प्रशसा, (अङ्) भोषा, (वनप्) विद्या, (य) क्रिया, (अनि) तरणि—किन्तु 'अशनि' शब्द पु०, स्त्री० ।

स्वरान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके साधारण सूत्र ।

१५२ । आकारान्त और ईकारान्त शब्दके 'छ' का लोप होता है ।

यथा—लता + छ = लता, नदी + छ = नदी ।*

१५३ । आकारान्त और इकारान्त शब्दके 'औ' के स्थानमे 'ई', और उकारान्त शब्दके 'औ' के स्थानमे 'ऊ' होता है, यथा—लता + औ = लता + ई = लने, नति + औ = नति + ई = नती, रेनु + औ = रेनु + ऊ = रेनु ।

१५४ । 'टा' और 'ओम्' परे रहनेसे, आकारके स्थानमे 'अप्' होता है, यथा—लता + टा = लत् + अप् + आ = लतया, लता + ओम् = लत् + अप् + ओ. = लतयो. ।

१५५ । 'डे', 'डि', 'डम्' और 'डि' परे रहनेसे, आकारके पञ्चम अकारान्त 'य' होता है, और 'डि' के स्थानमे 'आम्' होता है, यथा—लता + डे = लता + य + ए = लतायै, लता + डि = लता + य + अ = लताया ; लता + डम् = लता + य + अ = लताया, लता + डि = लता + य + आम् = लतायाम् ।

१५६ । आकारान्त शब्दके 'आम्' के स्थानमे 'नाम्' होता है ;

* तन्त्री, तरी, लक्ष्मी, श्री, हो, भी प्रभृतिके नहीं होता ।

पदा—लता + कान् = लता + कान् = लताकान् ।

१०७ । इकारान्त शब्दके सन्धोक्तमे 'उ' का स्थान और आकारके स्थानमे प्रकार होता है : पदा—लता—उ = लतु + उ = लतुः ।

१०८ । इकारान्त, लकारान्त और धातुविपर्यय-भिन्न ईकारान्त तथा लकारान्त शब्दके 'अन्' और 'शन्' के अकारका स्थान होता है : पदा—मति + अन् = मति + अन् = मतिन् । पतु + अन् = पतु + अन् = पतुन् : मदी + अन् = मदी + अन् = मदीन् : मदी + शन् = मदी + शन् = मदीशन् : मदी + शन् = मदीशन् = मदीशन्ः ।

१०९ । 'शन्' से रहते, पूर्वस्वर दीर्घ होता है : पदा—मति—अन् = मती + अन् = मती + अन् = मतीशन्ः : पतु + शन् = पतु + शन् = पतुशन्ः : पतु + शन् = पतुशन्ः ।

११० । इकारान्त और लकारान्त शब्दके 'उ' के स्थानमे 'ए', और 'दामि' तथा 'अन्'के स्थानमे 'आ' होता है—विकल्पते । विकल्पक्रमे—इकारके स्थानमे प्रकार, और लकारके स्थानमे शोकार होता है : पदा—लता—मति + उ = मति + ए = मती, मति—मति + उ = मत् + ए + उ = मते + ए = मतेः । पतु + दामि = पतु + आ = पतुआः : मति—पतु + दामि = मते + आ + दामि = मते + आ = मतेः ।

१११ । इकारान्त, लकारान्त और लकारान्त शब्दके 'आन्' के स्थानमे 'कान्' होता है, और पूर्वस्वर दीर्घ होता है : पदा—मति + आन् = मति + कान् = मतीकान् : पतु + आन् = पतु + कान् = पतुकान् : मत् + कान् = मत् + कान् = मत्कान् = मत्कान्ः ।

(सू० १००) ।

१६२ । इकारान्त और उकारान्त शब्दके 'डि' के स्थानमें 'आम्' और 'औ' होते हैं, औकार पर रहनेसे, इकार और उकारका लोप होता है। यथा—मति + डि = मति + आम् = मत्याम्, पक्षे—मति + डि = मति + औ = मत् + औ = मतौ । धेनु + डि = धेनु + आम् = धेन्वाम्, पक्षे—धेनु + डि = धेनु + औ = धेन् + औ = धेनौ ।

१६३ । इकारान्त और उकारान्त शब्दके सम्बोधनके एकवचनमें 'इ' के स्थानमें 'ए', और 'उ' के स्थानमें 'ओ' होता है, यथा—मति + उ = मते (१३९ सू०), धेनु + उ = धेनो ।

१६४ । इकारान्त और उकारान्त शब्दके 'डे' के स्थानमें 'ऐ', 'डसि' तथा 'डस्' के स्थानमें 'आ', और 'डि' के स्थानमें 'आम्' होता है, धातुनिष्पन्न होनेसे विकल्पसे होता है । यथा—नदी + डे = नदी + ऐ = नद्यै, वधू + डसि = वधू + आ = वध्वा, वधू + डि = वधू + आम् = वध्वाम् । (धातुनिष्पन्न) धी + डे = धी + ऐ = ध्यू + इय् + ऐ = ध्रिये (१४२ सू०), पक्षे—धी + डे = धी + ए = ध्रिये (१४२ सू०), धी + डसि = धी + आ = ध्यू + इय् + आ = ध्रिया (१४२ सू०), धू + डि = धू + आम् = धू + उव् + आम् = धुवाम् (१४२ सू०), पक्षे—धू + डि = धू + इ = धू + उव् + इ = धुवि (१४२ सू०) ।

१६५ । इकारान्त और उकारान्त शब्दके 'आम्' के स्थानमें 'नाम्' होता है, यथा—नदी + आम् = नदीनाम्, वधू + आम् = वधूनाम् ; स्त्री + आम् = स्त्री + नाम् = स्त्रीणाम् (१०० सू०), धू + आम् = धूनाम् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वितीया	एताम्	एते	एताः
तृतीया	एतया	एनाभ्याम्	एताभि
चतुर्थी	एतस्यै	एनाभ्याम्	एताभ्य
पञ्चमी	एनस्या	एताभ्याम्	एताभ्य
षष्ठी	एनस्या	एतयो.	एनासाम्
सप्तमी	एनस्याम्	एतयो.	एनासु

किम् शब्द ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	का	के	का.
द्वितीया	काम्	के	काः
तृतीया	कया	काभ्याम्	काभि
चतुर्थी	कस्यै	काभ्याम्	काभ्य
पञ्चमी	कस्याः	काभ्याम्	काभ्य
षष्ठी	कस्या	कयो	कासाम्
सप्तमी	कस्याम्	कयो	कासु

वनुगद कते—तत्र दत्ता पूजासे सन्नुष्ट होने हैं (मन्तुष्यन्ति) ।
 जिस देवताको पुष्पाञ्जलि दूंगा (दास्यामि) ? ममता क्या ? इयाम
 क्या वृत्तान्त (बातों) कहता है (कथयति) ? इसके लिये दया ।
 विपासासे आकुल होता है (आकुलीभवति) जरासे मनुष्य दुर्बल
 होता है (भवति) ।

शुद्ध कते—तेन पाठिकृया उपागतान् भवन्ति । तन्मै काठिकाय

उपहारान् इहि । पृता एव वेदितु वेदा । या च न एत देवताम् उमान्ने
(उमानना उता है), अत तन्मै म्वन्ति इदाति ।

इदम् शब्द ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	इयम्	इमे	इमा
द्वितीया	इमाम्	इमे	इमा
तृतीया	एनया	आ०राम्	आभि
चतुर्थी	अस्यै	आभ्याम्	आभ्य
पञ्चमी	अस्या.	आभ्याम्	आभ्य
षष्ठी	अस्या	अनयो	आसाम्
सप्तमी	अस्याम्	अनयो	आन्तु

अदस शब्द ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	असौ	अनू	अमू.
द्वितीया	अनूम्	अनू	अमू
तृतीया	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः
चतुर्थी	अमुष्यै	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
पञ्चमी	अमुभ्या	अमूभ्याम्	अमूभ्य.
षष्ठी	अमुभ्याः	अनुयो	अनूपान
सप्तमी	अमुभ्यान्	अनुयो	अनूपु

प्रश्न । 'अस्य' और 'अनुभ्ये'—इन दोनों पदोंने पुल्लिङ्गे लट्के प्राय
न्ता पार्षन्व ह ?

अनुवाद परो—कौन वह पाठिका ? वह लड़की उस विद्यासे विप्लव होती है (भवति) । उस आतुरावृद्धाकी (द्वितीया) घृणा ब करो (न अवोदेष) । इस लज्जासे मेरे प्राण जाते हैं (प्रयान्ति) । वे गोपन्यायें छिपते (छिपेन अथवा छिपन्) कृत्य करती हैं (कृत्यन्ति) । उनको उपहार दो (देहि) । इस दुर्दशासे पीड़ित होकर (सन्) अनेक वातनायें अनुभव करता हूँ (अनुभवामि) । विविध उपचारोंसे इस देवताकी (द्वितीया) पूजा करो (पूजय) । यह देवता ही (एव) मङ्गल (स्वस्ति) विधान कोणा (विधास्वति) ।

इकारान्त ।

मति शब्द (बुद्धि Intollect) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मतिः	मती	मतयः
द्वितीया	मतिम्	मती	मतीः
तृतीया	मत्या	मतिभ्याम्	मतिनि
चतुर्थी	मत्ये, मतये	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
पञ्चमी	मत्या, मते	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
षष्ठी	मत्या, मते	मत्यो	मतोनान्
सप्तमी	मत्याम्, मतौ	मत्यो	मतिषु
सम्बोधन	मते	मती	मतयः

सब इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके रूप 'मति' शब्दके तुल्य । यथा—

क्षिति (शक्ति), बुद्धि (ज्ञान), गति (गमन ; उपाय),
मतति (छाया), प्रति (पूज) ; कागति (सौन्दर्य), आगति (भ्रम) ;

श्रान्ति (श्रम), आलि, ध्रेणि, पङ्क्ति (कतार), स्मृति (स्मरण, धर्मशास्त्र) ; प्रगति (प्रगम) ।

द्वि शब्द—द्वा । द्विवचनान्त ।

१मा २या ३या ४थी ५मी ६थी ७मी
द्वे द्वे द्वाभ्याम् द्वाभ्याम् द्वाभ्याम् द्वयो द्वयो-

त्रिशब्द । बहुवचनान्त ।

१मा २या ३या ४थी ५मी ६थी ७मी
तिन्नः तिन्नः तिसृभिः तिसृभ्यः तिसृभ्यः तिसृषाम् तिसृषु

अनुवाद करो—धर्मशास्त्र मानव श्रान्ति पाता है (प्राप्नोति) । नकि मुक्ति देती है (ददाति) । एकमात्र (केवल) बुद्धिसे उभने यह सम्पत्ति पार्थी (अलभत) । दो व्रततिथीं एक तरफको जेठन करती हैं (वेष्टेते) । श्रान्ति बुद्धिको लुप्त करती है (लुप्यति) । वृक्षश्रेणिके बीचने (अन्तराल) मानुषी रश्मि प्रविष्ट होती है (प्रविशति) । हमने निताश्रयके साथ याज्ञवल्क्यकी स्मृति पढ़ी थी (पठितवन्त) । मूर्त्तिसे दर्पण मलिन होता है (सम्मथते) ।

ईकारान्त ।

नदी शब्द (River) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	नदी	नद्यौ	नद्यः
द्वितीया	नदीम्	नद्यौ	नदीः
तृतीया	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः
चतुर्थी	नद्यै	नदीभ्याम्	नदीभ्यः

तर छिय ।

उकारान्त ।

धेनु शब्द (गाय Cow) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धेनुः	धेनू	धेनवः
द्वितीया	धेनुम्	धेनू	धेनू
तृतीया	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभिः
चतुर्थी	धेन्वै, धेनवे	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
पञ्चमी	धेन्वा, धेनो	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
षष्ठी	धेन्वा, धेनो	धेन्वो	धेनूनाम्
सप्तमी	धेन्वाम्, धेनौ	धेन्वो	धेनुषु
सम्प्रोधान	धेनो	धेनू	धेनव

सब उकारान्त खालिङ्ग शब्दके रूप 'धेनु'-शब्दके तुल्य । यथा—

चक्षु (चोँव), रज्जु (रस्मी), तनु (शरीर); रेणु (धूलि);

काकु (विहृतकण्ठवनि) ।

ऊकारान्त ।

वधू शब्द (वह् Bride, wife) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वधू	वध्वौ	वध्वः
द्वितीया	वधूम्	वध्वौ	वधू
तृतीया	वध्वा	वधूभ्याम्	वधूमि
चतुर्थी	वध्वै	वधूभ्याम्	वधूभ्यः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पञ्चमी	वध्वाः	वधूभ्याम्	वधूभ्यः
षष्ठी	वध्वाः	वध्वो	वधूनाम्
सप्तमी	वध्वाम्	वध्वो.	वधूपु
सम्बोधन	वधु	वध्वौ	वध्व.

प्रायः सब ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके रूप 'वधु'-शब्दके तुल्य ।

यथा—

वज्रू (चाँच), वज्रु (सेना), वज्रू (मास), वज्रु (शरीर) ।

❧ हिन्दीमें जहाँ 'मे' चिह्न रहता है, संस्कृतमें वहाँ [अपादाने] पञ्चमी विभक्ति होती है, यथा—(विद्यालयमें छात्र आता है) विद्यालयान् छात्र आगच्छति, (आठमी व्याजसे डरता है) नर व्याजान् विभेति, (लोहेसे बाग उत्पन्न होता है) लोहान् बाग उत्पद्यते ।

अनुवाद करो—मेरुते गृष्टि होंगे है (भवति) । शिक्षकमें विद्या शोषना है (शिक्षने) । असातु धर्मसे नहीं डरता (न विभेति) । विडियाये (विद्वग) चोचमें आहार ग्रहण करती हैं (गृह्णन्ति) । लड़के छूलसे खेळने हैं (क्रीडन्ति) । रूमसे गायको बाँगा है (बध्नाति) । हरि स्त्रीके साथ बात कर रहा है (आलयति) । यतिलोग सर्वदा सब स्त्रियोंका (द्वितीया) माताके समान (मातृवत्) आदर काते हैं (आद्रियन्ते) । पण्डितलोग बुद्धिमें (धी) सब भाग समझने हैं (बुध्यन्ते) । खजुर बहुतको उपदेश देता है (उपदिशति) ।

भू शब्द (पृथिवी ; स्थान Earth ; place) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	भू	भुवौ	भुव
द्वितीया	भुवम्	भुवौ	भुव
तृतीया	भुवा	भूम्याम्	भूमि
चतुर्थी	भुवं, भुवे	भूम्याम्	भूम्य
पञ्चमी	भुवा., भुव	भूम्याम्	भूम्य
षष्ठी	भुवा, भुव	भुवा	भूनाम्, भुवाम्
सप्तमी	भुवाम्, भुवि	भुवो	भूपु
सम्बोधन	भू	भुवौ	भुवः

भू (नेत्रके ऊर्ध्व रोमराजि), भ्रू (सुन्दरभ्रूपुष्प) ;— इनके रूप 'भू' शब्दके तुल्य, केवल 'भ्रू' शब्दके सम्बोधनके एकवचनमे 'भ्रु' होता है । (पाणिनि मने—भ्रू) । "विमानता भ्रु! कुत पितृगृहे ?" कु ५ ४३. ।

ञकारान्त ।

स्वस्व शब्द (भगिनी, बहिन Sister) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	स्वसा	स्वसारौ	स्वसार
द्वितीया	स्वसारम्	स्वसारौ	स्वसू.
तृतीया	स्वसा	स्वसुभ्याम्	स्वसुभि
चतुर्थी	स्वसे	स्वसुभ्याम्	स्वसुभ्य
पञ्चमी	स्वसु	स्वसुभ्याम्	स्वसुभ्य

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पृथी	स्वलुः	स्वलौ	स्वसृणाम्
सप्तमी	स्वसरि	स्वस्रा	स्वसृषु
सम्योधन	स्वस	स्वसारो	स्वसार.

मातृ शब्द (मा Mother) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	माता	मातरौ	मातरः
द्वितीया	मातरम्	मातरौ	मातृ*
तृतीया	मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभि*
चतुर्थी	मात्रे	मातृभ्याम्	मातृभ्य
पञ्चमी	मातु	मातृभ्याम्	मातृभ्य
षष्ठी	मातु*	मात्रो*	मातृणाम्
सप्तमी	मातरि	मात्रो	मातृषु
यथा— म न	मात*	मातरौ	मातरः

द्वि (कन्या), यातृ (पतिकी भ्रातृपत्नी), नन्द् वा ननान्द् (भक्तभगिनी);—इनके रूप 'मातृ' शब्दके तुल्य ।

श्रीकारान्त—गो और घो शब्द पुलिङ्ग 'गो'-शब्दके तुल्य, यथा—
घौ, घावौ, घाव इत्यादि ।

श्रीकारान्त—'गौ' शब्द पुलिङ्ग 'गलौ'-शब्दके तुल्य ।

शुद्ध क्रो-बधु नजान्दना सह कलह करोति । पिता विराय श्रीन् दुहितृन् ददाति । जलेनाह मातृन् तर्पयामि (तर्पण करना हूँ) । विन-जना विधवा म्बला विधति (पोषण करते हैं) । ये भ्राता स्वमन् न

ह्रस्वल्लिङ्ग होता है, यथा—पञ्चात्रम्, द्विरात्रम् ।

(द) सनाहारद्विगुणमासनिष्पन्न पात्रादि शब्द ह्रस्वल्लिङ्ग, यथा—
पञ्चात्रम्, त्रिभुवाम् इत्यादि । पात्रादि-भिन्न—त्रिगेर्का—ह्रस्वल्लिङ्ग ।

(घ) सख्या और अव्यय पूर्वक वृत्त-समासान्त 'पथ'-शब्द
ह्रस्वल्लिङ्ग, यथा—विषयम्, अनुष्पयम् विषयम् इत्यादि ।

(न) 'पुण्य' और 'उदिन' शब्द पूर्वक 'अह' भागान्त शब्द ह्रस्व-
लिङ्ग, यथा—पुण्याहम्, उदिनाहम् ।

(प) क्रियाका विशेषण और अव्यय शब्दका विशेषण ह्रस्वल्लिङ्ग
होता है, यथा—स्तोक पद्यति, शोभन स्व ।

स्वरान्त ह्रस्वल्लिङ्ग शब्दके साधारण सूत्र ।

१७१ । शरारान्त ह्रस्वल्लिङ्ग शब्दके 'ए' और 'अम्' के स्थानमे
'म्' होता है, यथा—फल + ए = फल + म् = फल्म्, फल + अम् =
फल + म् = फल्म् ।

१७२ । ह्रस्वल्लिङ्ग शब्दके 'औ' के स्थानमे 'ई', और 'जम्' तथा
'शम्' के स्थानमे 'नि' होता है, 'नि' और 'आम्' पर पूर्वस्वर दीर्घ होता
है, यथा—फल + औ = फल + ई = फले, वन + जम् = वन + नि = व-
ना + नि = वनानि, वारि + आम् = वारि + नाम् (१६१ सू) =
वारी + नाम् = वारी + ञाम् = वारीणाम् ।

१७३ । मन्नेऽन्ते ह्रस्वल्लिङ्ग शब्दके 'ए' का लोप होता है,
यथा—फल + ए = फल ।

१७४ । इतरान्त और उकारान्त शब्दके 'ए' और 'अम्' का लोप

होता है, और स्वरान्त पर रहनेसे 'न्' होता है, यथा—वारि—ए = वारि; मत् + सु = मत्सु, वारि + औ = वारि + वृ + ई = वारिणी ।

१७० । सम्बोधनके पञ्चमने 'इ' के स्थानसे 'ए', और 'उ' के स्थानसे 'ओ' होता है—दिग्दर्शनसे, यथा—वारि + सु = वार (१३९सु), पञ्चे—वारि, अम्बु + सु = अम्बो, पने—अम्बु ।

स्वरान्त क्लीबलिङ्ग शब्द ।

अकारान्त ।

फल शब्द Fruit) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	फलम्	फले	फलानि
द्वितीया	फलम्	फले	फलानि
सम्बोधन	फल	फले	फलानि

अपक्षिष्ट विभक्तिधेने पुङ्क्ति 'वेन' शब्दके तुल्य ।

प्रायः सब अकारान्त क्लीबलिङ्ग शब्दके रूप 'फल' शब्दके तुल्य ।

यथा—

शास्त्र (ऋषिप्रणीत ग्रन्थ), वन, ज्ञानन, अरण्य (वन), पुत्र्य, कुसुम (फूल), वृष (घास), शष्प (नया घास), सुत्र, ज्ञानन, ज्ञान्य, वदन (सुत्र), नदन, लौचन, नेत्र (आँच), उदक (जल), चित्त (मन) ।

ॐ 'वृथ' और 'प्रिना' शब्दके योगसे द्वितीया, तृतीया और मध्यमा विभक्ति होती है । यथा—(रामसे श्याम पृथक्) रामं

श्याम पृथक्, (मैं तुझमें पृथक् नहीं) नाह त्वया पृथक्, (सुवर्णसे रौप्य पृथक्) सुवर्णान् रौप्य पृथक् । (ज्ञान विना सुख नहीं होता) ज्ञान विना सुख न भवति, (उद्योग विना कार्य सिद्ध नहीं होता) उद्योगेन विना कार्यं न सिध्यति, (अधर्म विना दुःख कहाँ ?) अधर्मान् विना दुःख कुत ? ।

अनुवाद करो—धन विना मान नहीं होता (न भवति) । जल विना पिपासा नहीं जाती (न उपशाम्यति) । गुरुक उपदेन विना शिक्षा नहीं होती । यदुसे मधु पृथक् । पुष्प विना द्वाचर्चना नहीं होती । पिपासातुर जल पीता है (पिबति) । आगसे वन दग्ध होता है (भरति) । प्रातःकाल (प्रातः) मुख धोना चाहिये (प्रक्षालयेत्) । जल्मे तृष्णा दूर होती है (दूरीभवति) । सब शास्त्र पढ़े गये (अर्धात्तानि) । मेरा हृदय अत्यन्त आकुल होता है (आकुलीभवति) । तृष्णमें ममस्त स्थान आच्छादित । वृत्तिकासे भू अद्रित करता है (अद्रुयति) । जो भूमिसे (मत्तमा विभक्ति) विचारण करते हैं (विचरन्ति), उनको 'भूचर' कहते हैं (वदन्ति) । विनोद उसकी भगिनीका (द्वितीया) आदर करता है (आद्रियते) । ममली (मन्थमा) वह अपनी (स्त्रीया) ननदकी (द्वितीया) अवज्ञा करता है (अवज्ञा नाति) । वह उत्तम पात्रके लिये (सम्प्रदाने चतुर्था) दुहितेका (द्वितीया) अर्पण करता है (अर्पयति) ।

* * * *

हृदय शब्द (यज्ञःस्थल , मन Heart, mind) ।

प्यमा—हृष्यम्, हृदये, हृदयानि, द्वितीया—हृदयम्, हृदये, हृदयार्थ

हृन्दि, तृतीया—हृदयेन हृदा, हृदयाभ्याम् हृद्भ्याम्, हृदयै हृद्भि, चतुर्थी—
हृदयाय हृदे, हृदयाभ्याम् हृद्भ्याम्, हृदयेभ्य हृद्भ्य, पञ्चमी—हृदयात्
हृद, हृदयाभ्याम् हृद्भ्याम्, हृदयेभ्य हृद्भ्य, षष्ठी—हृदयस्य हृद, हृदययो
हृदो, हृदयानाम् हृदान्, सप्तमी—हृदय हृदि, हृदययो हृदो, हृदयेषु
हृदसु, सम्बोधन—हृदय ।

✓ अजर शब्द ।

प्रथमा—अजरम्, अजरे अजरस्यो, अजराणि अजरानि, द्वितीया
विभक्तिमे प्रथमाके तुल्य, अन्यान्य विभक्तियोंमे पुलिङ्ग 'निर्जर'-शब्दके
तुल्य; सम्बोधन—अजर ।

सर्वनाम क्लीबलिङ्ग ।

सर्व शब्द ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
द्वितीया	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
सम्बोधन	सर्व	सर्वे	सर्वाणि

अन्यान्य विभक्तियोंमे पुलिङ्ग 'सर्व'-शब्दके तुल्य ।

सर्वादि, भूवादि और अन्यादि समस्त सर्वनाम शब्दके रूप 'सर्व'-
शब्दके तुल्य; केवल प्रथमा, द्वितीया और सम्बोधनके एकवचनमे
अन्यादि शब्दके अन्तमे 'स' होता है, यथा—भन्यत्, अन्यतरत् इत्यादि ।

यद् शब्द ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	यत्	ये	यानि
द्वितीया	यत्	ये	यानि

तद् शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
१ मा	तत्	ते	तानि
२ या	तत्	ते	तानि

एतद् शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	एतत्	एते	एतानि
द्वितीया	एतत्	एते	एतानि

किम् शब्द ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	किम्	के	कानि
द्वितीया	किम्	के	कानि

इदम् शब्द ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	इदम्	इमे	इमानि
द्वितीया	इदम्	इमे	इमानि

प्रदम् शब्द ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	प्रद	प्रद	प्रदानि
द्वितीया	प्रद	प्रद	प्रदानि

सन्धान्य विभक्तियोंके प्रतिष्ठे ताव ।

३१) निम्ने हीना या अधिप निर्वाहिन ता

३१)

३२) प्रथान

जिसमें दूसरेका अपकर्ष अथवा उत्कर्ष अवधारित होता है, उसके उत्तर पञ्चमी विभक्ति होती है, यथा—(रामसे श्याम कुत्सित) रामान् श्याम कुत्सित , (तुम्हसे मैं बड़ा हू) त्वन् अइ व्यायान् ।

अनुवाद करो—उस फलमें यह फल प्रयोजनीय । ग्रामसे नगर बड़ा (महत्) । जननसे गुरु नहीं (नास्ति) । माईसे बन्धु नहीं । हाथसे पाँव बड़ा (दीर्घतर) । नदीसे जल आता है (आयाति) । छत्र-द्वारा आतप निवारण करता है (निवारयति) । उस वनसे व्याघ्र स्थानान्तर-को (स्थानान्तरम्) गया (अगच्छत्) । इस वृक्षसे मीठा फल गिरता है (पतति) । जो होनेका (भाव्यम्), सो होगा (भविष्यति) ।

इकारान्त ।

वारि शब्द (जल Water) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वारि	वारिणी	वारीणि
द्वितीया	वारि	वारिणी	वारीणि
तृतीया	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभि
चतुर्थी	वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
पञ्चमी	वारिणः	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
षष्ठी	वारिणः	वारिणोः	वारीणाम्
सप्तमी	वारिणि	वारिणो	वारिणु
सम्बोधन	वारे, वारि	वारिणी	वारीणि

प्रायः सब इकारान्त क्लीबलिङ्ग शब्दके रूप 'वारि'-शब्दके तुल्य ।

दधि शब्द (दही Curd) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	दधि	दधिनी	दधीनि
द्वितीया	दधि	दधिनी	दधीनि
तृतीया	दध्ना	दधिभ्याम्	दधिभिः
चतुर्थी	दध्ने	दधिभ्याम्	दधिभ्यः
पञ्चमी	दध्न	दधिभ्याम्	दधिभ्यः
षष्ठी	दध्न	दध्नो	दध्नाम्
सप्तमी	दध्नि, दधनि	दध्नो	दधिषु
सम्बोधन	दधे, दधि	दधिनी	दधीनि

अन्धि (हड्डी), अक्षि (चक्षु), सन्धि (ऊर) ;—इनके रूप 'दधि' शब्दके तुल्य ।

४ शुद्ध करो—पिशाच चारिं पिरति । दधिना जज्ञान् खादति । मम अक्षि पश्यसि ? एकेन अक्षिणा हान । के पत्रा ? असौ वनम् । इमानि वृक्षा । एव काननम् । तानि पुष्पे । इदं माया । सर्वान् तृणान् । अन्यं मुलम् । इमे मुखानि । यानि दुग्म् । इमानि पुस्तका । एष शय्या । असौ फलम् । अयं वन ।

द्वि शब्द ।

१मा	२या	३या	४थी	५मी	६ष्टी	७मी
द्वे	द्वे	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वाभ्याम्	द्वयोः	द्वयोः

त्रि शब्द ।

१म	२या	३या	४थी	५मी	६ष्टी	७मी
त्रीणि	त्रीणि	त्रिभिः	त्रिभ्यः	त्रिभ्यः	त्रयाणाम्	त्रिषु

अनुवाद करो—दो मुख । तीन नेत्र । एक नक्षत्र । दो तारायें । तीन ब्राह्मण । तीन नदियां यहां (अत्र) मिली हैं (मिलितवत्य) । यह वानर किस वनसे आया है (आगच्छत्) ? किम पुष्करिणासे इन पत्रोको लाया (आनीतवान्) ? माता कोन द्रव्य देती है (ददानि) ? मैं तान दुहिताभोका (द्वितीया) पालन करता हूँ (पालयामि) । दुष्ट बालकके साथ मत खेल (मा क्रीड) । शिक्षक बालकोका दशता । जो हित शासन करता है (शास्ति), वही शास्त्र ।

* * * *

टा, डे, डसि, डस्, ओम्, डि और ओम् विभक्तिमे उक्तपुष्क* अर्थात् विशेषण इकारान्त, उकारान्त और ऋकारान्त क्लीबलिङ्ग शब्दके रूप विकल्पसे पुलिङ्गके तुल्य होते हैं, यथा—शुचिने शुचये, स्वादुने स्वादुने, पातृणा पात्रा इत्यादि ।

✕ हेतु अर्थमे तृतीया और पञ्चमी विभक्ति होती है, यथा—(दुःखहेतु—दुःखमे—रोता है) दुःखेन रोदिति, (हर्षहेतु—हर्षसे—नाचता है) हर्षात् नृत्यति ।

अनुवाद करो—गवंके कारण किसीते (केनचित्) बोलता नहीं (न भाषते) । उसलिये सब व्यवहार अविद्यामूलक । जिसलिये वह पाठ सुना न सका (श्रावयितु न अपारयत्), तिसलिये म उसे दण्ड

* जो शब्द पुलिङ्ग और क्लीबलिङ्गमे एकही आकारमे एवही अर्थ प्रकाश करता है, उसको 'उक्तपुष्क (भाषितपुष्क) क्लीबलिङ्ग शब्द' कहते हैं, यथा—शुचि (पवित्र) ब्राह्मण, शुचि (पवित्र) जल ।

हूँमा (दृग्द्विप्प्यामि) ।

उकारान्त ।

मधु शब्द (Honey) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मधु	मधुनी	मधूनि
द्वितीया	मधु	मधुनी	मधूनिः
तृतीया	मधुना	मधुभ्याम्	मधुभिः
चतुर्थी	मधुने	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
पञ्चमी	मधुनः	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
षष्ठी	मधुनः	मधुनोः	मधूनाम्
सप्तमी	मधुनि	मधुनो	मधुषु
सम्बोधन	मधो, मधु	मधुनी	मधूनि

• मत्र उकारान्त कृत्वलिङ्ग शब्दके रूप 'मधु'-शब्दके तुल्य ।

ऋकारान्त—पाठ् शब्द—(१मा, २पा) पाठ्, पाठ्गो,
पाठ्णि, (सम्बोधन) पाठ् पाठ, पाठ्गो, पाठ्णि । *अवशिष्ट 'डाठ्'-
शब्दके तुल्य ।

✍ हिन्दीमें जहाँ 'का, के, की' अथवा स्थलविशेषमें 'रा, रे, री' रहता है, वहाँ मरुतमें [सम्बन्धे] षष्ठी-विभक्तिका प्रयोग करना चाहिये, यथा—(उमका वस्त्र) तस्य वस्त्रम्, (मेरा घर)

* -याम्, भिस्, भ्यस् और भुप्-भिन्न विभक्तियोंमें 'न्' होता है ;
यथा—(टा) पाठ्गो, (ठे) पाठ्णे ; (छसि) पाठ्ण ; (हस्)
पाठ्ण, (ओम्) पाठ्गो, (ठि) पाठ्णि ।

मम गृहम् ।

अनुवाद करो—हमारा गुरु । तेरी पुस्तक । शङ्करकी छतरी (छत्र) । जिसको (पत्नी) विद्या है (वर्त्तते), वह सर्वत्र सम्मान पाता है (लभते) । परशुरामने पिताकी आज्ञासे माताका शिरच्छेदन किया था (चकार) । उसका पुत्र मेरा दामाद । साधुशब्दोंके परिज्ञानके लिये व्याकरणशास्त्र ढरयुक्त है (उपयुज्यते) । वेगवती नदीके जलसे स्वास्थ्य बढ़ता है (वर्द्धते) । साय्य (Sir) । चन्द्रकुमार मेरे हाथसे पुस्तक छीन लेता है (साच्छिनति) ।

व्यञ्जनान्त पुलिङ्ग शब्दके साधारण सूत्र ।

१७६ । व्यञ्जनान्त शब्दके 'ष्ठ' का लोप होता है, यथा-विश्व-जित् + ष = विश्वजित् ।

१७७ । 'ष्ठ' और और 'ष्ठप्' परे रहनेसे स्कारान्त और जकारान्त शब्दके 'च्' तथा 'ज्' के स्थानमे 'क्', और 'भ' परे रहनेसे 'ग्' होता है; यथा-जलमुच् + ष = जलमुक्, जलमुच् + भ्याम् = जलमुग् + भ्याम् = जलमुग्भ्याम्; जलमुच् + षप् = जलमुक् + ष = जलमुक् + पु (१०८ सू) = जलमुजु ।

१७८ । 'ष्ठ' और 'ष्ठप्' परे रहनेसे 'राज्' और 'सृज्'-भागान्त शब्दके 'ज्' के स्थानमे 'ट्', और 'भ' परे रहनेसे 'ड्' होता है, यथा—देवराज् + ष = देवराट्; विश्वसृज् + भ्याम् = विश्वसृड्भ्याम्, विश्वसृज् + षप् = विश्वसृट् + ष = विश्वसृष्ठ ।

१७९ । 'ष्ठ', 'औ', 'जस्' और 'भम्' परे रहनेसे, ऋकार-इत्

(शतृ और स्यतृ) प्रत्ययान्त शब्दके, और उकार-इत् (ऋत्, ईषत् और मनुप्)-प्रत्ययान्त शब्दके अन्त्यस्वरके पश्चात् 'श्' होता है ; किन्तु अन्यस्त शब्दके* नहीं होता ।

१८० । 'श्' परे रहनेसे, 'न्त्' और 'न्स्'-भागके अन्त्यवर्गका लोप होता है ; यथा—पा (धातु) + शतृ (प्रत्यय) = पिबत् (शब्द) + ष = पिबन्त् + ष = पिबन्, या (धातु) + स्यतृ (प्रत्यय) = पास्यत् (शब्द) + ष = पास्यन्त् + ष = पास्यन्, विद् (धातु) + ऋत् (प्रत्यय) = विद्वन् (शब्द) + ष = विद्वन्स् + ष = विद्वान् (१८२ सू) ।

१८१ । 'श्' परे,—'मत्', 'वत्', 'अत्', 'इत्' और 'विन्'-प्रत्ययान्त शब्दतया 'हन्' भागान्त शब्दका अन्त्यस्वर शेष होता है, किन्तु सम्बोधनके एकवचनमें नहीं होता, यथा—धीमत् + ष = धीमन्त् + ष (१७९ सू) = धीमन् + ष (१८० सू) = धीमान्, विद्यावत् + ष = विद्यावन्त् + ष = विद्यावन् + ष = विद्यावान्; वेधम् + ष = वेध + ष = वेधा; घनिन् + ष = घनी (१८३ सू); मेधाविन् + ष = मेधावी (१८३ सू); वृषहन् + ष = वृषहा (१८३ सू) । (सम्बोधनके एकवचनमें) धीमत् + ष = धीमन्त् + ष = धीमन् ।

१८२ । 'श्', 'औ', 'जम्' और 'अम्' परे रहनेसे, 'अन्' और 'वस्'-भागान्त शब्दके अकारके स्थानमें आकार होता है ; यथा—राजन् + ष = राजा (१८३ सू), राजन् + औ = राजाऔ, राजन् + जम् = राजान् + ष = राजान, राजन् + अम् = राजानम्, विद्वम् + ष = विद्वन्प् +

* अमत्, शासत्, चकासत् प्रभृति शब्द, यद्गुगन्त और द्वाद्गुगन्त-प्रभृतिशब्द 'अत्' भागान्त शब्द 'अभ्यस्त' ।

स=विद्वान्; विद्वन्+औ=विद्वन्म्+औ=विद्वामौ (६३ सू);
 विद्वन्+जन्=विद्वन्म्+जम्=विद्वान्म्+ज = विद्वाम् . विद्वन्म्+
 जन्=विद्वन्म्+जम्=विद्वामम् ।

१८३ । 'स', 'भ' ओर 'सुप्' परे रहनेसे, नकारान्त शब्दके नकार-
 का लोप होता है, किन्तु मन्त्रोपसर्गके एकारधनसे नहीं होता, यथा—प्र-
 निन्+स=प्रनी (१८१ सू), मेधाविन्+स=मेधावी (१८१ सू);
 वृत्रहन्+स=वृत्रहा (१८१ सू), राजन्+स=राजा (१८२ सू);
 राजन्+मि =राजमि ; राजन्+सुप्=राजस, राजन्+स (सन्वो-
 धने)=राजन् ।

१८४ । 'सुप्' परे, 'दृ' के स्थानसे 'दृ' होता है, यथा—सहृद्+
 सुप्=सहृत्सु ।

१८५ । 'शम्'-प्रभृति स्वरवर्ग परे रहनेसे, 'हन्' के स्थानसे 'म्' होता है; किन्तु 'डि' परे विकल्पसे होता है; उस 'म्' का 'न' मूर्द्धन्य नहीं होता, यथा—वृत्रहन्+शम्=वृत्रहन्+अ =वृत्रन्+अ =वृत्र-
 ष्म ; वृत्रहन्+डि=वृत्रन्+इ=वृत्रमि, (पथे) वृत्रहन्+डि=
 वृत्रहन्+इ=वृत्रहमि (१०० (क) सू) ।

१८६ । 'शम्' प्रभृति स्वरवर्ग परे रहनेसे, 'म' और 'व'-सयुक्त-
 भिन्न 'अन्'-भागान्त शब्दके अकारका लोप होता है, किन्तु 'डि'
 परे विकल्पसे होता है; यथा—राजन्+शम्=राजन्+अ =राज
 (५१ सू); राजन्+डि=राजन्+इ=राजि, (पथे) राजन्+
 डि=राजन्+इ=राजमि । ('म', 'व' सयुक्त) ब्रह्मन्+शस्=
 ब्रह्मन्+अ =ब्रह्मन् ; यज्वन्+शम्=यज्वन्+अ =यज्वन् ।

व्यञ्जनान्त पुलिङ्ग शब्द ।

चकारान्त ।

जलमुच् शब्द (मेघ Cloud) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	जलमुक्	जलमुचौ	जलमुचः
द्वितीया	जलमुचम्	जलमुचौ	जलमुचः
तृतीया	जलमुचा	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भिः
चतुर्थी	जलमुचे	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भ्यः
पञ्चमी	जलमुचः	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भ्यः
षष्ठी	जलमुच	जलमुचो	जलमुचाम्
सप्तमी	जलमुचि	जलमुचो	जलमुक्षु
सम्बोधन	जलमुक्	जलमुचौ	जलमुचः

प्रायः सब चकारान्त शब्दके रूप जलमुच् शब्दके तुल्य । यथा—
वारिसुच्, पयोमुच् (मेघ) इत्यादि ।

* * * *

प्राच् शब्द (पूर्वकाल ; पूर्वदेश Prior, eastern) ।

प्रथमा—प्राच्, प्राच्चौ, प्राच्च, द्वितीया—प्राच्चम्, प्राच्चौ, प्राच ;
सम्बोधनमे—प्रथमाके तुल्य, अन्यान्य विभक्तियोंमे 'जलमुच्' शब्दके
तुल्य ।

पराच् (पराट्मुख) और भवाच् (भयोमुख) शब्दोंमे 'प्राच्'-
शब्दके तुल्य ।

जकारान्त ।

वणिज् शब्द (व्यवसायी, यनिया Merchant) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वणिक्	वणिजौ	वणिज
द्वितीया	वणिजम्	वणिजौ	वणिज
तृतीया	वणिजा	वणिग्भ्याम्	वणिग्भि
चतुर्थी	वणिजे	वणिग्भ्याम्	वणिग्भ्यः
पञ्चमी	वणिज्	वणिग्भ्याम्	वणिग्भ्यः
षष्ठी	वणिजः	वणिजोः	वणिजाम्
सप्तमी	वणिजि	वणिजो	वणिज्भु
सम्बोधन	वणिक्	वणिजौ	वणिज

प्रायः सर्व जकारान्त शब्दके रूप 'वणिज्' शब्दके तुल्य । यथा—
 भिषज् (वैद्य), बलिभुज् (काक), हुतभुज् (क्षत्रि), ऋत्विज्
 (पुरोहित), ऋतिभुज् (ऋत्य), भूभुज् (राजा) ।

परिव्राज् शब्द (भिक्षु Ascetic, religious mendicant) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	परिव्राट्	परिव्राजौ	परिव्राज
द्वितीया	परिव्राजम्	परिव्राजौ	परिव्राज
तृतीया	परिव्राजा	परिव्राड्भ्याम्	परिव्राड्भि
चतुर्थी	परिव्राजे	परिव्राड्भ्याम्	परिव्राड्भ्यः
पञ्चमी	परिव्राज	परिव्राड्भ्याम्	परिव्राड्भ्यः
षष्ठी	परिव्राज	परिव्राजोः	परिव्राजाम्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
सप्तमी	परिवाजि	परिवाजो.	परिवाद्सु
सम्बोधन	परिवाद्	परिवाजौ	परिवाज.

माञ्, राज्, भ्राज्, इज्, मृज्, और सृज्-भागान्त शब्दके रूप 'परिवाज्' शब्दके तुल्य *। यथा—

सम्राज् (राजाधिराज), देवराज् (इन्द्र), विराज् (क्षत्रिय ; सर्वव्यापी पुरुष—परमेश्वर) ; विभ्राज्, परिमृज् इत्यादि ।

तकारान्त ।

भूभृत् शब्द (राजा, पर्वत King, mountain) :

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	भूभृत्	भूभृतौ	भूभृत.

* 'विश्वसृज्'-शब्द विकल्पसे 'वणिज्'-शब्दके तुल्य, यथा—विश्वसृज् क् विश्वसृद् इत्यादि । 'विश्वराज्'-शब्दके 'ज्' के स्थानमे 'द्' होनेसे अकारके स्थानमे आकार होता है, यथा—विश्वाराद्, विश्वराजौ, विश्वराज इत्यादि ।

प्रश्न । निम्नलिखित पदोंसे एक एक वाक्य रचना करो—

तिष्यश्च —तिष्ठन्ति । मनोयोगेन—पठन्ति ।—आकाश—पश्यन्ति ।

प्रतीचि—विद्यते । वृक्षात्—पतति ।—गुरो —पालयति ।—शिष्याय—ददाति ।

उत्तर । तिष्यश्च कुलभे निष्ठन्ति । मनोयोगेन बालका पुस्तक पठन्ति । सर्वे आकाशं मेघान्छन पश्यन्ति । प्रतीचि देवे चन्द्रशेखरो विद्यते । वृक्षात् पत्र पतति । शिष्य गुरो वाक्य पालयति । गुरु शिष्याय विद्या ददाति ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वितीया	भूभृतम्	भूभृतौ	भूभृतः
तृतीया	भूभृता	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भिः
चतुर्थी	भूभृते	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भ्य
पञ्चमी	भूभृतः	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भ्य
षष्ठी	भूभृतः	भूभृतो	भूभृताम्
सप्तमी	भूभृति	भूभृतो	भूभृत्सु
सम्बोधन	भूभृत्	भूभृतौ	भूभृतः

प्रायः सब तकारान्त शब्दके रूप 'भूभृतः' शब्दके तुल्य । यथा—

नदीभृत् (पर्वत), शतभृत् (चन्द्र), परभृत् (राज), महो-
त्रिभृत् (राजा), दिनभृत् (सूर्य), विरभृत् (पण्डित) ।

✓ वाचत् शब्द (दौडता हुआ Running) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धावन्	धावन्तौ	धावन्त
द्वितीया	धावन्तम्	धावन्तौ	धावन्त
सम्बोधन	धावन्	धावन्तौ	धावन्त

सत्रशिष्ट विभक्तियोंमें 'भूभृतः' शब्दके तुल्य ।

मयत्, कुर्वत्, हृवत्, जानत्, करिष्यत्, गन्तिष्यत् प्रभृति मय
'धाव्' (भव्) और 'स्पृह्' (स्पृह्)-प्रत्ययान्त तकारान्त गन्त, और
भ्रत् तथा 'वृहत्' शब्दके रूप 'धावत्'-शब्दके तुल्य, भिन्नु जान्, जायत्,
चक्रासत्, शासत्, ददित्, ददत्, दधत्, विवत्, विन्धत्,

जहन्, लेलिहत् प्रभृति शब्दके रूप 'भृमृत्' शब्दक तुल्य ।*

✽ समुदायसे एकदेशके पृथक् करनेको 'निर्द्धारण' कहते हैं । 'निर्द्धारण'-अर्थमें समुदायवाचक शब्दके उत्तर पद्यी और मत्तमी विभक्ति होती है, यथा—(कवियोंके बीचमें कालिदास श्रेष्ठ) कविषु कालिदास. श्रेष्ठ, (वर्णोंमें ब्राह्मण गुरु) वर्णाना ब्राह्मणो गुरु ।

अनुवाद करो—देवताओंके बीचमें इन्द्र श्रेष्ठ । पक्षियोंमें (खग) काक धूर्त । सबके बीचमें इन्द्रिय बलवान् । हमलोगोंमें रमेश पण्डित । उमेश और छोरेशके बीचमें उमेश बुद्धिमान् । परंतोमें हिमालय श्रेष्ठ ।

धीमत् शब्द (बुद्धिमान् Wise, intelligent) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धीमान्	धीमन्तौ	धीमन्तः
द्वितीया	धीमन्तम्	धीमन्तौ	धीमन्त
सम्योधन	धीमन्	धीमन्तौ	धीमन्त

अवशिष्ट विभक्तियोंमें 'भृमृत्'-शब्दक तुल्य ।

* 'ददत्'-प्रभृति शब्द ह्रादिगणोप धातुके उत्तर 'शतृ'-प्रत्ययान्त, और 'लेलिहत्' प्रभृति शब्द यद्गुणान्त धातुके उत्तर 'शतृ'-प्रत्ययान्त ।

प्रश्न । निम्नलिखित शून्यस्थानसमूह पूर्ण करो—

रुभ्राट्—पालयति (पालन करता है) ।—विक्रीणीते (बेचना है) । भिषक्—चिकित्सति (चिकित्सा करता है) ।—ऋ-विजं—मन्तोपयति (सन्तुष्ट करता है) । भृतिमुक्—शुश्रूषते (सेवा करना है) । भृमुक्—गृह्णाति (लेना है) । वीमान्—उभयते (समझता है) ।

नदन्, वतुर् और क्वदन् (तवत्)-शब्दान्तमव शब्दोंके रूप
‘धीनत्’-शब्दके तुल्य । यथा—

(नदन्)—धीनत् (शोभामन्त्र) • सातुनत् (परंत)
अंशुनत् (सूर्य) ; वनम्बत् (वायु) ; ज्ञान्बत् (ज्ञानी) । (वतुर्)—
दावत् (दितना) ; तावत् (तितना) ; एतावत् (इतना) ; क्विपत्
(क्वितना) ; इपत् (इतना) । (क्वदन्)—गतदत् (गदा
या) ।

दुष्पदर्थं ‘भवत्’ (ना + ह्यत्—सर्वनाम) शब्दभी ‘धीनत्’-
शब्दके तुल्य ।*

शुद्ध कर्तो—वातकं नदन्तु न रिदति । तस्य सृष्टिनि स्वताः । विषाहं
प्रथम । आकाशे पयोनुवान् पश्य । प्राञ्चि काले उदङ् देशात् बहुवि
तिरस्य आगताः । रुर्बदा सम्राजस्य आशिनत्पन् अस्ति । नृनृताणां बह
मैन्दन् । अंनानस्य भोजनकालं आयात ।

महत् शब्द (बड़ा ; प्रबल Great ; strong ; intense) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	महान्	महान्तौ	महान्तः
द्वितीया	महान्तम्	महान्तौ	महतः
सन्बोधन	महन्	महान्तौ	महान्तः

अनतिष्ठ विमर्शिनो ‘नृनृत्’-शब्दके तुल्य ।

* भवत्, भावत् और अपवत् शब्दके संबोधनके सूत्रवचनमे
यदाक्रम भो, भगे और अपो होते हैं—विद्वत्सि ।

दकारान्त ।

सुहृद् शब्द (वन्धु Friend) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुहृत्*	सुहृदौ	सुहृद
द्वितीया	सुहृदम्	सुहृदौ	सुहृदः
तृतीया	सुहृदा	सुहृद्भ्याम्	सुहृद्भिः
चतुर्थी	सुहृदे	सुहृद्भ्याम्	सुहृद्भ्यः
पञ्चमी	सुहृदः	सुहृद्भ्याम्	सुहृद्भ्यः
षष्ठी	सुहृदः	सुहृदौ	सुहृदाम्
सप्तमी	सुहृदि	सुहृदा	सुहृसु
सम्बोधन	सुहृत्	सुहृदौ	सुहृदः

प्रायः सर्व दकारान्त शब्दके रूप 'सुहृद्'-शब्दके तुल्य † । यथा—
समासद् (सम्य), दिविपद् (देवता), उन्निद् (तरु लता-
प्रभृति), निरापद् (आपद् शून्य) ।

अनुवाद करो—माई, सूर्यको प्रणाम करो (प्रणम) । ज्ञानवान्
पुरुष कौशलसे सब कार्यं सम्पन्न करता है (सम्पादयति) । जितने
आदमी, उतनी पत्तन करो (रक्षय) । इतना अत्याचार कौन सह सकता

*'सु' और 'सुप्' परे, दकारान्त शब्दके 'द' के स्थानमे 'त्' होता है ।

† द्विपाद्, त्रिपाद्, चतुष्पाद् प्रभृति 'पाद्'-भागान्त शब्दके 'पाद्'-के
स्थानमे टा, ठे, लक्षि, लस्, ओस्, आम्, ङि और ओस् विभक्तिमे 'पद्'
होता है ; यथा—द्विपादा, द्विपाद्भ्याम्, द्विपाद्भिः ; द्विपदे इत्यादि ।

मनुर्, वसुर् और चवतु (तवत्)-प्रत्ययान्त सब शब्दोंके रूप 'धीमत्'-शब्दके तुल्य । यथा—

(मनुर्)—धीमत् (शोनासम्बन्ध), सानुमत् (पर्वत)
अंशुमत् (सूर्य) ; नमम्बवत् (वायु), ज्ञानवत् (ज्ञानी) । (वसुर्)—
दावत् (द्वितना), तावत् (त्रितना), एतावत् (इतना) ; द्विपत्
(क्वितना) ; इपत् (इतना) । (चवतु)—गठवत् (गथा
या) ।

सुप्प्रर्थ 'भवत्' (भा + चवतु—मर्वेनाम) शब्दभी 'धीमत्'-
शब्दके तुल्य ।*

शुद्ध करो—चातकं नष्टम् न विदति । तस्य मृदूनि स्वताः । विघातं
प्रगम । आहारो यथोमुचान् पश्य । प्राञ्चि काले उदञ्च देसात् बहुनि
विराज आगता । सर्वदा सप्राजस्य आधिरस्यम् अस्ति । मृदूतानां बह
सैन्धम् । धीमानस्य भोजनकारं ज्ञापात ।

महत् शब्द (यडा , प्रबल Great , strong ; intense) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	महान्	महान्ती	महान्तः
द्वितीया	महान्तम्	महान्तौ	महतः
तन्त्रोधन	महन्	महान्तौ	महान्तः

सन्निष्ट विभक्तिभेदे 'मृदूत्' शब्दके तुल्य ।

* भवत्, भगवत् और अपवत् शब्दके सम्बोधनके एहवचनमे
एवञ्चन मे , भवे और अपे होते हैं—विद्वन्मे ।

दकारान्त ।

सुहृद् शब्द (वन्धु Friend) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	सुहृत्*	सुहृदौ	सुहृदः
द्वितीया	सुहृदम्	सुहृदो	सुहृदः
तृतीया	सुहृदा	सुहृदयाम्	सुहृद्भिः
चतुर्थी	सुहृदे	सुहृदयाम्	सुहृद्भ्यः
पञ्चमी	सुहृदः	सुहृदयाम्	सुहृद्भ्यः
षष्ठी	सुहृदः	सुहृदो	सुहृदाम्
सप्तमी	सुहृदि	सुहृदो	सुहृदसु
सम्योधन	सुहृत्	सुहृदौ	सुहृदः

प्रायः सब दकारान्त शब्दके रूप 'सुहृद्'-शब्दके तुल्य † । यथा—
सन्नामद् (सन्त्य) ; दिविषद् (देवता) ; उद्भिद् (तह-लता-
प्रभृति) ; निरावद् (आपद् शून्य) ।

अनुवाद करो—माई, सूर्यको प्रणाम करो (प्रणम) । ज्ञानवान्
पुरुष कौशलसे सब कार्य सम्पन्न करता है (सम्पादयति) । जितने
आदमी, उतनी पत्तन करो (रचय) । इतना अत्याचार कौन सह सकता

* 'सु' और 'सुर्' परे, दकारान्त शब्दके 'द्' के स्थानमें 'त्' होता है ।

† द्विषद्, त्रिषद्, चतुष्पाद् प्रभृति 'पाद्'-भागान्त शब्दके 'पाद्'-के
स्थानमें टा, के, णि, ल्, ओस्, आम्, ङि और ओस् विभक्तिमें 'पद्'
होता है ; यथा—द्विषदा, द्विषद्भ्याम्, द्विषद्भिः ; द्विषदे इत्यादि ।

है (सोऽहं शक्नोति) ? इतने दिवस गये (गत), तोमी (तथाऽपि) वह नहीं आया (आयात) । राम पिताके वाक्यसे वनमे (द्वितीया) गया था । यह पुस्तक श्रीमान् योगेन्द्रनाथको दो (द्वेहि) । आपके आल्पमे (द्वितीया) जाऊँगा (वास्यामि) ।

नकारान्त ।

‘अन्’-भागान्त—महिमन् शब्द (माहात्म्य Greatness) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	महिमा	महिमानौ	महिमान्
द्वितीया	महिमानम्	महिमानौ	महिम्नः
तृतीया	महिम्ना	महिमभ्याम्	महिमभिः
चतुर्थी	महिम्ने	महिमभ्याम्	महिमभ्यः
पञ्चमी	महिम्नः	महिमभ्याम्	महिमभ्यः
षष्ठी	महिम्ना	महिम्नो	महिम्नाम्
सप्तमी	महिम्नि	महिम्नो	महिमसु
सम्बोधन	महिमन्	महिमानौ	महिमान

प्रायः सब ‘अन्’-भागान्त शब्दके रूप ‘महिमन्’-शब्दके तुल्य । यथा—

एषिमन् (एषुता) ; गरिमन् (गुस्ता) , द्रुमिन् (द्रुता) ;

श्रुमिन् (श्रुता) ; प्रेमन् (स्नेह, प्रणय) ; मूर्दन् (मस्तक) ।

राजन् शब्द (नृपति King) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	राजा	राजानौ	राजान्
द्वितीया	राजानम्	राजानौ	राज

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
तृतीया	राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः
चतुर्थी	राज्ञे	राजभ्याम्	राजभ्यः
पञ्चमी	राज्ञः	राजभ्याम्	राजभ्यः
षष्ठी	राज्ञः	राज्ञो	राज्ञाम्
सप्तमी	राज्ञि, राजनि	राज्ञो	राजसु
सम्बोधन	राजन्	राजानौ	राजानः

शून्यस्थान पूर्ण करो ।—तिष्ठति । राजनि—नास्ति । सहदृ —
शृणोति (सनता है) ।—ददाति ।—राज —तिष्ठति ।

✓ वृत्रहन् शब्द (इन्द्र) ।

(१मा) वृत्रहा, वृत्रहणौ, वृत्रहण , (२या) वृत्रहणम्,
वृत्रहणौ, वृत्रज्ज् ; (३या) वृत्रज्जा, वृत्रहभ्याम्, वृत्रहभि ,
(४थी) वृत्रज्जे, वृत्रहभ्याम्, वृत्रहभ्य , (५मी) वृत्रज्जन,
वृत्रहभ्याम्, वृत्रहभ्य , (६ष्ठी) वृत्रज्जन, वृत्रज्ज्जो, वृत्रज्ज्जाम् ;
(७मी) वृत्रज्ज्जि वृत्रहणि, वृत्रज्ज्जो, वृत्रहज्ज्ज , (सम्बो) वृत्रहन् ।

सब 'हन्'-भागान्त शब्दके रूप 'वृत्रहन्' शब्दके तुल्य ।

✓ अर्घ्यमन् शब्द (सूर्य Sun) ।

प्रथमा और द्वितीयाके एकवचन और द्विवचनमे इसके रूप 'वृत्रहन्'-
शब्दके तुल्य ; और और विभक्तियोमे 'महिमन्'-शब्दके सदृश ।
यथा—अर्घ्यमा, अर्घ्यमणौ, अर्घ्यमग ; अर्घ्यमणम्, अर्घ्यमणौ,
अर्घ्यमग इत्यादि ।

पृथक् शब्द (नृप्यं) ।

इसके रूप 'अर्थान्'-शब्दके तुल्य, देवदत्त नतनीके पृथक्प्रयोगके 'पृथि, पृथि, पृथि-ये तान रूप होते हैं। यथा—पृथा, पृथनी, पृथनः ; पृथान्, पृथनी, पृथन्. इत्यादि ।

आत्मन् शब्द (स्वयम्, अपना, मन जीवः परमात्मा

One'self, mind, individual and supreme soul ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	आत्मा	आत्मानौ	आत्मानः
द्वितीया	आत्मानम्	आत्मानौ	आत्मनः
तृतीया	आत्मना	आत्मन्याम्	आत्मि-
चतुर्थी	आत्मने	आत्मन्याम्	आत्मन्यः
पञ्चमी	आत्मन	आत्मन्याम्	आत्मन्य-
षष्ठी	आत्मनः	आत्मनो.	आत्मनान्
सप्तमी	आत्मनि	आत्मनो	आत्मनु
सन्दोषन	आत्मन्	आत्मानौ	आत्मानः

द्वि 'अन्'-भागान् सन्धौका अकार 'न'-भक्त वा 'व'-संयुक्त
 वन्नि मिलित रहता है, उनके रूप प्रायः 'आत्मन्' शब्दके तुल्य । यथा—

अत्मन् (प्रवृत्त) ; पत्न्यन् (क्षयगोत्र) ; मन्त्रन् (विपत्त) ;
 द्विजन्त्रन् (शासन) ; पत्यन् (पागदन्ध) ।

श्वन् शब्द (कुत्ता Dog) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	श्वः	श्वानौ	श्वानः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वितीया	श्वानम्	श्वानौ	शुन
तृतीया	शुना	श्वभ्याम्	श्वभि
चतुर्थी	शुने	श्वभ्याम्	श्वभ्यः
पञ्चमी	शुन	श्वभ्याम्	श्वभ्य
षष्ठी	शुन	शुनो	शुनाम्
सप्तमी	शुनि	शुनो	श्वसु
सम्योधन	श्वन्	श्वानौ	श्वानः

युवन् शब्द (तरुण Young) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	युवा	युवानौ	युवान्
द्वितीया	युवानम्	युवानौ	यून
तृतीया	यूना	युवभ्याम्	युवभि
चतुर्थी	यूने	युवभ्याम्	युवभ्य
पञ्चमी	यूनः	युवभ्याम्	युवभ्य
षष्ठी	यून	यूनो	यूनाम्
सप्तमी	यूनि	यूनो	युवसु
सम्योधन	युवन्	युवानौ	युवान्

अनुवाद करो—तेरे मस्तकर केश नहीं । उसका विधाम अति दृढ़ समझता हूँ (मन्ये) । धर्मशील राजालोग प्राणरासे प्रजाओंकी (द्वितीया) रक्षा करते हैं (रक्षन्ति) । वह भगवान्के प्रेमसे आकुल । वह अपने (आत्मन्) गुणकी गरिमासे पृथ्वीपर पाँव नहीं

रखता (न निन्द्याति) । यागकर्ता यज्ञ करता है (यज्ञने) । मैं यज्ञार्थे अत्यन्त (अतीव) कातर । उन स्त्रियोंके करण वाक्यसे गणपति (भद्रम्) भी (अपि) गल्ल जाता है (द्रवति) । सब देवता इन्द्रका (द्वितीया) सम्मान करते हैं (सम्मन्यन्ते) ।

* * * *

✓ मधवन् शब्द (इन्द्र) ।

(१मा) मधवा, मधवानौ मधवन्तौ, मधवान् मधवन्त ; (२या) मधवानम् मधवन्तम्, मधवानौ मधवन्तौ, मधोन् मधवन्त , (३या) मधोना मधवन्त, मधवन्त्याम् मधवन्त्याम्, मधवन्ति मधवन्ति ; (४थी) मधोने मधवन्ते, मधवन्त्याम् मधवन्त्याम्, मधवन्त्य मधवन्त्य ; (५मी) मधोन् मधवन्त, मधवन्त्याम् मधवन्त्याम्, मधवन्त्य मधवन्त्य ; (६ठी) मधोन् मधवन्त, मधोने मधवन्तो, मधोनाम् मधवन्ताम् ; (७मी) मधोनि मधवन्ति, मधोने मधवन्तो, मधवन्त मधवन्त ; (सम्बो) मधवन् !

✓ अर्वन् शब्द (घोडा Horse) ।

(१मा) अर्वा, अर्वन्तौ, अर्वन्त ; (२या) अर्वन्तम्, अर्वन्तौ, अर्वन्त , (३या) अर्वन्ता, अर्वन्त्याम्, अर्वन्ति , (४थी) अर्वन्ते, अर्वन्त्याम्, अर्वन्त्य ; (५मी) अर्वन्त, अर्वन्त्याम्, अर्वन्त्य ; (६ठी) अर्वन्त, अर्वन्तो, अर्वन्ताम् ; (७मी) अर्वन्ति, अर्वन्तो, अर्वन्त ; (सम्बो) अर्वन् !

‘इन्’-भागान्त—धनिन् शब्द (धनवान् Rich) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धनी	धनिनौ	धनिन
द्वितीया	धनिनम्	धनिनौ	धनिन-
तृतीया	धनिना	धनिभ्याम्	धनिभि-
चतुर्थी	धनिने	धनिभ्याम्	धनिभ्य-
पञ्चमी	धनिनः	धनिभ्याम्	धनिभ्यः
षष्ठी	धनिनः	धनिनो	धनिनाम्
सप्तमी	धनिनि	धनिनो	धनिषु
सम्बोधन	धनिन्	धनिनौ	धनिनः

प्रायः सर्वे ‘इन्’-भागान्त शब्दके रूप ‘धनिन्’ शब्दके तुल्य । यथा—

गुणिन् (गुणवान्) ; बलिन् (बलवान्) , ज्ञानिन् (ज्ञानवान्) ;
मेधाविन् (मेधाविशिष्ट) , मनोहारिन् (मनोहर) ; एकाकिन्
(अकेला) , हस्तिन् , करिन् (हाथी) , पक्षिन् (चिड़िया) ;
वार्धिन् (याचक) ; मन्त्रिन् (अमात्य) , वाजिन् (घोडा) ;
विपयिन् (सवारी) , स्वामिन् (अधिपति) ।

शुद्ध करो—अस्य समारे यो मनुष्या सहृदस्य वाक्यान् न पालयति,
स कदाऽपि माता पितामपि न साधु मन्थते । ये युवा आत्मां व्यथयन्ति,
तस्य मङ्गलो न भवति । युवाया काट्यान् बाल कर्तुं न शक्नोति ।
शुनोऽपि गुर्गो प्रभुं सेवन्ते । मन्त्रिम्य वाक्य पालय । व्याध पक्षी
मात्स्यति । धनवानस्य सर्वत्र आदर । साध्वी स्त्री स्वामीं शुश्रूषते ।
इन्द्रजित वृत्रज्ज पराबभूव (हराया या) ।

✽ क्रियाविशेषण सर्वदा ङीवलिङ्ग, उसमे द्वितीया-विभक्तिका एकवचन होता है, यथा—(शून्यपात्र अधिक शब्द करता है) शून्यपात्रम् अधिक शब्दायते, (चोर तुरत भागता है) तस्कर-द्रुत पलायते ।

अनुवाद करो—वह चुपचाप (नःख) अपना काम कर रहा है (करोति) । चित्तका एकाग्रतासे तू शास्त्रका गूढ अर्थ सत्त्वर समझ सकेगा (अवगन्तुं शक्यसि) । मन्द मन्द वायु बहती है (वहति) । बच्चेको मधुर हसते (हसन्तम्) देखकर (दृष्ट्वा) माता आनन्दमे मग्न होती है (निमज्जति) । राजा दशरथने रामके दु खसे सातिशय क्रन्दन किया था (रोद) ।

पथिन् शब्द (पथ Way, road) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पन्था	पन्थानौ	पन्थानः
द्वितीया	पन्थानम्	पन्थानौ	पथः
तृतीया	पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः
चतुर्थी	पथे	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
पञ्चमी	पथ	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
षष्ठी	पथ	पथो	पथाम्
सप्तमी	पथि	पथोः	पथिषु
सम्बोधन	पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः

‘मथिन्’ (मन्थनदण्ड)-शब्दके रूप ‘पथिन्’-शब्दके तुल्य ।

ऋमुक्षिन् (इन्द्र) शब्द—(१मा) ऋमुक्षा , ऋमुक्षाणौ, ऋमुक्षाण ,
(२या) ऋमुक्षाणम्, ऋमुक्षाणौ, ऋमुक्ष इत्यादि 'पथिन्'-शब्दके तुल्य ।

शकारान्त ।

विश् शब्द (वैश्य ; मनुष्य A man of the third caste ,
a man in general) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	विद्*	विशौ	विश
द्वितीया	विशम्	विशौ	विश
तृतीया	विशा	विद्भ्याम्	विद्भिः
चतुर्थी	विशे	विद्भ्याम्	विद्भ्यः
पञ्चमी	विश	विद्भ्याम्	विद्भ्य
षष्ठी	विशः	विशो	विशाम्
सप्तमी	विशि	विशो	विद्सु
सम्बोधन	विद्	विशौ	विश

प्रायः सब शकारान्त शब्दके रूप 'विद्' शब्दके तुल्य ।

तादृश् शब्द (तैसा, उसके सदृश Like that , like him &c) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	तादृक्	तादृशौ	तादृश
द्वितीया	तादृशम्	तादृशो	तादृशः
तृतीया	तादृशा	तादृभ्याम्	तादृभिः
चतुर्थी	तादृशे	तादृभ्याम्	तादृभ्यः

* शकारान्त और षकारान्त शब्दकी प्रक्रिया हकारान्त शब्दके तुल्य ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पञ्चमी	तादृश	तादृग्भ्याम्	तादृग्भ्यः
षष्ठी	तादृशः	तादृशो	तादृशाम्
सप्तमी	तादृशि	तादृशोः	तादृशु

सर्वे 'दृश्'-भागान्त और 'स्पृश्'-भागान्त शब्दके रूप 'तादृश्'-शब्दके तुल्य । यथा—

यादृश् (जैसा), कीदृश् (कैसा), ईदृश्, एतादृश् (ऐसा), त्वादृश् (तूरे सदृश), भवादृश् (आपके सदृश), युष्मादृश् (तुम्हारे सदृश), मादृश् (मेरे सदृश), अस्मादृश् (हमारे सदृश), मर्मस्पृश् (हृदयस्पर्शी) ।

अनुवाद करो—उसके समान दुष्ट नहीं । आपके सदृश पुरुषोंका यह कर्त्तव्य नहीं (न कर्त्तव्यम्) । वह मर्मस्पर्शी शब्द व्यवहार करता है (व्यवहरति) । हमजैसे आदमियोंका ऐसा व्यवहार समीचीन नहीं । शत्रुके साथ सन्धि करो (सन्धेहि) । विपयीलोग विपयोंमे मत्त । रानालोग मन्त्रीके साथ मन्त्रणा करते हैं (मन्त्रयन्ते) । इस पयसे जा (याहि) ।

पकारान्त ।

द्विप् शब्द (शत्रु Enemy) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	द्विप्	द्विपौ	द्विपः
द्वितीया	द्विपम्	द्विपौ	द्विपः
तृतीया	द्विपा	द्विड्भ्याम्	द्विड्भिः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
चतुर्थी	द्विपे	द्विद्भ्याम्	द्विद्भ्यः
पञ्चमी	द्विप	द्विद्भ्याम्	द्विद्भ्यः
षष्ठी	द्विपः	द्विपोः	द्विपाम्
सप्तमी	द्विपि	द्विपोः	द्विद्सु
सम्बोधन	द्विद्	द्विपौ	द्विप

प्रायः सर्व प्रकारान्त शब्दके रूप 'द्विप्'-शब्दके तुल्य ।

सकारान्त ।

'अस्'-भागान्त—वेधस् शब्द (विधाता Creator) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	वेधाः	वेधसौ	वेधसः
द्वितीया	वेधसम्	वेधसौ	वेधसः
तृतीया	वेधसा	वेधोभ्याम्	वेधोभिः
चतुर्थी	वेधसे	वेधोभ्याम्	वेधोभ्यः
पञ्चमी	वेधसः	वेधोभ्याम्	वेधोभ्यः
षष्ठी	वेधस	वेधसोः	वेधसाम्
सप्तमी	वेधसि	वेधसोः	वेध सु
सम्बोधन	वेध	वेधसौ	वेधसः

प्रायः सर्व 'अस्'-भागान्त शब्दके रूप 'वेधम्' शब्दके तुल्य । यथा—

चन्द्रमम् (चन्द्र) ; दिवोकस् (देवता) , विहायस् (भाकान) ;
प्रचेतस् (वस्त्र) , विमनस्, दुर्मनस् (उद्भिन्न, व्याकुल , दुःखित) ,
अनेहम् (काल) , वशनम् (शुक्राचार्य) । किन्तु 'अनेहम्'-शब्दकी

प्रथमाके एकवचनमे 'अनेहा' होता है, और 'उशानस्' शब्दकी प्रथमाके एकवचनमे 'उशाना', तथा सम्बोधनके एकवचनमे 'उशानन्' उशान, उशान'— ये तीन पद होते हैं ।

शून्य स्थान पूर्ण करो ।—राम —अनेन—गतवान् । कण्टका —
विघ्नन्ते ।—पृथिवीं—प्रकाशयति । पक्षिण —विचरन्ति । सर्वे—प्रगमन्ति ।

विद्वस् शब्द (ज्ञानी, पण्डित Wise, learned) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	विद्वान्	विद्वामौ	विद्वांस
द्वितीया	विद्वाम्	विद्वांसौ	विदुष
तृतीया	विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भिः
चतुर्थी	विदुषे	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्य
पञ्चमी	विदुष	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्य
षष्ठी	विदुष	विदुषो	विदुषाः
सप्तमी	विदुषि	विदुषो	विद्वत्सु
सम्बोधन	विद्वन्	विद्वामौ	विद्वांस

तस्थिवस् शब्द (स्थित Stayed) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	तस्थिवान्	तस्थिवाप्तौ	तस्थिवांस
द्वितीया	तस्थिवासम्	तस्थिवांसौ	तस्थुष
तृतीया	तस्थुषा	तस्थिवद्भ्याम्	तस्थिवद्भिः
चतुर्थी	तस्थुषे	तस्थिवद्भ्याम्	तस्थिवद्भ्य
पञ्चमी	तस्थुष	तस्थिवद्भ्याम्	तस्थिवद्भ्य

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पद्यो	तस्थुयः	तस्थुपो०	नस्थुयाम्
सप्तमी	तस्थुपि	तस्थुपो	तस्थिवत्सु
सम्बोधन	तस्थिवन्	तस्थिजांसौ	तस्थिवांस.

समस्त ऋउ (वस्)-प्रत्ययान्त शब्दके रूप 'तस्थिवम्' शब्दके तुल्य । यथा—

निवेदिवम् (निषण्ण, उपविष्ट), जग्मिवम् (जो गया), उप-
शिवम् (प्राप्त), पेचिवम् (जिसने पाक किया) ।

शुद्ध करो—मस्या पथे व्याघ्र अस्ति । दिवौकसस्य पथम् अनु-
सरामि । स हले वेधाम् जर्चयन्ति । इद वेधसात् उत्पन्न । चन्द्रमां दृष्ट्वा
चित्त-सदृषं भवति । विद्वानस्य उपदेशानि गृहाण । तत्र तस्थिवसो
जनाना इमानि पुस्तका । कवीनाम् उशना कवि । धर्माना नाम्नि
निर्वृति । दधिना भोजन. छष्टु सन्पद्यते ।

गरीयस् शब्द (अतिगुरु Heavier , more
important) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	गरीयान्	गरीयांसो	गरीयास
द्वितीया	गरीयांसम्	गरीयांसौ	गरीयस
तृतीया	गरीयसा	गरीयोभ्याम्	गरीयोभि
चतुर्थी	गरीयसे	गरीयोभ्याम्	गरीयोभ्यः
पञ्चमी	गरीयस०	गरीयोभ्याम्	गरीयोभ्य०
षष्ठी	गरीयस	गरीयसो.	गरीयसाम्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
सप्तमी	गरीयसि	गरीयसोः	गरीयःसु
सम्बोधन	गरीयन्	गरीयासौ	गरीयांसः

सब ईषष्ठ (ईयस्)-प्रत्ययान्त शब्दके रूप 'गरीयम्'-शब्दके तुल्य । यथा—

लघीयस् (अतिलु), द्वीयस् (अतिदृढ), स्नेयस् (अति-स्निय), ध्रेयस् (अतिप्रशस्त), प्रेयस् (अतिप्रिय); ज्यायस् (ज्येष्ठ), कनीयस्, यवीयस् (कनिष्ठ) ।

'उस्'-भागान्त—दीर्घायुस् शब्द (दीर्घजीवी Long-lived) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	दीर्घायु	दीर्घायुषौ	दीर्घायुषः
द्वितीया	दीर्घायुषम्	दीर्घायुषौ	दीर्घायुषः
तृतीया	दीर्घायुषा	दीर्घायुष्याम्	दीर्घायुषि
चतुर्थी	दीर्घायुषे	दीर्घायुष्याम्	दीर्घायुष्यः
पञ्चमी	दीर्घायुषः	दीर्घायुष्याम्	दीर्घायुष्य
षष्ठी	दीर्घायुष	दीर्घायुषो	दीर्घायुषाम्
सप्तमी	दीर्घायुषि	दीर्घायुषो	दीर्घायुषु
सम्बोधन	दीर्घायु	दीर्घायुषौ	दीर्घायुषः

सब 'उम्'-भागान्त शब्दके रूप 'दीर्घायुम्'-शब्दके तुल्य ।

पुम्स् शब्द (पुरुष A male ; man) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	पुमान्	पुमासौ	पुमांसः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वितीया	पुमांसम्	पुमासौ	पुंस
तृतीया	पुंसा	पुम्भ्याम्*	पुम्भिः
चतुर्थी	पुसे	पुम्भ्याम्	पुम्भ्य
पञ्चमी	पुंसः	पुम्भ्याम्	पुम्भ्यः
षष्ठी	पुंसः	पुसोः	पुसाम्
सप्तमी	पुंसि	पुसोः	पुसु
सम्योधन	पुमन्	पुमांसौ	पुमास

अनुवाद करो—विद्वान्‌लोग इसे जानते हैं (विदन्ति) । विद्वान्‌मे समोकी (एव) थदा रहती है (तिष्ठति) । अतिप्रिय चन्द्रको देख (पश्य) । पर्वत अत्यन्त दृढ । अतिस्थिर पुरुष कार्त्तव्यदस होता है (भवति) । मूर्ख अतिगुरु विषयको (द्वितीया) भी उपेक्षा करता है (उपेक्षते) । यही (एतत् एव) पुरुषका काम । विद्वान्‌के वाक्योंकी (द्वितीया) अवज्ञा न करो (न अवधोस्य) । उत्कृष्ट पथना अनुमन्धान करो (अनुसन्धेहि) । मूर्खलोग विद्वानोको नहीं मानने (न सम्मानयन्ते) ।

*

*

*

✓ दोस् शब्द (वाहु Arm) ।

(१मा) दो, दोषी, दोष, (२या) दोषम्, दोषी, दोष
दोष्ण, (३ या) दोषा दोष्णा, दोष्याम् दोषभ्याम्, दोषि दोषिणि,
(४थी) दोषे दोष्णे, दोष्याम् दोषभ्याम्, दोष्य दोषभ्य, (५मी)

* पुम्भ्याम्, पुम्भि, पुम्भ्य —ऐसामी होता है ।

दोष दोष्ण, दोष्ण्याम् दोषन्व्याम्, दोष्ण्यं दोषन्म्य ; (६ षो)
दोष दोष्ण, दोषी दोष्णो, दोषाम् दोष्णाम्, (७मी) दोषि दोष्णि,
दोषो दोष्णो, दोषो पु दोषड ; (मन्वो) दो ।

हकारान्त ।

मधुलिह् शब्द (भ्रमर Bee) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	मधुलिद्	मधुलिहौ	मधुलिह्
द्वितीया	मधुलिहम्	मधुलिहौ	मधुलिह्
तृतीया	मधुलिहा	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भिः
चतुर्थी	मधुलिहे	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भ्यः
पञ्चमी	मधुलिह	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भ्यः
षष्ठी	मधुलिहः	मधुलिहो	मधुलिहाम्
सप्तमी	मधुलिहि	मधुलिहोः	मधुलिहसु
सम्बोधन	मधुलिद्	मधुलिहौ	मधुलिह

प्रायः सर्वे हकारान्त शब्दके रूप 'मधुलिह्'-शब्दके तुल्य ।*

अनडुह् शब्द (वृष Ox, bull) ।

(१मा) अनड्वान्, अनड्वाहौ, अनड्वाह, (२या) अनड्वाहम्,
अनड्वाहौ, अनडुह ; (३या) अनडुहा, अनडुहगाम्, अनडुहि ;
(४थी) अनडुहे, अनडुहगाम्, अनडुहय ; (५मी) अनडुहः, अनडु-
हगाम्, अनडुहय ; (६थी) अनडुहिः, अनडुहो, अनडुहाम् ; (७मी)

* 'वृषानाह्' (इन्द्र)-शब्दके रूपमी मधुलिह् शब्दके तुल्य ; केवल
'साद्' का दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य होता है ; यथा—वृषपाद् वृषपाट्भ्याम् इत्यादि ।

अनडुहि, अनडुहो, अनडुत्स, (सम्बो) अनडुन् ।

गोदुह् शब्द (गोप, ग्वाला Cow-milker, cowherd) ।

(१मा) गोधुक्, गोदुहौ, गोदुह, (२या) गोदुहम्, गोदुहौ, गोदुह, (३या) गोदुहा, गोधुग्भ्याम्, गोधुग्भि, (४थी) गोदुहे, गोधुग्भ्याम्, गोधुग्भ्य, (५मी) गोदुह, गोधुग्भ्याम्, गोधुग्भ्य ; (६ष्ठी) गोदुह, गोदुहो, गोदुहाम्, (७मी) गोदुहि, गोदुहो, गोधुञ्जु ; (सम्बो) गोधुक् ।*

सब दकारादि हकारान्त शब्दके रूप 'गोदुह'-शब्दके तुल्य ।

व्यञ्जनान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके साधारण सूत्र ।

१९१ । 'छ', 'छप्' और 'भ' परे रहनेसे, घातुनिष्पन्न रकारान्त शब्दके पूर्ववर्ती इकार और उकार दीर्घ होते हैं, यथा—गिर् + छ = गीः ; पुर् + भ्याम् = पूस्याम्, पुर् + छप् = पूर् + छ = पूर् + पु = पूर्ण

१९२ । पकारान्त शब्दके 'प्' के स्थानमे—'छ' और 'छप्' परे 'ट्', और 'भ' परे 'ड्' होता है, यथा—त्विप् + छ = त्विट्, त्विप् + भ्याम् = त्विड्भ्याम् ; त्विप् + छप् = त्विट्छ ।

* पदके अन्तमे, और विभक्तिका व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, दह्, दिह्, दुह्, और टुह् शब्दके 'द्' के स्थानमे 'ध्', और 'ह्' के स्थानमे 'क्' होता है ; यथा—(दह) धक्, दहो, दहः ; दहम्, दहौ, दह ; दहा, धग्भ्याम्, धग्भि इत्यादि । 'टुह्' शब्दके 'ह्' के स्थानमे विकल्पसे 'द' होता है ; यथा—धुक्, धुट्, धुग्भ्याम्, धुड्भ्याम् इत्यादि ।

व्यञ्जनान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द ।



चकारान्त ।

सब चकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दोंके रूप 'जलमुच्' शब्दके तुल्य ।
यथा—वाच् (वाक्य), त्वच् (चर्म, वल्कल), रच् (शोभा,
दीप्ति, स्पृष्टा), ऋच् (वेदमन्त्र) ।

जकारान्त ।

सब जकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दोंके रूप 'वणिज्' शब्दके तुल्य ।
यथा—ज्ज् (माला), रज् (रोग) ।

तकारान्त ।

सब तकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दोंके रूप 'भृभृत्'-शब्दके तुल्य । यथा—
योषित् (नारी), सरित् (नदी), तडित्, विष्टित् (सौदामनी,
विज्जली) ।

दकारान्त ।

सब दकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दोंके रूप 'छट्टद्'-शब्दके तुल्य । यथा—
भापद्, विपद् (लमङ्गल), सम्पद् (सम्पत्ति); संसद्, परिपद्
(समा), दपद् (प्रस्तर); रुविद् (ज्ञान), उपनिषद् (वेदान्त),
शरद् (ऋतुविशेष) ।

धकारान्त ।

क्षुब् शब्द (क्षुधा Hunger) ।

एकवचन

द्विवचन

बहुवचन

प्रथमा

क्षुत्

क्षुधौ

क्षुधः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वितीया	क्षुधम्	क्षुधौ	क्षुध*
तृतीया	क्षुधा	क्षुद्भ्याम्	क्षुद्भि
चतुर्थी	क्षुधे	क्षुद्भ्याम्	क्षुद्भ्य*
पञ्चमी	क्षुव	क्षुद्भ्याम्	क्षुद्भ्य
षष्ठी	क्षुध	क्षुधो	क्षुधाम्
सप्तमी	क्षुधि	क्षुधो	क्षुन्तु
सम्बोधन	क्षुत्	क्षुधौ	क्षुध *

सब धकारान्त शब्दके रूप 'क्षुध्' शब्दके तुल्य ।† यथा—
वीत्ष् (रता), युष् (पुढ), समिष् (यगकाष्ठ) ।

नकारान्त ।

—सीमन् (सीमा, अवधि), पानन् (पुज्ली) प्रभृति नकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके रूप 'माहिमन्'-शब्दके तुल्य ।

पकारान्त ।

अप् शब्द (जल Water) । नित्य बहुवचनान्त ।

१मा	स्या	श्या	धर्षी
आप	अप*	अद्भि	अद्भ्य*

* धकारान्त शब्दके 'ध्'के स्थानमे—'सु' और 'सुप्' परे 'त्', और 'भ' परे 'द्' होता है ।

† पदके अन्तमे, और विभक्तिका व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, 'क्षुध्'-शब्दके 'व्'के स्थानमे 'भ्' होता है, यथा—सत्, सुधौ, बुध ; बुधम्, बुधौ, बुध , बुधा, बुद्भ्याम्, बुद्भि इत्यादि ।

५मी	६ष्टी	७मी	सम्बो
अद्भ्य	अपाम्	अप्सु	आप-

शुद्ध करो—अन्ध पथ न पश्यति । बालक पथे कल्ह- करोति ।
सुरन्द्र चन्द्रमां पश्यति । राजा दुर्जम धनान् ददाति । विद्वानस्य सर्वत्र
 सम्मानम् । अहं यत् वाचं वदामि, तस्मिन् किं दोष अस्ति ? अहं त्वके
 (चर्ममे) वेदना अनुभवामि । राम एकं शक ब्राह्मणे ददाति । विद्युता
 इतस्ततो यान्ति । अह सम्पदेन धेष्ट । निर्मलम् आप पिब ।

भकारान्त ।

ककुम् शब्द (दिक् Direction) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ककुप् *	ककुमौ	ककुम
द्वितीया	ककुभम्	ककुभौ	ककुभ
तृतीया	ककुभा	ककुब्भ्याम्	ककुब्भि
चतुर्थी	ककुभे	ककुब्भ्याम्	ककुब्भ्य-
पञ्चमी	ककुभः	ककुब्भ्याम्	ककुब्भ्य-
षष्ठी	ककुभः	ककुमो-	ककुभाम्
सप्तमी	ककुभि	ककुमो-	ककुप्सु
सम्बोधन	ककुप्	ककुमौ	ककुम-

सब भकारान्त शब्दके रूप 'ककुम्-शब्दके तुल्य । यथा—अनुष्टुम्,
 त्रिष्टुम् (छन्दोविशेष) ।

* भकारान्त शब्दके 'म्' के स्थानमे—सु' और 'मुप्' परे 'प्', और
 'म' परे 'ब्' होता है ।

रकारान्त ।

द्वार् शब्द (दरवाजा ; उपाय Door , means) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	द्वा	द्वारौ	द्वारः
द्वितीया	द्वारम्	द्वारौ	द्वारः
तृतीया	द्वारा	द्वाभ्याम्	द्वाभिः
चतुर्थी	द्वारे	द्वाभ्याम्	द्वाभ्यः
पञ्चमी	द्वारः	द्वाभ्याम्	द्वाभ्यः
षष्ठी	द्वारः	द्वारो	द्वाराम्
सप्तमी	द्वारि	द्वारो	द्वारु
सम्बोधन	द्वाः	द्वारौ	द्वारः

सर्व 'द्वार'-भागान्त शब्दके रूप 'द्वार'-शब्दके तुल्य ।

गिरु शब्द (वाक्य Speech) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	गी	गिरौ	गिरः
द्वितीया	गिरम्	गिरो	गिरः
तृतीया	गिरा	गीभ्याम्	गीभिः
चतुर्थी	गिरे	गीभ्याम्	गीभ्यः
पञ्चमी	गिरः	गीभ्याम्	गीभ्यः
षष्ठी	गिरः	गिरोः	गिराम्
सप्तमी	गिरि	गिरोः	गीरु
सम्बोधन	गी	गिरौ	गिरः

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
पञ्चमी	भास.	भाभ्याम्	(भाभ्य'
षष्ठी	भास	भासो	भासाम्
सप्तमी	भासि	भासोः	भाःसु।
सम्योधन	भा'	भासौ	भास.

'इस्'-भागान्त—अर्चिस् शब्द* (शिखा, ज्वाला Flame) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अर्चि.	अर्चिपौ	अर्चिप.
द्वितीया	अर्चिपम्	अर्चिपौ	अर्चिप.
तृतीया	अर्चिपा	अर्चिभ्याम्	अर्चिभि-
चतुर्थी	अर्चिपे	अर्चिभ्याम्	अर्चिभ्य.
पञ्चमी	अर्चिप.	अर्चिभ्याम्	अर्चिभ्य.
षष्ठी	अर्चिप.	अर्चिपो.	अर्चिपाम्
सप्तमी	अर्चिपि	अर्चिपो	अर्चि.सु
सम्योधन	अर्चि.	अर्चिपौ	अर्चिप.

सब 'इम्' भागान्त शब्दके रूप 'अर्चिम्'-शब्दके तुल्य ।

आशिस् शब्द (शुभाकाङ्क्षा , आभिलाष
Benediction, desire) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	आशी	आशिपौ	आशिप
द्वितीया	आशिपम्	आशिपौ	आशिप.

* 'अर्चिस्'-शब्द स्त्रीबलिङ्गमी होता है ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
तृतीया	आशिषा	आशीर्भ्याम्	आशीर्भिः
चतुर्थी	आशिषे	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्यः
पञ्चमी	आशिष	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्यः
षष्ठी	आशिषः	आशिषो	आशिषाम्
सप्तमी	आशिषि	आशिषो	आशीर्षु
सम्बोधन	आशीः	आशिषौ	आशिषः

शुद्ध करो—पूर्वस्मिन् दिशि निशाकरो राजने । उत्तरस्मिन् दिशि हिमालयवर्चते । सर्वे देवता मयि शुभ आशी कुर्वन्ति । तेन आशिना अहं सुख्यं भवामि । पश्चिमस्या दिशि चन्द्रमाम् अस्तमितां पश्यामि । ग्रीष्मे काका वाप्या अर्षं पिबन्ति । य सत्य गिरं वदति, स सर्वदा दिवे वसति । तव आशिषस्य अपूर्वं शक्ति ।

हकारान्त ।

उपानह् शब्द (जूता Sandal, shoe) ।

(१मा) उपानत्, उपानहौ, उपानह , (२या) उपानहम्, उपानहौ, उपानह , (३या) उपानहा, उपानह्याम्, उपानद्भिः , (४थी) उपानहे, उपानह्याम्, उपानह्य , (५मी) उपानह, उपानह्याम्, उपानह्य , (६ठी) उपानह, उपानहो, उपानह्याम्, (७मी) उपानहि, उपानहो , उपानह्य , (सम्बो) उपानत् ।



व्यञ्जनान्त क्लीबलिङ्ग शब्दके साधारण सूत्र ।

१९४ । 'ह', 'अम्' और सम्बोधनके 'ह' का लोप होता है,

यथा—जगत् + सु = जगत्, जगत् + अम् = जगत् ।

१९६ । 'औ' के स्थानमें 'ई', और 'जम्' तथा 'शम्' के स्थानमें 'इ' होता है, यथा—जगत् + औ = जगत् + ई = जगती, ददत् + जम् = ददत् + इ = ददति ।

१९६ । 'जम्' और 'शम्' परे चकारान्त शब्दके 'च्' के स्थानमें 'ञ्', और जकारान्त शब्दके 'ज्' के स्थानमें 'ञ्' होता है; यथा—प्रा-
च् + जम् = प्राञ् + इ (१९६ सू) = प्राञ्चि, अस्ज् + जम् = अस्ज्
+ इ = अस्जि ।

१९७ । 'जम्' और 'शम्' परे अन्त्यम्बुके पश्चात् 'न्' होता है; वान्त शब्दके नहीं होता, यथा—जगत् + जम् = जगन्त् + इ = जगन्ति ।

१९८ । 'जम्' और 'शम्' परे रहनेसे, अभ्यस्त शब्दके 'त्' के स्थानमें विकल्पमें 'न्त्' होता है; यथा—जाप्रत् + जम् = जाप्रन्त् + इ = जाप्रन्ति, पञ्चे—जाप्रत् + जम् = जाप्रत् + इ = जाप्रति ।

१९९ । 'जम्' और 'शम्' परे नकारान्त और 'न्म्' भागान्त शब्दका अन्त्यम्बर दीर्घ होता है, यथा—नामन् + जम् = नामान् + इ = नामानि; हविष् + जम् = हविन्म् (१९७ सू) + जम् = हवीन्म् + इ = हवींस् (६३ सू) + इ = हवींषि (१०८ (क) सू) ।

२०० । 'सु' परे नकारका लोप होता है, सम्बोधनके 'सु' में विकल्पसे होता है; यथा—नामन् + सु (सम्बोधन) = नाम, (पञ्चे) नामन् ।

२०१ । 'इ' परे 'अन्'-भागान्त शब्दके अकारका विकल्पसे लोप

होता है, यथा—नामन् + औ = नामन् + ई = नामन् + ई = नाम्नी,
(पथे) नामन् + औ = नामन् + ई = नामनी ।



व्यञ्जनान्त क्लीबलिङ्ग शब्द ।

~~है~~ व्यञ्जनान्त क्लीबलिङ्ग शब्दके रूप प्रथमा, द्वितीया और सम्बोधनमे समान, और तृतीयासे सप्तमीतक पुलिङ्गके तुल्य । इसलिये उनकी केवल प्रथमा त्रिभक्तिके रूपही यहाँ लिखे जाते हैं ।

चकारान्त—प्राच् शब्द—प्राक्, प्राची, प्राञ्चि । प्राय सब चकारान्त क्लीबलिङ्ग शब्दके रूप 'प्राच्'-शब्दके तुल्य । प्रत्यच् शब्द—प्रत्यच्, प्रतीची, प्रत्यञ्चि । उच्च शब्द—उदक्, उदीची, उदञ्चि । अन्यच् शब्द—अन्वक्, अन्वी, अन्वञ्चि । तिर्य्यच् शब्द—तिर्य्यक्, तिर्य्यची, तिर्य्यञ्चि ।

जकारान्त ।

असृज् शब्द (शोणित, रक्त Blood) ।

असृक् असृजी असृञ्चि ।

अवशिष्ट 'वणिज्'-शब्दके तुल्य ।

प्राय सब जकारान्त क्लीबलिङ्ग शब्दके रूप 'असृज्'-शब्दके तुल्य ।

तकारान्त ।

जगत् शब्द (विश्व World) ।

जगत् जगती जगन्ति ।

अवशिष्ट 'भृमृत्'-शब्दके तुल्य ।

प्रायः सब तकारान्त ह्रीवलिङ्ग शब्दके रूप 'अगत्'-शब्दके तुल्य ।

✓ गच्छत् शब्द—गच्छत्, गच्छन्ती, गच्छन्ति ।—भ्वादि, दिवादि, चुरादि और गिञन्त प्रभृति धातुके उत्तर 'शतृ'-प्रत्ययान्त सब ह्रीवलिङ्ग शब्दके रूप 'गच्छत्' शब्दके तुल्य ।

✓ इच्छत् शब्द—इच्छत्, इच्छती, इच्छन्ती, इच्छन्ति ।—तुदादि गणोप धातुके उत्तर 'शतृ'-प्रत्ययान्त सब ह्रीवलिङ्ग शब्दके रूप 'इच्छत्'-शब्दके तुल्य ।

✓ यात् शब्द—यात्, याती यान्ती, यान्ति ।—आकारान्त अदादि-गणोप धातुके उत्तर 'शतृ' प्रत्ययान्त सब ह्रीवलिङ्ग शब्दके रूप 'यात्'-शब्दके तुल्य ।

✓ ददित् शब्द—ददित्, ददित्ती, ददिति ददित्ति ।

जाप्रत् शब्द—जाप्रत्, जाप्रती, जाप्रति जाप्रन्ति ।—अक्षत्, च-कामत् प्रभृति (१४२ पृ० २० पं०) शब्दके रूप ह्रीवलिङ्गमे 'जाप्रत्'-शब्दके तुल्य ।

✓ भविष्यत् शब्द—भविष्यत्, भविष्यती भविष्यन्ती, भविष्यन्ति ।—सब 'भ्यत्'-प्रत्ययान्त ह्रीवलिङ्ग शब्दके रूप 'भविष्यत्'-शब्दके तुल्य ।

महत् शब्द ।

✓ महत्

महती

महान्ति ।

दकारान्त ।

हृद् शब्द (वक्ष स्थल, छाती ; मन Chest ; mind) ।

हृत्

हृदो

हृन्दि ।

अवशिष्ट 'सहद्'-शब्दके तुल्य ।

सब दकारान्त क्लीबलिङ्ग शब्दके रूप 'हद्' शब्दके तुल्य* ।

नकारान्त ।

✓ 'अन्'-भागान्त—नामन् शब्द (आख्या Name) ।

नाम नाम्नी, नामनी नामानि ।

अवशिष्ट 'महिमन्'-शब्दके तुल्या ।

प्राय सब 'अन्'-भागान्त क्लीबलिङ्ग शब्दके रूप 'नामन्' शब्दके तुल्य । यथा—

धामन् (गृह) ; व्योमन् (आकाश) , दामन् (रस्सी) , प्रेमन् (प्रणय) , वेमन् (तांत) , सामन् (वेदविशेष) ।

अनुवाद करो—शरीरसे रुधिर निकलना है (नि सरति) । वृक्षके पत्र श्रीयुक्त । घीन्ममे आकाश निर्मल रहता है (तिष्ठति) । ब्रजधाममें गोपियां वास करती हैं (वसन्ति) । प्रात कालमें ऋषितनय साम गान करते हैं (गायन्ति) । जो वेद जानता है (वेत्ति) , उसे 'वेदिक' कहते हैं (वदन्ति) । लडके गायकी रस्सी खींचते हैं (आकर्षन्ति) । इस स्मारमें सभी प्रेमसे आवद्ध । तांतसे कपड़ा दूनता है (वयति) ।

✓ जन्मन् शब्द (उत्पत्ति Birth) ।

जन्म जन्मनी जन्मानि ।

* द्विपाद् शब्द—द्विपात्, द्विपदी, द्विपान्दि । सब 'पाद्'-भागान्त शब्द इसी प्रकार ।

† सम्बोधनके एकवचनमें—नाम, नामन्—ये दो पद होते हैं ।

अवशिष्ट 'आत्मन्'-शब्दके तुल्य* ।

'म' और 'व'-सयुक्त सब 'अन्'-भागान्त श्लोचलिङ्ग शब्दके रूप 'जन्मन्' शब्दके तुल्य । यथा—

चर्मन् (चमड़ा) ; वर्मन् (कवच) , शर्मन् (छल ; कल्याण) ;
कर्मन् (काम) ; नर्मन् (परिहास) , सध्मन् (गृह) , मम्मन्
(राख) , लध्मन् (चिह्न) , वल्मन् (पथ) , पर्वन् (ग्रन्थि ; उत्सव) ।

अहन् शब्द (दिन Day) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	अह	अहो, अहनी	अहानि
द्वितीया	अह	अहो, अहनी	अहानि
तृतीया	अहा	अहोभ्याम्	अहोभि
चतुर्थी	अहे	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
पञ्चमी	अह	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
षष्ठी	अहः	अहोः	अहाम्
सप्तमी	अह्नि, अहनि	अहो	अहःसु
सम्बोधन	अह	अहो अहनी	अहानि

✓ 'इन्'-भागान्त—स्थायिन् शब्द (न्यतिशील, स्थिर
Staying, lasting) ।

स्थायि स्थायिनी स्थायीनि

अवशिष्ट 'धनिन्' शब्दके तुल्य ।

सब 'इन्'-भागान्त श्लोचलिङ्ग शब्दके रूप 'स्थायिन्' शब्दके तुल्य ।

* सम्बोधनके एकवचनमें—जन्म, जन्मन्—ये दो पद होते हैं ।

रकारान्त ।

✓ वार् शब्द (जल Water) ।

वा

वार्ति

वारि

अवशिष्ट 'द्वार्'-शब्दके तुल्य ।

शकारान्त ।

✓

तादृश् शब्द ।

तादृक्

तादृशी

तादृशि ।

सकारान्त ।

'अस्-भागान्त—पयस् शब्द (दुग्ध , जल Milk , water

✓ पयः

पयसी

पयांसि

अवशिष्ट 'वैषम्'-शब्दके तुल्य ।

सब 'अस् भागान्त क्लीबलिङ्ग शब्दके रूप 'पयम्' शब्दके तुल्य ।

यथा—

✓

अम्भम् (जल), रजम् (घृति); तमस् (अन्धकार), वचस् (वाक्य), चेतम्, मनम् (चित्त), आगस् (अपराध), यज्ञस् (कीर्ति), उरस्, वक्षम् (छाती), अयम् (लौह), वासम् (वस्त्र); वयम् (जीवितकालका परिमाण, पक्षी), छन्दस् (पद्य-वन्ध) ।

✓

कसु (वसु) प्रत्ययान्त—विद्वस् शब्द—विद्वत्, विदुषी, विद्वांसि । शुश्रुवस् शब्द—शुश्रुवत्, शुश्रुषी, शुश्रुवांसि । तस्थि-वस् शब्द—तस्थिवत्, तस्थुषी, तस्थिवासि ।

शुद्ध करो—महान् दुःखम् । , पतन् फलानि गृहाण । एष असूक्
दुष्टानि जाताः । श्रीमन्तं फलम् अवलोकय । इयामस्य धामं गच्छामि ।
काशाधामे शिवो विद्यते । ऊर्ध्वं भस्म मा क्षिप । चर्मात् पादुका जायते ।
वृषः दाम छिनत्ति । कर्मण फल स्यात् । कर्मभ्य छस्वदुःखा जाय
न्ते । जन्मे जन्मे विष्णुभक्तभण्डेयम् । हित मनोहारी च दुर्लभो वच ।

✽ व्याप्ति-अर्थमे कालवाचक और मार्गके परिमाण-वाचक
शब्दके उत्तर द्वितीया विभक्ति होती है, यथा—(एक महीनाभर
पढता हूँ, तबभी कुछ हुआ नहीं) भासम् एक पठामि, तथाऽपि
न किमपि अभवत्, (एक कोस व्यापकर यह जनपद है) क्रोशम्
एक जनपदोऽय तिष्ठति ।

✽ प्रयोजन सिद्ध होनेसे, उक्त कालवाचक और मार्गके परि-
माण-वाचक शब्दके उत्तर तृतीया विभक्ति होती है, यथा—(यह
पुस्तक एक महीनेमे पढा है) मामेन एकेन पुस्तकम् एतन् पठित-
वान्, (कोसभरमे सूर्यस्तव पढा गया) क्रोशेन एकेन सूर्यस्तोत्र
पठितम्,—यहाँ पुस्तकका पढना एक महीनेमे, और सूर्यका स्तव-
पाठ एक कोसमे समाप्त हुआ है ।

अनुवाद करो—दीर्घकाल गुरुके समीपमे (अन्तिक) वास करना
चाहिये (वसेत्) । पाँच कोस व्यापकर काशीनगरी । साधक उपासनाके
लिये सारी रात जागता है (जागति) । वह सारा दिन उपनिषद्का
अध्ययन करता है (कुस्ते) । तू एकदिनमेही इस ग्रन्थको पढ सवेगा
(पठितुं शक्यसि) । क्षणकाल प्रतीक्षा कर (प्रतीक्षस्व), तेरा मनो
रथ मिद्ध होगा (सेरूपति) ।

‘इस्’-भागान्त—हविस् शब्द (घृत Clarified butter) ।

हादिः हविषी हवीषि

अवशिष्ट ‘अर्चिस्’ शब्दके तुल्य ।

सब ‘इस्’-भागान्त क्लीबलिङ्ग शब्दके रूप ‘हविस्’ शब्दके तुल्य ।

यथा—

ज्योतिस् (तेज , नक्षत्र) ; रोचिम्, शोचिम् (दीप्ति) , वर्हिस् (कुश) , सर्पिस् (घृत) ।

‘उस्’-भागान्त—धनुस् शब्द (धनुक Bow) ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धनुः	धनुषी	धनूषि
द्वितीया	धनु.	धनुषी	धनूषि
तृतीया	धनुषा	धनुष्याम्	धनुषिम्
चतुर्थी	धनुषे	धनुष्याम्	धनुष्यम्
पञ्चमी	धनुष	धनुष्याम्	धनुष्यम्
षष्ठी	धनुष	धनुषो	धनुषाम्
सप्तमी	धनुषि	धनुषो	धनुषु
सम्बोधन	धनु.	धनुषी	धनूषि

सब ‘उस्’ भागान्त क्लीबलिङ्ग शब्दके रूप ‘धनुस्’-शब्दके तुल्य ।

यथा—

अक्षुम् (जांबितकाल) ; चक्षुम् (नेत्र) , वपुम् (शरीर) ; यजुम् (वेदविशेष) ।

अनुवाद को—निष्काम कर्मसे चित्त शुद्ध होता है (भवति) ।

चन्द्रके जूता । चन्द्रमे जो मलिन चिह्न है (कस्ति), उसीको कवि-
लोग 'भृगु' कहते हैं (चदन्ति) । पूर्वजन्मकी सृष्टिसे मनुष्योंको धर्ममें
प्रवृत्ति होती है (जायते) । दो दिनमें यह काम होगा (भविष्यति) ।
लौहसे अस्त्र उत्पन्न होता है (उत्पद्यते) । धार्मिक राजाका पक्ष सब
दशोंमें सब कोई गाते हैं (गायन्ति) । मेरा अवराध क्षमा कीजिये
(क्षमन्व) । मनमें कुचिन्ता नहीं करना (न कुप्योत्) । पढ़नेमें मन
लगा (स्योजय) । गोदत्त दुग्ध पान करता है (पिबति) । ब्रह्मच-
र्यमें तेज बढ़ता है (वर्द्धते) । धृतने (इषिस्) होम करता है (जु-
होति) । सूर्यकी दीप्तिसे जगत् प्रसाधित होता है (प्रसाधते) । शि-
वजीके तीन चक्षु । अनाचारसे आयुका क्षय होता है । लुब्धक धनुषमें
बाण योजना करता है (योजयति) ।



सर्वनाम-व्यवहार ।

सर्वादि समस्त सर्वनामोंके रूप यथाक्रम पुलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और
द्वौबलिङ्ग शब्द-रूपके बीचमें दिखलाये गये ।

सर्व, विश्व और मन शब्द—'सकल' यह अर्थ समझानेसेही सर्व-
नाम होते हैं ; अन्य अर्थमें उनके रूप साधारण शब्दोंके तुल्य :-
यथा—

सर्व { (सकल) सबको मनस्कार—मदंस्मै नम ।
(शिव) शिवको मनस्कार—मशाय नम ।

- विश्व { (सकल) सबमे विदवास युक्त नहीं—विश्वस्मिन् विश्वासो
न युज्यते ।
(जगत्) जगत्मे सभी नश्वर—विश्वे सर्वे हि नश्वरम् ।
- सन् { (सकल) सभीकाही गुरु पिता—समेपा हि गुरु पिता ।
(तुल्य) पशुजोके तुल्य मूलोका सद्गुणोना चाहिये—प-
शुभि समानां मूलाणां सद्गुण परिहरेत् ।

दिक्, देश वा काल समझानेसेही 'पूर्व' प्रभृति सात शब्द सर्वनाम होते हैं, अन्य अर्थमे साधारण शब्दके तुल्य, यथा—

- पर { (काल) पतिथोका पर दिनके लिये सद्गुण निषिद्ध—पतीना
परस्मै दिनाय सद्गुणो निषिद्ध ।
(श्रेष्ठ) परम पुरुषको नमस्कार—पराय पुरुषाय नम ।
- दक्षिण { (दिक्) दक्षिण दिशाका अधिपति यम—दक्षिणस्या
दिशा अधिपति कृतान्त ।
(निपुण) ब्रह्मविचारमे कुशल मार्गोका याज्ञवल्क्यके साथ
सवाद हुआ था—ब्रह्मविचारे दक्षिणाया मार्ग्या याज्ञव-
ल्क्येन समं संवाद समभवत् ।
- उत्तर { (देश) वह तरम्याके लिये उत्तर देशको गया—म तपसे
उत्तरस्मै देशाय प्रातिष्ठत ।
(प्रतिप्रचन) तेरे पत्रके उत्तरके लिये व्यग्र हूँ—तव पत्रम्य
उत्तराय व्यग्रोऽस्मि ।

आत्मा (स्वयम्) और आत्मीय (स्वकीय) अर्थमेही 'स्व'-
शब्द सर्वनाम होता है, अन्य अर्थमे सामान्य अकारान्तके तुल्य, यथा—

- स्व { (आत्मा) जानी अपनेमे रमग करता है—जानी स्व-
स्मिन् रमते ।
(आत्मीय) सब कोई स्वमीय पुत्रमे स्नेह करता है—
सर्वं स्वस्मिन् पुत्रे स्निह्यति ।
(धन) दूमरेके धनमे स्पृहा न करना—परस्य स्वाय न
स्पृहयेत् ।
(ज्ञाति) ज्ञातिको विद्या दान करना—प्राय विद्यां दद्यात्*

‘एक’-शब्दा—एक, अन्य, कवल, श्रेष्ठ प्रवृत्ति सभी अर्थमे सर्वनाम होता है, यथा—(एक आदमीमे पक्षगत नहीं करना) एकस्मिन् पक्ष पातं न कुर्यात्, (अन्यलोग कहते हैं) एके वदन्ति, (कोई कोई आत्माको निर्गुण नहीं मानते) एके आत्मानं निर्गुणं न मन्यन्ते; (केवल नारायणको नमस्कार) एकस्मै नारायणाय नमः; (श्रेष्ठ ज्ञानी वसिष्ठसे रामचन्द्रने तत्त्वज्ञान पाया) एकस्मात् ज्ञानितं वसिष्ठात् राम-भद्रं तत्त्वज्ञानम् अवाप ।

इदम् और एतद्—एन ।

पुनरुक्तिविषयमे, अर्थात् ढल्लिखितका पुनरुल्लेख होनेसे, द्वितीयाके एकवचन, द्विवचन, बहुवचन, तृतीयाका एकवचन, और पष्ठी तथा सप्तमीके द्विवचनमे ‘इदम्’ और ‘एतद्’ शब्दके स्थानमे ‘एन’ आदेश होता है, यथा—(पु०) एनम्, एनौ, एतान्, एनेन, एनयो; (स्त्री०)

* ‘स्व’-शब्द—‘धन’-अर्थमे पु०, स्त्री०, और ‘ज्ञाति’-अर्थमे—पु० ।

† एकोऽन्यान्य-प्रधानेषु प्रथमे केवले तथा ।

साधारणे समानेऽपि सङ्ख्यायाश्च प्रयुज्यते ॥

एनाम्, एने, एता, एनया, एतयो ; (स्त्रीव०) एनत्, एने, एनानि, एनेन, एतयो । उदाहरण—(इय छात्रकी परीक्षा करो, पीछे इसको योग्य श्रेणीमें भरती कर लो) इमम् अथवा एत छात्र परीक्षस्व ; तत एन योग्य-श्रेण्यां प्रवेशय ।

✓ उभ (Both) ।

‘उभ’ शब्द केवल द्विवचनमें व्यवहृत होता है, यथा—(पुलिङ्ग)—(राम लक्ष्मण दोनो जाते हैं) उभौ रामलक्ष्मणौ यात, (स्त्रीलिङ्ग)—(सारदा ज्ञानदा दोनो हमतीं हैं) उभे सारदाज्ञानदा इमत, (स्त्रीव लिङ्ग)—(एकदममें फल पत्र दोनों गिरते हैं) युगपत् उभे फल्पत्रे पतत । समासमें ‘उभ’ शब्दके स्थानमें ‘उभय’ होता है; यथा—उभौ पाश्र्वाँ—उभयपाश्र्वाँ ।

✓ उभय (Both) ।

‘उभय’-शब्द द्विवचनमें व्यवहृत नहीं होता; केवल एकवचन और बहुवचनमें व्यवहृत होता है; यथा—(देवगण अक्षरगण दोनोंने समुद्र मन्थन किया था) उभय देवाक्षरगण समुद्र मन्थय, (देवता मनुष्य दोनो नृत्य करते हैं) उभये देवमनुष्या नृत्यन्ति ।

✓ भवत् (आप Your honour) ।

सन्धय वचनप्रयोगमें (as a courteous form of expression) ‘भवत्’-शब्दका व्यवहार होता है, किन्तु इसका सम्मान अर्थ निपट नहीं । सम्मान अर्थमें ‘भवत्’-शब्दके पूर्वमें ‘अत्र’ और ‘तत्र’ वा ‘स’ संयुक्त किये जाते हैं; यथा—अत्रभवत्; तत्रभवत्* वा सभवत् ।

* “पूज्ये तत्रभवानत्रमवांस भगवानपि” ।

इनमेंसे 'अत्रभवत्'-शब्द वक्ताके निश्चित्य व्यक्तिके सम्बन्धमें, और 'तत्रभवत्' वा 'सभवत्' शब्द दूरस्थ अथवा अनुपस्थित व्यक्तिके सम्बन्धमें प्रयुक्त होता है । उदाहरण—('आपको निवेदन करता हूँ) अत्रभवन्त निवेदयामि, (करे हट जा, आप प्रकृतिस्य हुए हैं) "अपेहि र, अत्रभवान् प्रकृतिम् आपन्न" शकु० १. (पूज्यपाद काश्यपने आदिष्ट हुआ है) "आदिष्टोऽस्मि तत्रभवता काश्यपेन" शकु० ४; (वे कर्त्तव्य-विषयमें मुझे निपुक्त करते हैं) "ना विषयविषये मनवान् (His Honour) निपुक्त" मालती० १ १२ ।

परस्पर, अन्योन्य, इतरेतर (Each other, one another) ।

परस्पर, अन्योन्य और इतरेतर शब्दका एकही अर्थ । वे हीबलिङ्ग-के एकवचनमेंही व्यवहृत होते हैं, यथा—दु गोला छात्रा परस्परं विवदन्ते (विवाद करते हैं), ये परस्परम् आदिपन्ते, ते हि सुसोढा । क्वचित् षड्वचनमेंभी प्रयोग दृष्ट होता है; यथा—"अन्योन्येषां पुष्करै-रामृशन्त " माघ० १८. ३२ ।

✱ सर्वनाम शब्दके उत्तर सम्बन्धार्थमें 'इय'-प्रभृति प्रत्यय करनेमें कई विशेषणपद उत्पन्न होते हैं; (वे सर्वनाम नहीं) । यथा—मदीय, मामक, मामकीन (मेरा), अस्मदीय, आस्माक, आस्माकीन (हमारा); त्वदीय, तावक, तावकीन (तेरा); पुष्पदीय, यौष्माक, यौष्माकीन (तुम्हारा), भवदीय, भावक (जारका), तदीय (उमका, उनका), अन्यदीय (अन्योका, अन्यका); परकीय (दूसरेका, दूसरोका); स्वाय, स्वकीय (अपना) ।* यथा—(हमारा घर) अस्मदीयं गृहम् ;

* तावक, मामक, यौष्माक और आस्माक शब्दके श्रीलिङ्गमें—तावकी,

(तेरो पुस्तक) त्वदीय पुस्तकम् ।

अनुवाद करो—दूसरेके धनमे लोभ मन कर (मा लुभ्य) । क्याम सय बालकोमे श्रेष्ठ । ब्राह्मण क्षत्रिय दोनो परस्पर सौहार्दसे रहे (तिष्ठे ताम्) । राम क्याम दानो गये (गतौ) । मूर्ख परस्परका (द्वितीया) अपहास करते हैं (उपहसन्ति) । बालक अन्योन्यका वस्त्र आकर्षण करते हैं (आकर्षन्ति) । हमलोग परस्परमे अनुरक्त ।

सह्यावाचक शब्द (Numerals) । २०१-

एक, द्वि, त्रि, चतुर्, पञ्च, षष्, सप्त, अष्ट, नव, दश, एकादश, द्वादश, त्रयोदश, चतुर्दश, पञ्चदश, षोडश, सप्तदश, अष्टादश, ऊनविंशति, * विंशति, त्रिंशत्, चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति, अशांति, नवति, शत, सहस्र, अयुत, लक्ष, नियुत, कोटि, अर्बुद, वृन्द, खर्व, निखर्व, शह्य, पद्म, सागर, अन्त्य, मध्य, परार्द्ध †—

मामकी, यौष्माकी और आस्माकी होते हैं । तद्धिन शब्द खोलिजमे आकारान्त होते हैं ।

* अथवा—एकोनविंशति, एकाद्विंशति, एकानविंशति ।

† विंशति और त्रिंशत् शब्द परे रहनेसे—‘द्वि’ शब्दके स्थानमे ‘द्वा’, ‘त्रि’ शब्दके स्थानमे ‘त्रय’, और ‘अष्टन्’ शब्दके स्थानमे ‘अष्टा’ होता है ; यथा—द्वाविंशति, त्रयोविंशति, अष्टाविंशति, द्वात्रिंशत्, त्रयत्रिंशत्, अष्टात्रिंशत् ।

चत्वारिंशत्, पञ्चाशत्, षष्टि, सप्तति और नवति शब्द परे रहनेसे

ये सङ्ख्यावाचक शब्द* ।

एक शब्द (One)—एकवचनान्त ।

इसके रूप पुलिङ्ग और स्त्रीबलिङ्गमे 'सर्व'-शब्दके तुल्य, स्त्रीबलिङ्गमे 'सर्वा'-शब्दके तुल्य ।

द्वि शब्द (दो Two)—द्विवचनान्त ।

त्रि शब्द (तीन Three)—यद्बुधचनान्त ।

विकल्पसे होता है, यथा—द्विचत्वारिंशत् द्वाचत्वारिंशत्, त्रिचत्वारिंशत् त्रयश्चत्वारिंशत्, अष्टचत्वारिंशत् अष्टाचत्वारिंशत् ।

'अशीति'-शब्द परे रहनेसे नहीं होता, यथा—अशीति, अशति, अष्टाशीति ।

९९=नवनवति अथवा एकोनशतम् ।

समाससूत्रानुसार 'पप्' शब्दके स्थानमे 'पट्' आदेश, और पञ्चन्, सप्तन् प्रभृति नकारान्त शब्दके नकारका लोप होता है ; यथा—पट्षिंशति, पञ्चविंशति इत्यादि ।

१०१, १०२, १०३, १०४, १०५ इत्यादि=एकोत्तरशत अथवा एकाधिकशत, द्व्युत्तरशत अथवा द्वाधिकशत, त्र्युत्तरशत वा त्र्यधिकशत, चतुरत्तरशत वा चतुरधिकशत, पञ्चोत्तरशत वा पञ्चाधिकशत इत्यादि ।

२००, ३०० इत्यादि=द्विशत, त्रिशत इत्यादि ।

* एक दश शतञ्चैव सहस्रमयुत तथा ।

लक्षञ्च नियुतञ्चैव कोटिरयुंदमेव च ॥

वृन्द सर्वो निखर्वध शङ्ख-यधौ च सागर ।

अन्त्य मध्य परादंञ्च दशवृद्ध्या यथोत्तरम् ॥

इनके रूप समस्त लिङ्गोमेही दिखलाये गये ।

'त्रि' से 'मष्टादशान्' पर्यन्त शब्द बहुवचनान्त ।

चतुर् शब्द (चार Four) ।

	पुलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग	क्लोबलिङ्ग
१मा	चत्वारः	चतस्रः	चत्वारि
२या	चतुरः	चतस्र	चत्वारि
३या	चतुर्भिः	चतसृभिः	चतुर्भिः
४र्था	चतुर्भ्यः	चतसृभ्यः	चतुर्भ्यः
५मी	चतुर्भ्यः	चतसृभ्य	चतुर्भ्य
६ष्टी	चतुर्णाम्	चतसृणाम्	चतुर्णाम्
७मी	चतुर्षु	चतसृषु	चतुर्षु
सम्बो	चत्वारः	चतस्र	चत्वारि

शुद्ध करो—एक मुद्रा । द्वे ब्राह्मणौ गच्छत । द्वौ कर्णे पश्यामि ।
द्वौ वस्त्रम् । तिसृभ्य सुनिभ्य देहि । चत्वार पुष्पमाला । अत्र चत्वारि
माला तिष्ठन्ति । चतस्र मनुष्या हसन्ति । चतुर्षु दिक्षु । चत्वारि
गृहा विद्यन्ते । तिसृभि बालकै सह नद्या गतवान् ।

पञ्च शब्द (पाँच Five)

षष् शब्द (छ. Six) ।

१मा	पञ्च	षट्
२या	पञ्च	षट्
३या	पञ्चभिः	षड्भिः
४र्था	पञ्चभ्यः	षड्भ्य
५मी	पञ्चभ्यः	षड्भ्यः

६ष्टी	पञ्चानाम्	पण्णाम्
७मी	पञ्चसु	पट्सु

तीनो लिङ्गोमेही समान ।

अष्टन् शब्द (आठ Eight) ।

१मा	अष्ट, अष्टौ
२या	अष्ट, अष्टौ
३या	अष्टभि, अष्टाभिः
४थी	अष्टभ्य, अष्टाभ्य
५मी	अष्टभ्यः, अष्टाभ्य
६ष्टी	अष्टानाम्
७मी	अष्टसु, अष्टासु
सम्बो	अष्ट, अष्टौ

तीनो लिङ्गोमेही समान ।

'पञ्चन्' से 'अष्टादशन्' पर्यन्त शब्दोंके रूप तीनो लिङ्गोमेही एक-प्रकार यथा—पञ्च वृक्षा, पञ्च स्त्रिय, पञ्च फलाति ।

सप्तन्, नवन्, दशन् प्रभृति नकारान्त शब्दके रूप—'पञ्चन्'-शब्दके तुल्य ।

'ऊनर्विशति', 'विशति' प्रभृति इकारान्त शब्दके रूप—'मति'-शब्दके तुल्य ।

'त्रिंशत्' प्रभृति तकारान्त शब्दके रूप—'भूभृत्'-शब्दके तुल्य ।

'शत'-प्रभृति अकारान्त शब्दके रूप—'कल' शब्द के तुल्य । किन्तु वृन्द, खर्व, निखर्व, शहू, पय और सागर शब्दके रूप—'देव'-शब्दके

मुल्य ।

अनुवाद करो—एक घृक्ष । दो मनुष्य जाते हैं (गच्छत) । इस दिशामे (तृतीया) तीन बालिकायें आती ह (आगच्छन्ति) । चार गायें इधर उधर (इतस्तत) घूमती हैं (भ्रमन्ति) । कान्यकुब्जसे पांच ब्राह्मण वृद्धदेशको गये थे (गतवन्त) । छ रिपु सबको आक्रमण करते हैं (आक्रामन्ति) । वे सात भाई । आठ प्रहरोमे (तृतीया) एक दिन । नौ बालक । दश दिक् । ग्यारह रुद्र । बारह आदित्य । तेरह आदमी इस घरमे रहते हैं (वसन्ति) । चौदह भुवन । पन्द्रह तिथि । सोलह भाग । ठसने मुझे अठारह रुपये (रौप्यमुद्रा, रूप्यकम्) दिये थे ।

‘ऊर्ध्वविंशति’ से ‘परार्द्ध’ पर्यन्त समस्त सह्यावाचक शब्द नित्य एकवचनान्त ।

किन्तु उनकी आवृत्ति होनेसे, अर्थात् ‘द्वि’, ‘त्रि’ प्रभृति सह्यावाचक शब्द उनका विशेषण रहनेसे, अथवा उनकी बहुत्व विवक्षा होनेसे यथासम्भव द्विवचनान्त और बहुवचनान्त होते हैं, यथा—द्वे विंशती, तिस्रो विंशतय इत्यादि ।

सह्यावाचक शब्द विशेष्य और विशेषण दोनो होते हैं । जब स ह्याको समझाते हैं, तब ‘विशेष्य’, और जब सह्याविशिष्ट पदार्थको समझाते हैं, तब ‘विशेषण’ । ये जब विशेष्य होते हैं, तब जिसकी स ह्या कही जाय, उसमे पद्यीका बहुवचन होता है ।*

* ‘एक’से ‘अष्टादशन्’ पर्यन्त शब्द तीनों लिङ्गोमेही व्यवहृत होते हैं । किन्तु सह्या समझानेसे अर्थात् विशेष्य होनेसे झ्झलिङ्ग होते हैं ।

(उदाहरण)

विशेषण		विशेष्य
एक ब्राह्मण—एक ब्राह्मण		ब्राह्मणानाम् एकम् ।
बीम पत्र—विशति फलानि		फलानां विशति ।
बाहंस लटकियां—द्वाविशति बालिका		बालिकानां द्वाविशति ।
पचास फल दो—पञ्चाशत फलानि देहि		फलाना पञ्चाशत देहि ।
सौ घोडे—शतम् अश्व		अश्वानां शतम् ।
सहस्र हाथी—सहस्रं हस्तिन		हस्तिना सहस्रम् ।
कोटि मनुष्य—कोटि मनुष्या		मनुष्याणां कोटि ।
सहस्र दण्डिको { सहस्राय दण्डिभ्यो घन दो { घनं देहि		{ दण्डिणां सहस्राय घनं देहि ।
दो कोड़ी मनुष्य द्वे विशती मनुष्या		मनुष्याणां द्वे विशती ।
दो सौ अश्व द्वे शते अश्व		अश्वानां द्वे शते ।
तीन सौ वृक्ष त्रीणि शतानि वृक्षा		वृक्षाणां त्रीणि शतानि ।
कोठीमे कोठीमे मनुष्य } विशतय मानुषा		मानुषाणां विशतय ।
शत शत अश्व शतानि अश्व		अश्वाना शतानि (वा शतश.* अश्व) ।

सहस्र सहस्र पदाति सहस्राणि पदातय पदातीना सहस्राणि ।

अनुवाद करो—मनुष्यके दो हाथ, बीम अङ्गुलियां । तीस दिनमे
(कृतीया) एक महीना । बारह महीनेमे एक वर्ष । पन्द्रह बालक गेल्ले

* 'चशम्'-प्रत्ययान्त 'शतशम्'-शब्द—अध्यय ।

हैं (क्रीडन्ति) । यह सौ डाब्रका शिक्षक । रावणके लक्ष पुत्र थे (आ-
सन्) । हम ग्राममें बार सौ आदमी रहते हैं (निवसन्ति) । दो कोई
फल दो ।

पूरणवाचक शब्द (Ordinals) ।

द्वि, त्रि प्रभृति सङ्ख्यावाचक शब्दके उत्तर 'तीय'-प्रभृति प्रत्यय क-
रनेसे, द्वितीय तृतीय प्रभृति पूरणवाचक शब्द निष्पन्न होते हैं । वे सङ्ख्या-
वाचक नहीं । पूरण-अर्थमें द्वि और त्रि शब्दके उत्तर 'तीय',* चतुर और
पप् शब्दके उत्तर 'यद्' (थ), पञ्चन्, सप्तन्, अष्टन्, नवन्, दशन् श-
ब्दके उत्तर 'म्' (म), सङ्ख्यापूर्व दशन् शब्दके उत्तर 'ड्' (अ),
विंशति त्रिंशत् चत्वारिंशत् और पञ्चाशत् शब्दके उत्तर 'ड्' और 'तमद्',
और षष्टि प्रभृति समस्त सङ्ख्यावाचक शब्दके उत्तर 'तमद्' होता है,†
किन्तु सङ्ख्यावाचक शब्द पूर्वमें रहनेमें, षष्टि सप्तति अर्थात्ति और नवति
शब्दके उत्तर विकल्पसे 'ड्' होता है‡, यथा—द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ,
पञ्चम, षष्ट, सप्तम, .. दशम, एकादश, .. ऊनविंश वा ऊनविंशतितम, विंश वा
विंशतितम, एकविंश वा एकविंशतितम, .. ऊनत्रिंश वा ऊनत्रिंशत्तम, ..

* 'त्रि'के स्थानमें 'तृ' होता है ।

† 'ड्' प्रत्यय होनेसे,—दशन् शब्दके 'अन्', विंशति शब्दके
'अति', त्रिंशत् प्रभृति शब्दके 'अत्', और षष्टि प्रभृति शब्दके इकारका
स्वप्न होता है ।

‡ 'एक'-मङ्गलपादद्वारा किसीका पूरण नहीं होता । इसलिये उसमें कोई
पूरणवाचक शब्द उत्पन्न नहीं हो सकता । 'प्रथम'-शब्द पूरणवाचक नहीं ।
अथ् (धतु) + अम=प्रथम ; स्त्रीलिङ्गमें—'प्रथमा' ।

ऊनवन्वारिण वा ऊनवन्वारिणोत्तम, . ऊनवन्वारि वा ऊनवन्वारिणोत्तम,...
 ऊनपठितन, * पठितन, एकपष्ट वा एकपठितन, ..ऊनमत्तितन, मन
 तितन, एकमत्तन वा एकमत्तितन, . ऊनामात्तितन, कशात्तितन, एका-
 शीत वा एकानीतितन, ऊननवतितन, नवतितन, एकनवत वा एकन-
 वतितन,...नवनेवन वा नवनवतितन, नवतन एकाधिकततन,...मह-
 सतन, अपुततन, रक्षतन इत्यादि ।

द्वितीय और तृतीय शब्द खोलिङ्गने लाकारान्त, और तद्विभ्र मन-
 म्त्त पूरणवाचक शब्दही खोलिङ्गने ईकारान्त होते हैं; यथा—द्वितीया,
 तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी इत्यादि ।

वचन-निर्णय ।

एकवचनान्त शब्द ।

२०२ । (क) जातिवाचक शब्द, समूहाय शब्द और समष्टिवोच-
 क शब्द (Collective noun) एकवचनान्त; यथा—दर्शनं वा
 सगो गुर; छात्रगण; सेना ।†

* 'ऊन'-शब्द सह्यवाचक नहीं । 'ऊन'-शब्दका अर्थ—हीन, कम ।
 एक-कम पौष्ट=एकौनपौष्ट वा ऊनपौष्ट (एकै न ऊना एकौना, एकौना पौष्टिः
 एकौनपौष्टिः; ऊना चासौ पौष्टियेति ऊनपौष्टि ('एकै न' पद ऊन रहता है) ।

† जातिवाचक शब्दका व्यक्तिगत विभिन्नतामे द्वित्व और बहुत्व
 समझनेसे द्विवचन और बहुवचनमे रूप होता है; यथा—दास्यौ, दास्यः ।
 समूहाय और समष्टिवोचक शब्दका द्वित्व और बहुत्व समझनेसे द्विवचन
 और बहुवचनमे रूप होता है; यथा—छात्रगणा; एते सेने ।

(ख) समाहार-इन्द्र और समाहार द्विगु समास निष्पन्न शब्द एक वचनान्त , यथा—(इन्द्र) पाणिपादम् , (द्विगु) त्रिभुवनम् इत्यादि ।

द्विवचनान्त शब्द ।

(ग) अधिनोकुमारके नाम (अधिनोकुमार, अधिन्, आधिनेय, नासत्य, दस्र), दम्पति और जम्पति शब्द द्विवचनान्त ।

✓ बहुवचनान्त शब्द ।

✓ (घ) दार (पत्नी) अक्षत, लाज और अल तथा प्राण (चाँवन) शब्द पुलिङ्ग और नित्य बहुवचनान्त ।

✓ (ङ) अप्, वपां, सिकता और 'वस्त्रान्त'-वाचक दशा शब्द नित्य बहुवचनान्त ।

✓ (च) अप्सरस्, समनस् (पुष्प), जलौकम् और समा शब्द विकल्पसे बहुवचनान्त ।

✓ (छ) 'गृह' शब्द कर्त्वालिङ्गमे तीनो वचनही होता है, किन्तु पुलिङ्गमे नित्य बहुवचनान्त ।^१

✓ (ज) गौरव समझानेसे, समी शब्द विकल्पमे बहुवचनान्त होते हैं, यथा—'मम गुर' के स्यानमे 'मम गुरव' ।

गौरवार्थमे चरण-पर्यायक शब्दभी बहुवचनमे प्रयुक्त होता है; यथा—रितु श्रीचरणेषु निषेदनम्; देवपादा समादिशन्ति ।

(झ) विशेषणरहित 'अस्मद्' शब्द विकल्पसे बहुवचनान्त होता है, यथा—'अहं ब्रवीमि, आवां ब्रू' के स्यानमे 'वयं ब्रूम' । विशेषण* रहनेसे—दीनोःह ब्रवीमि, दीनौ आवां ब्रू ।

* 'विशेषण'-शब्दसे यहाँ 'उद्देश्य विशेषण' विवक्षित है ।

(ग) जनपदका नाम (मुल्क या जिलाका नाम) बहुवचनान्त , यथा—वङ्गा, कलिङ्गा * ।

(ट) वरा, परिवार प्रभृति अर्थ समझानेसे, व्यक्तिके नामके पश्चात् प्रत्यय-लोप करके बहुवचन प्रयुक्त होता है , यथा—“रघूगामन्वय वक्ष्ते”
२० १ ९ ; “जनकानां पुरोहित ” ।

शुभ करो—स मा सपत्नी मुदा दत्तवान् । स एषु त्रिमुवनेषु
सदस्याधिपतिर्भवति । अधिनीकुमार सराणा भिषक् । दारं मूलं
त्रिवर्गस्य लोके प्राणमिव प्रिय । वर्षाया अप् वर्द्धन्ते । इन्द्रसभायाम्
अप्सरसी वृत्वन्ति । बालका राज भक्षयन्ति ।



अव्यय और उनका व्यवहार

(Indeclinables and their use) ।

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु ।

वचनेषु च सर्वेषु यत्र व्येति, तदव्ययम् ॥

किसी लिङ्गमे, किसी विभक्तिमे, अथवा किसी वचनमे जिन शब्दोंका रूपान्तर नहीं होता, उन्हें ‘अव्यय’ कहते हैं ; यथा—च, वा, तु, हि इत्यादि ।

अव्यय शब्दोंके बीचमे कई विशेष्य और कई विशेषण । स्वर, अन्तर्, प्रातर, दिवा, सायम्, नक्तम्, अद्य, ह्यप्, अस्, यदा, यत्र,

* जनपद-पर्यायक शब्द एकवचनान्त ; यथा—वङ्गदेश, कलिङ्ग विषय ।

तदा, तत्र, इदानीम्, अबुना इत्यादि द्रव्यवाचक अव्यय-शब्द विशेष्य* ।
 ङ्घ्रैम्, नोचैन्, शनैम्, मृषा, मिथ्या, वृथा, नाना इत्यादि गुणवाचक
 अव्यय-शब्द विशेषण । च, वा, तु, हि प्रभृति कई अव्यय विशेष्यर्था
 नहीं, विशेषणभी नहीं, केवल 'अव्यय'के नामसे परिचित ।

१ च (और, व And—Copulative conjunction) ।

हिन्दी वा अङ्गरेजीमे जिस पदके पूर्वमे 'और' अर्थका पद
 बैठता है, सस्मृतमे उसी पदके पश्चान् 'च' व्यवहृत होता है ;
 यथा—(राम और लक्ष्मण) रामो लक्ष्मणश्च, (राम, सीता
 और लक्ष्मण) राम सीता लक्ष्मणश्च, (तू और मे) त्वम्
 अहञ्च ।

२ अपि (भी Also, too, even) ।

(मैं जाऊगा, वह-भी जायेगा) अह यास्यामि, सोऽपि या-
 स्यति । (धातुओंमे विद्वान्लोग-भी चूकते हैं) धातुषु विद्वान्सोऽपि
 भ्रान्त्यन्ति ।

३ वा (अथवा, या Or—Alternative or
 disjunctive conjunction) ।

हिन्दी या अङ्गरेजीमे जिस पदके पूर्वमे 'वा' अर्थका पद बैठता

* 'प्रानर्'से 'अधुना'-भार्यन्त तेरह शब्द अधिकरणकारकमेही प्रयुक्त
 होते हैं ।

† प्रत्येक पदका प्राधान्य अथवा प्रत्येक क्रियाकी समकालता समझानेके
 लिये प्रत्येक पदके पीछे 'च' बैठायया जा सकता है, यथा—रामश्च लक्ष्मणश्च;
 पपात् च ममार च ।

है, संसृतमे उसी पदके पश्चान् 'वा' प्रयुक्त होता है* । यथा—
(मै या तू) अह त्व वा , (अन्न या व्यञ्जन) अन्न व्यञ्जन वा ।

वितर्कस्थलमेभी 'वा' व्यवहृत होता हे, यथा—(यह जान-
कर वह [शायद्—सम्भवत] क्रुद्ध हो सकता है) एतद्विदित्वा
स वा कुपितो भवेत् ।

प्रश्नार्थक सर्वनामके साथभी सम्भावना-अर्थमे 'वा'-शब्द-
का व्यवहार होता हे, यथा—“कस्य वा अन्यत्र वचमि मया
स्थातव्यम् ?” काद० (और किसका वाक्य मै पालन करूंगा ?),
“परिवर्त्तिनि ससारे मृत को वा न जायते ?” पञ्च० १.२८.
(परिवर्त्तनशील मसारमे मरकर कौन जनमता नहीं ?) । 'लो-
प्त्रेण गृहीतस्य कुम्भीलकस्यास्ति वा प्रतिपचनम् ? ' विक्रमो० २ ।

हिन्दीमे 'नहीं तो', और अङ्गरेषीमे either—or, whether
—or के अनुवादमे 'वा'-शब्दका प्रयोग प्रत्येक पदके अन्तमे
करना चाहिये ; यथा—(वह नहीं तो मै जाऊंगा) स वा अह
वा यास्यामि ।

५ तु (परन्तु, लेकिन But, on the contrary—
Adversative particle) ।

'तु'-शब्द वाक्यके आदिमे नहीं बैठता, किसी पदके पश्चान्
इसका प्रयोग होता ही, यथा—(वह जाय, परन्तु मै नहीं जा-

* अथवा, त्रिवा, यद्वा, यदिवा—ये शब्द उम पदके पूर्वमेही
बैठते हैं ।

† विन्तु, परन्तु—इनका प्रयोग वाक्यके आदिमेही होता है ।

कंगा) स यातु , अहन्तु न यास्यामि । “स सर्वेषां सुरानां प्राय
अन्त ययौ , एकन्तु सुवमुखदशनमुख न लेभे” काद० । (ययौ—
गया, प्राप्त हुआ, लेभे—लाभ किया) ।

५ हि (ही—निश्चय Indeed, surely, only,
alone—to emphasize an idea) ।

‘हि’-शब्द वाक्यके आदिमे नहीं बैठता, यथा—“सकरुणा
हि गुरवो गर्भरूपेणु” उत्तर० (गुरुजन शिशुओंमे सकरुणही होते
हैं), ‘मूढो हि मदनेन आग्रास्यते’ काद० (मूर्खकोही काम
सताता है) । हेतु-अर्थमेभी ‘हि’ होता है ।

६ एव (ही—अथभारण Only, alone) ।

(हसही जलसे दूधको निकालता है) हम एव जलाद्दुग्धम
उद्धरति ।

७ न, नो, मा* (नहीं Not) ।

वे प्रायश क्रियापदके पूर्वमे ही बैठते हैं, यथा—

(ऐमा प्रयोग युक्त नहीं) ईत्क् प्रयोगो न युज्यते, (अथवा)

न युक्त ।

(नहीं जाऊगा) नो गमिष्यामि ।

(मत कर) मा कुरु ।

✽ प्रश्नार्थक ‘ना नहीं’ और ‘न्या’—इनका अनुवाद ‘न वा’
और ‘किम्’ ‘अदि’ द्वारा करना होता है, इनमेमे ‘अपि’ का प्रयोग

* मा—निवारणार्थक (A particle of prohibition),

न—अस्वीकारार्थक, वा अमावार्थक (A particle of negation) ।

वाक्यके प्रारम्भनेही होता है, यथा—(तेरा पुत्र है या नहीं ?)
 नव पुत्रोऽस्ति न वा ? , आपके पिता जीते हैं क्या ?) भवत
 पिता जीवति किम् ? (अथवा) अपि जीवति ते पिता ? ; (आप
 अच्छे हैं तो ?) अपि कुशली भवान् ? (अथवा) अपि रुग्णं
 भवत ?

✓ 8- इव ।

उपमागतक 'तुल्य' 'नदरा' (Like) और उत्प्रेञ्जाव्य-
 व्जक 'जैसा' 'सा' 'मानो—इन्की सदृश 'इव'-शब्द-द्वारा की
 जाती है, यथा—(वह सिंहके तुल्य देखता है) स सिंह इव अव-
 लोकयति , (वज्रके निनादमे पृथ्वी कम्पितसी होती थी) वज्रस्य
 निनादेन पृथिवी कम्पितेव बभूव ।

नाचे हिन्दी-अङ्गरेजी-अर्थ और उदाहरण-समेत प्रचलित अन्वय-
 शब्द लिखे जाये हैं ; यथा—

<p>✓ अब, इन समय, आजकल Now, now-a-days</p>	<p>} अधुना, इदानीम्, एतर्हि, संप्रति, साम्प्रतम् ।</p>
--	---

(अब क्या करना चाहिये ?) अधुना किं विधेयम् ? (आजकल
 ब्राह्मणयोग वेद नहीं पढ़ते) साम्प्रतं ब्राह्मणा वेद न अधीयते ।

✓ अभी Even now—अधुनाऽपि, इदानीमपि ।

(अभी है) अधुनाऽपि तिष्ठति ।

अभी Just now—इदानीमेव, अधुनैव ।

(अभी जा) इदानीमेव गच्छ ।

✓ कब, किस समय When—कदा, कर्हि ।

५ (वह कब आया ?) कदा म आयात् ?

कभी, किसी समय At some time—कदाचिन्, कर्हिचिन्,
कदाचन, जातु, कदाऽपि ।

(कभी यह वृत्तान्त प्रकाशित होगा) कदाचिदपि वृत्तान्तो व्यक्तो
भवित्यति, (कभी मिथ्या नहीं बोलना चाहिये) न कदापि अग्रत
वक्तव्यम् । “न जानु काम कामानामुपभोगेन शाम्यति” मनु० २
१४ (भोग्यपदार्थोंके उपभोगसे कभी कामना शान्त नहीं होती) ।

जब, जिस समय When—जदा, यर्हि
तब, उस समय Then—तदा, तदानीम्, तर्हि

(जब वह पढ़ता है, तब किमीके साथ बात नहीं करता) यदा
स पठति, तदा केनापि सादं न आल्पति । (वह उस समय ध्यानस्थ
था) स तदानीं ध्यानस्थ आसीत् ।

जबही Just when—यदैव ।

(जबही—जभी—होता है, तबही—तभी—मरता है) यदैव भवति,
तदैव क्रियते ।

जब-तक As long as—यावन्
तब-तक — तावन्

(जब-तक वह नहीं आवे, तब तक पशे) यावत् स नायाति, तान्त् पठ ।
उसी समय Instantly, immediately—सद्य, तत्क्षणम्,
तत्क्षणम्, तत्कालम्, सपदि ।

(भक्ति और प्रकाशताके साथ ईश्वरका स्मरण मनुष्यको उसी समय शुद्ध
करता है) भक्त्या प्रकाशते च ईश्वरस्य स्मरणं मानवस्य पुनाति ।

शीघ्र *Soon*—अचिरान्, अहाय, द्राक्, द्रुतम्, मङ्क्षु, मटिति, आशु, अञ्जसा ।

(वह शीघ्र भायेगा) स अचिरात् आगमिष्यति । (यह चिकित्सा शीघ्र को जाय) क्रियतामेतत् चिकित्सित द्राक् ।

अचानक *Suddenly, all at once*—अकस्मान्, सहसा, एकपदे, अकाण्डे ।

(अचानक काम नहीं करना) “सहसा विदधीत न क्रियाम्” भा० २ ३०, (मुझे अचानक छोड़ जाते हो ?) माम् एरुपदे विहाय गच्छसि ?

सर्वसमय *Always*—सदा, सर्वदा, अभीष्टणम्, शश्वन्, अजन्मम्, अनिशम्, निरन्तरम् ।

(उत्तम छात्र सर्वसमय पढता है) शश्वत् पठति सच्छात्र, (सर्वसमय सत्य कहना) सदा सत्यं ब्रूयात् ।

एकसमय *Once upon a time*—एकदा ।

(एकसमय नारद आत्मज्ञानने लिये सनत्कुमारके पास गया) एकदा नारद आत्मज्ञानाय सनत्कुमारम् उपमसाद ।

अन्यसमय *At another time*—अन्यदा ।

एकसाथ *Simultaneously*—युगपत्, एकदा, समम् ।

(एकसाथ सब हसते हैं) युगपत् सर्वे हसन्ति । “एकदा न विगृह्णीयाद्बहून् राजा विवादिन” हितो० ४ १६ (राजा एकसाथ बहुतरे विवादकारियोंके साथ बलह न करे) ।

बहुधा, अकसर *Mostly, generally, very often*—

✓ प्रायश, प्रायः, प्रायेण ।

(शुभ कर्ममें अकस्मत् बहुत विघ्न होते हैं) शुभे कर्मणि प्रायश.
बहुव अन्तराया भवन्ति ।

✓ प्राचीन समयमें In former times—पुरा ।

(पूर्वकालमें ऋषिलोक तपोवनोमें निवास करने थे) पुरा ऋषय
तपोवनेषु न्यवसन् ।

✓ आज To-day—अद्य ।

(आज मेरा जीवन सकल) अद्य मे सकल जीवितम् ।

✓ आजभी To this day, even now—अद्यापि ।

(आजभी दग्धप्राण नहीं निःश्लते !) नाद्यापि दग्धप्राणा प्रया-
न्ति (नियांन्ति वा) ।

✓ आजही This very day—अद्यैव ।

(आजही वह जायेगा) अद्यैव स यास्यति ।

✓ कल (गत), पूर्वदिन Yesterday—ह्य, पूर्वेषु ।

(कल उसकी विट्ठी पायी) ह्य तस्य विट्ठी प्राप्ता ।

✓ कल (आगामी), परदिन To-morrow—श्च, परेषु, परेष्विवि ।

(कल मैं विद्यालयको नहीं जाऊंगा) श्च अहं विद्यालय न यास्यामि ।

✓ परसों Day after to-morrow—परश्च वा परश्च ।

(परसों हमारी परीक्षा होगी) परश्च अस्माकं परीक्षा भविष्यति ।

✓ उभय दिन On both days—उभयेषु वा उभयद्यु ।

(दोनो दिन पढ़ी है) उभयेषु पठ्यो विद्यते ।

✓ इस वर्षमें In the present year—एषाम् ।

(इस वर्षमे प्रचुर शस्य उत्पन्न हुआ है) ऐषम प्रभूत शस्यम्
उत्पन्नम् ।

गतवर्षमे Last year—परन् ।

(गतवर्षे यह परीक्षोत्तीर्ण हुआ) परन् स परीक्षोत्तीर्णं अभूत् ।

गतवर्षके पूर्ववर्षमे The year before last—परारि ।

(गतवर्षके पूर्ववर्षमे दुर्भिक्ष हुआ था) परारि दुर्भिक्ष सञ्जातम् ।

दिनमे In the day-time—दिवा ।

“मा दिवा स्वाप्सो ” (दिनमे मत सो) ।

प्रात कालमे In the morning—प्रात , प्रगे ।

(प्रात कालमे स्नान करके सन्ध्याकी उपासना करो) प्रात स्ना-
त्वा सन्ध्याम् उपास्व ।

सायाहमे, शामको In the evening—सायम् ।

(सायकालमे भोजन, शयन और अध्ययन नहीं करना चाहिये)
सायं भोजन शयनम् अध्ययनञ्च न कर्तव्यम् ।

रात्रिमे At night—दोषा, नक्तम् ।

(रातमे अधिक नहीं जागना) नक्त नाधिक जाग्यात् ।

पहले, पूर्वमे Before, at first—पूर्वम्, प्राक् ।

(एक मास पहले यह घटना हुई थी) मासात् पूर्वं वृत्तम् इदं मह-
दितम् (सदा पञ्चमीके साय) , (ज्ञानदाताको पहले अभिवादन
करना चाहिये) ज्ञानदातार पूर्वम् अभिवादयेत् ।

पीछे Afterwards—पश्चान्, परस्तात्, अनु ।

(पीछे यह जाना गया) परस्तात् इदम् अवगतम् । (सन विद्यार्थी

अध्यापकते पीठे बैठे) अध्यापकम् अनु उपविशु सते दिद्यार्थिन ।
पीछे, पश्चाद्भागमे Behind—पश्चान्, पृष्टत, अन्वक्, अनुपदम् ।

(तेरे पीठे पुस्तक है) तत्र पश्चात् पुस्तक वर्त्तते । “(वृद्धान्)
गच्छत पृष्टतोऽन्वियान्” मनु० ४ १०४ (जाते हुए वृद्धोंका पृष्टदेशमें
अनुगमन करना चाहिये) । “ताम् अन्वग्ययौ मध्यमलोकापाल ”
२० २ १६ (द्वितीयाके साथ) ।

आगे, सामने Ahead, before, in front—पुर, पुरत,
पुरस्तान्, अग्रत ।

(सामने चन्द्रमा चमक रहा है) पुरतो भाति चन्द्रमा ।

अनन्तर Then—अथ, अथो ।

(अनन्तर उसने कहा) अथ सोऽब्रवीत् ।

कुछ पहले A little before—अनतिपूर्वम्, किञ्चिद् पूर्वम् ।

(थोड़ा आगे वर्षा हुई) अनतिपूर्वं वृष्टिर्भवत् ।

इससे पीछे After it—अत परम् ।

(इससे पीछे मेरा कहना निरर्थक है) अत पर मम नापण निर-
र्थकम् (व्यर्थ वा) ।

उससे पीछे After that—तत परम्, तत्परम् ।

(उससे पीछे वह चला गया) तत पर स प्रस्थित ।

जिससे पीछे After which—यत परम्, यत्परम् ।

(शिक्षकने उस छात्रको दण्ड दिया था, जिससे पीछे उसने दुष्टता छोड
दी) शिक्षकस्तं छात्रम् अदण्डयन्, यत पर स दुर्वृत्ता परिहृतवान् ।

दीर्घकाल Long—चिरम्, चिरेण, चिराय, चिरान्, चिरस्य ।

(जो कर्त्तव्य पालन नहीं करता, वह दीर्घकाल दुःख पाता है) य
कर्त्तव्य न पालयति, स चिर दुःख भजति । (बच्चा, तैरे ऊपर मैं प्रमत्त
हूँ; बहुत दिन जाता रह) "प्रतीताशम्भि ते सात ! विराय जीव" ।

कहाँ Where—कुत्र, कुत, क ।

(कहाँ तेरी दया ?) कुत्र ते दया ?

"ईदृग्विनोद कुत ?" शकु० २ ० (ऐसा जानन्द कहाँ ?) ।

(कहाँ जाता है ?) क्व गम्यते ?

कहाँसे Whence—कुत ।

"कस्य त्वं वा कुत आयात ?" (तू किमिच्छा है, और कहाँसे
आया ?)

कहीं Anywhere—कुत्रापि, कुत्रचिन्, कुत्रचन, क्वचिन्, क्वचन ।

(ऐसी पुस्तक ज़ौर कहाँ नहीं है) एतादृक् पुस्तक नाभ्यत्र कुत्रापि
दत्तते ।

जहाँ, जिनमे Where—यत्र }
तहाँ, तिसमे There—तत्र }

(जहाँ विद्वान् नहीं, तहाँ वाम नहीं काना) यत्र विद्वान् नास्ति,
तत्र न वसेत् ।

वहाँसे Thence—तत्र ।

जहाँ कहीं Anywhere—यत्र कुत्रचिन् ।

(जहाँ कहीं रहने दो) यत्र कुत्रचिन् तिष्ठतु ।

यहाँ, इसमे Here—अत्र, इह, इत् ।

(इसमे दोष नहीं देखता हूँ) अत्र दोष न पश्यामि । (यहाँ बैठ)

इतो निषोद ।

दक्षिणदिशाम्, दहिनी ओर To the south, on the right side of—दक्षिणेन (द्वितीया और पट्टीके साथ) ।

(घरके दक्षिणमें पुष्पोद्यान है) गृह दक्षिणेन पुष्पोद्यान विद्यते ।

“दक्षिणेन वृक्षवाटिकाम् आलाप इव श्रूयते” शकु० १ (बागीचेके दक्षिणमें बातचीतसी हनी जाती है) ।

(गाँवके दक्षिणमें) ग्रामस्य दक्षिणेन ।

उत्तरदिशाम् Northward, on the north side of—उत्तरेण (द्वितीया और पट्टीके साथ) ।

(घरके उत्तरमें जलाशय) गृहम् उत्तरेण जलाशय ।

(निषधदेशके उत्तरमें) निषधस्योत्तरेण ।

सत्र दिशाओम्, चारों ओर In all directions, on all sides—सर्वतः, समन्ततः, समन्तान्, परितः, अभित ।

(सत्र दिशाओम् वायु चलती है) सर्वतो वायुर्वहति । (सूर्यकी

चारों ओर कहाँ अन्धकार ?) सूर्यम् अभित तुत्रान्धकार ?

(२वाके साथ) । (जिसके चतुष्पाशमें) “यस्याभित ” इति

पट्टी उत्तर० ६. ३६

उपर Above, over, upon—उपरि, उपरिष्ठान् ।

(अथ मन्तकके उपर सूर्य है) इदानीं मस्तकस्योपरि भास्करो

वर्तते । (वृक्षके उपर क्यूतर था) वृक्षस्योपरि कपोत आसीत् ।

“इदम् उपरिष्ठात् व्याख्यातम्” (पश्चात् इसकी व्याख्या की गयी) ।

नीचे Below, beneath, under—अधः, अधस्तात् ।

(अधिक बटवृक्षने नीचे ध्रम दूर करता है) बटविटपिन अधस्तात्
ध्रम शमयति पान्थ ।

ऊँचा, उन्नत High, loudly—उच्चैः, उच्चकैः ।

(अपना उच्च कुल विचारकर नीचकर्ममें प्रवृत्त मत हो) आत्मन उ-
च्चैः कुल विचार्य नीचकर्मणि मा प्रवर्त्तन्व्य । (उसने ऊँचा हसकर
कहा) स उच्चैर्विहस्य अवदत् ।

‘अत्यन्त’-अर्थमें भी ‘उच्चैः’-शब्द प्रयुक्त होता है, यथा—“विदधति
भयमुच्चैर्वीक्ष्यमाणा वनान्ता” ऋतु० १ २२ (वनप्रदेश दृश्यमान
होकर अत्यन्त नय उत्पादन करते हैं) ।

नीचा, निम्न Low, in a low tone—नीचैः ।

“नीचैर्गच्छत्युपरि च दत्ता चक्रनेमिक्रमेण” मेघ० १०९ (चक्रके
प्रान्तभागकी रीतिसे मनुष्यकी अवस्था कभी नीचे दर्भों उपर
जाती है) ।

‘नीचैः शस’ (धीरे बोल) ।

भीतर Inside—अन्तः ।

बाहर Outside—बहिः ।

(घरके भीतर) अन्तर्वेदमनि (सतमीके साथ) ।

(प्राणियोंके भीतर और बाहर) “बहिरन्तश्च भूतानाम्” गीता-
१३ १० (पृथ्वीके साथ) ।

(नगरमें बाहर) उराद्बहिः (पञ्चमीके साथ) । (बाहर जा)
बहिर्गच्छ ।

बीचमें Between, in the middle—अन्तरा ।

(राम और श्यामके बीचमे बह है) राम इजामन्नान्तरा मोऽ-
स्मि । “मेनमन्तरा प्रतिवर्नात” शकु० ६ (हमको बीचमे
मन रोको) ।

पान ~~Near~~, by—समया, निकषा । आरान् ।

(मेरे पास रह) ना निकषा तिष्ठ ।

दूर ~~Far~~—आरान् । ✓

एकस्थानमे ~~Together~~—एकत्र ।

(वे एकस्थानमे रहते हैं) एकत्र ते तदृन्ति ।

प्रत्यक्षमे ~~In the presence of~~—साक्षान् ।

(प्रत्यक्षमे कहूंगा) साक्षात् वदिष्यामि ।

“साक्षाद्दृष्यम्” (मूर्तिमान् इत्यर्थं) ।

द्विपेक्षिणे, निर्जनमे ~~Secretly~~, in private—रह, उदाशु, मिथ ।

(वे द्विपेक्षिणे बात करते हैं) ते रह आल्पन्ति । (छिपकर रहो)

उपाशु वम ।

(उमन उमे निर्जनमे कहना आरम्भ किया) म त मिथो वक्तु

प्राक्रमत ।

धर उधर ~~Here and there~~—इतस्तत्र, इतश्चेतश्च ।

(धर उधर इधर उधर दौरते हैं) सास्त्रासृगा इतस्तत्रो धावन्ति । “ह
सर्व धनलुब्धानाम् इतश्चेतश्च धावताम् ?” (इधर उधर दौरते हुए
अर्थलोभियोंको सर्व कहाँ ?) ।

ओर ~~Towards~~—प्रति (द्वितीयाके साथ) । ✓ ६४

(वह शिशु सुन्दर पक्षीको ओर देखता है) अमौ शिशु सुन्दर

पक्षिण प्रति दृष्टिं निक्षिपति ।

परलोकमे In after life—प्रेत्य, अमुत्र, परत्र ।

“यावज्जीव च तत् कुर्याद्भूयेनामुत्र सुखं वसेत्” (सारा जीवन वह काम करना चाहिये, जिससे परलोकमें सुखसे रहे) । “मन्तति शुद्ध वंदया हि पात्रेह च शर्मणे” २० १ ६९ (शुद्धवशोत्पन्न मन्तान इहलोक और परलोकमें सुखसे लिये होता है) ।

कैसा, किस प्रकार How—कथम्, कथञ्छारम् ।

(मैं कैसे तुझपर विश्वास करूँ ?) कथम् अहं त्वयि विश्वासं कुर्याम् ? (यह कैसे सम्भव है ?) कथञ्छारम् इदं सम्भवति ?

क्यों Why—कथम्, किम्, कुत ।

(तू क्यों हसता है ?) कथं हससि ?

(क्यों उत्तर नहीं देता ?) किं नोत्तरयसि ?

(क्यों नहीं पढ़ता है ?) कुतो न पठसते ?

जैसा, जिस प्रकार As—यथा
तैसा, तिस प्रकार So—तथा }

(जैसा वृक्ष, तैसा फल) यथा वृक्षस्तथा फलम्,

(तैसा बीज, तैसा अङ्कुर) यथा बीजं तथाऽङ्कुरः ।

ऐसा, इस प्रकार Thus—इत्यम्, एवम् ।

(यह ऐसा कहता है) स इत्थं वदति ।

किमी प्रकारसे, कष्टमे Somehow, with great difficulty—कथमपि, कथञ्चिन्, कथञ्चन ।

(दरिद्र किमी प्रकारसे जीवन यापन करता है) दीनं कथमपि

जीवनं यापयति ।

जिस किसी प्रकारसे Anyhow, in whatever way—

यथाकथञ्चिन्, यथाकथमपि, यथातथा ।

(जिन किसी प्रकारसे विद्या उपार्जन करना) यथाकथञ्चिन्
विद्याम् उपार्जेत् ।

अच्छे प्रकारसे, बहुत अच्छा Well, very nice—सुष्ठु, मन्मथ्,
साधु ।

(हमने इस कार्यको अच्छी तौरसे किया) म कृत्यमिदं सुष्ठु
सम्पादितवान् । (बहुत अच्छा गाया) साधु गीतम् । (जा-
वा)—नाबाद ।) साधु साधु ।

यथार्थरूपसे, ठीक, यथायोग्य Really, truly, rightly—
यथार्थत्, यथाग्रयम्, यथातथम्, यथास्वम्, चरतुत,
अद्वा, अञ्जमा ।

(समाजमें विद्वान् यथार्थरूपसे कहता है) यथातथ वक्ति समाज
विद्वान् । “यथाश्रुत यथादृष्टं संमतेवाञ्जसा वद” मनु० ८ १०१
(जैसा सुना है, जैसा देखा है, समी वीक कहो) । [यत्सत्यम्—
सर्व पृथो तो] ।

सर्व प्रकारसे In every way, by all means सर्वथा ।

(जिन कालने जो करना चाहिये, सर्व प्रकारसे उतेही करना)
सर्वथा कालोचितमेव कर्तव्यम् ।

नहीं तो; अन्य प्रकार Or else, otherwise—अन्यथा ।

(तू जा, नहीं तो बह नहीं जायेगा) त्व याहि, अन्यथा स न

यास्यति ।

“स्वभावो नोपदेशेन शक्यते कर्तुमन्यथा” पञ्च० (उपदेशसे स्वभाव अन्यप्रकार नहीं किया जा सकता) ।

तीन प्रकार In three ways, or in three parts—त्रिधा ।

(तीन प्रकार उपाय) त्रिधा गति । “एकैव मूर्तिविभिदे त्रिगता” कु० ७ ४४ (वह एकही मूर्ति तीन प्रकारसे विभक्त हुई) ।

चार प्रकार In four ways—चतुर्धा ।

(इससे चार भाग करके रखो) इस चतुर्धा विभक्त्य स्यात्पय ।

धीरे Slowly—शनै ।

(धीरे चल) शब्दब्रज ।

धीरे धीरे Slowly—शनै शनै ।

(कछदा धीरे धीरे गया था) कूर्म शनै शनैरगच्छत् ।

बलपूर्वक, जबरन Forcibly—प्रसह्य ।

(पुलिस चोरको बलपूर्वक पकड़के अदालतमे ले जाती है) रक्षा-

पुरया नलिम्बुध प्रसह्य धृत्वा अधिहरण प्रापयन्ति ।

एकवार Once—सहृन् ।

(प्यवार देखो) सहृन् अवलोक्य ।

दोबार Twice--द्वि ।

(इस वाक्यको दोबार पढो) वाक्यमेतत् द्वि पठ ।

तीनवार Thrice—त्रि ।

(तीनवार आचमन करो) त्रि आचाम ।

चारवार Four times—चतु ।

(इस औपम्यको चारवार विलाना) औपम्यमिदं चतुः पापय ।

फिर Again—पुन, भूय ।

✓ (फिर ऐसा मत कहो) एवं भूयो मा बोच ।

बारवार Again and again, repeatedly—पुन पुन,

✓ भूयोभूय, असकृन्, अभीक्ष्णम्, मुहु, मुहुर्मुहु ।

(अर्थात् विषयोंका बार-बार बालोचन करना चाहिये) अशोत-
विषयाणां मुहुरालोचन विधेयम् ।

भाग्यवशान् Fortunately, (an exclamation of joy or gratification)—दिष्ट्या* ।

“दिष्ट्या प्रतिहतं दुर्जातम्” मालती० ४ (भाग्यवशात् सद्गुण-
मिदा) । “दिष्ट्या सोऽय महाबाहुरङ्गनानन्दवर्द्धन ” उत्तर० १ ३२ ।

लिये For, on account of—अर्थे, हृते (पत्नीके साथ
✓ अथवा समाममे) । ✓ २५

“आत्मार्षे पृथिवीं त्यजेत्” (अपने लिये पृथिवी छोडना) ।

(किसके लिये अर्थ सञ्चय करते हो ?) कस्य कृते विस सञ्चिनोपि ?

“काव्य परातेऽर्थं कृते” (काव्य यश और अर्थके लिये) काव्यप्रकाश १ ।

इसलिये Hence, for this reason—इत ।

जिस कारण Since—यत्, यन्, हि

जिस कारण Therefore—तत्, तन्

(जिस कारण मैं केवल उम्मीकी चिन्ता करता हूँ, तिम कारण बैसा
स्वप्न दीक्ष पडा) यतोऽहं केवल तदेव चिन्तयामि, ततो दृष्टस्तथा-

* ‘दिष्ट्या’ इति आनन्देऽप्ययम् ।

विद्य स्वप्न ।

निश्चित Surely—नूनम्, अवश्यम्, ध्रुवम्, खलु, किल, एव ।

(यह निश्चित परीक्षामें उत्तीर्ण होगा) नूनम् अनेन परीक्षोत्तीर्णनं भाव्यम् ।

यदि If—चेत्, यदि ।

(यदि वह आए) स चेत् आपाति ।

['चेत्' वाक्यमें आरम्भमें नहीं देखा । 'यदि'के पश्चात् 'तदा' 'तर्हि' और कहीं कहीं 'तत' 'तत्' अथवा 'अत्र' व्यवहृत होता है ।]

या (वितर्क, सशय) Whether—or (doubt)—आहो, आहोस्विन्, उत, उताहो, किमु, किमुत, नु ।

(देव या गन्धर्व ?) देव आहो गन्धर्व ? (यह रक्षो या सांप ?) रज्जुरियम्, उत सर्प ? "किमु विपत्रिसर्पं किमु नद ?" उत्तर० १-३६ । "स्वप्नो नु माया नु मतिभ्रमो नु ?" शकु० ६ ० ।

क्या (प्रश्नमें) Interrogation—किम्, किमु, कश्चित्, अपि, किंस्विन् (वितर्क) ।

(वह आयेगा क्या ?) स किम् आगमिष्यति ? "कश्चिन्मृगागान-नषा प्रसूति ?" २० ६ ७ (हरिणिर्मोक्षी सन्तान अच्छो है तो ?) ।

[कश्चित् "कामप्रवेदने"—इष्टार्थप्रदाने, स्वामिनापनापनाथं कृते प्रदाने] ।

हाँ Yes—वाढम्, अथ किम्, ओम्, एवम्, परमम् ।

"वाणक्य—चन्द्रदास । एष ते निश्चय ?

चन्द्र—वाढम्, एष मे स्थिते निश्चय ।" मुद्रा० १. ।

“अपि वृषलम् अनुरक्ता प्रकृत्य १

अथ किम् ?” मुद्रा० १ (वृषलम्—चन्द्रगुप्तम्) ।

“सीता—अहो ! जाने, तस्मिन्नेव काले वत्ते ।

राम—एवम् ।” उत्तर० १ (जाने—जानता हूँ, वत्ते—हूँ) ।

“तत परममित्युक्ता प्रतम्ये मुनिमण्डलम्” कु० ६ ३५ (ओम् इत्युक्ता—अनुमन्य इत्यर्थः), (उक्ता—कहकर, प्रतम्ये—प्रश्रयान किया ; परमम्—अच्छा) । [अच्छा—बादम्] ।

(हाँ, स्मरण हुआ) भाँ ज्ञातम् ।

अत्यन्त ~~Very~~, very much—अति, अतीव, अत्यन्तम्, नित-
राम्, सुतराम्, बलवन्, निकामम्, प्रकामम्, परम्, परमम् ।
(उसकी साधुता देखकर मेरा चित्त अत्यन्त प्रसन्न होता है) तस्य
साधुता वाक्ष्य नितरां प्रसोदति मे चेत । “क्षतरा दयालु” १०
२ ६२ । “बलयत् दूयमान हृदयम्” शकु० ५ ३१ (दूयमानम्—
पणितम्, सेदयुक्तम्) । “प्रकामसंप्रीयत यज्वना प्रिय (हरि)”
माघ० १ १७ (अप्रीयत—प्रीत हुआ) ।

कुछ, थोडा ~~Somewhat~~, a little—किञ्चिन्, किञ्चन, ईषन्,
मनाक् ।

“(स सिंह) किञ्चिद्बिहस्वार्थपति बभाषे” २० २ ४६. (उस
हिंदने थोडा हसकर राजाको कहा) । “रे पान्य । विद्वलमना न
मनागपि स्या” भाषिनी० १ ३६. (रे पणिक, कुजर्मी
व्याकुलहृदय मत हो) ।

बुद्ध अन्धा, किसीकी अपेक्षा उत्कृष्ट ~~Better than~~—वरम् ।

(परसे वन अछडा) गृह्णात् वनं वाम् ।

“वर मौन काव्यं, न च वचनमुक्त यद्वृत्तम् ”

“वर भिक्षादित्य, न च परधनास्वादनसुखम्”

“वर प्राणत्यागो, न पुनरधमानामुपगम ” हितो० १ ।

शुप Quiet, silently—तूष्णीम्, जोषम् ।

(चुप रह, जब तक मैं हूँ) तूष्णीं भव—जोषम् आसुम्ब—यावत्
अहम् आरुर्गंधामि । (आप क्यों चुप हो रहे ?) किं भवांस्तूष्णीमास्ते?

निष्प्रयोजन No need of, (having a prohibitive force)—

अलम् (तृतीया अथवा ‘त्का’-प्रत्ययान्त पदके साथ) । कृतम्
(श्याके माय) ।

{ विवादमे प्रयोजन नहीं } विवादनालम् । “अलम् अन्वयः
गृहीत्वा” मालविका० १२० (अन्यप्रकार मत समझो) । “कृतं
सन्देहेन” शकु० १ (सशय नहीं करना) ।

समर्थ Able, competent—अलम् (चतुर्थी अथवा तुमन्त
पदके साथ) ।

(वह विचारमे समर्थ) अल म विचाराय ।

“आलप्यलनिद, वभ्रोर्यत् न शरानपाहरत् ।

कथाऽपि छलु पापानामलमध्येमे यतः ॥” माघ० २४० ।

“लोकान् अल दार्धुं हि तत्तप ” कु० २६६ (इसकी तपस्या
लोकोंको जलानेमे समर्थ) ।

[पथ्यांस, कार्पा—अलम्] ।

निरर्थक In vain—शुधा, मुधा ।

(निरर्थक समय नष्ट मत करो) वृथा अनेहम् मा क्षपय ।

“वृथा श्रम ” ।

युक्त, उचित Rightly, properly, justly—स्थाने, साम्प्रतम् ।

“स्थाने त्वा स्थावरात्मान विष्णुमाहु ” कु० ६ ६७ (तुम्ह—
हिमालयको—तो स्थावररूपी विष्णु कहते हैं, सो युक्तही है) ।

“सेवा लाघवकाशिणीं कृन्धिष्य स्थाने इववृत्तिविदु ” मुद्रा० ३ १४ ।

टेटा Crookedly, obliquely—साचि, तिर, तिर्यक् ।

(वह मुझे तिराज देखता है) स मा साचि विलोक्यति ।

झूठ Falsely—निध्या, मृषा ।

(झूठ मूठ किमीके डपर दोष नहीं लगाता) न कन्मिन्नपि मृषा
दोषम् आरोपय । “यदुत्राच न तन्मिध्या” २० १७ ४२ (वह जो
वचन कहता, सो झूठ नहीं होता) ।

आप, खुद Oneself—स्वयम् ।

(अपना काम आपही करना चाहिये) स्वसीय कर्म स्वयमेव
सम्पाद्यम् ।

प्रकारा In sight—प्रादु, आवि ।

भू, कृ और अस् धातुके साथ व्यवहृत होते हैं, यथा—प्रादु-
र्भवति, प्रादुरस्ति, आविर्भवति, आविरस्ति (प्रकाशित
होता है) । प्रादुष्करोति, आविष्करोति (प्रकाशित करना है) ।
(दिवाकर प्रादुर्भूत हुआ) प्रादुरासीद्दिवाकर ।

अदर्शन—अस्तम् ।

गम्, या, इ और आप् धातुके साथ व्यवहृत होता है, यथा—

अस्त गच्छति, अस्तं याति, अस्तम् एति, अस्त प्राप्नोति ।

(सूर्यं डिपता है—मदश्य होता है) रवि अस्त्रमेति ।

ह्यि (ऐद्) Alas ! ah !—हन्त, वत, अहह, अहो, अहोयत, हा, कष्टम् ।

(हाय ! मर्मभेदि वाक्य एता) अहह ! अरन्तुद् वच श्रुतम् ।

“हा धिक् कष्टम्” ।

कोप, स्पर्धा, वेदना Anger, pain—आ ।

“आ पापे, तिष्ठ तिष्ठ” मालती० ८ । “आ शीतम् !”

द्धि द्धि (तिरस्कार) Fie, shame—धिक् ।

“धिमिनां देहमृतान्सारताम्” २० ८ ५० (देहधारियोंकी इस अमारताको धिक्कार) ।

विना, मिवा Without, except—विना, अन्तरेण, ऋते, अन्तरा ।

“यथा तान विना रागो, यथा मानं विना शृप ।

यथा दानं विना हस्तो, तथा ज्ञान विना यति ॥” भामिनी० १-११६ ।

“पहुँविना सरो भाति, सद खलज्जर्णविना ।

कटुवर्णविना काव्यं, मानसं विषयैर्विना ॥” भामिनी० १-११३. ।

“भार्मिस् कौ मरन्दानामन्तरेण मधुव्रतम् ?” भामिनी० १-११४ ।

(भौंररो छोड पुष्पमधुओंका मर्म कौन जानता है ?) ।

“रत्नाकरात् ऋते कुतश्चन्द्रलेखाया प्रसृति ?” नागानन्दम् ।

“ न च प्रयोजनमन्तरा चागच्छ स्वप्नेऽपि चेटने” मुद्रा० ३. ।

साथ With—साकम्, सार्द्धम्, समम्, सह ।

(उससे साथ जा) तेन साक वज ।

से From, ever since, beginning with—प्रभृति, आरभ्य
(पञ्चमीके साथ) । ५, १५

(शैशवसे धर्मपरायण हो) शैशवात् प्रभृति धार्मिको भव ।

(तबसे) तत प्रभृति, तदाप्रभृति, (अबसे) अत प्रभृति;

(आजसे) अद्य प्रभृति ।

सम्बोधन Vocative particle, oh !—अह्, अयि, अये,
ह, भो ।

“अह् ! कश्चित् कुशली तात ?” काद०, “अयि भो महर्षिपुत्र !”

शकु० ७, “क कोऽत्र भो !” शकु० २ ।

नीच सम्बोधन—रे, अरे, अरेरे ।

(नीचाशय ! गर्व मत कर) रे नीचाशय । गर्वं मा कुरु ।

परस्पर Each other, one another—मिय ।

(रे परस्पर सौहार्दसे रहते हैं) ते निथ सौहार्देन वसन्ति ।

नमस्कार Salutation—नम (चतुर्थीके साथ) । ५ दे०

(देवताओंको नमस्कार) नमो देवेभ्यः ।

मन्त्रार्थमे—स्वाहा, स्वधा, वषट् ।

इन्द्राय स्वाहा, पितृभ्य स्वधा, पूष्णे वषट् ।

मङ्गल May it be well with (one)—स्वस्ति ।

(सर्वजनोका मङ्गल हो) स्वस्त्यस्तु सर्वानेभ्यः ।

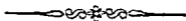
प्रथमात्ता ।

निम्नलिखित शब्दोंके रूप कहो—

नर, गज, विधि, हरि, पति, सखि, भूपति, हतर्था, अपगाँ, सुधो,
विधु, बन्धु, ऊरु, स्वयम्भू, धातृ, भ्रातृ, वृ, गो । देवता, दक्षिणा, अन्दा,
जगदम्बा, जरा, गति, बुद्धि, लक्ष्मी, स्त्री, धी, तनु, रज्जु, सभू, स्वच,
मातृ, दुहितृ, गो, घो, नौ । वन, वारि, दधि, राक्षि, अस्थि ।

पयोमुद्, भृशुञ्, सन्नाञ्, विशश्वित्, पतिश्वित्, उदन्वत्, सातु
मत्, जाप्रत्, वृहत्, महत्, ज्योतिर्विद्, द्विजन्मन्, अश्वन्, लविमन्,
अश्वत्थामन्, राडन्, इवन्, युवन्, पक्षिन्, पथिन्, द्विप्, चन्द्रमन्,
उशनस्, अनेहस्, दोस्, पुम्, विदस्, शुश्रुवन्, उनेविवस्, मधुलिर्,
तुरासाद् । त्वच्, दिष्टुव्, शरद्, सृद्, विपद्, क्षुध्, अप्, द्वार, ।गर,
पुर, दिव्, प्रावृप्, भास्, आसिम् । भवत् (शतृ प्रत्ययान्त), भवत्
(युष्मदर्थ) । प्राच् (पुलिङ्ग और स्त्रीवलिङ्गने), धामन्, चर्चन्,
अहन्, मनम्, आयुन्, चक्षुम् ।

सर्वे, उभे, अन्ये, पूर्वे, स्व, तद्, एतद्, इदम्, किम्, युष्मद्,
अस्मद्, अद्, त्रि, चतुर, सप्तन्, पञ्चाशत्, सहस्र, मिथ्या ।



तिङन्त-प्रकरण ।

२०३ । प्रयोगकालमें धातुके उत्तर तिङ्* विभक्ति होती है । 'तिङ्' विभक्तिके योगसे जो पद निष्पन्न होता है, उसको 'तिङन्त पद' कहते हैं ।

२०४ । 'तिङ्-विभक्ति दश-प्रकार—लट्, लोट्, लृट्, विधिलिट्, लृट्, लिट्, लुङ्, लुट्, लृङ् और आशीर्लिट् । 'लट्-प्रभृतिको 'लकार' कहते हैं । प्रत्येक लकार दो पदोंमें विभक्त—परस्मैपद और आत्मनेपद । प्रत्येक पदके तीन तीन पुरुष हैं—प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष । और प्रत्येक पुरुषके तीन तीन वचन हैं—एकवचन, द्विवचन और बहुवचन † ।

* प्रथम विभक्ति 'तिप्'का आद्य अक्षर 'ति', और शेष विभक्ति 'माहिट्'का अन्य अक्षर 'ह्' लेकर धातुविभक्तियोंका नाम 'तिङ्' रखा गया ।

† 'दशलकार' कहनेसे लट्, लोट् प्रभृति दशोंकोही समझना, और 'चतुर्लकार' कहनेसे लट्, लोट्, लृट्, विधिलिट्—इन चार प्रथम लकारोंको समझना ।

‡ अत 'तिङ्'-विभक्तिकी सङ्ख्या १८० ।

तिङ्-विभक्तिकी आकृति (Inflectional termination) ।

लट् (वर्त्तमाना) ।

परस्मैपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ति	तम्	अन्ति
मध्यमपुरुष	सि	यम्	य
उत्तमपुरुष	मि	वस्	मस्

आत्मनेपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ते	आते	अन्ते
मध्यमपुरुष	से	आथे	धे
उत्तमपुरुष	ष	वहे	महे

लोट् (पञ्चमी) ।

परस्मैपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	तु	ताम्	अन्तु
मध्यमपुरुष	हि ।	तम्	त
उत्तमपुरुष	आनि	आथ	आम

आत्मनेपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ताम्	आताम्	अन्ताम्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
1 मध्यमपुरुष	स्व	आथाम्	ध्वम्
उत्तमपुरुष	ए	आवहे	आमहे

लङ् और लुङ् (ह्यस्तनी और अद्यतनी) ।

परस्मैपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	द्	ताम्	अन्
मध्यमपुरुष	स्	तम्	त
उत्तमपुरुष	अम्	व	म

आत्मनेपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	त	आताम्	अन्त
मध्यमपुरुष	थास्	आथाम्	ध्वम्
उत्तमपुरुष	इ	वहि	महि

विधिलिङ् (सप्तमी) ।

परस्मैपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
1 प्रथमपुरुष	यात्	याताम्	युस्
मध्यमपुरुष	यास्	यातम्	यात
उत्तमपुरुष	याम्	याव	याम

आत्मनेपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ईत	ईयाताम्	ईरन्
मध्यमपुरुष	ईयास्	ईयाथाम्	ईष्वम्
उत्तमपुरुष	ईय	ईवहि	ईमहि

लृट् (भविष्यन्ती) ।

परस्मैपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	स्यति	स्यतस्	स्यन्ति
मध्यमपुरुष	स्यसि	स्यथस्	स्यथ
उत्तमपुरुष	स्यामि	स्यावस्	स्यामस्

आत्मनेपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	स्यते	स्येते	स्यन्ते
मध्यमपुरुष	स्यसे	स्येथे	स्यधे
उत्तमपुरुष	स्ये	स्यावहे	स्यामहे

लिट् (परोक्ष) ।

परस्मैपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अ	अथुम्	उस्
मध्यमपुरुष	य	अथुम्	अ
उत्तमपुरुष	अ	व	म

आत्मनेपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ए	आते	इरे
मध्यमपुरुष	से	आथे	ध्वे
उत्तमपुरुष	ए	वहे	महे

लुङ् (श्वस्तनी) ।

परस्मैपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ता	तारौ	तारम्
मध्यमपुरुष	तासि	ताम्यस्	तास्य
उत्तमपुरुष	तास्मि	तास्वस्	ताम्मस्

आत्मनेपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ता	तारौ	तारम्
मध्यमपुरुष	तासे	तासाथे	ताध्वे
उत्तमपुरुष	तासे	तास्वहे	तास्महे

लृङ् (क्रियातिपत्ति) ।

परस्मैपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	स्यत्	स्यताम्	स्यन्
मध्यमपुरुष	स्यस्	स्यतम्	स्यत
उत्तमपुरुष	स्यम्	स्याव	स्याम

आत्मनेपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	स्यत	स्येताम्	स्यन्त
मध्यमपुरुष	स्यथास्	स्येथाम्	स्यध्वम्
उत्तमपुरुष	स्ये	स्याजे	स्यामहे

आशीर्लिङ् (आशी) ।

परस्मैपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	यात्	यास्ताम्	यावत्
मध्यमपुरुष	यास्	यास्तम्	वास्त
उत्तमपुरुष	यासम्	यास्व	यास्म

आत्मनेपद ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	सीष्ट	सीयास्ताम्	सीरन्
मध्यमपुरुष	सीष्टास्	सीयास्थाम्	सीध्वम्
उत्तमपुरुष	सीथ	सीवहि	सीमहि

पुरुष ।

२०५ । पुरुष तीन-प्रकार—प्रथम पुरुष (Third person), मध्यम पुरुष (Second person) और उत्तम पुरुष (First person) । 'युष्मद्'-'अस्मद्'-मित्र नाम (शब्द)-मात्रकोही 'प्रथमपुरुष' कहते हैं । 'युष्मद्'-शब्दको 'मध्यम-

पुरुष',* और 'अस्मद्'-शब्दका 'उत्तमपुरुष' कहते हैं ।

२०६ । तिङन्त क्रियाके तीन वाच्य (Voice)—(१) कर्तृवाच्य (Active voice), (२) कर्मवाच्य (Passive voice) और (३) भाववाच्य (Intransitive-passive voice) । क्रियापद जिसको समझाता है, उसे 'वाच्य' कहते हैं । जो क्रिया कर्त्ताको समझाती है, उसे 'कर्त्तृवाच्य' ; जो क्रिया कर्मको समझाती है, उसे 'कर्मवाच्य', और जो क्रिया 'भाव' अर्थात् धातुके अर्थको समझाती है, उसे 'भाववाच्य' कहते हैं । यथा—स पश्यति (वह देखता है)—यहाँ 'देखता है' यह क्रिया जो देखता है उसको समझाती है, इसलिये यह कर्त्तृवाच्य । तेन चन्द्रो दृश्यते (उससे चन्द्र देखा जाता है)—यहाँ 'देखा जाता है' यह क्रिया जो देखा जाता है उसको समझाती है, इसलिये यह कर्मवाच्य । तेन दृश्यते (उसका देखना)—यहाँ 'देखना' यह क्रिया 'दृश्'-धातुके अर्थकोही समझाती है, इसलिये यह भाववाच्य ।

कर्त्तृवाच्य-प्रयोग ।

✽ कर्त्तृवाच्यमे—कर्त्तामे प्रथमा, और कर्ममे द्वितीया विभक्ति

* 'भवत्'-शब्दका अर्थ 'युष्मद्' होनेपरमी, वह 'युष्मद्'-शब्दसे भिन्न, इसलिये उसकी क्रियामे प्रथमपुरुषकी विभक्ति होगी, यथा—भवान् गच्छति । किन्तु 'भवत्'-शब्दका प्रयोग न करनेसे, 'युष्मद्'-शब्दही ल्य होता है, इसलिये मध्यमपुरुषही होगा ।

† "धात्वर्थं केवलं शुद्धो भाव इत्यभिधीयते" ।

होती है, और क्रियापदके पुरुष और वचन कर्त्ताके अनुसार होते हैं (अर्थान् नाम--'युष्मद्'-'अस्मद्'-भिन्न शब्द--कर्त्ता होनेसे प्रथमपुरुषकी विभक्ति होती है, 'युष्मद्'-शब्द कर्त्ता होनेसे मध्यमपुरुषकी विभक्ति होती है, और 'अस्मद्'-शब्द कर्त्ता होनेसे उत्तमपुरुषकी विभक्ति होती है, और कर्त्ताका जो वचन, क्रिया-काभी वही वचन होना है), यथा--(बालक पुस्तक पढता है) शिशु पुस्तक पठति, (दो बालक पुस्तक पढते हैं) शिशू पुस्तक पठत, (बालक पुस्तक पढते हैं) शिशव पुस्तक पठन्ति; (तू सत्यका पालन कर) त्व सत्य पालय, (तुम दोनो सत्यका पालन करो) युष्वा सत्य पालयतम्, (तुम सत्यका पालन करो) यूय सत्य पालयत, (मैं चन्द्र देखता हूँ) अह चन्द्र पश्यामि, (हम दोनो चन्द्र देखते हैं) आवा चन्द्र पश्याव, (हम चन्द्र देखते हैं) वय चन्द्र पश्याम ।

२०७ । वाच्यके अनुसार धातुके भिन्न भिन्न रूप होते हैं ।

धातु दश गणोमे विभक्त—भ्यादि, अदादि, हादि (जुहोत्यादि), दिवादि, स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, ऋयादि और चुरादि* ।

२०८ । धातु दो प्रकार—अकर्मक (Intransitive or neuter) और सकर्मक (Transitive) । जिन धातुओं

* भ्यादिनादी जुहोत्यादिर्दिवादि स्वादिरेव च ।

तुदादिथ रुधादिथ तन ऋयादि-चुरादय ॥

का कर्म नहीं रहता, वे 'अकर्मक', और जिनका कर्म रहता है, वे 'सकर्मक' ।

(क) सकर्मक धातुओंके बीचमें दुह्, याच् प्रभृति कई धातुओंके कभी कभी दो कर्म रहते हैं, तब उनको 'द्विकर्मक' कहते हैं । †

* सत्ता-लज्जा-स्थिति-जागरण

वृद्धि-क्षय-भय-जीवन-मरणम् ।

शयन-क्रीडा-स्नि-दीप्त्यर्था

घातव एते कर्मविहीना ॥

कर्मकारकका उल्लेख न रहनेसे अकर्मक धातु अकर्मक होता है ; यथा—स चन्द्र पश्यति—यहाँ 'दृश्' धातु सकर्मक, स पश्यति—यहाँ अकर्मक । उपसर्गके योगसे अर्थान्तर होनेपर अकर्मक धातुभी सकर्मक होता है ; यथा—दु खमनुभवति (दु ख भोगता है) । अकर्मक धातु तिङन्त होनेसे सकर्मक होता है ।

† दुहियाञ्जा दुवर्थो च पचतिश्चि-जि-दण्डय ।

रधि प्रच्छिर्मन्थतिश्च मुपि शासिदुंहादप ॥

न्यादयो नयति प्रोक्ता कर्षतिर्हरतिर्वहि ॥

दुह्, याच् (याञ्जार्थ—अर्थ, नाय्, भिश् प्रभृति समस्त धातु), म् (कथनार्थ—कथ, वच्, वद्, भाप् प्रभृति समस्त धातु), पच्, चि, जि, दग्धि, रच्, प्रच् (प्रदनार्थ समस्त धातु), मन्य्, मुप्, शाम्—ये दुहादि, और नी, कृप्, ह, वह्—ये न्यादि ।

‡ जत्र एकदा कर्म रहता है, तब केवल सकर्मक ।

(स) सकर्मक धातु कर्तृवाच्यमे, और अकर्मक धातु कर्तृ-
वान्य तथा भाववाच्यमे प्रयुक्त होते हैं ।

धातु औरभी तीन प्रकारो मे विभक्त—परस्मैपदी, आत्मने-
पदी और उभयपदी । परस्मैपदी धातुके उत्तर परस्मैपदकी,
आत्मनेपदी धातुके उत्तर आत्मनेपदकी, और उभयपदी धातु-
के उत्तर परस्मैपद और आत्मनेपद इन उभयपदो की
विभक्ति होती है ।*

संज्ञा ।

सगुण विभक्ति ।

२०९ । 'तिङ्'-विभक्तियोंके बीचमे, लृट्—ति, सि, मि, लोट्—तु,
आनि, आव, आम, ऐ, आवहे, आमहे, लृङ्—द्, स्, अम् ; लिट्—
प्रथम और उत्तमपुरुषके 'अ', मध्यमपुरुषके षकवचनका 'थ' ; लुङ्,
लुट् लृट् और लृङ्की समस्त विभक्ति ; और आदीर्लिङ् आत्मनेपदकी
समस्त विभक्ति सगुण ।†

* जहाँ फलाकाँहा रहती है, वहाँ कर्ता स्वयं फलभागी होनेसे,
उभयपदी धातुके उत्तर आत्मनेपद होता है, और दूसरा कोई फलभागी
होनेसे, परस्मैपद होता है, यथा—(मैं दान करूँगा) अहं दान करिष्ये ;
(मैं पिताजीकी स्वर्गकामनाके दान करूँगा) अहं पितुः स्वर्गकाम दान
करिष्यामि । उपसर्गविशेषके योगसे कोई कोई परस्मैपदी धातु आत्मनेपदी,
और आत्मनेपदी धातु परस्मैपदी होता है (५१८ और ५२२ सूत्र द्रष्टव्य) ।

† व्याकरणलोग ति, सि, मि, तु, आनि, आव, आम, ऐ, आवहे,

अगुण विभक्ति ।

२१० । ति, मि, मि मित्र समस्त लट्, तु, आनि, आन, आम, ऐ, आवहै, आमई मित्र समस्त लोट्, ट्, स्, अम् भिन्न समस्त लङ्, प्रथम तथा उत्तम पुरुषके एकवचनके 'अ' और मध्यमपुरुषके एक वचनके 'थ' मित्र समस्त लिट्, समस्त विप्रिलिट् और आशांलिङ् का समस्त परस्मैपद अगुण ।

२११ । गुण—इ ईके स्थानमे 'ए', उ ऊके स्थानमे 'ओ', ऋ ॠके स्थानमे 'अर्', और 'लृ'के स्थानमे 'अल्' होनेका नाम 'गुण' ।

२१२ । वृद्धि—'अ'के स्थानमे 'आ', इ ईके स्थानमे 'ऐ', उ ऊके स्थानमे 'औ', ऋ ॠके स्थानमे 'आर्', और 'लृ'के स्थानमे 'आल्' होनेका नाम 'वृद्धि' ।

२१३ । उपधा—अन्यवर्णके पूर्ववर्णको 'उपधा' कहते हैं; यथा—र् + उ + च् = रुच्—यहाँ चकारसे पूर्ववर्ण 'उकार' उपधा ।

२१४ । आगम—प्रकृति और प्रत्ययका अनिष्ट न करके जो होता है, उसे 'आगम' कहते हैं, यथा—भू + ति = भू + अ + ति—इस स्थानमे मध्यस्थित 'अ' आगम* ।

आमहै—इन विभक्तियोंके अन्तमे 'प्' युक्त करके पडते हैं; यथा—तिप्, सिप् इत्यादि; और लट्के ट्, स्, अम्के स्थानमे दिप्, सिप्, अम्, तथा लिट्के परस्मैपदके एकवचनमे णप्, थप्, णप् पडते हैं ।

* निप्रवदागम ।

२१५। आदेश—प्रकृति वा प्रत्ययके न्यानमे ओ होना है।
उमरा नाम 'आदेश' ; यथा—स्या + ति = तिष् + अ + ति =
तिष्ठति—यहाँ 'स्या'के न्यानमे तिष् + आदेश हुआ है।*

२१६। टि—प्रकृतिका श्रेयस्वरवां और तत्परन्धित
व्यञ्जनवर्णको 'टि' कहते हैं।

उपसर्ग (Prefix) :

२१७। प्र, परा, अप, सन्, अनु, अव, निर्, दुर्, अभि,
वि, अधि, सु, उच्, अति, नि, प्रति, परि, अपि, उप, आङ्—
ये अक्षय धातुके पूर्वमे सशुक्ल होनेसे इनको 'उपसर्ग' कहते हैं।

† शत्रुशब्दोदाहरण ।

* प्र-परप-मनन्वव-निर्-दुरभि-

अधि-सुदति नि प्रति-वर्णपत्र ।

एव आदिभि विद्यतिनङ्क पनिन

कुट कर्णार्तं तुनसोऽगम् ॥

प्रादिके लक्षणे—प्र=प्रकर्ष; परा=अपकर्ष, प्रत्याहृति; लव=अपकर्ष;
सन्=सन्धक्; अनु=पश्चात्, नाहद, वीप्सा, मानीप्य; अव=निश्चय,
अपकर्ष; निर् निस्=निश्चय, निषेध, बहिष्करण; दुर् दुस्=उष्ट, निन्द,
अभि=समन्तात्, उभय, आनिनुहन; वि=विशेष, वीर्रीय; अधि=
उपरि; सु=प्रोमन, प्रशंसा, आदिशय; उच् उच्=उच्, उच्छ्व; अति=
अतिमध्य, अतिक्रम, प्रशंसा; नि=निश्चय, निषेध; प्रति=प्रत्येक, नाहद,
वीप्सा; परि=प्रबोधभाव, वीप्सा; अपि=समन्तात्, समुच्चय; उच्=
मानीप्य, पश्चात्, अधिप्य; आङ्=समन्तात्, ईषत्, शाना, ध्याति ।

(क) उपसर्गोंके योगसे धातुके भिन्न भिन्न अर्थभी होते हैं यथा—‘ह’ धातुका अर्थ—हरण , किन्तु प्र + ह = प्रहार, आ + ह = आहार, सम् + ह = सहार, वि + ह = विहार, परि + ह = परिहार ।*

‘धात्वर्थं बाधने कश्चित्’—कोई उपसर्ग धातुके अर्थका निराम करता है, यथा—‘आदत्ते’—यहाँ दानार्थक ‘दा’ धातुमें ‘आ’ उपसर्ग युक्त होनेसे ‘ग्रहण’ अर्थ हो गया ।

‘कश्चित् तमनुवर्त्तते’—कोई उपसर्ग धातुके अर्थका अनुसरण करता है, यथा—‘प्रसूते’—यहाँ ‘प्रसव—उत्पादन’ ‘सू’-धातुका अर्थ ‘प्र’-उपसर्गके योगसे भी पूर्ववत् रहा ।

‘तमेव विशिनष्टान्य ’—और कोई उपसर्ग धातुके अर्थको बढ़ाता है; यथा—‘सन्तु’-गति’ ‘सम्पश्यति’—यहाँ ‘तुप्’-धातुका अर्थ ‘तुष्ट होना’, और ‘दृश्’-धातुका अर्थ ‘दृशना’ ‘सम्’ उपसर्गके योगसे ‘अत्यन्त तुष्ट होना’ और ‘अच्छे प्रकारसे दृशना’ हुआ ।

‘उपसर्गगतिस्त्रिधा’—इस रीतिमें उपसर्गकी प्रवृत्ति तीन प्रकारकी होती है ।

(ख) ‘भव’ और ‘अपि’ उपसर्गके आदिस्थित अकारका विकल्पसे लोप होता है, यथा—भवगाह , वगाह , अवगाहते, वगाइते, अवगाह्य, वगाह्य , अपिधानम्, पिधानम् , अपिहितम्, पिहितम् , अपिदधाति , पिदधाति , अवर्त्स , वर्त्स ।

(ग) क्तिप्-घञ्-प्रवृत्ति प्रत्ययान्त शब्द परे रहनेमें, उपसर्गका अन्त्य

* उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते ।

स्वर कभी कभी दीर्घ होता है ; यथा—प्राचृद्, नीचृद्, डराचृद्, प्रासाद् (देव भूमिनां गृहे), नीकाश, अरामार्ग, नीहार, नीजार, नीवार, प्राकार (प्राचीर), अतीमार, अतिमार, प्रनीकार, प्रतिहार, प्रनीहार, प्रतिहार, परोहास, परिहास, परोवाद, परिवाद ; प्रनीकाश, प्रतिक्राश इत्यादि ।

(घ) अच् धातु परे रहनेसे, उपसर्गादि 'र' के स्थानमें 'ल' होता है, यथा—प्र + अयते = प्लायते, परा + अयन् = पलायन् ।

लकारार्थ-निर्णय ।

२१८ । वर्तमान-कालमें—लट् (Present tense) ; अतीत कालमें—लङ् (First preterite), लिट् (Second preterite) और लुङ् (Third preterite, Aorist) ; भविष्यत् कालमें—लृट् (First future) और लृङ् (Second future) ; अनुष्ठामे—लोट् (Imperative mood) ; विधि-अर्थमें—विधिलिङ् (Potential mood), आशीर्वाद्-अर्थमें आशीर्लिङ् (Benedictive mood) ; और क्रियातिपत्ति अर्थात् क्रियाद्वयकी अनिपत्ति अर्थमें—लृङ् (Conditional mood) होता है ।

२१९ । लट्—(वह जाता है) स गच्छति ।

(क) वर्तमानकालमें अर्थात् वर्तमानके समोपस्य अतीत और भविष्यत् कालमें भी 'लट्' होता है ; यथा—(मैं अभी जाया हूँ) एषो-ऽहमागच्छामि, अयनागच्छामि, "अयमहमागच्छामि" शकु० ३ (अभी आता हूँ—आऊंगा) ; (मैं अभी जाऊंगा) इदानीमेव गच्छामि,

अयमद् गच्छामि, एष गच्छामि ।

(ख) 'स्म'-शब्दके योगसे अर्नातकालमे 'लट्' होता है, यथा—
(वह मेरे घरमे आया था) स मद्रूहम् आगच्छतिस्म, (उमने व्याकरण पढ़ा) स व्याकरणम् अंगीते स्म ।

(ग) 'यावत्' और 'पुरा' शब्दके योगसे भविष्यत्-कालमे 'लट्' होता है; यथा—“यावत् अम्य दुरात्मन समुन्मूलनाय शत्रु-न प्रेषयामि” उत्तर० १ (इस दुरात्मानके विनाश के लिए शत्रु-जनको भेजूंगा), “पुरा भवति” नै० १ १८ (भविष्यति—होगा), “आलोके ते निवसति पुरा (सा)” मेघ० ८५ (वह तेरे दृष्टिपथमे पड़ेगा), “पुरा मनद्वीपा जयति वल्लभाम्” शकु० ७ ३३ (सप्तद्वीपसमन्विता वल्लभती जय करेगा); “(सा) व्रजति पुरा परासनां त्वदर्थे” भा० १० ५० (वह तेरे लिये भरेगी), “प्रत्यार्सादति मुक्तिंस्त्वा पुरा” भा० ११ ३६ (मुक्ति तेरे पास आयेगी), “पुरा दूषयति स्थलीम् (गन्धेनाशुचिना)” र० १२ ३०. (दुर्गन्धसे आश्रमस्थानको दूषित करेगा ।

‘जव तक’ (Till, before) इस अर्थमेभी 'यावत्'-शब्दके योगसे 'लट्' होता है, यथा—(वह जब-तक नहीं आयेगा, तब तक पढ़गा) स यावत् न आगच्छति, तावत् पठिष्यामि, “यावन्न परापतति, तावत् अपमर्षत अनेन तरुगहनेन” उत्तर० ४ (जब तक वह न लौटे, तब तक इस जङ्गलसे सिरारो) ।

(घ) 'कदा' और 'कहिं' शब्दके योगसे भविष्यत्-कालमे विकल्पसे 'लट्' होता है, यथा—(न जाने, कब जाऊंगा) न जाने, कदा गच्छामि, गमिष्यामि वा ।

(ट) प्रधोत्तर बधनमे 'ननु' शब्दके योगसे अतीत कालमे 'लट्' होता है, यथा—प्रश्न—(वह आया है क्या ?) स किमागच्छत् ? उत्तर—(आया है) ननु आगच्छति ।

२२० । लोट्—वर्तमान कालमे अनुत्ता (अनुमति) अर्थमे 'लोट्' होता है, यथा—(बच्चा, घर जा) वत्स । गृह गच्छ ।

(क) समर्थना अर्थात् अशक्य कर्ममे उत्त्वाह समझानेसे 'लोट्' होता है, यथा—(समुद्रभी शोषण कर सकता हूँ) मिन्युमपि शोषयाणि ।

(ख) आशीर्वाद अर्थमेभी 'लोट्' होता है, (तव 'तु' और 'हि' विभक्तिके स्थानमे विस्वल्पसे 'तात्' होता है), यथा—(वह दीर्घकाल जीता रहे) स चिरं जीवतु, जीवतात् वा, (तू दीर्घकाल जीता रह) त्वं चिर जीव, जीवतात् वा ।

(ग) अनेक क्रियाओंके प्रयोगसे पौन पुन्य वा आतिशय्य अर्थमे सब काल, सब पुरुष और सब वचनोमेही 'हि' 'त', 'स्व' तथा 'ध्वम्' होते हैं (परस्मैपदा धातुके उत्तर 'हि' तथा 'त', और आत्मनेपदा धातुके उत्तर 'स्व' तथा 'ध्वम्' होते हैं); यथा—“पुरीमरस्वन्द, लुनीहि मन्दनं, मुपाण रत्नानि, हरामराङ्गना ” माघ० १ ६१ (रावण पुन पुन नगर आक्रमण करता, पुन पुन नन्दन काननको छेदन करता, पुन पुन रत्नोको छीन लेता, पुन पुन देवरात्नियोको हरण करता) ।

२२१ । विधिलिट्—वर्तमान-कालमे 'विधि' अर्थमे 'विधिलिट्' होता है । विधि दो प्रकार—प्रवर्त्तना और निवर्त्तना । सत्कर्ममे प्रवर्त्तित करनेका नाम 'प्रवर्त्तना', यथा—(दीनमे दया करना) दीने दयं

कुर्ष्यात्, (क्षुधार्त्तको अन्न देना चाहिये) क्षुधिताय अन्न दद्यात् ।
 असत्कर्मसे निवर्त्तित करनेका नाम 'निवर्त्तना', यथा—(गुरुओंकी
 निन्दा न करना) गुरुन् न निन्देत्, (परधन हरण नहीं करना) परम्व
 नापहरेत्, (यत्नपूर्वक क्रोध त्यागना चाहिये) क्रोध यत्नेन वचंहेत् ;
 (आलस्य छोड़ना चाहिये) आलस्य परिहरेत् ।

(क) सम्भावना और शक्ति अर्थमें 'विधिलिङ्' होता है, यथा—
 सम्भावना—(पडगा, यदि वह पदाये) पठिष्यामि, यदि स पाठयेत् ;
 शक्ति—(मैं भार बहन कर सकता हूँ) अह भार वदेयम् ।

(ख) दो क्रियाओंका कार्यकारणभाव समझानेसे, दोनोकेही
 उत्तर भविष्यत्-कालमें विकल्पसे 'विधिलिङ्' होता है, पक्षे—लट् ;
 यथा—(यदि लडरूपनमें पडे, तो सारा जीवन एष पायेगा) यदि
 बाल्ये पठेत्, यावज्जीव एतम् आप्नुयात्, (पक्षे) यदि बाल्ये
 पठिष्यति, यावज्जीव एतम् आप्स्यति,—यहां बाल्यकालका अध्ययन
 यावज्जीवन सुखलाभका कारण है ।

(ग) निमन्त्रण (विधिपूर्वक आह्वान), आमन्त्रण* (आह्वान),
 अप्पेपणा (सम्मान-पूर्वक प्रवर्त्तन अर्थात् प्रेरणा), सम्प्रन्न (निरुपगार्थ
 जिज्ञासा) और प्रार्थना (याचना) अर्थमें 'विधिलिङ्' और 'लोट्'
 दोनो होते हैं । यथा—निमन्त्रण—(आज मेरे पित्राद्दमे आप यहाँ

* जिसके प्रत्याख्यान अर्थात् अस्वीकारसे प्रत्यवाय (अपराध) होता
 है, उसको 'निमन्त्रण' कहते हैं । जिसके प्रत्याख्यानसे प्रत्यवाय नहीं होता,
 परन्तु जिसका स्वीकार वा अस्वीकार इच्छालुमार किया जा सकता है,
 उसको 'आमन्त्रण' कहते हैं ।

भोजन करेंगे) यद्य मे रित्वादेऽत्र भुञ्जीत भवान् ; (पक्षे) भुङ्क्षुम् ।
 सामन्त्र्य—(आप यहाँ देखिये) इह यामीत भवान् . (पक्षे) साम्नाम्
 (इच्छा हो तो) । अध्येग्ना—(आप मेरे पुत्रसे पढाइये) मन पुत्रम्
 अध्यापयेद् भवान् , (पक्षे) अध्यापय । सम्प्रभ—(कहिये,—मैं
 व्याकरण पढ़ूँ, या नाहित्य ?) किं भो वराकाणम् अवीथीय, उत
 साहित्यम् ? , (पक्षे) अध्ययं । प्रार्थना—(मैं भिक्षा पाऊँ, कर्मान्
 सुने भिक्षा दो) भो भिक्षा लभेय . (पक्षे) देहि मे भिक्षाम् ।

(घ) इच्छायं धातुकं योगसे 'विधिलिट्' और 'लोट्' दोनो होने
 हैं . यथा—(मैं चाहता हूँ, आप इस पुस्तकको पढ़ें) इच्छामि, भवान्
 पुस्तकमेतत् पठेत्, पठतु वा ।

२२२ । लड्—अनघनन अतीत कालमे 'लड्' होता है, (वर्तमान
 दिन, पूर्वगतिके शेष प्रहर और पाराशिके प्रथम प्रहरको 'अघनन'
 कहने हैं, तद्विषय काल 'अनघनन'), यथा—(वृत्र बध गया) ह्य
 सोऽगच्छत् ।

(क) 'मास्म'-शब्दके योगसे सब कालमेही 'लड्' होता है ;
 यथा—(मत जा) मास्म गच्छ ।

२२३ । लिट्—अनघनन अथवा परोक्ष (जो वक्राका प्रत्यक्ष नहीं
 ऐसे) अतीत कालमे 'लिट्' होता है , यथा—(रामने रावणको मारा
 था) रामो रावणं जयान । उत्तमपुरपकी क्रिया किसी प्रकारसे वक्राका
 परोक्ष नहीं हो सकती, इसलिये उत्तमपुरपमे कर्माभी लिट्का प्रयोग
 नहीं होता ; केवल वित्तविशेष (मनही चञ्चलता) और अत्यन्तापद्धत
 (सम्पूर्णरूपसे अस्वीकार) समझानेसे होता है ; यथा—(मैं मोठा

सोता रोया भा) सप्तोऽह ररोद् , ('तुझे नदीमें पेरनेको देखा है')
'त्वं नदीं मन्तरान् दृष्टोऽसि' ऐमा किर्साको कहनेसे, उसने उत्तर दिया—
('मैं नदीमें नहीं गया') 'नाह नदीं जगाम' ।

२२४ । लुङ्—अद्यतन, अनद्यतन और परोक्ष—सर्वप्रकार अतीत-
कालमेंही 'लुङ्' होता है, यथा—(आज वह गया है) अद्यासौ अगमत् ।

(क) 'मा' *और 'मास्म' शब्दके योगसे मद्कालमेंही 'लुङ्'
होता है, यथा—(मत कर) मा कार्षीं, मास्म कार्षीं ।

२२५ । लृट्—अनद्यतन भविष्यत् कालमें 'लृट्' होता है, यथा—
(कल जाऊंगा) इवो गन्तास्मि ।

२२६ । लृट्—भविष्यत्-कालमात्रमेंही 'लृट्' होता है, यथा—
(मैं जाऊंगा) अह गमिष्यामि ।

२२७ । लृङ्—क्रियातिपत्ति अर्थात् दो क्रियाओंकी अनिश्चिति
(सम्पूर्णता) समझानेसे, अतीत और भविष्यत् कालमें 'लृङ्' होता
है; यथा—(ज्ञान होता, तो सुख होता) ज्ञानं चेत् अमविष्यत्, सुखम्
अमविष्यत् (अर्थात् ज्ञानभी नहीं हुआ, सुखभी नहीं हुआ), (यदि
समुद्र शुष्क हो, तो मनुष्य अमर होंगे) सागरश्च शुष्कोऽमविष्यत्,
तदा मानुषा अमरा अमविष्यत् (अर्थात् समुद्रभी शुष्क नहीं होगा,
मनुष्यभी अमर नहीं होंगे) ।

२२८ । आशीर्लिङ्—आशीर्वाद अर्थमें भविष्यत् कालमें 'आशी-
र्लिङ्' होता है, यथा—(तेरी कुशल हो) तव कुशल भूयात्, (सजन

* 'मा'-शब्दके योगसे 'लोट्' भी होता है, यथा—“मद्वापि ।

बहुत दिन जीता रहे) सञ्जनश्चिर जीव्यात् ।

Note —व्याकरणमे लट् और लुट्का अर्थभेद रहनेपरमों प्रयोगमे उनका कुछ भेद नहीं दीखता, सतरा अतीतकालमात्रमेही उनका प्रयोग किया जा सकता है । ऐसे लुट् और लट्काभी प्रयोगमे कुछ भेद नहीं ।

धातुसम्बन्धी णत्व-विधि ।

२२९ । प्र, परा, परि, निर्—इन चार उपसर्गोंके, और 'अन्तर'-शब्दके परवर्ती 'नद्'-प्रभृति धातुका दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य होता है, यथा—प्रणदति, प्रणमति, परिहण्यते इत्यादि । किन्तु 'इन्'-धातुके 'इन्'के स्थानमे 'घ्न' होनेसे मूर्द्धन्य 'ण' नहीं होता, यथा—परिघ्नन्ति ।

(क) 'नद्'-धातुके 'श्व'के स्थानमे 'प्' होनेसे दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य नहीं होता, यथा—प्रणष्ट, परिणष्ट इत्यादि । किन्तु 'प्रणादा'—इस शब्दमे मूर्द्धन्य 'ण' हुआ ।

२३० । प्र, परा, परि, निर्—इन उपसर्गोंके, और 'अन्तर' शब्दके परवर्ती धातुक उत्तर विहित लोट्को 'आनि'-विभक्तिका दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य होता है, यथा—प्रभवानि ।

२३१ । 'गद्'-प्रभृति* धातु परे रहनेसे, प्र, परा, परि, निर्—इन

* नद्, नम्, नश्, नह्, नी, नु, नुद्, अन्, हन् ।

नदो नमो नराक्षय नह-नी-नु-नुदस्तथा ।

अनो हनश्चेति नव नदादिर्गण इप्यते ॥

* गद्, नद्, षद्, पत्, षप्, वह्, शम्, हन्, दिह्, दा, धा, या, वा, द्रा, प्सा (मक्षण-अदा० ५०), चि ।

उपसर्गादि, और 'अन्तर' शब्दके परवर्ती 'नि' उपसर्गाका 'न' मूर्द्धन्य होता है, यथा—प्रणिगदति, प्रणिपतति इत्यादि ।

२३२ । प्र, परा, परि, निर्,—और 'अन्तर' शब्दके परवर्ती 'ह्रि' और 'मीना' (मी वरे) का दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य होता है, यथा—प्रहिणोति, प्रहिणुत, प्रहिण्वन्ति, प्रमीणाति ।

२३३ । प्र, परा, परि, निर्,—और 'अन्तर' शब्दके परवर्ती 'ह्र' धातुका 'न' व अथवा म ससुक्त होनेसे विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है, यथा—प्रहणिम, प्रहण्मि, प्रहण्व, प्रहण्व ।

२३४ । प्र, परा, परि, निर्,—और 'अन्तर' शब्दके परवर्ती निन्द्, निक्ष् (सुम्बने—म्वा० प०) और निम् (सुम्बने—अदा० आ०) धातुका दन्त्य 'न' विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है, यथा—प्रणिन्दति, प्रनिन्दति; प्रणिक्षगम्, प्रनिक्षगम्, प्रणिमितव्यम्, प्रनिमितव्यम् ।

* * * *

२३५ । प्र, परा, परि, निर्,—और 'अन्तर' शब्दके परवर्ती धातुके उत्तर विहित 'कृत्' प्रत्ययका दन्त्य 'न' मूर्द्धन्य होता है, यथा—प्रनागम्, परिमाणम् ।

किन्तु भा, भू, पू, कम्, गम्, प्याय, वेप् और कम् धातुके उत्तर विहित 'कृत्'-प्रत्ययका 'न' मूर्द्धन्य नहीं होता; यथा—(भू) परिभवनीयम् ।

२३६ । प्र, परा, परि, निर्,—और 'अन्तर' शब्दके परवर्ती व्यञ्जनादि धातुके उत्तर विहित 'कृत्' प्रत्ययका 'न' विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है, यथा—(कृप्) प्रकोपणीयम्, प्रकोपनीयम्, (गुप्)

परिगोपणम् , परिगोपनम् ।

किन्तु धातुकी उपधामे 'अ' अथवा 'आ' रहनेसे नित्य होता है ;
यथा— (वह्) प्रवहणम् , प्रवहमाण ।

२३७ । प्र, परा, परि, निर्,—और 'अन्तर'-शब्दके परवर्ती
गिजन्त धातुके उत्तर विहित 'हृत्'-प्रत्ययका 'न' विकल्पसे मूर्द्धन्य
होता है, यथा—(यापि) प्रयापणम् , प्रयापनम् ।

किन्तु २३६ सुश्रोक्त 'भा' प्रवृत्ति धातु गिजन्त होनेसेभा मूर्द्धन्य
'ण' नहीं होता, यथा—(भू) परिभावनीयम् ।

२३८ । व्यञ्जनवर्गमे मिलित होनेसे 'हृत्' प्रत्ययका 'न' मूर्द्धन्य
नहीं होता, यथा—पमम, परिमम ।

धातुसम्बन्धी पत्व विधि ।

२३९ । इकारान्त और उकारान्त उपसर्गक परस्थित 'सु'-प्रवृत्ति*
धातुका दन्त्य 'स' मूर्द्धन्य 'प' होता है, यथा—(उ) अभिपुणोति ;
(सु) अभिपुवति, (सो) अभिप्यति, (स्तु) अभिष्टौति, (स्तुम्)

* सु, स (तुदादि), सो, स्तु, स्तुम्, स्या, सेनि ('सेना'-शब्द +
गिच्), सिम्, सिच्, सञ्ज्, स्वञ्ज्, सद्, स्तम् ।

सु सू सो स्तु स्तुभश्चैव स्या सेनिश्च सिध सिच ।

सञ्जः स्वञ्ज सद् स्तम्भ —स्वादिरेते त्रयोदश ॥

† लृट्, और लृट् विभक्ति तथा 'स्यत्'-प्रत्यय परे रहनेसे नहीं
होता, यथा—(सृट्) अभिसोष्यति ; (लृट्) अभ्यसोष्यत्, (स्यत्)
अभिसोष्यत् ।

प्रतिष्ठोभते, (स्था) अधिष्ठास्यति, अनुष्ठास्यति, (सेनि) अभिषे-
णयति, (सिष्)* प्रतिषेयति, (सिष्) निषिञ्चति, (सञ्ज्)
निषजति, अनुषजति, (स्वञ्ज्) परिष्वजते, (सद्) विषीदति †,
(स्तम्म्) प्रतिष्ठन्ोति ‡ ।

‘अद्’ व्यवधानमेभां मूर्द्धन्य होता है यथा—अभ्यपेयत्, न्यपि
ञ्चत्, व्यपीदत् † ।

२४० । भोजन अर्थमे ‘वि’ और ‘अव’ पूर्वक ‘स्वन्’-धातुका ‘स’
मूर्द्धन्य होता है, यथा—विष्वणति, अवष्वणति (सशब्द भुङ्क्ते इत्यर्थ) ।
(अन्यत्र) विस्वनति वीणा (शब्दायते इत्यर्थ) ।

२४१ । नि, वि, परि उपसर्गके परवर्ती सेद्, सिद् और सह् ॥ धातुका

* गमनाय ‘मिष्’ धातुका नहीं होता, यथा—स गत्वा विसेधति ।

† ‘प्रति’-पूर्वक ‘सद्’ धातुका नहीं हाता, यथा—प्रतिसीदति ।

‡ आलम्बन और सामीप्य अर्थमे ‘अव’-पूर्वक ‘स्तम्म्’-धातुका ‘स’
मूर्द्धन्य होता है; यथा—अवष्टभाति यष्टिम् (अवलम्बते), अवष्टभ्यते
गौ (सामीप्ये निदृष्यते) । ‘क्’-प्रत्यय करनेसे, नि और प्रति उपसर्गके
परवर्ती ‘स्तम्म्’-धातुका ‘स’ मूर्द्धन्य नहीं होता, यथा—निस्तम्भ, प्रति-
स्तम्भ । णिजन्त करनेसे, रुद्-विभाक्तिमे, ‘स्तम्म्’-धातुका ‘स’ मूर्द्धन्य
नहीं होता, यथा—पर्य्यतस्तम्भत् ।

§ परि, नि, वि-पूर्वक ‘रत्’ और ‘स्वञ्ज्’ धातुका विकल्पसे होता है;
यथा—पर्य्यष्टावात्, पर्य्यस्तावात्, पर्य्यष्वजत, पर्य्यस्वजत ।

॥ ‘सह्’ के स्थानमे ‘सोड’ होनेसे मूर्द्धन्य ‘य’ नहीं होता, यथा—
परिसोडा, निसोडुम, विसोड ।

'य' मूर्द्धन्य हाता है, यथा—निषेवने, परिपीडयति, विपहते । 'अट्' व्यवधानसेमी होता है, किन्तु 'सिच्'-धातुका नित्य, 'सिच्' और 'सह्' धातुका विकल्पसे, यथा—(सेच्) पथ्यपेवत् ; (सिच्) पथ्य-पौष्यत्, पथ्यंसीष्यत्, (सह्) न्यपहत, न्यसहत । शिजन्त करनेसे, लुङ्-विभक्तिमे सिच् और सह् धातुका 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता - यथा—(मिच्) पथ्यंसीमिवत् (सह्) पथ्यंसीसहत् ।

२४२ । 'परि' उपसर्गके परवर्ती 'स्कृ' धातुका 'स' मूर्द्धन्य होता है, यथा—परिष्करोति, परिष्कार । 'अट्'-व्यवधानमे विकल्पमे ; यथा—पथ्यंष्करात्, पथ्यंष्करोत् ।

२४३ । अनु, नि, वि, परि और अभि उपसर्गके परवर्ती 'स्यन्ट्'-धातुका 'स' विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है, यथा—अनुष्यन्दते निष्यन्दते विष्यन्दते घृन्म्, (पजे) अनुष्यन्दते इत्यादि । किन्तु प्राप्ती कर्ता होनेसे मूर्द्धन्य 'प' नहीं होता ; यथा—निष्यन्दते मत्स्य ।

२४४ । परि और वि उपसर्गके परवर्ती 'स्कन्द्'-धातुका 'स' विकल्पसे मूर्द्धन्य हाता है, यथा—परिष्कन्दति, परिष्कन्दति ; विष्कन्दति विष्कन्दति । किन्तु 'निष्ठा' प्रत्यय (क्त, क्तन्तु) पर रहनेसे, वि-पूर्वक स्कन्द् धातुका 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता, यथा—विष्पन्न, विष्कन्नवान् ।

२४५ । निश्, नि और वि उपसर्गके परवर्ती स्फुर् और स्फुल् धातुका 'स' विकल्पसे मूर्द्धन्य होता है ; यथा—(स्फुर्) विष्फुरति, निष्फुरति, (स्फुल्) विष्फुलति, निष्फुलति ।

२४६ । 'वि' पूर्वक 'स्कम्भ्'-धातुका 'स' मूर्द्धन्य होता है ; यथा—विष्कम्भति, विष्कम्भ, विष्कम्भम् ।

२४७ । छ, वि, निर् और दुर् उपसर्गके परवर्ती 'स्वप्' धातुके स्थानमे जात 'सप्'का 'स' मूर्द्धन्य होता है, यथा—छपुम , दुर पुपुगव ।

२४८ । हकारान्त और उकारान्त उपसर्गके और 'प्राट्' -शब्दके परस्थित 'अस्' धातुका 'स' मूर्द्धन्य होता है, यथा—निपन्ति, निप्यात्, प्राट् पन्ति, प्राट् प्यात् । किन्तु व, म और त-सयुक्त 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता, यथा—निस्व, निस्म, निम्त ।

* * * *

२४९ । पोपदेश धातुका* अभ्यस्त (द्विरक्त) करनेसे, परभागका 'स' यदि इ, उ, ए, ओ—इन चार वर्णोंके परस्थित हो, तो मूर्द्धन्य होता है, यथा—(मिच्) सिषेच, † (मिष्) मिषेच, (स्तु) तुष्टाव ।

२५० । धातुके उत्तर विहित 'सन्'-प्रत्ययका 'स' मूर्द्धन्य होनेसे, धातुका 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता, यथा—(मिच्) मिसिक्षति, (सेष्) सिसेविपते ।

* कञ्ज्, सद्, सद्, साध्, सिच्, सिष्, सिव्, सु, सू, सेव्, सो, स्तम्, स्तु, स्तुम्, स्तय्, स्था, स्ना, स्निह्, स्नु, स्मि, स्वञ्ज्, स्वद्, स्वप्, स्विद् इत्यादि ।

सञ्ज सद् सह साध सिच् सिष् सिव् च मुस्तया ।

सू सेव सोस्तया स्तम् स्तु-स्तुभौ स्त्यायतिस्तथा ॥

स्था-स्ना-स्निह-स्नव स्मिश्च स्वञ्ज स्वद्-स्वप्-स्विदस्तथा ।

एते चान्ये च बहव पोपदेशा प्रकीर्तिता ॥ :

† 'यद्'-प्रत्यय होनेसे, 'सिष्'-धातुका 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता ; यथा—सिसिच्यते ।

'सन्'का 'स' दन्त्य रहनेसे, धातुका 'स' मूर्द्धन्य होता है, यथा— (स्या) तिष्ठासति, (स्वप्) सुप्सति । किन्तु 'सु' धातुने उत्तर विहित 'सन्'-प्रत्ययका 'स' और धातुका 'स'—दोनोंही मूर्द्धन्य होते हैं, यथा—तुष्टूपति ।

२५१ । णिजन्त धातुके बोचमे, 'सन्'-प्रत्ययका 'स' मूर्द्धन्य होनेसे, केवल स्विद्, स्वद् और सद् धातुका 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता, यथा— (स्विद्) सिन्वेद्रयिपति, (स्वद्) सिस्वादयिपति, (सद्) मिसाहयिपति । षतद्भिन्न णिजन्त धातुका होता है, यथा—(सिच्) सिपेचयिपति इत्यादि ।

२५२ । इकारान्त और उकारान्त उपसर्गके परस्थित 'सेनि'-प्रभृति धातु* अभ्यस्त होनेसे, दोनों 'स' मूर्द्धन्य होते हैं, यथा—(सेनि) अभिपिपेनयिपति, (मिच्) अभिपिपेच, (सेत्) परिपिपेने ।

लिट् त्रिमक्तिमे स्वञ्ज् और सद् धातुके अभ्यस्त परभागका 'स' मूर्द्धन्य नहीं होता, यथा—(स्वञ्ज्) परिपम्बजे, (सद्) निपमाद ।

२५३ । इकारान्त और उकारान्त उपसर्गके परस्थित अभ्यस्त स्या और स्तम्भ् धातुका 'स' 'त'-व्यवधानसेभी मूर्द्धन्य होता है, यथा—(स्या) अनुतष्टौ, अधितष्टौ, (स्तम्भ्) अमितष्टम्भ ।

२५४ । यस्, घस्, शास् और सद् ययाक्रम—उस्, जङ्स्, शिस् और साद् होनेसे 'स' मूर्द्धन्य होता है; यथा—उप्यते, जक्षतु ;

* सेनि, सिष्, मिच्, सञ्ज्, स्वञ्ज्, सद्, सेव् ।

। सेनिः सिप सिचधैव सष स्वञ्ज सदस्तथा ।

सेव इत्येष विज्ञेय सेन्यादि सप्तको गण ॥

शिष्यते, चुरापाद् ।

कर्तृवाच्यमे लट्, लोट्, लृट्, विधिलिङ् विभक्ति, और शतृ, शानच् प्रत्यय पर रहनेसे, धातुके उत्तर गणानुसार कई 'आगम' होते हैं । किस किस गणमे कौन कौन आगम होता है, सो छाक्काके लिये नीचे एकत्र लिखा जाता है —

गणोंके नाम	आगम	उदाहरण
१. भ्वादि	अ (शप्)	भू—भवति
२. अदादि	कुछ नहीं	अद्—अत्ति
३. ह्लादि	कुछ नहीं	हु—जुहोति
४. दिवादि	य (श्यन्)	दिव्—दीव्यति
५. स्वादि	सु (शतृ)	सु—सुनोति, सुनुते
६. तुदादि	अ (श)	तुद्—तुदति, तुदते
७. रुधादि	न (शनम्)	रुध्—रुणद्धि, रुन्धे
८. तनादि	उ	तन्—तनोति, तनुते
९. क्वादि	ना (श्ना)	क्वी—क्वीणाति, क्नीणाते
१०. चुरादि	अ	चुर्—चोरयति

ये आगमके अक्षर धातुके अन्तिम धर्णके साथ युक्त होते हैं, केवल रुधादि गणमे आगमका 'न' धातुके अन्त्यस्वरमे मिलता है ।

तुदादि ।

क्रियाघटन-सूत्र ।

[धार (ॐ) विहित सूत्रोंसे सधारण सूत्र समझना, अर्थात् विनोप-सूत्र द्वारा वाधित न होनेसे सम्यन् तिङन्त-पकरण और कृन्त प्रकाशमे उन विहित सूत्रोंका कार्य्य होगा ।]

२५५ । * चतुर्लकार परे रहनेसे, कर्तृवाच्यमे तुदादि और भ्वा द्विगणोय धातु, तथा स्वार्थमे अथवा प्रेरणार्थमे विहित गिजन्त, सनन्त, यङन्त और न मधातुके उत्तर 'अ' आगम होता है, यथा—विद् + ति = विद् + अ + ति = विशति ।

२५६ । * विभक्तिका अकार वा एकार परे रहनेसे, पूर्ववर्ती अकार-का लोप होता है, यथा—विद् + अन्ति = विद् + अ + अन्ति = विदन्ति ।

२५७ । * विभक्तिका 'व' अथवा 'म' परे रहनेसे, पूर्ववर्ती अकारके स्थानमे आकार होता है, यथा—विद् + अ + मि = विद् + आ + मि = विशामि ।

२५८ । * अ, ठ, नु—इन तीन आगमोंके परस्थित 'हि'-विभक्तिका लोप होता है, यथा—(अ) विद् + हि = विद् + अ + हि = विद् + अ = विश ; (ठ) कृ + हि = कृठ, (नु) यु + हि = य्यु । किन्तु 'नु' व्यञ्जनवर्णमे मिलित होनेसे लोप नहीं होता ; यथा—आप्नुहि ।

२५९ । * अकारके परस्थित विधिलिङ्के 'याम्' के स्थानमे

'इयम्', 'युम्' के स्थानमे 'इयुम्', तद्विभ 'या'-भागके स्थानमे 'इ' होता है, यथा—विश् + याम् = विश् + अ + इयम् = विशेषम्; विश् + युम् = विश् + अ + इयुम् = विशेषु, विश् + यात् = विश् + अ + इत् = विशेष् ।

२६० । * पदके अन्तमे स्थित 'धुर्' (६३ सू० विष्पनी)-वर्णके स्थानमे प्रथम वर्ण होता है ।

२६१ । * लृ, लृङ्, लृङ् विभक्ति परे रहनेसे, घातुके आदिमे 'अर्' होता है; 'अर्' का 'अ' रहता है, यथा—विश् + लृ = अ + विश् + अ + लृ = अविश्लृ = अविशत् (२६० सू०) । किन्तु 'मा' और 'मास्म' के योगसे 'अर्' नहीं होता; यथा—मा विशत्, मास्म विशत् ।

२६२ । चतुर्थकार परे रहनेसे, कर्तृवाच्यमे, इप्—इच्छ्, कृत्—कृन्त्, प्रच्छ्—पृच्छ्, सम्ञ्—मञ् होता है, यथा—इप् + ति = इच्छ् + अ + ति = इच्छति, कृत् + ति = कृन्त् + अ + ति = कृन्तति, प्रच्छ् + ति = पृच्छ् + अ + ति = पृच्छति इत्यादि ।

२६३ । * 'अर्' होनेसे, घातुके आदिस्थित इ ई के स्थानमे 'ए', उ ऊ के स्थानमे 'ओ', ऋ ॠ के स्थानमे 'अर्' होता है, यथा—इप् + लृ = अ + इच्छ् + अ + लृ = अ + पृच्छ् + अ + लृ = ऐच्छत् ।

२६४ । चतुर्थकार परे रहनेसे, ऋ—रिप्, ॠ—इर् होता है—यथा—मृ + ते = मृ + रिप् + अ + ते = म्रियते; कृ + ति = कृ + इर् + अ + ति = किरति ।

२६५ । * अकारके परवर्ती आते, धाथे, आताम्, आयाम्-

विभक्तिमें 'आ' के स्थानमें 'इ' होता है ; यथा—सृ + अ + आत्ते =
सृ + त्ति (२६४ सू०) + अ + इत्ते = त्रिनेने ।

२६६ : क्तुलङ्कार पर रहनेसे, कर्तृराज्यमें, मुच्—तुम्च्, मिच्—
मिच्, लप्—लुम्प्, लिप्—लिम्प्, विट्—दिन्ट्, भ्रम्च्—मृम्च्
होता है ।

~~हृत्~~ लट्, लोट्, लृट्, विधिनिट्—इन चार विभक्तियोंमें गणभेद
से धातुके रूपकी विभिन्नता है . इस कारण, इन चार विभक्तियोंमें एक
एक गणके धातुके रूप यहाँ पृषक् प्रदर्शित होने हैं । एतद्भिन्न और और
विभक्तियोंमें गणभेदमें रूपभेद नहीं होता हमन्दिरे उनको एक एक
विभक्तिमें सब गणोंके धातुकेही रूप पश्चात् लिखनावे जायेंगे । परन्तु
सम्भारवनाम्ब्यामके लिये 'लृट्' के रूपकी यहाँ लिखे जाते हैं ; 'लृट्'-
की साधनप्रणाली पश्चात् प्रदर्शित होगी ।

(कर्तृवाच्यमे धातुरूप)

Conjugation

तुदादि ।

सकर्मक परस्मैपद्मी धातु ।

विग्* प्रवेगे—घुसना To enter.

* 'कथ' प्रसृति कई चुरादिगणोंमें धातु अकारान्त ; उनको 'अद
चुगदि' कहते हैं , तद्भिन्न सभी धातु इत्यन्त होते हैं ; किन्तु उनको अकार
-कारके उच्चारण करना चाहिये , यथा—'विद्' धातुको 'विदा' धातु पठन

(विशति तपोवन मुनीन्द्र ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	विशति*	विशतः	विशान्त
मध्यमपुरुष	विशसि	विशथः	विशथ
उत्तमपुरुष	विशामि	विशाव	विशामः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	विशतु	विशताम्	विशन्तु
मध्यमपुरुष	विश	विशतम्	विशत
उत्तमपुरुष	विशानि	विशाव	विशाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अविशत्	अविशताम्	अविशन्
मध्यमपुरुष	अविश	अविशन्	अविशन्
उत्तमपुरुष	अविशम्	अविशाव	अविशाम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	विशेत्	विशेताम्	विशेयुः
मध्यमपुरुष	विशेः	विशेतम्	विशेत
उत्तमपुरुष	विशेयम्	विशेव	विशेम

* विशति, विशत, विशन्ति, विशसि, विशथ, विशथ, विशामि,
विशाव, विशाम — ऐसा पठना होगा ।

लृट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	वेद्यति	वेद्यत	वेद्यन्ति
मध्यमपुरुष	वेद्यसि	वेद्यथ	वेद्यथ
उत्तमपुरुष	वेद्यामि	वेद्याथ	वेद्याम

• आ + विद्—प्रयेगे । उप + विद्—उपदेशने (ईदना) , अकर्मक । नि + विद्—प्रयेगे , अवस्थाने (अक०) , उपदेशने च (अ३०)—आत्मनेपदी , निविदाते । नि + विद् + जिच्—स्थाने ; निवेशयति । अमि + नि + विद्—मनोनिवेशे , आश्रये च , आत्मनेपदी । नि + विद्—उपभोगे , विवाहे च । प्र + विद्—प्रयेगे । मन् + विद्—निद्रायाम् (अक०) । •

प्रच्छ्, शीप्सायाम् (जिज्ञासायाम्)—पृच्छता To ask.
(द्विकर्मक—पृच्छति वाचो गुर सिन्ध ।)

लृट् ।

	एक वचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	पृच्छति	पृच्छत	पृच्छन्ति
मध्यमपुरुष	पृच्छसि	पृच्छथ	पृच्छथ
उत्तमपुरुष	पृच्छामि	पृच्छाथ	पृच्छाम

लोट् ।

प्रथमपुरुष	पृच्छतु	पृच्छताम्	पृच्छन्तु
मध्यमपुरुष	पृच्छ	पृच्छतम्	पृच्छत
उत्तमपुरुष	पृच्छानि	पृच्छाथ	पृच्छाम

लङ् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अपृच्छत्	अपृच्छताम्	अपृच्छन्
मध्यमपुरुष	अपृच्छ	अपृच्छतम्	अपृच्छत
उत्तमपुरुष	अपृच्छम	अपृच्छाव	अपृच्छाम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	पृच्छेत्	पृच्छेताम्	पृच्छेयु-
मध्यमपुरुष	पृच्छे	पृच्छेतम्	पृच्छेत
उत्तमपुरुष	पृच्छेयम्	पृच्छेव	पृच्छेम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	प्रक्षयति	प्रक्षयत	प्रक्षयन्ति
मध्यमपुरुष	प्रक्षयसि	प्रक्षयथ	प्रक्षयथ
उत्तमपुरुष	प्रक्षयामि	प्रक्षयाव	प्रक्षयाम्

१. आ + प्रच्छ्—आमन्त्रणे (गमनानुज्ञार्थं प्रस्थानकाले सम्भाषणे—विदा लेना), आत्मनेपदी, आपृच्छने । २.

इप् (इप्) इच्छायाम्—चाहना To desire, wish
(इच्छति धन लोकं ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	इच्छति	इच्छत	इच्छन्ति
मध्यमपुरुष	इच्छसि	इच्छथ	इच्छथ
उत्तमपुरुष	इच्छामि	इच्छाव	इच्छाम-

लोट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	इच्छतु	इच्छताम्	इच्छन्तु
मध्यमपुरुष	इच्छ	इच्छतम्	इच्छत
उत्तमपुरुष	इच्छानि	इच्छाव	इच्छाम

लट् ।

प्रथमपुरुष	ऐच्छत्	ऐच्छताम्	ऐच्छन्
मध्यमपुरुष	ऐच्छ	ऐच्छतम्	ऐच्छत
उत्तमपुरुष	ऐच्छम्	ऐच्छाव	ऐच्छाम

विधिलिट् ।

प्रथमपुरुष	इच्छेत्	इच्छेताम्	इच्छेयुः
मध्यमपुरुष	इच्छे	इच्छेतम्	इच्छेत
उत्तमपुरुष	इच्छेयम्	इच्छेव	इच्छेम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	एषिष्यति	एषिष्यत.	एषिष्यन्ति
मध्यमपुरुष	एषिष्यसि	एषिष्यथ	एषिष्यथ
उत्तमपुरुष	एषिष्यामि	एषिष्याव.	एषिष्याम

श्रुः अनु + इप्—अभिलाषे । अनु + इप् + गिच्—अनुमन्वाने
 अन्वेषयति । प्रति + इप्—प्रश्ने, सम्मानने; प्रतीक्षायाश्च । श्रुः

स्पृश् स्पृशे—छूना To touch.

(स्पृशति हस्तेन कुमार जनक ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	स्पृशति	स्पृशत	स्पृशन्ति
मध्यमपुरुष	स्पृशसि	स्पृशथ	स्पृशथ
उत्तमपुरुष	स्पृशामि	स्पृशाव	स्पृशाम

लोट् ।

प्रथमपुरुष	स्पृशतु	स्पृशताम्	स्पृशन्तु
मध्यमपुरुष	स्पृश	स्पृशतम्	स्पृशत
उत्तमपुरुष	स्पृशानि	स्पृशाव	स्पृशाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अस्पृशन्	अस्पृशताम्	अस्पृशन्
मध्यमपुरुष	अस्पृश	अस्पृशतम्	अस्पृशत
उत्तमपुरुष	अस्पृशाम्	अस्पृशाव	अस्पृशाम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	स्पृशेत्	स्पृशेताम्	स्पृशेयु
मध्यमपुरुष	स्पृशे	स्पृशेतम्	स्पृशेत
उत्तमपुरुष	स्पृशेयम्	स्पृशेव	स्पृशेम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	{ स्पृक्ष्यति स्पृक्ष्यति	{ स्पृक्ष्यत स्पृक्ष्यतः	{ स्पृक्ष्यन्ति स्पृक्ष्यन्ति
------------	------------------------------	-----------------------------	----------------------------------

मध्यमपुरष	{ स्पृद्यसि स्पृद्यसि	{ स्पृद्यथ स्पृद्यथ	{ स्पृद्यथ स्पृद्यथ
उत्तमपुरष	{ स्पृद्यामि स्पृद्यामि	{ स्पृद्याव स्पृद्याव	{ स्पृद्याम स्पृद्याम

* स्पृश् + लिच्—जाने, स्पर्शयति । उप + स्पृश्—आचमने, स्नाने च । *

अनुवाद करो—हुझे मत छूना । माता सर्वदा मन्तानका मङ्गल चाहती है । यह धन ग्रहण करो । कभी लोभसे परद्रव्य स्पर्श करना नहीं चाहिये । इसमें तुझे पाप स्पर्श करेगा । आपलोग पूछिये । कब एक चोर उसके घरमें घुसा था । तू क्या पूछता है ? भोजनके पूर्वमें आचमन करना चाहिये । उसने राजासे धन नहीं चाहा । मेरी पुस्तक दूधो । पूर्वकालमें पतिमतायें पतिके साथ अग्निमें प्रवेदाकर्ता थीं ('हम'-योगमें क्रिया बनाना) ।

* * * *

तुदादि सकर्मक परस्मैपदी धातु ।

उञ्ज् स्थागे—ओटना To abandon—(लृ) उञ्जति (लृट्)
उञ्जिष्यति । "सप्तदि विगतच्छिस्तल्पनुञ्जावकाग" २० ८. ७० ।
उञ्ज् (उञ्जि) कृश भादाने (भूमौ पतिनामानेकैक्योपादाने)—
चुनना, बिनना To glean, gather (bit by bit)—
उञ्जति; उञ्जिष्यति । "शिलानयुञ्जत" मनु० ३ १००, ३
"हृत्त शम्भुञ्जन्ति यदेने पतिने द्विजा" इत्यायुष ।

✽ प्र + उच्छृ—मार्जने , “प्रोच्छन्ति प्रचुरैषामङ्गेन दीनता प्रजा ”
हलायुग । ✽

कृत् (कृती) छेदने—काटना To cut—कृन्तति , कर्त्तव्यति, कत्स्यति ।
“कृन्तत्परिशिरसि स ” ।

✽ नि + कृत्—छेदने । ✽

कृ विक्षेपे (क्षेपणे)—बिखेरना, फेंकना To scatter, throw
about—किरति , करिष्यति, कर्गिष्यति । “नरि नरि किरति द्राक्
सायकान् पुष्पयन्वा” ।

✽ अत्र + कृ—आच्छादने । उत् + कृ—उत्क्षेपणे । प्रति + कृ—
हिंसायाम् , प्रतिम्भिरति । वि + कृ—विक्षेपे । वि + नि + कृ—
निक्षेपे । प्र + कृ—प्रक्षेपे । ✽

गुम्फ् (गुन्फ्) ग्रन्थने—गूथना To string or weave to-
gether—गुम्फति , गुम्फिष्यति । गुम्फति माला मालिक ।

गृ विगरणे (मक्षणे)—निगलना To swallow—गिरति, गिलति ;
गरिष्यति, गरीष्यति । गिरत्यन्न लोके ।

✽ उत् + गृ—व्रमने , वागादीनां बहिष्करणे च । नि + गृ—
निगरणे । सम् + गृ—प्रतिज्ञायाम् , आत्मनेपदी ; सङ्गिरते । ✽

मिप् स्पर्द्धांशम् ।—दर्शने To look at, look helplessly ;
“ (हृद्य) जातवेदोमुहान्मायो मिपतामाच्छिनत्ति न ’ कु० २ ४६ ।

✽ उत् + मिप्—(अक०) नेत्रोन्मीलने (आंख खोलना) ;
“उन्मिमेव तदा मुनि ” भागवतम् ;—विकासे ; प्रकाशे च ।

नि + मिप्—(अक०) नेत्र निमीलने (आंख मीचना) ; “मत्स्य

सतो न निमिपति" महाभा० । ५०

सृश् स्पर्श—छूना To touch—सृशति, अक्षयति, मर्श्यति । प्रायश-
उपसर्गके सायही प्रयुक्त होता है ।

५१ अभि + सृश्, अव + सृश्—स्पर्श । आ + सृश्—स्पर्श, आक्र-
मणे च । परा + सृश्—स्पर्श, चिन्तने, विचारे ; उद्देशे च । वि +
सृश्—विचारणे । ५०

रज् (रजो) भङ्गने—तोड़ना To break—रजति, रोक्ष्यति ।
“नदी बृहानि रजति” ।—(२) पीडने To pain ; “तस्य
धर्मरते रोगा न रजन्ति प्रजामपि”, “महते रजन्नपि गुणाय
महान्” भा० ६ ७ ।

लिष् अक्षरविन्यासे (लेखने)—लिखना To write—लिषति ;
लेखिष्यति, लिखिष्यति । लिषति पुस्तक लेखक ।—(२) चित्रो
करणे To paint, “मृगमदतिरुषं लिषति” गीतगो० ७ २२ ।—
(३) घर्षणे To scratch, “न किञ्चिद्दे, धरणेन वेदल लिष्टे
वाप्पावुल्लोचना भुवम्” भा० ८. १४ ।

५२ अभि + लिष्—चित्रोकरणे (तस्वीर खींचना) । आ + लिष्,
वि + लिष्—चित्रोकरणे, घर्षणे च । उद् + लिष्—विदारणे ;
कथने च । ५०

• सृज् निर्माणे*—उत्पादन (पैदा) करना To create—सृजति ;

* दिवादि आत्मनेपदाभिः होता है, सृज्यते ।—“उपासनामेत्य पितु
स्म सृज्यते” नै० १. ३४ ।—[सम् + सृज्—मिलने ; “ससृज्यते सरसि-
जैरुणांशुभिः (विभातवायु)” २० ५ ६९] ।

स्रक्ष्यति । “भूतानि कालं सृजति” महाभा० ।—(२) त्यागे,
“वाणमसृजद्वृषध्वज” २० ११ ४४, “वाप्यवृष्टिमिव हिमस्रुति
समर्ज” २० १६ ४४ ।

❖ अति + सृज्—दाने । उत् + सृज्, वि + सृज्—त्यागे । ❖

तुदादि अकर्मक परस्मैपदी धातु ।

कुच् सङ्कोचे—छकटना, सिमटना To be contracted, shrink—
कुचति, कुचिष्यति । प्रायशः ‘सम्’ उपसर्गक सायङ्का प्रयुक्त होता
है, सङ्कुचति, “सङ्कुचत्यरिनाशीला मुख पट्टेरहद्युति” ।

धृच् भेदे—टूटना To be broken, fall asunder—धृच्यति,
धृचति, धृचिष्यति । “धृचन्ति मर्दमन्देहासृच्यन्ति ग्रन्थयो हृदि”,
“यावन्मम दन्ता न धृच्यन्ति, तावत् तव पादा टिनन्ति” हितो० ;
“अप ते वाप्यौजस्रुदिन इव मुक्तामणिवा” (टिन्न इत्यर्थ)
उत्तर० १ २९ ।

मज्ज् (डुमप्चो) अवगाहने (सशिख्क-स्नाने)—नहाना To
bathe—मजति; मज्जति ।—(२) जलान्त प्रयोगे (डूबना)
To sink ; मजति प्रस्तरो जले , “जले । त्व मज्ज मिन्यौ” ।

❖ डल् + मज्ज्—उन्मज्जने । नि + मज्ज्—निमज्जते । ❖

लुट् संश्लेषणे (सम्बन्धीनां) *—लोटना To roll about,
wallow, welter—लुटति; लुटिष्यति । “मणिलुटति पान्पु”
हितो० २ ६६, “लुटति न सा हिमकरकिरणेन” मातंगो० ७, “दशो-
स्य हरिणाक्षीणा लुटति स्तनमण्डले” अमरदशतकम् १०० ; “गृहे गृहे”

* ‘लुट् विचेष्टने (अपपरिवर्तने)’—एसा-अर्थ करणेन प्रयोग-पक्षत हो ।

पश्य तवाङ्गवर्णां मुग्धे । स्वर्णांबल्यो लुडन्ति" भामिनो० २ १४ ।

स्फुट् विक्रमने—खिलना To blossom—स्फुटति; स्फुटिष्यति ।

स्फुटति केवकीशोररु ।—(२)भेदे (फट्ना) To burst or split open, "हा हा देवि । स्फुटति हृदयम्" उत्तर० ३ ३८ ।

भृ० प्र + स्फुट् + णिच्—निम्बुशीकरणे (फट्कना), प्रस्फोटयति । भृ०

स्फुर् सन्वलने—हिलना, फट्कना To vibrate, flutter—स्फुरति;

स्फुरिष्यति । स्फुरति चामरम्, "सज्य नत्र स्फुरति" मृच्छ० ।—

(२) प्रकाशे To glitter, "सप्तर्षिमाण्डल स्फुरति" भाष० ११ ३ ।

अनुवाद करो—प्रातः कालमें नहाना चाहिये । विधाताने इस पृथ्वीको बनावया । इस पुष्पको आकुरजीके लिये (चतुर्थी) उत्सर्ग करेगे (उप + चृञ्) । उसकी समस्त सन्नतिसे जलमें विमर्जन किया । राजा अन्त पुरमें घुमता है । तू मेंसे पास (अन्तिमे) बैठ । मुनिलोग कुशासनमें निद्रा लेते हैं (सम् + विद्) । रात्रिमें पद्म सङ्कुचित होता है । उसने हम कार्यका दोष नहीं विचारा (वि + मृद्) । लौकी (अलावु—कली०) समुद्रके जलमें डूब जाती है । लडकोने एक एक करके (षट्कना) पाठशालामें प्रवेश किया ।

तुदादि आत्मनेपदी धातु ।

मृ (मृड्) प्राणत्यागे (मरणे)—मरना To die.

(अकर्मक—त्रियते प्राणी ।

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	त्रियते	त्रियेते	त्रियन्ते

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	त्रियसे	त्रियेये	त्रियध्ने
उत्तमपुरुष	त्रिरे	त्रियावहे	त्रियामहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	त्रियताम्	त्रियेताम्	त्रियन्ताम्
मध्यमपुरुष	त्रियस्व	त्रियेथाम्	त्रियध्वम्
उत्तमपुरुष	त्रियै	त्रियावहै	त्रियामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अत्रियत	अत्रियेताम्	अत्रियन्त
मध्यमपुरुष	अत्रियथा	अत्रियेथाम्	अत्रियध्वम्
उत्तमपुरुष	अत्रिये	अत्रियावहि	अत्रियामहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	त्रियेत्	त्रियेयाताम्	त्रियेरन्
मध्यमपुरुष	त्रियेथा.	त्रियेयाथाम्	त्रियेध्वम्
उत्तमपुरुष	त्रियेय	त्रियेवहि	त्रियेमहि

लृट् ।

('लृट्' विभक्तिमे परस्मैपदी होता है ।)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	मरिष्यति	मरिष्यत	मरिष्यन्ति
मध्यमपुरुष	मरिष्यसि	मरिष्यथ	मरिष्यथ
उत्तमपुरुष	मरिष्यामि	मरिष्याव	मरिष्याम.

*

*

*

* *

तुदादि सकर्मक आत्मनेपदी घातु ।

तुप् (तुयी) सेवने (आश्रये, उपमोगे) : प्रीतौ च (अकर्मक)—
सेवन करना ; आनन्दित होना To attach oneself to, to
resort to, to enjoy, to be pleased or satisfied—
तुपते ; तुषिष्यते । “पौलस्त्योऽतुपत तुवं दिग्ब्रह्मणु” म० १७.
११२ ; “पौत्वोऽङ्कितं राहुनुवेन चान्द्रो न किं एषां नाकडुने
तुपन्ते ?” राघवपाण्डवीयम् १ ४८. ।

ट (टट्) आदरे—आदर काना To have regard for—‘आ
उपमर्गके सादही इत्तहा प्रयोग होता है—आद्रिष्यते ; आद्रि-
ष्यते । धर्मन् आद्रिष्यते तुष- ।

तुदादि अकर्मक आत्मनेपदी घातु ।

ष्ट (ष्ट्) अवस्थितौ (जीवने)—रहना, जीता रहना To be or
exist, to live, to survive—त्रिष्यते ; ष्टिष्यते । “त्रिष्यते
वायदेकोऽपि त्रिमुन्तावत् कुत्र एवम् ?” भाष० २. ३९. ।

ष्ट (ष्ट्) व्यापारे—व्यापृत होना (मन्गुल या मन्कुरु होना) To
be busy or active—“प्रयेमावं ‘व्याह्’-पूर्वः” —वि +
आ = ‘व्या’-उपमर्गके सादही प्रयुक्त होता है—व्याप्रिष्यते ; व्या-
परिष्यते । धर्मं व्याप्रिष्यते एतौ ;

✱ वि + आ + ष्ट + णिच्—निषोजने, प्रवर्तने ; व्यापारयति । ✱

लज्ज् (लोल्जी) धीहायाम्—लज्जाना, शर्माना To be ashamed—
लज्जते ; लज्जिष्यते । “लज्जते न रमया तव शान्दान् ?”
त्रिः २. ११७ ।

विञ् (ओविञी) भये, चलने च—डरना, विचलित होना To fear, to be agitated—'उद्' उपसर्गके साथही प्रयुक्त होता है—उद्बिजते (उद्बिम्ब होता है, घबराता है), उद्बिजिष्यते । मनो मं ससारात् उद्बिजते । 'नहि लोकापवादम्य सतामुद्बिजते मन' ।

तुदादि उभयपदी धातु ।

तुद् व्यथने—दुखाना To torment

(सङ्मंक—“तुदति ममांगि वाक्शरै ” ।)

(परस्मैपद)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	तुदति	तुदत	तुदन्ति
मध्यमपुरुष	तुदसि	तुदथ	तुदथ
उत्तमपुरुष	तुदामि	तुदाव	तुदाम

लोट् ।

प्रथमपुरुष	तुदतु	तुदताम्	तुदन्तु
मध्यमपुरुष	तुद	तुदतम्	तुदत
उत्तमपुरुष	तुदानि	तुदाव	तुदाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अतुदत्	अतुदताम्	अतुदन्
मध्यमपुरुष	अतुद	अतुदतम्	अतुदत
उत्तमपुरुष	अतुदम्	अतुदाव	अतुदाम्

विधिलिङ् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	तुदेव	तुदेताम्	तुदेयु-
मध्यमपुरुष	तुदे	तुदेतम्	तुदेतु
उत्तमपुरुष	तुदेयम्	तुदेव	तुदेम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	तोत्स्यति	तोत्स्यत	तोत्स्यन्ति
मध्यमपुरुष	तोत्स्यसि	तोत्स्यथ	तोत्स्यथ
उत्तमपुरुष	तोत्स्यामि	तोत्स्याथ	तोत्स्याम

(आत्मनेपद)

लट् ।

प्रथमपुरुष	तुदने	तुदेते	तुदन्ते
मध्यमपुरुष	तुदसे	तुदेथे	तुदध्वे
उत्तमपुरुष	तुदे	तुदाथहे	तुदामहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	तुदताम्	तुदेताम्	तुदन्ताम्
मध्यमपुरुष	तुदस्य	तुदेथाम्	तुदध्वम्
उत्तमपुरुष	तुदै	तुदाथहे	तुदामहे

लृट् ।

प्रथमपुरुष	अतुदत	अतुदेताम्	अतुदन्त
मध्यमपुरुष	अतुदथा	अतुदेथाम्	अतुदध्वम्
उत्तमपुरुष	अतुदे	अतुदाथहि	अतुदामहि

विधिलिङ् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	तुदेत	तुदेयाताम्	तुदेरन्
मध्यमपुरुष	तुदेया	तुदेयाथाम्	तुदेध्वम्
उत्तमपुरुष	तुदेथ	तुदेवहि	तुदेमहि

लृट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	तोत्स्यते	तोत्स्येते	तोत्स्यन्ते
मध्यमपुरुष	तोत्स्यसे	तोत्स्येथे	तोत्स्यध्वे
उत्तमपुरुष	तोत्स्ये	तोत्स्यावहे	तात्स्यामहे
	* †	* †	

तुदादि सकर्मक उभयपदी धातु ।

क्षिप् प्रेरणे (क्षेपणे)—फेंकना To throw—क्षिपति, क्षिपते, क्षेप्स्यति, क्षेप्स्यते । क्षिपति क्षिपते इतर शोध । *

‡ अधि + क्षिप्—निन्दायाम्, तिरस्कारे । आ + क्षिप्—आकषणे, निन्दायाम्, दूषणे च । उन् + क्षिप्—उत्तोलने (उठाना) । नि + क्षिप्—भेषणे, अप्रणये, स्थापन च । परि + क्षिप्—वैष्टने । प्र + क्षिप्—क्षेपणे । वि + क्षिप्—विक्रिये (विप्रेरणा) । मन् + क्षिप्—अल्पीकरणे । ‡

* जिसपर कुछ फेंका जाता है, उसमें सप्तमी वा चतुर्थी होता है, यथा—“दिला वा क्षेप्स्यते मयि ” महाभा०, “सत्रं शत्रवेऽक्षिपन्”

-दिन् दाने, आज्ञापने च—(१) देना; (२) आज्ञा करना To give, to order—दिसति, दिसने, देखति, देखने । (१) “दिदेश कौत्साय सप्तमन्त्रेव” र० ६ १० . (२) “दिदेश दानाय निदेशकारिण ” जै० १. ६६. । कथनेऽपि; धर्मं दिसति देशिष्ठ ।
 * भव + दिन्, वि + भव + दिन्—व्याजे (उठ करना); कथने च । भा + दिन्—आज्ञापयाम्; “मार्गमादिश” । प्रति + आ + दिन्—निराकरणे, निवारणे । उव् + दिन्—अभिप्राये । उप + दिन्—हितोष्ठी, कीर्तने च । निर् + दिन्—सूचने, कथने; अद्भुत्या निर्दिशति । प्र + दिन्—दाने, निदेशे च । मन् + दिन्—दाने; दाना-कथने च । *

-नुद् (णुद्) प्रेरणे (ध्वजने, निगने)—(१) चलायाना; (२) दूर करना To push or drive on; to remove—नुदति, नुदते; मोत्स्यति, मोत्स्यते । (१) नुदति वाजिनं मारुषि : (२) “पापं नुदति साधूनां दर्शनं क्षमनाप्रत ” ।

* अण + नुद्—दूरीकरणे । वि + नुद् + जिच्—अराकरणे (दूर करना); प्रीणने च (दहलाना); विनोदयति । *

-भृत् पात्रे (भजने)—भूना To fry, roast—भृजति, भृजते : भक्षयति, भक्षयते । भृजति भृजते मन्त्वं सूकार ।

-नुच् (मुचुच्) मोक्षणे (त्यागे)—गोचना To leave—नुद्यति, नुद्यते; मोक्षयति, मोक्षयते । नुद्यते नुद्यते धर्मं दाता ।

* कर्मभर्त्सि—मुच्यते, प्रमुच्यते (मुक्त होता है); “महापातकि-मन्तपर्मैश्च मुच्यन्ते किल्बिषाय तत ” मनु० ११. २३१. । अत्र +

मुच्—उन्मोचने (सोलना), अवमुञ्चति वासामि । आ + मुच्—
परिधाने , आभरणम् आमुञ्चति । उच् + मुच्—उन्मोचने । प्रति +
मुच्—प्रत्यर्पणे ; परिधाने च । वि + मुच्—त्यागे , “नादान् विमु-
ञ्चति” महाभा० । ❀

लिर् लेपने—लारना, पोतना To anoint, besmear—लिम्पति,
लिम्पते , लेप्स्यति, लेप्स्यते । लिम्पति लिम्पते चन्दनेन गात्रं
सुधा । “लिम्पतीव तमोऽङ्गानि” मृचउ= १ ३४ ।

❀ आ + लिर्, उप + लिप्, वि + लिप्—लेपने । ❀

लुर् लुप्तने (विनाशने)—लोप करना To break destroy—
लुम्पति, लुम्पते , लोप्स्यति, लोप्स्यते । “अनुभव वचना मलि !
लुम्पामि” ने० ४. १०० ।

❀ लुर्—कर्मकर्त्तरि—लुप्त होना ; लुप्यते , “तस्य भागो न
लुप्यते” मनु= १. २११. । ❀

विद् (विद्मू) लाभे—पाना To gain—विन्दति, विन्दते ; वेदि-
ष्यति, वेदिष्यते, वेत्स्यति, वेत्स्यते । पुण्यात्मा विन्दते स्वप्नम् ।

मिच् सेचने (आर्द्रकरणे)—सांचना To sprinkle, to water—
मिञ्चति, मिञ्चते ; सेच्यति, सेच्यते । मिञ्चति धर्मो वारिवाहः ।

❀ ऋमि + मिच्—सेचने ; राज्यादौ प्रतिष्ठाने च , अमिचि-
ञ्चति । ❀

तुदादि अकर्मक उभयपदी धातु ।

मिल् मिल्नने (मिलने)—मिलना (एकत्र होना, संयुक्त होना) To
meet, assemble—मिञ्चति, मिञ्चते ; मेलिष्यति, मेलिष्यते ;

मिलिष्यति—इति महिष्यारम् । मिलति मिलते लता वृत्रे ।
 “मिलन्ति प्रत्यह यम्य वाजिवारणमन्वद ” ।

भ्वादि ।

क्रियाघटन-सूत्र ।

[तुदादिके बोधने षार (#) विहित जो जो माधारण सूत्र हैं,
 भ्वादिगणोप धातुमेभा उन नूयोंका कार्य्य हागा ।]

२६७ । चतुर्थकार परे रहनेसे, कर्तृवाच्यमे, यन् और दाच्—यच्,
 धा—धिच्, स्या—तिष्, ध्मा—धन्, पा—पिच्, गन्—गच्छ, ऋ—
 ऋच्छ, इत्—इच्छ होता है ।

२६८ । चतुर्थकार परे रहनेसे, कर्तृवाच्यमे, शिव्—शोच्, ऋ—गृह्
 ला + चन्—भाचाम्, मन्च्—मज्, स्वन्च्—स्वज्, दन्च्—दज्,
 सद्—सोद्, और परस्मैपदमे क्रन्—क्राम् होता है ।

२६९ । चतुर्थकारमे भ्वादिगणोप धातुके उत्तर विहित ‘भ’ परे
 रहनेसे, धातुके अन्त्यस्वर और उपधा लघुस्वरागुं होता है : यथा—
 (अन्त्यस्वर) जि + ति = जि + झ + ति = जे + झ + ति = ज्ञति (उपधा
 लघुस्वर) शुच् + ति = शुच् + झ + ति = शोच् + झ + ति = शोचति ।

२७० । चतुर्थकार परे रहनेसे, कर्तृवाच्यमे, खन्च्—खन्, भ्रन्च्—
 भ्रन्, कृच्—कल्, और गन्च्—गन् होता है ।

भ्वादि ।

अकर्मक परस्मैपदी धातु ।

पत् (पतलृ) पतने*—गिरना To fall

(पतति पत्र वृक्षात् ।—(२) घर्मभ्रमे, “पशाम्बु गृध्रञ्च मन्था
उरुणा पतेद्द्विज ” मनु० ० १९ ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	पतति	पतत.	पतन्ति
मध्यमपुरुष	पतसि	पतथ	पतथ
उत्तमपुरुष	पतामि	पताव	पताम

लोट् ।

प्रथमपुरुष	पततु	पतताम्	पतन्तु
मध्यमपुरुष	पत	पततम्	पतत
उत्तमपुरुष	पतानि	पताव	पताम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अपतत्	अपतताम्	अपतन्
मध्यमपुरुष	अपत.	अपततम्	अपतत
उत्तमपुरुष	अपतम्	अपताव	अपताम

* ‘पतलृ गतौ’ इति धतुनाठ , पत्—जाना To go—सङ्मक ;
दया—[स.] पपत पथ ” भा० ४ १८ (म ऊर्जुन पथ मानार् पपाउ
वाम इत्यर्थः) ।

विधिलिट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	पतेत्	पतेताम्	पतेयुः
मध्यमपुरुष	पते	पतेतम्	पतेत
उत्तमपुरुष	पतेयम्	पतेव	पतेम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	पतिष्यति	पतिष्यत	पतिष्यन्ति
मध्यमपुरुष	पतिष्यसि	पतिष्यथ	पतिष्यथ
उत्तमपुरुष	पतिष्यामि	पतिष्याव	पतिष्याम

•११ भृन् + पत्—अनुपारणे । अभि + पत्—अभिधावने , आक्रमणे च । आ + पत्—आगमने , उपस्थितौ च । उत् + पत्—उद्धरणे (उटना) । नि + पत्—अथ पतने ; उपस्थितौ च । प्र + नि + पत्—प्रणामे ; प्रणिपतति । सम् + नि + पत्—मिलने । निर् + पत्—निर्गमं (निकलना) ; निष्पतति । •१२

हम् (हसे) हसने—हसना To laugh

(मधुर हसति शिशु । उपहासे—दोषदर्शनपूर्वकहासे—

स्ट्टा करना—तु सकर्मक , हसन्ति साधवश्चौरम् ।)

लृट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	हसति	हसत	हसन्ति
मध्यमपुरुष	हससि	हसथ	हसथ
उत्तमपुरुष	हसामि	हसावः	हसाम

लोट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	हसतु	हसताम्	हसन्तु
मध्यमपुरुष	हस	हसतम्	हसत
उत्तमपुरुष	हसानि	हसाव	हसाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अहसत्	अहसताम्	अहसन्
मध्यमपुरुष	अहसः	अहसतम्	अहसत
उत्तमपुरुष	अहसम्	अहसाव	अहसाम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	हसेत्	हसेताम्	हसेयुः
मध्यमपुरुष	हसेः	हसेतम्	हसेत
उत्तमपुरुष	हसेयम्	हसेव	हसेम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	हसिष्यति	हसिष्यत	हसिष्यन्ति
मध्यमपुरुष	हसिष्यसि	हसिष्यथ	हसिष्यथ
उत्तमपुरुष	हसिष्यामि	हसिष्याथ	हसिष्याम

भू भव + इम्, उप + हन्—उपहासे । परि + इस्—परिहासे ।

भू सत्तायाम्—होना To be, become

("सत्सद्भाद्भवति हि माधुता सलानाम्" चाणक्य ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	भवति	भवत	भवन्ति
मध्यमपुरुष	भवसि	भवथ	भवथ
उत्तमपुरुष	भवामि	भवाव	भवाम

लोट् ।

प्रथमपुरुष	भवतु	भवताम्	भवन्तु
मध्यमपुरुष	भव	भवतम्	भवत
उत्तमपुरुष	भवानि	भवाव	भवाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अभवत्	अभवताम्	अभवन्
मध्यमपुरुष	अभव	अभवतम्	अभवत
उत्तमपुरुष	अभवम्	अभवाव	अभवाम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	भवेत्	भवेताम्	भवेतु
मध्यमपुरुष	भवे	भवेतम्	भवेत
उत्तमपुरुष	भवेयम्	भवेथ	भवेन

लृट् ।

प्रथमपुरुष	भविष्यति	भविष्यत	भविष्यन्ति
मध्यमपुरुष	भविष्यसि	भविष्यथ	भविष्यथ
उत्तमपुरुष	भविष्यामि	भविष्याव	भविष्याम

भू + भु + नृ—बोधे । भभि + नृ—पराजये । उद् + नृ—उत्पत्तौ

परा + म्—पराभव । परि + भू—अनादरे । प्र + भू—उत्पत्तौ, सामर्थ्ये च (मङ्गना)। वि—भू + गिच्—विन्नायाम्, ज्ञाने प्रकाशने च विभावयति ।
 म्न् + भू—मन्मावनायाम् (मुमङ्गित होना) । उत्पत्तौ, मिश्रणे च ।
 मन् + भू + गिच्—मन्मानने, चिन्तने, विवचने च, “विशेषणं दक्षिण-
 नञ्जनैः सम्भाव्य” २० ७ ८ इत्यत्र ‘सम्भाव्य अलङ्कृत्य’ इत्यर्थः । भू-
 न्या (घ्रा) गतिनिवृत्तौ (अवस्थाने)—रहना, उहरना To stay
 (तिष्ठति माधुर्धनं ।)

१

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	तिष्ठति	तिष्ठत	तिष्ठन्ति
मध्यमपुरुष	तिष्ठसि	तिष्ठथ	तिष्ठथ
उत्तमपुरुष	तिष्ठामि	तिष्ठाव.	तिष्ठाम

लोट् ।

प्रथमपुरुष	तिष्ठतु	तिष्ठताम्	तिष्ठन्तु
मध्यमपुरुष	तिष्ठ	तिष्ठतम्	तिष्ठत
उत्तमपुरुष	तिष्ठानि	तिष्ठाव	तिष्ठाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अतिष्ठत्	अतिष्ठताम्	अतिष्ठन्
मध्यमपुरुष	अतिष्ठा	अतिष्ठतम्	अतिष्ठत
उत्तमपुरुष	अतिष्ठम्	अतिष्ठाव	अतिष्ठाम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	तिष्ठेत्	तिष्ठेताम्	तिष्ठेयुः
------------	----------	------------	-----------

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	तिष्ठे	तिष्ठेतम्	तिष्ठेत
उत्तमपुरुष	तिष्ठेयम्	तिष्ठेय	तिष्ठेम
लृट् ।			
प्रथमपुरुष	स्थास्यति	स्थास्यत	स्थास्यन्ति
मध्यमपुरुष	स्थास्यसि	स्थास्यथ	स्थास्यथ
उत्तमपुरुष	स्थास्यामि	स्थास्याव	स्थास्याम

१. अधि + स्था—स्थितौ, पराभवं प्रभुत्वे च—(सम्बन्ध) “आ-
 धमवर्हिर्वृक्षमूलमधितिष्ठति” उत्तर० ४ । अनु + स्था—करणे । अव +
 स्था—अवस्थितौ, आत्मनेपदी, अवतिष्ठते । प्रति + अव + स्था—
 विरोधे, आक्षेपे, नान्नायाम्, प्रातिवृत्त्ये । आ + स्था—आश्रये, “संप्रमे
 यत्रमातिष्ठेत्” मनु० २ ८८ । उव् + स्था—उत्थाने (उठना) । उर +
 स्था—उपस्थितौ (हाज़िर होना) ; आत्मनेपदी ; उपतिष्ठते । प्र +
 स्था—प्रस्थाने (चने जाना) ; आत्मनेपदी, प्रतिष्ठते । सम् + स्था—
 अवस्थाने, आत्मनेपदी, सन्तिष्ठते । १.

अनुवाद करो—आरकी पत्रिका प्राप्त होकर (अवाप्य) मैं सुखी
 हुआ । अब यदि वृष्टि हो, तो प्रचुर दान्य होगा । उनका मङ्गल हो ।
 नुमनोग चिरजीवी हो । तुम दोनों भाई यहाँ रहो । वे क्या घामे धे १
 जे लोग सन्देश गुरके पाम रहते हैं, उनका कमी अमङ्गल नहीं होना ।
 यहाँ और अधिक दिन नहीं रहूंगा । तू निश्चयावादी होगा, तो नरकमे
 गिरेगा । आंघीमे (मुर्तीया) बृक्षसे आम गिरते हैं । ऐसी आंघीसे सब
 कल गिर जायेंगे । टमकी धात उरकर (धुत्वा) सब हम पटे । नदुप

ऋषियोंके शापसे स्वर्गसे गिरा । अविश्वासी नहीं होना चाहिये । वह यदि बार दिन वहाँ रहे, तो उसका मर काय्य सफल होगा । दूरमेका दुःख देखकर (दृष्ट्वा) कमी हमना नहीं चाहिये । अन्धे और लड़केका (द्वितीया) उपहास न करना । नारदको दूरमे देखकर अच्युत (कृष्ण) आसनमे उठे ।

सकर्मक परस्मैपदी धातु ।

गम् (गम्लृ) गतौ—जाना To go

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	गच्छति	गच्छतु*	गच्छन्ति
मध्यमपुरुष	गच्छसि	गच्छथ*	गच्छथ
उत्तमपुरुष	गच्छामि	गच्छाव	गच्छाम्.

लोट् ।

प्रथमपुरुष	गच्छतु	गच्छताम्	गच्छन्तु
मध्यमपुरुष	गच्छ	गच्छतम्	गच्छत
उत्तमपुरुष	गच्छानि	गच्छाव	गच्छाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अगच्छत्	अगच्छताम्	अगच्छन्
मध्यमपुरुष	अगच्छ	अगच्छतम्	अगच्छत
उत्तमपुरुष	अगच्छम्	अगच्छाव	अगच्छाम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	गच्छेत्	गच्छेताम्	गच्छेयु
------------	---------	-----------	---------

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	गच्छे	गच्छेतम्	गच्छेन
उत्तमपुरुष	गच्छेयम्	गच्छेव	गच्छेम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	गमिष्यति	गमिष्यतः	गमिष्यन्ति
मध्यमपुरुष	गमिष्यसि	गमिष्यथ	गमिष्यथ
उत्तमपुरुष	गमिष्यामि	गमिष्याव	गमिष्यामः

• गम् + लिच्—अवरोधने (समझाना), गमयति, “द्वौ नगौ प्रकृतार्थं गमयत ” (Two negatives make one affirmative) । अति + गम्—अतिक्रम । अधि + गम्—प्राप्तौ, ज्ञाने च । अनु + गम्—अनुपराणे । अप + गम्—अपराणे, दूरीभावे । अव + गम्—ज्ञाने । आ + गम्—आगमने, प्राप्तौ च । उप + आ + गम्—मिलने । उत् + गम्—उद्भवे । प्रति + उत् + गम्—प्रत्युद्गतौ, सम्मानार्थं पुरोगमने । उप + गम्—प्राप्तौ । अभि + उप + गम्—स्वीकारे । निर् + गम्—बहिर्गमने । परि + गम्—प्राप्तौ, ज्ञाने, वेद्ये च । सम् + गम्—मिलने, साधु साधुभि सह सहच्छते ; (२) योग्यतापात्र ; तत्र सहच्छते । •

पा पाने—पीना To drink

(पिवति पय पान्थ ।)

लृट् ।

प्रथमपुरुष	पिबति	पिबतः	पिबन्ति
मध्यमपुरुष	पिबसि	पिबथ	पिबथ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	पिबामि	पिबाव.	पिबाम.

लोट् ।

प्रथमपुरुष	पिबतु	पिबताम्	पिबन्
मध्यमपुरुष	पिव	पिवतम्	पिवत
उत्तमपुरुष	पिबानि	पिबाव	पिबाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अपिबत्	अपिबताम्	अपिबन्
मध्यमपुरुष	अपिवः	अपिवतम्	अपिवत
उत्तमपुरुष	अपिवम्	अपिबाव	अपिवाम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	पिवेत्	पिवेताम्	पिवेयुः
मध्यमपुरुष	पिवे	पिवेतम्	पिवेत
उत्तमपुरुष	पिवेयम्	पिवेव	पिवेम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	पास्यति	पास्यतः	पास्यन्ति
मध्यमपुरुष	पास्यसि	पास्यथ	पास्यथ
उत्तमपुरुष	पास्यामि	पास्याव	पास्यामः

दृश् (दृशिद्) प्रेक्षणे (ज्ञाने , साक्षात्कारे)—देखना To see.

(पश्यति चन्द्रं लोक ; "आत्मवत् सर्वभूतेषु य पश्यति स पण्डित.")

चाणक्यः । "पशु पश्यति गन्धेन, बुद्ध्या पश्यन्ति पण्डिता ।

राजा पश्यति कर्णाभ्यां, भूते पश्यन्ति शब्दरा ॥")

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	पश्यति	पश्यत	पश्यन्ति
मध्यमपुरुष	पश्यसि	पश्यथः	पश्यथ
उत्तमपुरुष	पश्यामि	पश्याथ	पश्याम

लोट् ।

प्रथमपुरुष	पश्यतु	पश्यताम्	पश्यन्तु
मध्यमपुरुष	पश्य	पश्यतम्	पश्यत
उत्तमपुरुष	पश्यानि	पश्याथ	पश्याम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अपश्यत्	अपश्यताम्	अपश्यन्
मध्यमपुरुष	अपश्य	अपश्यतम्	अपश्यत
उत्तमपुरुष	अपश्यम्	अपश्याथ	अपश्याम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	पश्येत्	पश्येताम्	पश्येयुः
मध्यमपुरुष	पश्ये	पश्येतम्	पश्येत
उत्तमपुरुष	पश्येथम्	पश्येथ	पश्येम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	द्रक्षति	द्रक्षत	द्रक्ष्यन्ति
मध्यमपुरुष	द्रक्षसि	द्रक्षथ	द्रक्षथ
उत्तमपुरुष	द्रक्ष्यामि	द्रक्ष्याथ	द्रक्ष्याम

११ अनु + दृग्—आलोकने (देखना) ; आलोचनायाश्च । दृप,

परि, प्र, सम् + हन् + गिच्—प्रदर्शने (दिखलाना) ; उपदशंप्रति &c. †

अनुवाद करो—बचा, तू जा, वहमो जाय, परन्तु मै नहीं जाऊगा ।
वे कल पढ़नेको (पठितुम्) गये थे ; तू गया या क्या ? यदि इयाम
आवे, तो मैमो जाऊगा । पढ़ते इसे देखो, पीछे जल पीना । शरीरपुष्टिके
लिये दूत पान करना चाहिये । कर्म मय नहीं पीना । प्रणिवानमे क्या
देखते हो ? मै शीघ्र उस देशको देखूंगा । तू जल पीयेगा क्या ?

* * * *

भ्वादि सकर्मक परस्मैपदी धातु ।

अञ् (अनुञ्) गतौ ; पूजने च—(१) जाना , (२) पूजा (सम्मान)
करना To go ; to worship (honour)—अञ्ति ,
अञ्चिष्यति । (१) “स्वतन्त्रा कथमञ्चसि ?” म० ४. २२ ;
(२) “मोनोऽयं शिरसाऽञ्चति” वैगी० ० २७ ।

अद् अनणे—भ्रमना To wander—अदति ; अदिष्यति ।
नहोनदति परिवाद् ।

‡ परि + अद्—पर्यटने , “तीर्षानि पर्यटन्व” महाभा० । ‡
अच् पूजायाम्—पूजा करना To adore—अचति ; अचिष्यति ।
“रत्नपुष्पोपहारेण क्लायमानर्चं पादयो ” २० ४. ८४. ।

अर्ज् अर्जने—कमाना To earn—अर्जति ; अर्जिष्यति । “यद्ब-
मर्जति दाता” मै० ९ ८४ ।

अर्द् गतौ , याचने ; पीडने च—(१) जाना ; (२) माङ्गना ; (३) सताना,
मारना To move ; to beg ; to afflict—अर्दति ; अर्दि-
ष्यति । (२) “शतद्बन नार्दति चातकोऽपि” २० ९ १७. ।

-अहं, योग्यत्वे, पठने च—(१) योग्य होना To deserve, merit;
 (२) पूजा करना—अहंति; अर्हियति । (१) दण्डमहंति दुष्टं च ।
 (अरु०) अहंति विप्रो वेदं पठितुम् ।

‘अनुनन्त’-पदके साय मध्यमपुरुषमे और कर्ता प्रथमपुरुषमे प्रयुक्त होनेसे, ‘अहं’-धातु—चूडु अनुज्ञा, उपदेश, वा विनीत प्रार्थना सूचिन करता है, और अङ्कुरेजीमे उभया अनुवाद ‘Pray’, ‘deign’, ‘be pleased to’, ‘will be pleased to’ द्वारा करना होता है यथा—“द्वित्राण्यहान्यहंमि सोऽहमहंम् ।” १० ० ०० (Pray wait &c), “नाहंमि मे प्रणय विहन्तुम्” १० २. ५८; “तं सन्त श्रोतुमहंन्ति” १० १. १० (Will be pleased or be good enough to listen to it) ।

-अव् रक्षणे; प्रीयते च—(१) रक्षा करना, (२) प्रीत करना (सुख करना) To protect; to satisfy—अवति; अविष्यति ।
 (१) “अवत्तु वो गिरिष्ठता”; (२) “नमानवति सद्गोपा रक्षसुरवि मेदिनी” १० १ ६० ।

-इ गतौ—अयति; अप्यति ।

१५५ इत् + इ—उदये; “उदयति विततोर्द्ध्वरश्मिन्जावहिनरर्षी हिम-
 घाम्नि याति घाम्तम् । वहति गिरिषं दिग्द्विदृष्टादृशरिदारि-
 वारणेन्द्रलीलाम् ॥” भाष० ४ २० (अनेनैव श्लोकेन कविना ‘अप्य-
 माय’ इति नाम कल्पयित्वा केविकृतं यन्ति); “अप्यमुदयति सु-
 दामज्ञान परिनीतान्”; “उदयति यदि मानु पश्चिमे दिग्दिभागे”
 उदय १ १५

उक्ष् सेचने—सीजना To wet, moisten—उक्षति, उक्षिष्यति ।
उक्षति वृक्ष मेघ ।

१३ अभि + उक्ष्, प्र + उक्ष्—समन्तात् वारिबिन्दुप्रक्षेपे (डिङ् कना), “प्रोक्षित भक्षयेन्मानम्” (यज्ञार्थं मन्त्रैः संस्कृतम् इत्यर्थं)
मनु० ६ २७ । १३

ऋ गतौ, प्राप्तौ च—(१) जाना, (२) पाना To go, to obtain—
ऋच्छति, अरिष्यति । (२) ऋच्छति धनं कृती, “षण्डालपुष्पमा-
नाञ्च ब्रह्महा योमिमृच्छति” मनु० १२ ६० ।

१४ ऋ + णिच्—(१) दाने, (२) स्थापने च, अर्पयति । (२) “अप-
थे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिर्मोलिता ” १० ९ ७४ । १४

कप् हिंसायाम् To injure, (२) घर्षणे To rub, scratch, (३)
परीक्षणे (निकषोपरि घर्षणेन स्वर्णस्य)—कमौटीमे विसर्कर स्वर्णकां
परीक्षा करना To test, rub on a touchstone (as gold),
“छद्देम कपन्निवालसत् कपपायाणनिभे नमस्तडे” नै० २ ६९ ।

कस् गतौ—कसति, कसिष्यति ।

१५ वि + कम्—विकासे (खिलना और विस्तृत होना—अक०) ;
“विकसति हि पतङ्गस्योदये पुण्डरीकम्” मालती० १ २८ । वि +
कस् + णिच्—To cause to expand—विकासयति, “कोप-
कुष्ठम व्यचीकसत्” माघ० १६ १२, “चन्द्रो विकासयति कैरवचक्र-
वालम्” भर्तृ० । प्र + वि + कम्—प्रकाशे । निर + कम् + णिच्—
नि सारणे, निष्कासयति । १५

काह्न् (काक्षि) वाञ्छायाम्—आकाङ्क्षा करना, चाहना To wish—

काहति, काह्विष्यति । मधुव्रत काहति बलहीम् ।

११ आ + काह्—आकाह्वाणाम् । ११

कित् रोगापनयने (व्याधिप्रतीकारे)—इलाज करना To heal, cure—
चिकित्सति, चिकित्सिष्यति ।

११ वि + कित्—संशये । ११

कृप् आकर्षणे, विलेखने च—(१) खींचना, (२) जोतना To pull,
to till—कृषति, कृष्यति, कृष्यति । (१) कृषन्ति तुरगा रथम्,
(२) इक्षुक्षेत्र कृषति कृषीवल ।—(३) प्रापणे (ले जाना) ;
द्विकर्मक, कृषति शाखा प्रामम् ।

११ आ + कृप्, वि + कृप्—आकर्षणे । अप + कृप्—अपसारणे
(हटाना), नाशने, “धैर्यं शोकोऽपकृषति” रामा०, (२) न्यूना
करणे च (घटाना) । उत् + कृप्—उत्तोलने, उद्धरणे (निकाल
लेना, घुटाना), आकर्षणे, वर्द्धने च (बढ़ाना) । निर + कृप्—
बलात्प्रहणे, बाहरणे । प्र + कृप्, उत् + कृप्—कर्मकर्त्तरि—आ-
धिक्ये, वृद्धौ, श्रेष्ठतायाम् (अधिक होना, बढ़ना, श्रेष्ठ होना) ;
प्रकृत्यते, उत्कृत्यते । वि + प्र + कृप्—दूरीकरणे । ११

कम् (कमु) पादविशेषे (गतौ)—कदम रखना, चलना To step,
walk—कामति, काम्यति, क्रम्यति, क्रमिष्यति ।—आक्रमणे
च, “कृष्णोरगौ पदा कामसि पुच्छदेने” महाभा० ।

११ गति + कम्—(१) उलङ्घने (पार होना), (२) अतिवा-
हने (काटना), (३) अत्यये च (गुजरना—अक्र०), यथा—
(२) आहारखेलां नातिनामेत्, (३) “अतिक्रामति देवार्चन-

विधिपेला” काद० । वि + भति + क्त्—उलङ्घने, मद्ने (तोडना) ;
 “कृच्छ्रेष्वपि न मध्यादा व्यतिक्रमेत्” पञ्च० १ १९ । अप + क्त्—
 अपमरणे (हटना) । आ + क्त्—आक्रमणे । उत् + क्त्—उद्गमने ,
 अतिक्रमे च । उप + क्त्, प्र + क्त्—आरम्भे, आरम्भनेपदी , उप-
 क्रमते, प्रक्रमते । निर् + क्त्—निर्गमने निष्क्रामति । परा + क्त्,
 वि + क्त्—शौर्ष्याविष्कारे (बहादुरो या हिम्मत दिखाना), “व-
 कञ्चिन्तयेदयान् सिंहवच्च पराक्रमेत्” मनु० ७ १०६ । परि + क्त्—
 इतस्तत पादचारे (चलना फिरना) । सम् + क्त्—प्रवेशे । ११

खाद् भक्षणे—खाना To eat—खादति , खाद्विष्यति । “खादति पृष्ठमां-
 सम्” (जुगली खाता है) हितो० १ ८२ ।

गद् भाषणे—कहना To say—गदति , गद्विष्यति । “वेदान् गदति वि-
 स्पष्टम्” ।

११ नि + गद्—कथने । ११

गुप् (गुरु) रक्षणे—रक्षा करना, बचाना To protect—गोपायति ,
 गोपयति, गोपिष्यति, गोपायिष्यति । “गोपायन्ति कुलत्रिय आत्मा-
 नम् आत्मना” महाभा० ।

गँ गाने (कीर्तने)—गाना To sing—गायति , गाम्यति । गीत
 गायति गायन । “प्राणरक्षणाच्च न परं पुण्यजाते जगति गीयते
 जनेन” धौर्ध्वरितम् ।

११ उत् + गँ—उर्ध्वगाने । परि + गँ—कीर्तने । वि + गँ—निम्ना
 याम् । ११

घृप् (घृषु) धर्षणे—घिसना To rub—धर्षति ; धर्षिष्यति । धर्षति

चन्दन लोङ् ।

घ्रा गन्धग्रहणे (आघ्राणे)—सूधना To smell—जिघ्रति ; घ्रास्यति ।

जिघ्रति पुष्पं लोक । “द्वीपनिर्वांगगन्धञ्च न जिघ्रन्ति गताद्युप ” ।

श्रूः अय, आ, उप + घ्रा—आघ्राणे । श्रूः

चन् (चम्) भक्षणे—खाना, पीना To eat, to drink—चमति,

चमिष्यति । “वचाम मधु माध्वीकम्” म० १४. ९४ ।

श्रूः आ + चम्—आचमने, आचामति । पाने—“मण्डम् आचा-

मति मृग ” उत्तर० ४ १ । श्रूः

चर् गतौ (भ्रमणे), भक्षणे च—(१) विचरना, (२) खाना To travel,

to eat, graze—चरति ; चरिष्यति । (१) “जटास्रुटा हरिण-

शिशवो मन्दमन्द चरन्ति”, (२) कृगानि चरति ।—(३) आचरणे .

“शम्बूको नाम तत्रचरति” उत्तर० ।

श्रूः अति + चर्—लङ्घने । अनु + चर्—अनुगमने, सेवायाञ्च ।

अभि + चर्—(१) अतिक्रमे, “पतिं या नाभिचरति” मनु० ०

१६६, (२) मारणे च, “शयेनेनाभिचरन्” । वि + अभि + चर्—

अतिक्रमे, अन्यथाभावे च । आ + चर्—व्यवहारे, “जानन्नपि हि

मेधावी जडबहोः आचरेत्” मनु० २ ११०. । सम् + आ + चर्—

अनुष्ठाने, करणे । उद् + चर्—उदये (टठना) ; मूत्रपुतीपोत्सर्गे ;

उच्चारणे च । उद् + चर् + णिच्—उच्चारणे, उच्चारयति । उप +

चर्—पूनायाम्, सेवायाम् । परि + चर्—सेवायाम् । वि + चर्—

भ्रमणे (डोलना) । वि + चर् + णिच्—मीमांसायाम्, निर्णये ;

विचारयति । सम् + चर्—गमने, कारणकारकका प्रयोग रहनेसे

आत्मनेपदी—अश्वेन सञ्चरते । ❀

चुम् (चुर्) बह्मयोगे (चुम्बने)—चूमना To kiss—चुम्बति
चुम्बिष्यति । चुम्बति बाल माता ।

चूप् पाने—चूमना To suck up or out—चूपति । चूपत्याघ्र
लोक ।

जप् मानसे (हृद्बारे)—जप करना To repeat internally
or mutter—जपति , जपिष्यति । मन्त्र जपति साधक ।

❀ उप + जप्—भेदे । ❀

जल्प कथने—बहना, बात करना To speak, talk—जल्पति , जल्पि-
ष्यति । “एकेन जल्पन्त्यनल्पाक्षरम्” पञ्च० १. १४७ ।

जि अभिमने, उत्कर्षप्राप्तौ च—(१) जीतना, (२) जययुक्त होना
(अक०) To conquer, to be supreme or pre-emi-
nent—जयति , जेयति । (१) जयति शत्रु बली, (२) “जयति
रथुःशतिलक” महाना० १ ३ ।*

❀ निर् + जि—अभिमने । परा + जि—पराजये, आत्मनेपदी,
पराजयते । वि + जि—(१) पराभवे (सक०), (२) उत्कर्षप्राप्तौ
च (अक०), आत्मनेपदी, विजयते, यथा—(१) “अधुमचक्रम-
म्बुज विजयते” विद्म० १ ३३, (२) “भो राजन् ! विजयतां
भवान्” शकु० ६ । ❀

* “अनभिधानादस्मात् तुबन्त्वो प्रयोगामाव, किन्तु तयो स्थाने
तिबन्ती इति । किञ्च तुप० स्थाने तातद् दृश्यते, तथा—‘भावगम्यलय को-
ऽपि जयताद्वागगोचर’ इति ।” इति कविकल्पद्रुमटीकाकृद्गुर्गादास ।

तश् (तश्) तन्कृत्ये (कृतोक्त्ये)—कलना, कृत्वा To pare, chop, cut off—तश्ति, तश्नोति; तश्तिष्यति, तश्सति । तश्ति तश्नोति काष्ठं तश्तः ।

तर् सन्तापे (दाहे; शोके)—सन्तापित करना (दुखाना—अक०); सन्तत होना (दुख पाना—अक०) To burn, to afflict; to suffer pain—तर्ति, तर्त्यति । “तर्ति तनुमात्रि ? मदन-स्त्वान्” शकु० ३. १७; “तर्ति न सा किमकथयशनेन” गीतगो० ७. । प्रकाशेऽपि—रविन्तरति ॥ “अर्जनाथे सातननेरदं पद् च—तर्त्यने तरस्तापन ”—सङ्घितनाम् ।

‡ अनु + तर्—कर्मकर्त्तरि—पश्चात्ताने (अक०); अनुत्पत्ते । परि + तर्—परितापे, व्यथायाम् (कर्मकर्त्तरि), “परितन्ने नोत्तम परवृद्धिभिः” भाष० १६. २३. । सन् + तर्—सन्तापे (कर्मकर्त्तरि); “दिवाऽपि मयि निष्कान्ते सन्तन्नेषु तुरु मन” महाभा० । ‡

तृ तले (अतिक्रमणे); उरने (जलोपरिस्थितौ) च—(१) पार होना; (२) उराना (अक०) To cross; to float—तर्ति; तर्तिष्यति । (१) तर्ति नदी भेदकेन पान्थ , “तर्ति सङ्घट्टु-खं दामनं भावनेदृषः” ; (२) तर्ति शुष्ककाष्ठे जटे ।

‡ अति + तृ—अतिक्रमे । अत्र + तृ—अशोभ्ये (उराने) । उर् + तृ, निर् + तृ—अतिक्रमे; निष्तरति । प्र + तृ + मिच्—उरने (उराना); प्रउरति । वि + तृ—उरने । सन् + तृ—सन्तर्त्ये (उराना); अतिक्रमे च, “सर्वे ज्ञानहोनेव वृद्धिन सन्तरिष्यसि” गीता. ४. ३६. । ‡

त्यज् त्यागे—छोड़ना To leave—त्यजति, त्यक्षति । त्यजति दुष्ट-
लोकं जन ।

श्रृं परि + त्यज्, सम् + त्यज्—वर्जने । श्रृं

दंश् (दन्श्) दशने (दन्तव्यापारे)—इसना To bite—दशति,
दह्यति । “पदा स्पृशन्त दशति द्विजिह्व ” २० १४ ४, दशति
विम्बफलं शुक्रशावक ।

दह् भस्मीकरणे (दाहे, सन्तापे)—(१) जलाना, (२) दुःख देना
To burn, to torment—दहति, धक्षति । (१) दहत्यग्नि
काष्ठम्, (२) “आत्मकृतमप्रतिद्वित चापलं दहति” शकु० १० ।

श्रृं निर् + दह्—दाहे, प्रणाशे च, “एनो निर्दहन्त्याशु तपसा”
मनु० ११ २४१ । श्रृं

दा (दाण्) दाने—देना To give—यच्छति ; दास्यति ।

श्रृं प्र + दा—प्रदाने । श्रृं

द् द्रु गतौ (पलायने), द्रवीभावे च—(१) जाना, भागना, (२) पिघलना
(अक०) To run, flow, fly, to melt—द्रवति, द्रोष्य-
ति । (१) “नद्यः समुद्रं द्रवन्ति” गीता. ११ २८, “रक्षांसि
भीतानि दिशो द्रवन्ति” गीता ११ ३६, (२) “द्रवति च हिम-
रवमाहुर्द्रुने चन्द्रकान्त ” उत्तर० ६ १२ ।

श्रृं अनु + द्रु—अनुसरणे । उप + द्रु—अभिमुखधावने, आक्रमणे ।
प्र + द्रु, वि + द्रु—पलायने । श्रृं

धे (धेद्) पात्र—पीना To drink—धयति ; धास्यति । “न वारयेद्-
गाधयन्तीम्” मनु० ४ ११ ।

ध्मा शब्दे (शङ्खादिवादनं) , अग्निसेयोगे (अग्नेरुज्ज्वलीकरणे, अग्निपुष्क-
तां) च—पूँकना, धौँकना To blow (as a wind-instru-
ment or a fire)—धमति, ध्मास्यति । धमति शङ्ख जन
(सशब्दं करोति) , “धमति सुवणं वणिक् (अग्निसेयुक्तं करोति) ;
“को धमेच्छान्तञ्च पावकम् ?” महाभा० ।

ध्मि + ध्मा—स्फोटौ (घृलना) , दपांश्मात् , “आध्मात्तमुदरं
भृशम्” सुश्रुत० । ध्मि

ध्वै चिन्तने—ध्यानं कर्त्ता To contemplate, meditate upon—
ध्यायति, ध्याम्यति । ध्यायति विष्णु वैष्णव , “ध्यायत्यनिष्ट
चेतसा” मनु० ९. २१ ।

ध्मि + ध्वै—चिन्तायाम् , अनुषष्टे च । नि + ध्वै—स्मरणे ;
दर्शने च , “चिरं निदध्यौ दुहतः स गोदुहः” भाष० १२ ४० । ध्मि

नम् (णम्) नतौ (नमस्करणे , नम्रोभावे च)—(१) नमस्कारं कर्त्ता
(सक०) , (२) झुकना (अङ्ग०) To salute, to bend—नमति ;

नम्यति । (१) नमति गुहं लोकं ; (२) “नमन्ति फलिनो वृक्षाः” ।

ध्मि + अव, आ + नम्—अवनतौ । उप + नम्—उन्नतौ । उप + नम्—
उपस्थितौ । परि + नम्—परिपाके, जाणीभावे—“शाखाभृतां परि
णमन्ति न पण्डवानि” भा० ९ ३७ ; रूपान्तरोभावे च (नृतीपाके
साय)—“क्षीरं जलं वा स्वयमेव दधिहिमभावेन परिणमते” शारीर
कभाष्यम् । वि + परि + नम्—विरूपाधम्यायाम् । प्र + नम्—
प्रणामे । ध्मि

निन्द् कुत्सायाम्—निन्दा कर्त्ता To blame—निन्दति ; निन्दिष्यति ।

निन्दति दुष्ट लोक ।

पठ् पाठे (कथने)—पठना To read—पठति ; पिठिष्यति । पठति श्लोक घोर ।

भ्ग् कथने—कथना To say, speak—भगति , भणिष्यति । “छिन्न-
बन्धे मत्स्ये पलायिते, निर्विण्णो धीवरो भगति—धर्मो मे भविष्य-
तीति” विक्रमो० ।

आ अभ्यासे (पौन पुन्येनानुशोभने)—आवृत्ति करना, दुहराना To
repeat (in the mind)—मनति, भास्यति । मनति
मन्त्र्यां ब्राह्मण ।

भृ० आ + मन्—यावृत्तौ ; उक्तौ च , “प्रायश्चित्त इव राजदण्डेऽप्ये-
नयो निष्कृपयामनन्ति धर्माचार्या ” महावा० ४ । भृ०

वल् पालने (रक्षणे)—बचाना, हिफाजत करना To protect, take
care of—रक्षति ; रक्षिष्यति । “आत्मान सततं रक्षेत्” मनु०
७. २१७ ।

ल्प् कथने—कहना To speak—लपति, लपिष्यति । “लपति
स्निग्धया वाचा” ।

भृ० अय + लप्—अपहृत्वे, अस्तीकारे (इनकार करना) । अमि +
लप्—कथने । आ + लप्—आलापे (बातचीत करना) । प्र +
लप्—प्रलापे, अनर्थकवाक्ये (बकना) । त्रि + लप्—विलापे
(अपयोस करना) । सन् + लप्—मिथोभाषणे । भृ० ।

लिङ् (लिङि) गतौ—लिङ्गति ; लिङ्गिष्यति ।

भृ० आ + लिङ्—आलिङ्गने (गप्पे लगाना) To clasp. भृ०

वद् कथने—बोळना To say—वदति, वदिष्यति । “मन्थं वदति सर्वत्र” ; “वद, प्रदोषे स्फुटचन्द्रतारका विभावरी यत्प्रणाय कवन्ते”
 कु० १-४४ ।

भू + वद् + णिच्—वादनने (बजाना) ; वादयति ; “वादयते सृष्टु
 वेशुम्” गीतगो० १ १- । अनु + वद्—प्रनुकलने ; पुन कथने च ।
 अप् + वद्—निन्दायाम् । अभि + वद् + णिच्—अभिवादनने, प्र-
 णामे ; “भगवन् ! अभिवादये” विक्रमो० ८ , “हात ! प्राचेतसान्ने-
 वासी लवोऽभिवादयते” उत्तर० ६ । परि + वद्—निन्दायाम् ।
 प्रति + वद्—प्रतिवचने (जवाब देना) । वि + वद्—कल्ले ; आत्म
 नेपदी ; विवदते । सम् + वद्—माट्टये । वि + सम् + वद्—वैक-
 क्षण्ये, विरोधे । ॥

वम् (वृवम्) वद्विरणे (वनने)—उडकना To vomit—वनति,
 वमिष्यति । “फणो पोत्वाक्षारं वनति गरलम्” ।

॥ वत् + वम्—नि सारणे, प्रकटने । ॥

वाञ्च् (वाञ्छि) कामे—इच्छा करना To wish—वाञ्छति ; वाञ्छि-
 ष्यति । “(धनुर्धृतमन्तस्य) प्रियाणि वाञ्छन्त्यशुभिः समोदितुम्”
 भा० १-११ ।

वृष् (वृषु) सेवने (वर्षने)—बरमाना To rain or pour
 down—वर्षति ; वर्षिष्यति । “वर्षतोवाञ्जनं नम ” सृष्ट ० १-
 ३४ ; “काठि वर्षन्तु मेघा ” (अ०) ।

वञ् गतौ—(१) जाना ; (२) पाना To go ; to attain—
 व्रजति ; व्रजिष्यति । (१) “नाविनोत्रैर्वैनेदुष्यै ” मनु० ४-६७ ;

“इयं व्रजति यामिनी, त्यज गेन्द्र । निद्रारसम्” विक्रमाङ्कदेवपरि-
तम् ११. ७४ ; (२) “व्रजति शुचिरदं त्वयि प्रीतिमान्” भा० १८.
२६ , “मामेक शरणं व्रज” गीता १८ ६६ ।

भ्रू अतु + व्रञ्—अनुगमने , समीपगती, आश्रये, सहवासे—“सृगा
मृगै सहमनुव्रजन्ति” पञ्च० १. । परि + व्रञ्—सन्न्यासपूर्वक-
अमये । प्र + व्रञ्—सर्वसङ्कत्याग-पूर्वक-चतुर्याश्रमग्रहणे । प्र + व्रञ्
+ णिच्—प्रवासने, निवासने ; “चतुर्दश समा राम प्राप्ताजयत्”
२० १२. ६. । भ्रू

शंस् (शनुष्) कथने , स्तुतौ च—(१) कइना , (२) प्रशंसा करना To
tell ; to praise—शंसति , शसिष्यति । (१) “न मे हिया
शंसति किञ्चिदीप्सितम्” २० ३. ६ ; (२) “साधु साञ्चिवति भूतानि
शशसर्मास्यात्मजम्” रामा० ।

भ्रू आ + शस्—कथने । प्र + शंस्—प्रशंसायाम् । भ्रू

शुच् शोके (पुत्रादेरदर्शनाद्दुःखानुभवे)—शोक करना , गुम खाना To
mourn—शोचति , शोचिष्यति । “न शोचति सदाचारो यो मृता-
नपि वान्धवान्” ।

भ्रू अतु + शुच्—अनुशोचने (अफसोस करना) ; “नष्ट मृतमति-
क्रान्तं नानुशोचन्ति पण्डिता ” पञ्च० १. ३६३ । भ्रू

ष्टिच् (ष्टिडु) निरासे (मुखेन श्लेष्मादेर्वमने)—धूकना, ढगालना To
spit , throw out—ष्टीवति , ष्टेविष्यति । “पोतमिन्दुं ष्टीवाम्”
म० १२. १८. । दिवादिगणाय परस्मैपदीभी होता है ; ष्टीष्यति ।

भ्रू नि + ष्टिच्—निर्ष्टीवने (धूकना) , निक्षेपे च । भ्रू

सिध् (सिधु) गत्याम्—जाना—सेधति ; सेधिष्यति ।

सिध् (सिधू) शासने ; माङ्गल्ये च—सेधति , सेत्स्यति, सेधिष्यति ।

१* नि + सिध्, प्रति + सिध्—निवारणे (रोकना) ; निषेधति,
प्रतिषेधति । १*

सु गतौ—चलना To go, move—सरति (वेगगमने—घावति),
सरिष्यति ।

१* अनु + सु—अनुगमने । उप + सु—पलायने (हटना, सर-
कना) । अभि + सु—मङ्गलस्थानगमने , 'गिच्'-भी होता है ।

उत् + सु + गिच्—दूरीकरणे , उत्सारयति । उप + सु—समीपगम-
ने । निर + सु—निष्क्रमणे (निकलना) ; नि सरति । प्र + सु, वि +
सु—व्याप्तौ । सम् + सु—देहघाणे । १*

सृप् (सृप्लू) गतौ—स्रपति , स्रप्स्यति, स्रप्स्यति ।

१* अप + सृप्—अपसरणे । उत् + सृप्—उद्ध्वगमने , उल्टाने च ।

उप + सृप्—समीपगमने । प्र + सृप्, वि + सृप्—गमने ; वि-
स्तारे च (फैलना) । सम् + सृप्—सङ्क्रमणे, सञ्चारे । १*

स्कन्द् (स्कन्दिर्) गतौ, शोषणे च ।

१* अव + स्कन्द्, आ + स्कन्द्—आक्रमणे । प्र + स्कन्द्—सम्प-
प्रदाने (वृद्धना), पतने च—“तस्यैरेत प्रचस्कन्द्” महामा० ।

स्कन्द् + गिच्—नि सारणे, विमोचने, पातने ; “एक शयीत सर्वत्र
नरेत स्कन्दयेत् ऋचिष्” मनु० २. १८०. । १*

स्मृ चिन्तायाम् (स्मरणे)—धाद कृता To remember, call
to mind—स्मरति ; स्मरिष्यति । इति स्मरति मुमुषुः ।

१५० वि + स्मृ—विस्मरणे (भूलना) । १५०

अनुवाद करो—नमस्यको नमस्कार करना । किसीको कट्टु वाक्य नहीं कट्टना । साधुलोग तीर्थ पर्यटन करते हैं । जो धर्मका (द्वितीया) आचरण करता है, छोटे बड़े सब उसका (द्वितीया) भादर करते हैं । पुत्र-शोकसे कौशल्यादबाने विलाप किया था । शरणागतका (द्वितीया) परित्याग करना नहीं चाहिये । प्रातःकालमे प्रतिदिन (अनुदिनम्) अरना पाठ पढ़ना । ईश्वर हमारी (द्वितीया) रक्षा करेंगे । जननी पुत्रका मुख चुम्बन करती है । कभी किसीकी (द्वितीया) निन्दा करनी नहीं चाहिये । सज्जन सर्वदा गुणियोंकी (द्वितीया) प्रशंसा करते हैं । राजा दशरथने रामके लिये अत्यन्त शोक किया और अन्तमे बड़ मर गया ।

भ्वादि अकर्मक परस्मैपदी धातु ।

इङ् (इगि) गतौ (चलने, कम्पने)—चलना, हिलना To move, shake—इङ्गति; इङ्गिष्यति । “त्वया सृष्टमिदं विषयं यच्चेंद्रं यच्च नेङ्गति” महाभा० । “यथा दीपो निज्जातव्यो नेङ्गते” गीता ६ १९-इत्यत्र आत्मनेपदम् आपर्षम् ।

एङ् (एङ्) कम्पने—कंपना, विचलित होना To tremble, stir—एङ्गति; एङ्गिष्यति । “एतत्प्राप्तोऽयमेजति” महाभा० ।

कृञ् अन्वक्तव्ये (कृञ्जने)—बहबहाना To make an inarticulate sound, coo, warble—कृञ्जति, कृञ्जिष्यति । कृञ्जति कोकिल, “सुहृत् कृञ्जे कलहंसमण्डली” नै० १ २७ ।

कृन्द् (कृदि) रोदने—रोना To cry, weep—कृन्दति, कृन्दिष्यति ।

“मा पितृ कृन्द मा तात” महाभा० ।—(२) सकृत्गाहाने च

(रोकर पुकारना—सक्र०) To call out piteously to any-
one, “ऋन्दत्यविरतं सोऽथ भ्रातृमातृसृतान्” मार्कण्डेयपुराणम् ।

श्रू आ + ऋन्द्—रोदने, आह्वाने च । श्रू

क्रीड् विहारे (खेलने)—खेलना To play—क्रीडति, क्रीडिष्यति ।
क्रीडति बाल शिशुभिः ।

क्रुश् रोदने; आह्वाने (चीत्कारे) च—(१) रोना, (२) चिहाना
To weep, to cry out, yell, scream—क्रोशति;
क्रोशयति । (२) “एष क्रोशति दात्युहः” रामा० ।

श्रू आ + क्रुश्—(१) चीत्कारे, (२) भस्त्रे च, “शतं ब्राह्मण-
माक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमहन्ति” मनु० ८ २६७ । वि + क्रुश्—ची-
त्कारे, “आक्रोश विक्रोश लपाधिचण्डम्” मृच्छ० १. ४१. । श्रू

ङ्ण् शब्दे (वीणादिसरे)—सद्वारना To sound (indistinctly),
jingle, tinkle—ङ्णति, ङ्णिष्यति । “ङ्णन्मणिनूपुरैः” ।

क्षर् खरणे, मोचने च—(१) बहना, क्षरना, टपकना, (२) बहना,
निकालना (सक्र०) To flow, trickle, to emit—क्षरति,
क्षरिष्यति । (१) क्षरति क्षतजं भतात्, (२) “स्रोतोभिस्त्रिदश-
गजा मदं क्षरन्त” भा० ७ ८ ।

खेल् (खेल) क्रीडायाम्—खेलना To play—खेलति; खेलिष्यति ।

“भाम्बत्वन्या सैका धन्या

धन्या कूले कृष्णोऽखेल् ॥” छन्दोमञ्जरी ।

गर्भ् शब्दे (गर्जने)—गरजना, गाजना To roar, growl; to
emit a deep and thundering sound, thunder—

गर्जति ; गर्जिष्यति । गर्जति निद्रि ; गर्जति वारिदफलो ; “गर्जति शरदि न वर्षति, वर्षति वर्षात् नि स्वनी मेघ ” ; “एणे न गर्जन्ति वृषा हि घ्रा.” रामाः ।

गल् क्षरणे ; पतने च—(१) सरना , (२) गिरना To ooze , to drop or fall down—गलति ; गलिष्यति । (१) “स्वयं हाराकारा गलति जलघाता कुवल्यात्” (२) “प्रतोदा जगलु ” मः १४ *१ ।—(३) नागे To vanish , “कि शास्त्र ? अत्रणेन यम्य गलति द्वैतान्धकारोदय ” भागिनीः १ ८४ ।

✚ निर् + गल्—नि सरणे ; निष्कपे च—इति निर्गलितोर्थ ।
वि + गल्—अगे । ✚

गुञ्ज् (गुञ्जि) अश्वत्थशब्दे (गुञ्जने)—गुञ्जगुञ्जाना, भिन्नभिन्नाना To hum, buzz—गुञ्जति ; गुञ्जिष्यति । “अपि दलदगविन्द्र ! स्य-न्दनानं मगन्दं तव किमपि लिहन्तो मञ्जु गुञ्जन्तु मृद्धा ” भागिनीः १. ४. ।

ग्लै विषादे ; हने च—उदास होना ; घट्टना To be dejected , to be fatigued—ग्लायति ; ग्लाम्यति । ग्लायति लोक शोकात् ।

चञ्च् (चञ्चु) चलने—चलना, हिलना To move, shake—चञ्चति ।
“चग्निं चञ्चन्ति वाता ” छन्दोमञ्जरी ।

चल् कम्पने (अस्थैस्थै) ; गतौ च—(१) कंठना (अस्थिर होना), हिलना ; (२) जाना (सट्टः) To shake ; to go—चलति ; चलिष्यति । (१) “न चयति छलु वाक्यं सञ्जनानां कदाचिन्” ;

(०) “बल सखि । कुञ्जम्” गीतगो० ६ ११ ।

११ उक् + बल्—प्रस्थाने । प्र + बल्—गमने, कम्पे, प्रसिद्धौ च ।

वि + बल्—कम्प, क्षोभे; भ्रंसे च । ११

व्युत् (व्युत्तिर्) क्षरणे (रल्लने च)—चूना, गिरना To trickle,
to slip—च्योतति; च्योतिष्यति ।

जीव् प्राणधारणे (जीवने)—जीता रहना To live—जीवति; जीवि
ष्यति । “त्वयि जीवति जीवामि” ।—(२) जीविकानिर्वाहं
(गुञ्जरान करना To subsist on); “त्वाहारात् किञ्चिदुद्धृत्य
ददति, तेनासौ जीवति” हितो० ।

“धौरा प्रमत्ते जीवन्ति, व्याधितेषु चिकित्सकाः ।

प्रमदाः कामयानेषु, यजमानेषु याचकाः ।

राजा विचदमानेषु, नित्यं मूर्खेषु पण्डिता ॥” महाभा० ।

११ उक् + जीव्, उक् + जीव्—आश्रये । उक् + जीव्—पुनर्जीवने ।

सम् + जीव्—जीवने । ११

ज्वर् रोगे—रोगग्रस्त होना, बीमार होना, ज्वरयुक्त होना To be dis-
eased, to be feverish—ज्वरति; ज्वरिष्यति । “एतन्मिन्
आग्निदालेस्यं क्षीरेषु ज्वरत्स्वय । त्वयमेव ज्वरामीति मन्यते हि
कृदुम्भिवत् ॥” पञ्चदशी ७ ३२ ।

ज्वर् दीप्तौ (ज्वलने)—जगता To shine, blaze—ज्वलति;
ज्वलिष्यति । ज्वरति षट्ठिः ।—द्वंद्वे, “विमिदमंशुकं ज्वलति”
रगा० ४ १७ ।

११ उक् + ज्वर्, प्र + ज्वर्—दीप्तौ । ११

दल् भेद—फटना To crack—दलति, दलिष्यति । “दलति न सा हृदि विरहभरणे” गीतगो० ७ ३५ ।—(२)विकासे (खिलना) To bloom, “दलन्नवनीलोत्पलदयामल देहसौभाग्यम्” उत्तर० १ ।
 ध्वन् रणे—ध्वनि करना, बजना To sound—ध्वनति, ध्वनियति ।
 “अय धीर धीर ध्वनति नवनीलो जलधर” भामिनी० १ ५९,
 ध्वनति मृदङ्ग ।

नद् नत्तने—नाचना To dance—नटति ।

नृत् नद् + णिच्—नटयति, “तत् त्वा पुन पलितवर्णकभाजमेन नाट्येन केन नटयिष्यति दीर्घमायु” (इत्यात्मान प्रति कञ्चुकी-वाक्यम्) अनर्थ० ३ १ ।

नद् (णद्) शब्दे—नाद करना To sound—नदति । नदति घण्टा ।
 “नयाम्बुमत्ता शिखिनो नदन्ति” घटकर्र २ ।

नन्द् (टुनदि) हर्षे—खुश् होना To be glad—नन्दति, नन्दिष्यति । “ननन्द पश्यन्नुपसीम स स्थली” भा० ४ २ ।

नृन् अभि + नन्द्—सत्कारे, प्रशंसायाम्, अनुमोदने, कामनायाश्च ।
 आ + नन्द्—आनन्दे । प्रति + नन्द्—संवर्द्धने, सम्मानने । नृन्

फल् निपत्तौ (पूर्त्तौ)—फलना, सफल होना To be fruitful—
 फलति, फलिष्यति । “भाग्यं फलति सर्वत्र” ।—(२) निपत्तौ (सक०)
 To accomplish, “फलन्ति विविधश्रेयासि मर्त्या-
 तय” मुद्रा० २ १६, “बालमोकि फलति स्म दिव्या गिर”
 अनर्थ० १ ८ ।

♣ प्रति + फल्—प्रतिबिन्दने । ♣

पुष्ट्, विकासे—पुष्ना To bloom, expand—पुष्टति । पुष्टति
महोक्तिका ।

भ्रम् चलने (भ्रमणे)—भ्रमना To rove, ramble—भ्रमति ;
भ्रमिष्यति । “भ्रमति भ्रुवते कन्दसंज्ञा” मालना० १ २० ।
उत्रिन् मर्कटोऽपि , “दिद्गुडञ् भ्रमयि मातम । चारडेन” मर्कटः
भिक्षा भ्रमति ।

♣ उव् + भ्रम्—परिभ्रमणे । ♣

मौल् निनेपे (मूलेषु)—मूद जाना, दकडना To be closed or
shut (as eyes or flowers)—मौलति , मौलिष्यति ।
मौलति वपु (सम्भ्रमितवृत्त म्वाव्), “मौलन्ति रिपुनारीणं
मुख्यप्रवृत्तानि च” ।

♣ उव् + मौल्—उन्नेपे, विकासे । नि + मौल्—मुदने । ♣

मूर्च्छं (मूर्च्छा) मोदं (जानाद्वितीमावे) ; वृद्धौ च—(१) बेहोश
होना , (२) वृद्धना To faint or swoon ; to increase—
मूर्च्छति , मूर्च्छिष्यति । (१) मूर्च्छति रोगी ; (२) “मुमूर्च्छं
सख्य रामप्य” १० १२. ६७ ।

म्ल कान्तिक्षये—मलित होना To fade—म्लायति ; म्लाम्यति ।
म्लायति चन्द्रो दिदसे । “वनोऽन्नाग म्मादम्लं एतेव ममभ्विता”
श्रीहर्षचरितम् ।

यम् उरसं (निवृत्तौ)—उरदेऽ् काना To abstain from—
यच्छति ; यन्थति । यच्छति पापात् साधुः ।—(२) निषेधे च

(सक०) To control , “विद्यं यच्छ व बुद्धिमाक्षिणि”
त्रिवेकचूडामणि ३७० ।

११ आ + यम्—दीर्घाकारणे । उव् + यम्—उत्तोलने ; उद्योगे च ।

उप + यम्—विवाहे , स्वीकारे च । सत्र आत्मनेपदी, यया—आय

च्छते, उद्यच्छते, उयच्छते । नि + यम्—दमने, निवारणे, शासने,

व्यवस्थापने । प्र + यम्—दाने । सम् + यम्—नियमने, वन्दने च । ११

रम् शब्दे—आवाज करना To roar , to sound—रसति , रसि-

ष्यति । “करीष वन्य दरपं रराम” २० १६ ७८ ; “रात्रन्वोपनिम

न्त्रगाय रसति स्फोटं यशोदुन्दुभि ” वेर्गा० १. २६ ; “रमनु

रपना” गीतगो० १० ६. ।

रह् उद्गते—उत्पन्न होना To grow—रोहति , रोक्ष्यति । “डिब्रो-

ऽपि रोहति तह ” भर्तृ० ।

११ रह् + गिच्—रोपने (रोपना, बोना) ; रोपयति । अग्नि +

न्ह, आ + रह्—यागेद्वेषे (चढ़ना—सक०) ; “मूढानमधिरो-

हति” भाष० २. ४६ , “सिद्धासनमाररोह” काद० । अत्र + रह्—

अवनरणे (उतराना) । प्र + रह्, वि + रह्, सम् + रह्—उत्पत्तौ ;

“न पर्वताग्रे नलिना प्ररोहति” मृच्छ० ४ १७ । वि + रह् +

गिच्—व्रणप्रसामने (घाय आराम करना) To heal (as a

wound) ; व्रण विगेषयति । ११

रम् (लो) महे—लगना To adhere or stick to—रगति ;

रगिष्यति । ओष्ठेषु लगति , “हमस्य पश्चाद्गति स्म”

नैः ३. ८ ।

लड् विलासे (क्रीडायाम्)—खेलना 'To play, sport—लडति ।

ड लघोरकत्वस्मृणात्—लडति । “पनमफलानीव वानरा लडन्ति”

मृच्छ० ८ ८ ; “गजकलमा इव बन्धुला ललाम्” मृच्छ० ४ २८ ।

लस् दीप्तौ—चमकना To shine, glitter—लसति, लसिष्यति ।

“मुक्ताहारेण लसता हसतोव स्तनद्वयम्” काव्यप्रकाश १०, “भण

मसृणवाणि † करवाणि चरणद्वय सरसलसदलककरागम्” गीतगो०

१० ७, “रौप्य लसद्विम्बमिवेन्दुविम्बम्” नै० २२ १३ ।

भू† उत् + लस्—स्फुरणे । वि + लस्—प्रकाशे, क्रीडायाम् । भू†

वलग् गतौ (चलने, प्लुतगतौ)—(१) हिलना, (२) कृदना, डपटना,

सरपट जाना To move, shake, to bounce, go by

leaps, gallop—वलगति, वलगिष्यति । (१) “वलगद्गरीय -

स्तनकम्प्रङ्गुचुम्” माघ० १२ २०, (२) “वदत्गुश्च पदातय ”

भ० १४ ९, “वलगु वलगन्ति सूक्तय ” पञ्च० १ ६६, “विद्या-

सन्नविनिर्गलत्वणमुपो वलगन्ति चेत् पामरा ” (सगर्धं विचरन्ति

इत्यर्थ) भामिनी० १ ७१ ।—(३) नर्तने (नाचना) To

dance, prance ; “द्वारे द्देमविभूषणाश्च तुरगा वलगन्ति यद्

दर्पिता ” भर्तृ०, “कवन्धाद्भूयो विभ्ये वलगत सामिपाणे ”

माघ० १८ १३ ।

वस् निवासे—वसना, रहना 'To reside, stay—वसति, वस्त्यति ।

“वसति वने वनमाली” गीतगो० १ ८, “वसन्ति हि त्रेमिणि गुणा

न वप्नुनि” भा० ८ ३७ ।

भू† अधि + वस्, आ + वस्—वासे (सक०) । उय + वस्—

उपवासे, भोजननिवृत्तौ, “एकादशीमुपवसन्ति निरम्बुमज्ञा” ।
नि + वस्—निवासे । निर् + वस् + णिच्—निवासने, नगराद्दहि-
ष्करणे (निष्काल दना), निर्वासयति । प्र + वस्—विदशावस्थाने ।
प्र + वस् + णिच्, रि + वस् + णिच्—निवासने । प्रति + वस्—
निवासै । †

वेल् कम्पने—दिलना, चलना To shake, move about—
वेल्लति, वेल्लियति । “उद्वेल्लन्ति पुराणचन्द्रनतरस्कन्धेषु कुम्भा-
नमा” उत्तर० २. २९ ।

इच्युव् (इच्युतिर्) क्षरणे—टपकना To trickle—इच्योतति, इच्यो-
तिष्यति । “मधुनो धारा इच्योतन्ति” उत्तर० ३ ३४ ।

सञ्ज् (पञ्ज्) सङ्गे (संश्लेषे)—विपटना To stick or adhere
to—सञ्जति, सङ्गयति । “सञ्जति वपुषि वास” ।

† अनु + सञ्ज्—सम्बन्धे, आसक्तौ (कर्मकर्तारि), अनुपज्यते ;
“धर्मभूते च मनसि नमसोत्र न जातु रजोऽनुपज्यते” दशकु० ।
अव + सञ्ज्, आ + सञ्ज्—योजने, म्यापने । प्र + सञ्ज्—
आसक्तौ ; “प्रसजग्निन्द्रियाद्येषु नर पतनमृच्छति”, कर्मकर्तारि—
प्रसङ्गे, सम्बन्धे—प्रमज्यते । †

सद् (षड्लृ) विपादे (आकुलोभावे)—उदास होना To be
dejected or low-spirited—सीदति ; सत्न्यति । “सीदति
राधा वासगृह” गीतगो० ६ २ ।—उपवेशने, नाणे ; क्लेशे ;
क्लान्तौ च ।

† अव + सद्—श्रान्तौ ; विनाशे च । आ + सद्—सन्निकर्षे

(मजदीरु आना) । उद् + सद्—नाथे । उद् + सद् + गिच्—
उन्मूलने, उत्सादयति । उप + सद्—समीपगतौ । नि + सद्—
उपवेशने, “उष्णालु शिशिरे निषीदति तरोर्मूलात्वाले शिसौ”
विक्रमो० २ २३ । प्र + सद्—अनुषङ्गे, प्रसन्नतायाम् (खुद
होना), निर्मलीभावे च (साफ होना) । वि + सद्—विषादे ;
विषीदति । ३०

स्वल् सञ्चलने (स्वलने, अंगे)—खिसलना, किसलना, रपटना To
stumble, slip—स्वलति, स्वलिप्यति । “स्वलति चरणं
भूमौ” शृङ्खल० ९ १३, स्वलति पत्र वृक्षस्य ।

स्रु क्षरणे—बहना, झरना To flow, ooze—स्रवति, स्रोप्यति ।
“न हि निम्ब्रात् सरोत् क्षौद्रम्” रामा० ।

स्वन् शब्दे—शब्द करना To sound, to hum (as a bee)—
स्वनति । “वेणव कीचक्राम्से स्युष्ये स्वनन्त्यनिहोद्धता ” अमरकोष ।
ह्रस् अल्पीभावे—घटना To become small or diminished
or lessened—ह्रसति, ह्रसिप्यति । “आयुर्ह्रसति पादस्र
मनु० १ ८३ ।

अनुवाद करो—राजा दशरथ कैकेयीके उस कठोर वाक्यसे मूर्च्छित
हुआ । इस वर्ष दुर्भिक्षके कारण हम अतिकष्टसे जीते हैं । सर्वदा साधुके
सङ्गमे वास करना चाहिये । हम स्थानमे प्रतिदिन लड़के खेलते हैं ।
तुम्हारे व्यवहारसे वे सर्वदा सन्तस होते हैं । वहाँ बहुत आमके पेड़ उगे
थे । मेरी बातसे वे हँसेगे, परन्तु मेरा वित्त उससे कुछभी विचलित नहीं
होगा । मैं इस गाँवमे और नहीं बसूँगा ।

भ्वादि सकर्मक आत्मनेपदी घातु ।

लभ् (डुलभप्) प्राप्तौ—पाना To gain

(लभते धार्मिक सुखम् ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	लभते	लभेते	लभन्ते
मध्यमपुरुष	लभसे	लभेथे	लभध्वे
उत्तमपुरुष	लभे	लभावहे	लभामहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	लभताम्	लभेताम्	लभन्ताम्
मध्यमपुरुष	लभस्व	लभेथाम्	लभध्वम्
उत्तमपुरुष	लभै	लभावहै	लभामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अलभत	अलभेताम्	अलभन्त
मध्यमपुरुष	अलभथा	अलभेथाम्	अलभध्वम्
उत्तमपुरुष	अलभे	अलभावहि	अलभामहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	लभेत	लभेयाताम्	लभेरन्
मध्यमपुरुष	लभेथा	लभेयाथाम्	लभेध्वम्
उत्तमपुरुष	लभेथ	लभेवहि	लभेमहि

लृट् ।

प्रथमपुरुष	लप्स्यते	लप्स्येते	लप्स्यन्ते
------------	----------	-----------	------------

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	लप्स्यसे	लप्स्येथे	लप्स्यध्वे
उत्तमपुरुष	लप्स्ये	लप्स्यावहे	लप्स्यामहे

११ आ + लभ्—प्राप्तौ, स्वप्ने, हिमायाञ्च । उप + आ + लभ्—
मत्सने । उप + लभ्—प्राप्तौ, अनुभवे, ज्ञाने च । वि + प्र + लभ्—
प्रतारणायाम् । ११

#

भ्वादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु ।

अप् गती—अपते, अविष्यते ।

११ प्र, पठ + अप्—पठायने (मागना), प्लायते, पठायते । ११
ईक्ष् दर्शने—देखना To see—ईक्षते, ईक्षिष्यते । ईक्षते चन्द्रं लोकः ।

—(२) एष्यालोचने (सोचना, विचारना) To consider ;
“न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते” कु० २ ८२ ।

११ अप + ईक्ष्—अपेक्षायाम् (उद्हरना) । अव + ईक्ष्—परिदर्शने ;
आलोचनायाञ्च । उप + ईक्ष्—अवज्ञायाम् । निर् + ईक्ष्—निरी-
क्षणे (देखना) । परि + ईक्ष्—परीक्षायाम् । प्र + ईक्ष्—दर्शने ।
उत् + प्र + ईक्ष्—उत्प्रेक्षणे, सम्भावने (विधास करना To
guess) । प्रति + ईक्ष्—प्रतीक्षायाम् । वि + ईक्ष्—दर्शने ।
सम् + ईक्ष्—परिदर्शने ।

उद् वितर्के (अध्याहारे ; सम्भावने)—(सन्देहाद्बिचारो वितर्क)—
विचार करना, अनुमान करना To conjecture, infer—
उरते ; उद्दिष्यते । “उद्दते धर्मं धीर ” । “अनुत्तमन्पुद्गति

पण्डितो जन" पञ्च० १. ४४—इत्यत्र परस्मैपदं दृश्यते ।

❖ अप + ऊह—अपनोदने, “दुहारेणैव धनुष स हि विमान-
पोहति” शकु० ३ १. । (“उपमर्गादात्मनेपद वेति वक्तव्यम्”—
उपमर्गके योगसे विकल्पसे आत्मनेपदी होता है) । वि + अप +
ऊह्—विनाशे; “आदित्यन्तमो व्यपोहति” महामा० । प्रति +
ऊह्—विधाने । वि + ऊह्—रचनायाम्, विन्यासे । सम् + ऊह्—
मनाहारे, एकत्रीकरणे । ❖

क्य् स्थाघायाम् (आत्मगुणाविष्करणे)—प्रशंसा करना, गर्व करना
(अक०) To praise ; to boast—कथ्यते, कथियष्यते ।
'कथ्यते गुणिन गुणो', “य स्वानेनापि नात्मीयं गुण कुत्रापि
कथ्यते” । “दृत्वा कथियष्यते न क १” म० १६. ४. ।

❖ वि + क्य्—विकथ्यते, स्थाघायाम्, निजगुणख्यापने (शंको
करना To vaunt) ।

ध् (कनु) वाञ्छायाम्—कामना करना To long for, wish—
कामयते; कामयिष्यते । “चेनो नन्वद्भामयते मदीयम्” नै० ३ ६७ ।

न् (क्षन्प्) मइने (क्षमायाम्, शकौ च)—(१) सहना, क्षमा
करना, (२) सकृता (अक०) To forgive, to endure,
to be competent or able (to do anything)—
क्षमते; क्षमिष्यते, क्षम्यते । (१) “क्षमन्व परमेश्वर!”; “नाज्ञा-
भद्रकान् राण क्षमेत स्वदुवानपि” हितो० २ १०७, (२)
“क्षते रणे क्षालयितु क्षमेत क क्षमातमन्वागडमन्मर्षे नम १”
माय० १. ३८. ।

गर्ह् कृत्सायाम्—निन्दा करना To blame, censure—गर्हते ;
गर्हिष्यते ।

गृह् वि + गर्ह्—निन्दायाम् । गृह्

गाह् (गाह्) विलोडने (प्रवेष्टे ; प्रातौ च)—(१) आटोढ़न
करना, (२) घुमना, (३) प्रातः होना To dive or
plunge into, to enter deeply into—गाहते ; गार्हि-
ष्यते, घार्ह्यते । (१) “गाहन्तां महिषा निपानमलिलम्” शकु०
२ ४२ ; “गाहते शास्त्रनित्यम्” ; (२) “कदाचित् काननं जगाह”
काद० ; (३) “मनस्तु मे संशयमेव गाहते” कु० ५. ४६. ।

गृह् अव + गाह्—निमग्नने, खाने, प्रवेष्टे च ; “तनोऽग्रहन्त्री
तमसां वगाह” २० १४. ७६ । वि + गाह्—निमग्नने ; प्रवेष्टे ;
विलोडने च । गृह्

ग्रस् (ग्रस्) मसृजे—ग्वाना To swallow, devour—ग्रमने ;
ग्रसिष्यते । “पावतो ग्रमने ग्रामान्” मनु० ३. १३३. १—(२)
आक्रमणे To seize ; to eclipse ; “हिमांशुमाशु ग्रमने तन्त्र-
दिम्न स्फुट फल्म्” भाष० २. ४९ ।

दौह् (दौह्) गतौ—जाना To go, approach, “यान्तं वने रात्रि-
चरो दृढीके” म० २. २३. ।

दौह् दौह् + गिह्—शरणे (ले जाना), “तन्नांसर्द्धं गोनापोस्वीः
क्षमादाशु दौकितम्” महाना० । उर + दौह्—उपदौकने, उपहारे
(बहून्ना, नजर करना) ; “एकैकं पशुमुपदौकयान्” पट्ट० १. । दौह्

त्र* (त्रैङ्) पालने (रक्षणे)—त्राण करना To protect, defend from—त्रायते, त्रास्यते । “क्षतात् किल त्रायत इत्युदम क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रुढ ” २० २. १३ ।

शु* परि + त्रै—परित्राणे (रक्षणे) । शु*

दय् अनुकम्पायाम्—दया करना To pity—दयते, दयिष्यते । दयने दोन दयालु, “तेषा दयसे न कस्मात् ?” म० २ ३३ (अत्र कर्मणि षष्ठी) ।

नाय् (नायृ) याचने—प्रार्थना करना To beg—नाथते, नाथिष्यते । “मोक्षाय नाथते मुनि ”, “नाथते किमु पति न भूभृत ?” मा० १३. १९ । “सन्तुष्टमिष्टानि तमिष्टदय नायन्ति के नाम न लोकनायम् ?” नै० ३. २५—इत्यत्र परस्मैपदमपि ।

पण् व्यवहारे (ऋषविक्रयरूपे वाणिज्ये)—खरीद व फ़रोख्त करना To buy and sell—पणते, पणिष्यते ।—दूतक्रीडाया स्लहस्यापने (बाजी लगाना To bet or stake at play), जिस वस्तुका पण रखा जाता है, उसमे षष्ठी, और कहीं द्वितीयाभी होती है, “प्राणानामपणिष्टासौ” म० ८ १२१, “पणस्व कृष्णा पाञ्चालीम्” महामा० ।

शु* वि + पण्—विक्रये, “आभीरदेशे किल चन्द्रकान्त त्रिभिवंराटैर्विपणन्ति गोषा ” छभाषितम् । शु*

बाष् (बाष्ट) पीडने ; प्रतिरन्धे च—(१) दुख देना, (२) रोकना

* शिष्टप्रयोगमे अदादिगणाय 'त्रा'-धातुर्भा ई ; यथा—“त्राहि मा मधुमदन ।” ।

To torment ; to obstruct—बाधने ; बाधिष्यते । (१)

“मा बाधने ऽ हि तथा विपिनेषु वाम” महाना० ३ ३७ ; “न
तथा बाधते स्कन्धो यथा ‘बाधति’ बाधते” ; (२) “वीरार्णा
समय स्नेहक्रम बाधते” उत्तर० ८ १९ ।

भू० आ + बाध्—दमने । प्र + बाध्—परिपीडने । भू०

भाष् कथने—भाषण करना To speak—भाषने , भाधिष्यते । द्विकर्मक—
“तं वाक्यनिर्द् वभाषे” ।

भू० अर + भाष्—निन्दायाम् , “न केवलं यो महतोऽपभाषते,
शृणोति तस्मादपि य स पापभाक्” कु० ६ ८३ । आ + भाष्—
आलापे, कथने । प्रति + भाष्—प्रत्युक्तौ । सम् + भाष्—
सम्भाषणे । भू०

भिष् याचने—माङ्गना To beg—भिक्ष्ने ; भिक्षिष्यते । द्विकर्मक—
भिक्ष्ने दातार धनं भिक्षु ।

रम्—आ + रम्—आरम्भे To begin—आरम्भने , आरप्स्यते ।
शास्त्र पठितुम् आरम्भते सिष्य ।

भू० परि + रम्—आलिङ्गने । सम् + रम्—बोधे । भू०

लोक् (लोह) दर्शने—देखना To behold—लोक्ये ; लोकिष्यते ।

भू० अव + लोक्, आ + लोक्, दि + लोक्—दर्शने । भू०

वन्दू (वदि) अभिवादनं , स्तुतौ च—नमस्कार करना ; स्तव करना To
salute ; to extol—वन्दने ; वन्दिष्यते । वन्दने पुर लोक ।

वेष्ट् घेष्टने—घेरना , घेरेटना To surround, envelop ; to wind
or twist round—वेष्टते ।—गिरन्तनी इती अर्थने प्रयुक्त

होता है; वेष्टयति, “धीवाना वेष्टयित्वैर्न स गजो हन्तुमैहव । कर-
वेष्ट भीमसेनो भ्रम दत्त्वा व्यमोचयत् ॥” महाभा० ।

••• गिणन्त आ + वेष्ट् और परि + वेष्ट् भो षतदर्थक । सम् + वेष्ट् +
गिच्—तद् इत्या To fold, “स्वेष्टितप्रसारितपटन्यायेर्नवानन्यत्र
कारणात् कार्यम्” शाश्वरकभाष्यम् । •••

शङ्क् (शकि) संसये, त्रासे च—(१) शङ्का करना, सन्देह करना, (२)
डरना (अक०) To doubt, to fear—शङ्कते, शङ्कित्यते । (१)
शङ्कते पुरपत्वं स्थाणौ (स्थाणुर्वा उरपो वा इति सशयमारोपयती-
त्यर्थ) , (२) शङ्कने व्याघ्राजन ।

••• आ + शङ्क्—सन्देह । •••

शस् (शसि) इच्छायां; आशिषि (इष्टार्थशमने) च—(१) चाहना;
(२) आशीर्वाद करना To hope for, to bless—नित्यम्
‘आङ्-योग—आ + शस्—आशमने, आशामिष्यते । (१) “मनो-
रथाय नाशसे” शकु० ७ १३, (२) “इत्याशशसे कर्णैरवाही”
र० १४ ९० ।

शिक्ष् विद्याप्रदाने (शिक्षणे)—सीखना To learn—शिक्षते शिक्षि
ष्यते । “अशिक्षताश्च विदुषेभ्य मन्त्रदित्” र० ३ ३१ ।

श्लाप् (श्लप्) कथ्यने (प्रशमायां)—मतारहना To commend—
श्लाघने, श्लाघिष्यते । “श्लाघने गुणिन गुणो” ।

“जुग दोषीं जुगे गृह्णन्, इन्दु-श्लेडाविवेचन ।

शित्वा श्लाघने पूं, पर कण्ठे निदञ्चति ॥”

सद् (पद्) सद्ने, क्षमायाञ्च—(१) सहना; (२) क्षमा करना

To endure , to forgive—सहते , सहिष्यते । (१) सहते तु स सजन , (२) “अपराधमिन्न तत सहिष्ये” शकु० ३ ।—(३) शक्ती (सकना) , “सहता च शास्त्रगम्य उपाय तत् (तु स्वप्रथम्) उच्छेत्तुम्” साङ्ख्यतत्त्वकौमुदी १ ।

शु० उत् + सह्—उत्साहे, सामर्थ्ये (सकना) Expressed by ‘can’—dare, venture , “श्वानुरक्ति न च कर्तुमुत्सहे” कु० ६ ६० । शु०

सेव् आराधने , उपभोगे , आश्रये च—सेवा करना To worship , to enjoy , to resort to—सेवते , सेविष्यते । विष्णु सेवते—एष सेवते—तोय सेवते माधु ।

शु० आ + सेव्—उपभोगे । नि + सेव्—आश्रये , उपभोगं च , निषेवते । शु०

स्वप्ञ् (प्वनञ्) आलिङ्गने—गले लगाना , बगलगोरी करना To embrace—स्वजते , स्वह्वृगते । स्वजते हनयं माता ।

शु० परि + स्वप्ञ्—आलिङ्गने , परिष्वजते । शु०

स्वद् (प्वद्) आस्वादने (अनुभवे) , रचौ च—(१) रचना , (२) रचना (अक्०) To taste , relish ; to be pleasant to the taste—स्वदते ; स्वदिष्यते । (१) स्वदस्व दृष्यानि , “स्वदने विविधं स्वादु” , (२) “अपा हि वृत्ताय न वारिधारा स्वादु सगन्धि स्वदने तुषारा” नै० ३ ६३ ।

अनुवाद करो—कर्म सत्कार्यमे बाधा मत्त दालो । सर्गान्त कण्ठसे पुरज्जोषी (द्वितीया) सेवा करूंगा । अपत्र्यवहासे उनको पीड़ा देना उचित

मैं। जो दु खीपर दया करता है, ईश्वर उसका सहाय । सद्बिषय बालकके पासभी सीखना । शिक्षक सर्वदा हमारा मङ्गल चाहते हैं । आज तुम्हारी परीक्षा करूंगा । वीगना (द्वितीया) प्राण करो, नहीं तो ईश्वर तुम्हारा (द्वितीया) प्राण नहीं करेगा । साधुपुरुष जब जिस कार्यना (द्वितीया) आरम्भ करते हैं, प्राणान्तमेभी (प्राणात्ययेऽपि) उमे नहीं छोड़ते । मैं तेरे शत अपराध क्षमा करूंगा । पिता पुत्रका (द्वितीया) कालिङ्गन करता है । राम मेरी (द्वितीया) प्रतीक्षा कर रहा है ।

भ्वादि अकर्मक आत्मनेपदी धातु ।

ईद्, वाञ्छायाम्, घेष्टने च—(१) इच्छा करना , सक० , (२) यत्न करना, कोशिश करना To wish , to endeavour—ईहते ईद्दिष्यते । (१) “ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसञ्चयान्” गीता १६ १२ , (२) माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितु क्षाराम्बुजैरोहते” भर्तृ० ।

१० सम् + ईद्—“सर्वं स्वायं समीहते” भाष० २ ६६ । १०

एष् वृद्धी—वदना To increase , to prosper—एषते, एधिष्यते ।

“हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेघने ’ मनु० ४ १७० , “अ२ मणेषते तावत् ततो भद्राणि पश्यति । तत सपत्नान् जयति, समू हस्तु विनश्यति ।।” मनु० ४ १७४ ।

कण्ठ् (कठि) शोके (उत्कण्ठायाम्, औत्कण्ठये)—शोक इह आत्थयानम् (उत्कण्ठापूर्वकम्मरणम्)—उत्कण्ठित होना, उत्कण्ठ होना To be anxious for, yearn, long for , be eagerly desirous of, remember with regret—‘उत्’ उपसर्ग-

के साथ प्रयुक्त होता है—उत्कण्ठते, उत्कण्ठिष्यते । “स्वर्गाय नो
त्कण्ठते” विक्रमो० ३ ४, “उत्कण्ठते च युष्मत्सन्निकर्षम्य” उत्त०
६, “वेवारोधसि वेतसीतत्तके चेत समुत्कण्ठते” ।

कम्प् (कपि) चलने (कम्पने)—कांरता To shake—कम्पने ; कम्पि-
ष्यते । कम्पने वायुना वृक्ष ।

कम्प् अनु + कम्प्—हृषायाम् । सम् + अनु + कम्प्—अनुपदे । उन्,
प्र, वि + कम्प्—प्रकम्पने । कम्प्

काश् (काशृ) काशी (प्रकाशे)—कमन्ता To shine—काशते ;
काशिष्यते । काशने चन्द्र ।

कम्प् प्र + काश्—प्रकाशे । प्र + काश् + शिच्—प्रकाशने (उजाला
रना) ; प्रकाशयति, “प्रकाशयति लोक रवि” गोता १३
३३ । वि + काश्—विज्ञाने । कम्प्

कृष् (कृष्) सान्ध्यै ; योग्यतायाञ्च—(१) समर्थ होता, (२) योग्य होना
To serve, to be able, to be fit or adequate
for—कल्पने, कलिष्यते, कल्पयते । (१) “सृष्ट्यै तपत्यात्रगाय
हृष्टे कल्पेन लोकाय कथ तमिन्वा १” २० ८ १३ ; (२) “प्रति-
मात्तविधानमायुष सति नैवे हि फलाय कल्पते” २० ८ ४१ ।

कृष् अन् + कृष्—शौचित्ये । उप + कृष्—विन्यासे, सम्बन्धनायाञ्च ।
वि + कृष्—सत्तये । कृष्

गल्म् धाट्ये (प्रगल्भतायाश्च, औद्धत्ये, साहसे) उद्धत होता, माहुरी
होना To be bold or confident—गल्भने । प्रायः ‘प्र’
द्वयगतं” साथ प्रयुक्त होता है, “न नौकिक्किद्धक्री शक्या

प्रगल्भने कर्मणि टड्ढिकाया ॥ विक्रमाद्भुदेवचरितम् १ १६, “अति हि नाम प्रगल्भसे” उत्तर० ८ ।—सामर्थ्ये (‘सङ्गता’ इस अर्थमें) ‘तुमुनन्त’-पदके साथ व्यवहृत होता है ।

घट् चेष्टायाम् (यत्ने), आपतने, निष्पत्तौ, योग्यतायाञ्च—(१) व्यावृत्त होना, (२) आ पडना, सिद्ध होना, (३) सम्भव होना, योग्य होना To be busy with or strive after, to happen, to be possible—घटते, घटिष्यते । (१) घटने परितु शिष्य, (२) “कृत्य घटेत सहदो यदि” मालती० १ ९, (३) “तथाऽपि पुविशेषत्वाद्घटतेऽस्य नियन्तता” पञ्च-दशी ६ १०६ ।

१५ घट् + णिच्—संयोजने, सम्पादने, करणे, निवोगे च, घटयति ।
वि + घट्—विश्लेषे, भेद । १६

घूर्ण् अमणे (घूर्णने)—घूमना To roll about, whirl—घूर्णते, घूर्णिष्यते । छुदादि परस्मैपदीमी होना ई—वोपदेवमते उभय-पदी । “नौर्घूर्णते चपलेव स्त्री” घूर्णते शिर, “घूर्णतीर मे मन” महाभा० ।

१७ आ + घूर्ण्—चक्रवद्अमणे । १८

चेष्ट् यत्ने, व्यापारे च—(१) यत्न करना, (२) काममे लगे रहना To endeavour, to be active—चेष्टते, चेष्टिष्यते । (१) चेष्टते परितु शिष्य, “वृथथ नातिचेष्टेत” हितो० १ १८८, (२) “सदृश चेष्टते स्वत्या प्रकृतेर्ज्ञानयानपि” गीता ३ ३३ । “त शोणितपरीताद्घु चेष्टमान महीतये” इत्यथ तु लुडनार्थ-

(लोटना) ।

१११ वि + चेत्—टुठने, परिस्पन्दने, अद्भुतविवर्तने । १११

च्यु (च्युङ्) पतने (च्युती, भ्रष्टे, क्षरणे)—स्तिपलना, गिरना, च्युत
होना To slip—च्यवर्ते, च्यविष्यते । धर्मात्त च्यरेत् ।—नासे ;
“उत्पद्यन्ते च्यवन्ते” मनु० १० १६ ।

१११ प्र + च्यु—भ्रष्टे, क्षारे च । १११

जृम्भ् (जृमि) जृम्भणे (मुखविकासे, पुष्पादीना विकासे च)—(१)
जम्हाना, (२) खिलना To yawn, to expand—जृम्भते ;
जृम्भिष्यते । (१) “जृम्भस्व सिंह । दन्तास्ते गणयिष्ये” शकु० ७ ;
(२) “पद्भुज जृम्भतेऽद्य” ऋतु० ३ २२ ।—(३) वृद्धौ (वदना)
To increase, “जृम्भता जृम्भनामप्रतिहतप्रसर मोधश्चोति”
वेणी० १ ।

१११ ट् + जृम्भ्—उदये, विकासे ; वृद्धौ च । वि + जृम्भ्—
जृम्भणे, व्याप्तौ च । १११

टी (टोङ्) नमोगती (उड्डयने)—उड्डना To fly—उड्डते ; उड्डिष्यते ।
उड्डते पक्षी ।

१११ उत् + डी—उड्डयने । १११

त्र् (त्रप्) लज्जायाम्—लजित होना, शर्मिन्दा होना To be
ashamed—त्रपते, त्रपिष्यते, त्रप्स्यते । “त्रपन्ते तीर्थानि त्व-
रितमिह यप्सोऽदृतिविधी” मद्भालहरी २८ ।

१११ अर्ष + त्रप्—लज्जायाम् ; “य आत्मनाऽप्यत्रपते भृशं त्र स
मर्षोऽनेह्य गुर्भक्युत” महाभा० ; “येनापत्रपते साधुरक्षाद्युत्पन्न

तुष्यति" महाभा० । ११

त्वर (नित्वरा) वेगे—त्वर करवा, जल्दी करना To hasten—
त्वरते, त्वरिष्यते । "भवान् सहृदयं त्वरताम्" मालविका० २ ।

११ त्वर् + णिच्—त्वरयति, "दूतास्त्वरयन्ति माम्" रामा० । ११
पुर् दीप्तौ (प्रकाशे)—चमकना To shine—द्योतते, द्योतिष्यते ।
द्योतते रवि ।

११ उत् + द्युच्—औज्ज्वल्ये । वि + पुर्—शोभायाम् । ११
ध्वस् (ध्वन्सु) नाशे, भ्रमे (अध पतने) च—(१) नष्ट होना,
(२) स्खलित होना To perish, to fall down—ध्वसने,
ध्वसिष्यते । (१) "तमासि ध्वसन्ते" महावीर० १, (२)
"ध्वसेत हृदय सद्य" भा० ११ ६७ ।

११ अप + ध्वस्—निन्दायाम्, तिरस्कारे, " न चाप्यन्यमरध्वसेत्
कदाचिच् कोपसंयुत " महाभा० । वि + ध्वस्—निपाते, क्षये । ११
प्याद् (ओप्यायी)—प्यै (प्यैच्) वृद्धौ (स्फोती)—बढना, फूलना
To increase, swell—प्यायते, प्यायिष्यते ।

११ आ + प्याच्, प्यै—स्फीतौ, प्रीतौ च । आ + प्याच्, प्यै +
णिच्—वर्द्धने, प्रीणने च, आप्याययति । ११

प्र्य् विख्यातौ—प्रसिद्ध होना To become famous—प्रयने, प्रयि
ष्यते । प्रथते गुणी ।—(२) विस्तारे (फैलना) To spread
abroad (as fame, rumour &c); "तदा यतोऽप्य
प्रथते" मनु० ११ १६ ।

प्लु (प्लुच्) गतौ (लम्फे) ; सञ्चरणे, उत्तरणे च—(१) कृटना ,

(२) बहना, तैरना , (३) पार होना (सक०) To leap, jump , to float , to cross (in a boat)—उच्यते ; प्लोप्यते । (१) “भृगु पुप्लुवे” म० ६ ४८ , (२) “किं नामै तत् , अन्वुति मञ्जन्त्यलावृति, प्रावाग प्लवन्त इति ?” महादीरः १ , (३) “पुप्लुवे सागर नौजया” महाभा० ।

प्लु + णिच्—प्लावने (डुमाना) , प्लावयति । आ + प्लु—अवगाहने, स्नाने “स्वामा जलमाप्लुन्य” मनु० ६ ७७ । उट् + प्लु—उट्प्ले (पाँदना) । उप + प्लु—उपप्लवने । परि + प्लु—चलने, चाञ्चल्ये । वि + प्लु—विपत्तौ , विनाशे च । सम् + प्लु—वृद्धौ । प्लु

भास् (भास्) दीप्ति (स्फुरणे, स्फुटोभावे, आविर्भावे च)—(१) चमत्ता , (२) प्रकट होना To shine , to become clear or evident—भासते ; भासिष्यते । (१) “तावत् कामदृपातपद्मद्वयं विम्ब वभासे विधो ” भासिनो० २ ८७ ; (२) “त्वद्गुणार्देने हृष्टे कस्य चित्ते न भासते । मालती-शरामृद्धेवा कदलीनां कठोरता ? ॥” चन्द्रालोक ० ४२ . ‘अन्’ और ‘प्रति’ उपसर्गके साथभी प्रयुक्त होता है ।

भ्रंस् (भ्रन्तु) अघ पतने—भ्रष्ट होना To fall or drop down—भ्रंशते ; भ्रंशिष्यते । “भ्रंशते दूरितं राष्ट्रे प्रजाभ्यो यन्प्रभावत ” । प्लु परि, प्र + भ्रंस्—भ्रंशते । प्लु

भ्रास् (भ्राज्, इभ्राज्) दीप्ति (शोभायाम्)—चमत्ता To shine—भ्राजते ; भ्राजिष्यते । “विभ्राजते मकरकेतनमर्चयन्ती” रत्ना० १.२१ ।

सुद् हर्षे—आनन्दित होना To rejoice—मोदते, मोदिष्यते ।
मोदते धनी ।

• अनु + सुद्—अनुमोदते (पश्य काना) । प्र + सुद्—हर्षे । •
यत् (यती) यत्ने—प्रयत्न करना To attempt, strive—यतो ,
यतिष्यते । यतते पठितु शिष्य ।

• वा + यत्—वसोभावे (आवृत्त होना, अधीन होना, निर्भर
करना), सप्तमीके साथ, “वय त्वय्यायनामहे” महावीर० १.
४९ । प्र + यत्—प्रयत्ने । •

स्म (स्मृ) क्रीडायाम् (रमणे, आनन्द, आसक्तौ)—(१) खेल्ना ,
(२) आनन्दित होना To sport , to take delight in,
to be gratified—रमते , रम्यते । (१) “स्मं सुदुर्मध्यागता
सखीनाम्” कु० १ २९, (२) “छोलापाद्वैर्यदि न रमते लोचनं
वञ्चितोऽस्मि” मेघ० २७ ।

• अभि, वा + स्म—आसक्तौ, आरमति । उप + स्म—निवृत्तौ ;
नरणे च ; उपरमति, ंते । वि + स्म—निवृत्तौ, विरमति । •

स्व् प्रीतौ, प्रकाशे च—(१) रचना, (२) चमकना, शोभित
होना To be agreeable ; to shine, look beauti-
ful—रोचते ; रोचिष्यते । प्रीतिरिह अनुगमविशेष । तत्र यस्या-
नुगम, तस्य सम्प्रदानत्त्वम् । (१) रोचतेऽन्नं कुमुद्वरे, “यदेव
रोचते यस्मै, भवेत् तत् तस्य सुन्दरम्” टिप्प० २. ५०, (२)
“स्वर्णिं हर्षिरेक्षगविभ्रना ” भाष० २ ५६ ।

• वि + स्व्—दीप्तौ । •

लम्ब् (लवि) अवस्रसने (लम्बने)—लटकना To hang down, dangle—लम्बते, लम्बियते । “ऋषयो ह्यत्र लम्बन्ते” महाभा० ।
 ११ अव + लम्ब्—आधये । आ + लम्ब्—आधये, आदाने च ।
 वि + लम्ब्—विलम्बे । ११

वल् चलने—जाना, चलना To go, to move, to turn to—
 चलने; वल्लिष्यते । “अलिकदम्बक चलनेऽभिमुखं तत्र” माघ०
 ६ ११; “हृदयमदये तस्मिन्नेवं पुनर्वलते बलात्” गीतगो० ७.४० ।
 “त्वदभिसरणरमतेन चलन्ती” गीतगो० ६ ३; “एष्टिरन्यतो न
 चलति” काद०—इत्यादौ परस्मैपदमपि ।

वृत् (वृत्त) वर्त्तने (स्थितौ, विद्यमानतायाम्)—रहना To exist,
 remain, stay—वर्त्तते, वर्त्तिष्यते, वर्त्स्यति । “अत्र विपदेऽ
 स्मार्क महत् कुतश्च वर्त्तते” पद्म० १ ।

११ वृत् + गिच्—आजीविकायाम्, वृत्तिकरणे, प्राणधारणे (गुत्-
 रान करना To live on, subsist), वर्त्तयति । “शमोऽपि सह
 वैदेह्या वने वन्येन वर्त्तयन्” र० १२ २० । ऋचिच् आत्मनेपदमपि,
 यथा—“मदसिक्तमुहैर्भृंगाधिर करिभिर्वर्त्तयने स्वयं हते” भा०
 २. १८ । अति + वृत्—अतिश्रमे, उल्लङ्घने (सक०) । अनु +
 वृत्—अनुसरणे (सक०) । अप + वृत्—प्रतिनिवृत्तौ (लौटना) ।
 वि + अर + वृत्—निवृत्तौ । अभि + वृत्—अभिमुखगमने, आगमने
 (सक०) । आ + वृत्—आगमने । आ + वृत् + गिच्—दुग्धादिरात्रे
 (औटाना) । आवृत्तौ (पेरना To repeat) च; आवर्त्तयति ।
 अप + आ + वृत्, उप + आ + वृत्, परा + वृत्, वि + आ +

वृत्—निवृत्तौ (लौटना) । नि + वृत्—निवृत्तौ । निर् + वृत्—
निवृत्तौ, समाप्तौ । प्र + वृत्—प्रवृत्तौ । वि + वृत्—घूर्णने,
भ्रमणे । सम् + वृत्—सत्तायाम् (होना), “स्विन्नाङ्गुलि सत्रवृते
कुमारी” २० ७ २२. । १११

वृष् (वृधु) वृद्धौ—वदना To increase—वर्द्धते, वर्द्धिष्यते, वर्त्स्यति ।
“वर्द्धते ते तप ” म० ६ ६८ ।

१११ सम् + वृष् + णिच्—वर्द्धने, प्रतिपालने, सम्मानने च, सव-
र्द्धयति । १११

वेप् (डुवेष्ट) कम्पने—कांपना To shudder, tremble—वेपते,
वपिष्यते । वेपने वायुना वृक्षः ।

व्यथ् भयं, चलने, दुःखानुभवे च—डाना; विचलित होना, दुःख
पाना—To be agitated, to be afflicted, to be
sorry—व्यथते, व्यथिष्यते । व्यथते लोक (दुःखमनुभवति,
कम्पते, विभेति वा) ।

शुभ् दीप्तौ (शोभायाम्)—शोभित होना To look beautiful or
handsome—शोभने, शोभिष्यते । “हृष्टु शोभसे एतेन विनय-
माहात्म्येन” उत्तर० १, “हृष्ट इति दुःखान्वयनुभूय शोभने” मृच्छ०
१ १० (To appear to advantage).

श्विन् (श्विता) शौक्ये—सफेद होना To be white—श्वेतते ।
श्वेतने प्रासाद । “व्यतिकरितद्रिगन्ता श्वेतमानैर्यशोभि ” मालती०
२. १ । नै० १२ २२ ।

स्फन् (स्फादि) किञ्चिच्चलने (ईपत्कम्पने, स्फुण्णे)—कांपना, फटफटाना

To throb, palpitate—स्पन्दते, स्पन्दिष्यते । “स्पन्दते दक्षिणो भुज ” मृच्छ०, “पस्पन्दे वामनयन जाननी-जामदग्न्ययो ” महाना० १ २८ ।

‘परि’ उपसर्गके साथभी प्रयुक्त होता है ।

स्पर्ध् स्वर्षे (पराभिभवेच्छायाम्)—स्पर्द्धां करना, बराबरी करना, झगडना To contend or vie with—स्पर्द्धति, स्पर्द्धिष्यते ।
स्पर्द्धते बलिना मम बली ।

स्मि (स्मिद्) ईषद्धमने—मुस्कराना To smile, laugh (gently)—स्मयते, स्मेप्यते । स्मयते वधू । “स्मयमान वदनाम्बुज स्मरामि” भाभिना० २ २७ ।

स्य् वि + स्मि—विस्मये (ताज्जुव करना, मुताज्जिब होना) । स्य्-
म्यन्द (स्यन्द्) सवणे (क्षरणे)—चूना, बहना To drop, trickle, flow—स्पन्दते; स्यन्दिष्यते । अरविन्दात् मकरन्द स्पन्दते ।

स्य् अभि + स्यन्द्—द्वीनाय, क्षरणे, “अभिस्यन्देत हृदयम्” उत्तर० । स्य्

स्रम् (स्रन्) अंशे (अध पतने)—च्युत होना To fall down—स्रमते; स्रसिष्यते । “गाण्डीव ससने हस्तात्” गीता १. ३० ।

ह्लाद् (ह्लादी) हर्षे—हृष्ट होना To be glad or delighted—ह्लादते, ह्लादिष्यते । “अविज्ञातेऽपि बन्धौ हि बलात् प्रह्लादने मन भा० ११ ८ । “धन्यानां विरजस्तमा भगवतो चष्येदमाह्लादने” (हृषयति) अनर्थ० २ २९ —इत्यत्र सकर्मक ।

अनुवाद करो—गुन्हारी दचरितसे मेरा मन हृष्ट होता है । व्याघ्रका

गर्जनं सुनकर (श्रुत्वा) सभीका हृदय कांप उठता है । दरिद्र शिशुभोके उपकारके लिये सर्वदा यत्न करूंगा । पूर्व दिशामे चन्द्रमा शोभा पाता है,—यह देखकर (दृष्ट्वा) कौन आनन्दित नहीं होता ? रामके कुव्यवहारसे प्रयत्न निश्चिन्त लज्जित हुआ है । कायमनोवाक्यसे प्रयत्न करो ।

भ्वादि सकर्मक उभयपदी धातु ।

भ्वादि उभयपदी धातु परस्मैपदमे 'प१'-धातु, और आत्मने-पदमे 'लम्'-धातुके तुल्य ।

खन् (खनु) खनारणे (खनने)—खोदना To dig—खनति, खनते ; खनिष्यति, खनिष्यते । “नृपितो जाह्नवीतीरे कृप खनति दुर्मति ” ।

❦ उत् + खन्—खनने, उत्पाटने, उन्मूलने च । नि + खन्—रोपणे, स्थापने, प्रवेशने (गाढना) , “ऊनद्विवपं निखनेत्” याज्ञवल्क्य । ❦

गुह् (गुह्) सवरणे (आच्छादने, गोपने)—ढकना, छिपाना To cover, hide—गूहति, गूहते, गूहिष्यति, गूहिष्यते, घोक्ष्यति, घोक्ष्यते । “गुह्यञ्च गूहति गुमान् प्रकटीकरोति” मत्स्येहरि ।

❦ उत् + गुह्—पालिङ्गने । नि + गुह्—गोपने । ❦

चाय् (चायृ) दर्शने (वास्तुपजाने)—देखना To observe, discern, see—चायति, चायते, चायिष्यति, चायिष्यते । “त पर्दतीया प्रमदाश्चचायिरे” माघः १० ६१ ।

❦ नि + चाय्—दर्शने । ❦

धाव् (धावृ) धुद्धौ (धालने), द्रुतगमने च—(१)धोना, (२) दौडना (अरुः)—To wash, cleanse, to run—धावति, धावते ; धाविष्यति, धाविष्यते । (१) “दधाद्वाद्भिस्ततश्चभु सपीवस्य विनी-

पण " म० १४ ६० , (२) "धावन्त्यर्मा मृगजवाक्षमयेव रथ्या " शकु० १ ८ ।

शुभ्र अनु + धाव्—पश्चाद्भावे, अनुसन्धाने च । अभि + धाव्—अभिमुखगतौ । निर् + धाव्—मार्जने । शुभ्र

धृ (धृञ्) धारणे—पकटना To hold—धरति, धरते, धरिष्यति, धरिष्यते ।

शुभ्र अव + धृ + णिच्, अथवा क्षुरादि—निश्चये, निरूपणे ; अवधारयति । उद् + धृ—उद्दारे, मोघने । शुभ्र

नी (णीञ्) प्रापणे (नयने)—ले जाना To carry, lead, take, convey—नयति, नयते, नेष्यति, नेष्यते । द्विकर्मक—नयति नयते मा वन गोप (प्रापयतीत्यर्थ) । "मामपि तन्न नय" हितो० ।
—(२) अतिवाहने To pass (as time), "सदिष्ट कुशासयने निशा निनाय" २० १ ९६ ।

शुभ्र अनु + नी—प्रार्थनायाम्, प्रसादने च । अप + नी—अपवारणे । अभि + नी—अभिनये, अनुकरणे । आ + नी—आनयने । आ + नी + णिच्—सद्गामा, आनाययति । प्रति + आ + नी—प्रत्यानयने । उद् + नी—उत्क्षेपणे, अनुमाने च । उप + नी—उपनयने ; "माणवकम् उपनयते", (२) प्रापणे च, " आर्यस्यासनमुपनय " मृच्छ० । निर् + नी—अवधारणे । परि + नी—विवाहे । प्र + नी—रचनायाम्, प्रापणे च । वि + नी—अपनयने, दासने, शिक्षायाञ्च । शुभ्र

पक् (ङृपचप्) पाके (रन्धने)—पकाना To cook—पचति, पचते, पक्ष्यति, पक्ष्यते । द्विकर्मक—पचति पचते तण्डुलान् ओदनं लोठ ।

—(२) जीर्णोकरणे (परिष्कार करना, हज्म करना) ; “पचाम्यत्रं चतुर्विधम्” गीता १६ १४ ।

भृञ् कर्मकर्त्तरि—परिणामे, परिणतावस्थायाम्—पच्यते, “सद्य एव सृता हि पच्यते कलशशुक्लधर्मि काङ्कितम्” २० ११ १० ।

(२) विनाशोन्मुखीभावे, “नरके पच्यते घोरे” । भृञ्

भञ् भागे ; सेवायाम् (अनुरागे, आश्रये, स्वीकारे, प्राप्तौ) च—(१) बाँटना, (२) सेवा करना, भक्ति करना, (३) आश्रय करना, (४) प्राप्त होना To divide, to worship, to resort to, to obtain, experience—भजति, भजते, भज्यति, भज्यते । (१) “भ्रातर सम भजेरन् वैतृक रिक्थम्” मनु० ९ १०४, (२) हरिं भज, (३) “शिलातल भेजे” काद०, “भात-लंदिम । भजन्व कञ्चिदपरम्” भक्तृ० ३, (४) “अनितसमयोऽपि मारुदं भजने, कैव कया शरीरिणु १” २० ८ ४३ ।

भृञ् वि + भञ्—विभागे (हिस्मा करमा) । भृञ्

भृञ् (भृञ्) भरणे (पूरणे, पोषणे, प्रतिपालने)—(१) भरना, (२) पालन करना To fill ; to support—भरति, भरते, भरिष्यति, भरिष्यते । (१) भरति कुम्भमञ्जिर्जन ; (२) “दरिद्रान् भर कौन्तेय ! मा प्रयच्छेश्वरे घनम्” हितो० १-१४

यञ् देवपूजायाम् (यागे), दाने च—(१) पूजा वा दान कटना ; (२) देवताके उद्देशमे उत्सर्ग करना To worship with sacrifices, to make an oblation to—यजति, यजते, यज्यति, यज्यते । (१) यजति यजने विष्णु उर्धा (पूजयतीत्यर्थ) ।

यागार्थंमे तृतीयान्त यज्ञ-वाचक शब्दके साथ प्रयुक्त होता है ; “यजेत राजा ऋषिभिः” मनु० ७ ७९, “अधमंयेन यजेत” । (२) इत-गार्थंमे द्वितीयान्त देवता वाचक और तृतीयान्त उत्सृष्टवन्तुवाचक शब्दके साथ प्रयुक्त होता है, “पशुना इव यजते” (पशुं रद्राय ददातीत्यर्थ), “यस्त्रिलेख्यं जते पितॄन्” महाभा० ।

याच् (दुषाच्) याचने (प्रार्थनायाम्)—याच्ना करना, माङ्गना To ask, solicit, implore—याचति, याचते, याचिष्यति, याचिष्यते । द्विर्मक—त्रिलिं याचते बहुधाम् । याचति याचते रूप विप्र, “पितरं प्रणिपत्य पादयोरपरित्यागमथाचतात्मनः” १० ८ १२ ।

लप् लृद्धायाम्—इच्छा करना, अभिप्राय करना To desire or wish for—लपति, लपते, लप्यति, लप्यते, लपिष्यति, लपिष्यते । प्रायेण अयम् ‘मभि’ पूर्वक—अभिलपति, अभिलप्यति । “तेन दत्तमभिप्रेतुरङ्गना सुवासवम्” १० १९ १२; “मानुषानभिलप्यन्ती” भ० ४ २२ ।

वप् (वृप्) बीजवपने, तन्तुवपने, सुगुने च—(१) बीज बोना; (२) बुनना, (३) सुगुना To sow, to weave; to shave—वपति, वपते, वप्यति, वप्यते । (१) “वाहर्षी वपते बीजं तादृशं लभने फलम्”, (२) वपति तन्तुं तन्त्रशायः, (३) वपति मन्त्रकं नापित ।

शु० नि + वप्, निर् + वप्—उत्तमर्गे, दाने । प्रति + वप्—अनुपे (जड़ना), विपत्तने, विन्यासे च । शु०

वह् प्रारणे ; धारणे च—(१) ले जाना , (२) धारण करना To carry ;
to bear, support—वहति, वहते, वश्यति वश्यते । (१)
द्विकर्मक—वहति वहते भारं गाम जन (प्रारयतीत्यर्थ) . (२)
“न गर्दभा वाजिपुर वहन्ति” मृच्छ० ४ १७ ।—(३) वायो-
गंनौ (अक०) , “मन्द वहति मारुत ” रामा० ।—(४) म्य
न्दते, सवो, क्षरणे (अक०) , “रगोरकाराय वहन्ति नद्य ” ।
❖ भति + वह् + णिच्—अतिवाहने, धापने, अतिक्रमणे , अतिवा-
हयति । अप + वह्—उत्सारणे , निरासे च , “अपोवाह वासोऽप्या
मारुत ” महाभा० । अप + वह् + णिच्—अपसारणे , अपवाहयति ।
आ + वह्—उत्पादने , धारणे च । उन् + वह्—विवाहे , धारणे च ।
निर् + वह्—निष्कर्त्तौ , सम्पादने स्थितौ च—“मर्षया मय्यवचने
दंडो न निर्वहिव्” भागवत-टीका ८ १९ ४१ , “कारणप्रयदिनि
कथयन् वन्द्यापुत्रेण विर्वहिव् कार्प्यम्” स्वात्मनिरुपगम् ७८ ।
प्र + वह्—वहने, प्रवाहे । वि + वह्—विवाहे । सम् + वह् + णिच्—
संवाहने, अङ्गनर्दने Shampooing स्थाहयति । ❖

वे (वेर्) तन्तुमन्ताने (वस्त्रनिर्माणे)—बुनना To weave—वपति,
वधने ; वास्यति, वास्यते । वपति वरने तन्त्र तन्त्रवाय । “यस -
पटं वपति स्म तद्गुणै ” न० १ १२ ।

❖ प्र + वे—वेरणे, वस्यते , “शल्यप्रोत मुनिपुत्रम्” १० ९.
७९ । ❖

शाप् आक्रोणे (बिल्हादुःखाने, शापे, मालिदाने, मन्थनानाम्) , शप-
कणे च—(१) कोपना , (२) सौमन्द खाना To curse,

scold, abuse, to swear—शपति, शपने, शप्स्यति, शप्स्यते । (१) “अशपद्भव मानुषीति ताम्” २० ८ ८०, (२) “कृष्णाय शपते गोपी” । जिस आदर्माने पाम शपथ किया जाता है, उसमे चतुर्थी, और जिस पदार्थके नामसे शपथ किया जाता है, उसमे वृत्तीया होती है, “भरतेनात्मना चाह शपे ते मनुजाधिप । । यथा नान्येन तुष्येथमृते रामविवासनात्” रामा० ।

शुभ्र अमि + शप्—अभिशापे । शुभ्र

धि (धिञ्) आश्रये, प्राप्ता च—(१) आश्रय करना, (२) प्राप्त होना To resort to, have recourse to, to attain to—श्रयति, श्रयते, श्रयिष्यति, श्रयिष्यते । (१) “य देश श्रयते तमेव कुस्ते बाहुप्रतापार्जितम्” हितो० १ १०५, (२) “परीता रक्षोभि श्रयति विवशा कामपि दशान्” भामिनी० १ ८३ ।

शुभ्र आ + धि—अवलम्बने (महारा लेना) । सम् + धि—आश्रयें । शुभ्र

ह (ह्रञ्) हरणे (प्राप्णे, स्नेये, नाशने च)—(१) ले जाना, (२) चोरी करना, (३) नष्ट करना To convey, to steal, to destroy—हरति, हरते; हरिष्यति, हरिष्यते । (१) द्विकर्मक—हरति हरते गा वनं गोप, “मन्देशं मे हर” मेघ० ७, (२) “दुर्वृत्ता जारजन्मानो हरिष्यन्तीति शत्रुया । मदीयपथरत्नानां मञ्जूषैया मया कृता” भामिनी० ४. ४६; (३) “नापेशा न च दाक्षिण्यं न प्रीतिर्न च सद्गति । तथाऽपि हरते ताप स्त्रिकानामुद्धतो घन ॥” भामिनी० १ ३८ ।

✱ ह + णिच्—प्रापणे (किमीके द्वारा कुञ्ज भेजना), नाशे, भ्रमे, वियोगे (खोना To lose), पराजये (हराना) च, हारयति ।
 अनु + ह—अनुकरणे । अप + ह—अपहरणे (ग्रान लेना, चुराना) ।
 अभि + भव + ह—अभ्यवहारां, भोजन । वि + भव + ह—व्यवहारे ।
 आ + ह—आहरणे, आनयने । उव् + आ + ह—दृष्टान्तोपन्यासे (नजीर देना), कथने च । वि + आ + ह—व्याहारे, उत्तौ ।
 सम् + आ + ह—सङ्गहे । उव् + ह—उद्वारे (मोचने, उन्मूलने च) । उप + ह—अन्तिकप्रापणे (पास ले जाना), उपडौकने च (भेंट करना) । निर् + ह—अपनयने, प्रेतवहने च । परि + ह—परित्यागे । प्र + ह—प्रहारे, ताडने । वि + ह—क्रीडायाम् ।
 मन् + ह—नाशने, प्रत्याकर्षणे (समेटना), सङ्घेपे च । उप + सम् + ह—उपरुहारे, समापने । ✱

ह्वे (ह्वेज्) स्पदायाम् (परामिभवेच्छायाम्), आह्वाने च—(१) लडाईं साङ्गना, (२) पुकारना To challenge, To call by name—ह्वयति ह्वयते महो महम् (अभिभवितुमिच्छति), (२) ह्वयति जन लोक (आह्वयतीत्यर्थ), “ता पार्श्वतीति नाम्ना जुडाव” कु० १ २६ ।

✱ आ + ह्वे—आह्वाने To call, summon, invite—परस्नेपदी—पुत्रमाह्वयति,—(२) स्पदायाम्—आत्मनेपदी—कृष्णभ्राणूरमाह्वयते । ✱

भ्वादि अकर्मक उभयपदी घातु ।

राव् (रावृ) दीप्तौ (शोभायाम्)—शोभित होना To glitter,

appear splendid or beautiful—राजति, राजते, राजि-
प्यति, राजिष्यते । “राजन् । राजति चारत्रैरिवनितादैधव्यदस्ते
भुज ” काव्यप्रकाश १० ।

भूँ वि + राज्—उदीप्तौ । निर् + राज् + णिच्—प्रकाशने, विभू-
पणे, नीराजने, निर्मञ्छने च (आरती करना), नीराजयति,
“नीराजयन्ति भूपाला पादपीठान्तनूतनम्” प्रबोध० २८ । भूँ

अनुशङ्क करो—दिनमें दोपहरके समय धूममें मन दीडो । साधुपुर-
वकें पास प्रार्थना निकल होशीर्मा अठ्ठो, तोभी कृपणके पास कुठभी नहीं
माहता । अपने गुणोंको टिपार रखो । सर्वान्त कृपणसे ईश्वरका (द्वितीया)
भजन करो । महात्तपा दुर्वासाने शकुन्तराजो अभिज्ञात दिवा था । वर्षा-
में किसानलोग जेतने बीज बोते हैं । इस पुस्तकको घरमें ऐ जाउगा ।
विपद्में जियशा (द्वितीया) आश्रय करोगे, प्राणान्तमेंभी डमके उपर
कुनाव नहीं एना ।

दिवादि ।

क्रियाघटन-मूत्र ।

[इस प्रकरणमें यह मन्त्र्य तुगदिके धार(ः)-पिहित सूत्रोका
शब्द होगा ।]

२७१ । चतुर्द्वार पर रहोते, ऊर्ध्वनाथमें दिवादिगणोंय धातुके
उत्तर 'य' होता है, यथा—दिन् + त्रि = त्रिन् + य + ति—

२७२ । * 'य' परे रहनेसे, दिन्—दीन्, त्रिन्—तीन्, दृ—द्रीन्,
जृ—जीन्, ल्यच्—त्रिच्, और जन्—जा होता है । दीन्ने य + ति =

दीव्यति ।

२७३ । 'द' परे रहनेसे, कर्तृवाच्यमे शम्—शाम्, ध्रम—ध्राम्, भ्रम्—भ्राम्, क्षम्—क्षाम्, तम्—ताम्, दम्—दाम्, हम्—हाम्, मद्—माद्, भ्रनद्—भ्रनद्, ओर रन्द्—रन्द् होता है ।

२७४ । चतुर्थकार परे रहनेसे, ङन्त्य ओकारका लोप होता है ।
यथा—शो + य + ति = श्यति ।

दिवादि परस्मैपदी धातु ।

दिद् (दिव्) क्रीडायाम्—खेलना To play.

(अकर्मण—द्वितीयान्त अथवा तृतीयान्त 'अङ्'—वाचक शब्दके साथ—
अक्षे अज्ञान् वा दीव्यति ।)

लृट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	दीव्यति	दीव्यत	दीव्यन्ति
मध्यमपुरुष	दीव्यसि	दीव्यथ	दीव्यथ
उत्तमपुरुष	दीव्यामि	दीव्याव.	दीव्याम

लोट् ।

प्रथमपुरुष	दीव्यतु	दीव्यताम्	दीव्यन्तु
मध्यमपुरुष	दीव्य	दीव्यतम्	दीव्यत
उत्तमपुरुष	दीव्यानि	दीव्याथ	दीव्याम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अदीव्यत्	अदीव्यताम्	अदीव्यन्
मध्यमपुरुष	अदीव्य	अदीव्यतम्	अदीव्यन्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	अदीव्यम्	अदीव्याव	अदीव्याम्
	विधिलिट् ।		
प्रथमपुरुष	दीव्येत्	दीव्येताम्	दीव्येयुः
मध्यमपुरुष	दीव्ये	दीव्येतम्	दीव्येत
उत्तमपुरुष	दीव्येयम्	दीव्येव	दीव्येम
	लट् ।		

प्रथमपुरुष	देविष्यन्ति	देविष्यत	देविष्यन्ति
मध्यमपुरुष	देविष्यसि	देविष्यथ	देविष्यथ
उत्तमपुरुष	देविष्यामि	देविष्याव	देविष्याम

दिवादि सकर्मक परस्मैपदी धातु ।

अस् (अठ) धेपणे—पेंकना To cast—अस्यति, अस्तिष्यति । “तस्मिन्नास्थदिपीनाद्यन्” २० १२ २३ ।—(२) अपनोदने, “खोणानास धमम्” नलोदय ४ ३६ ।

•५० अधि + अस्—आरोपे । अप + अस्—अपसारणे, त्यागे च ।
 अभि + अस्—अभ्यासे, आकृतौ, पुनरनुष्ठाने, मुहु कारणे । उल् +
 अस्, वि + उल् + अस्—निरासे, अपनयने । नि + अस्—निधेपे,
 स्थापने, त्यागे च । वि + नि + अस्—स्थापने । उप + नि +
 अस्—प्रस्तापे । सम् + नि + अस्—अभ्यासे, “मन्दश्य क्षगभद्रुरं
 तदखिरं धन्यस्तु सन्धस्यति” भर्तृ० । निर् + अस्—दूरीकरणे ।
 परि + अस्—विस्मृता, धेपणे ; पातने च । वि + परि + अस्—
 विरुष्ये । प्र + अस्—प्रक्षेप । वि + अस्—अपनयने ; विभागे च ।

सम् + अम्—सङ्घे, समासे, मयोगे । १५

इप् गतौ—इष्यति, पृषिष्यति ।

१५ अनु + इप्—अन्वेषणे (ढूँढना) । प्र + इप् + णिच्—प्रेषणे (भेजना), क्षेपणे च, प्रेषयति । १५

क्षम् (क्षम्) सहने (मर्हणे, क्षमायाम्)—क्षमा करना To forgive—क्षाम्यति, क्षमिष्यति । क्षाम्यति दोष साधु ।

गृष् (गृष्) लिप्मायाम् (आकाङ्क्षायाम्)—लालच करना To covet—गृष्यति; गर्धिष्यति । गृष्यति घनं लुब्ध ।

पुष् पोषणे (उपचये), पुष्टौ च—(१) पुष्ट करना, बढाना, (२) पुष्ट होना (अकः) To nourish, to enhance, to display, to grow strong or fat—पुष्यति; पोष्यति । (१) “काम-य-भिर्या स्फुर्गितैःपुष्यदासन्नलावण्यफलोऽधरोष्ठ ” कु० ७ १८, “वर्णं पुष्यत्यनेकं सरयूप्रवाह ” २० १६ ८८, “इहमपुष्य सता-मिषै ” म० १७ ७२ ।

लुम् आकाङ्क्षायाम् (लोभे)—लालच काना To covet—लुम्यति, लोभिष्यति । लुम्यति घनं लुब्ध । परन्तु चतुर्थी और सप्तमीके माय प्रयुक्त होना है; “तयाऽपि रामो लुलुभे मृगाय”, “घनं लुम्यति य सदा” ।

व्यष् ताडने (पीडने, वेधने)—धींधना, चुभाना, टेदना To hurt, pierce—विष्यति; व्यत्स्यति । विष्यति शत्रुं शूर, “वित्पु-स्तोमरै ” म० १४ २४ ।

१५ अनु + व्यष्—सम्पर्के, व्यापने, ग्रन्थने च । अप + व्यष्—

निक्षेपे, निरासे ; त्यागे ; प्रेरणे च । आ + व्यध्—भेषे, नि पारणे ; धारणे, परिधाने च । ❀

शा तीक्ष्णीकरणे—दैनाना To sharpen, whet—स्यति - शा/सति ।

❀ नि + शो—निशाने, तेजने, तीक्ष्णीकरणे । ❀

द्विष् (द्विषु) आलिङ्गने, योगे च—(१) गते लगाना (२) रयुक्त होना (अक०) To embrace, to adhere to—द्विष्यति ; श्लेष्यति । (१) द्विष्यति वृक्ष एता ।

❀ आ + द्विष्—आलिङ्गने योगे च । वि + द्विष्—वियोगे । प्र + द्विष्—वियोगे । सम् + द्विष्—सयोगे । ❀

सिद् (सिद्) तन्तुविस्तारे (सौदनं, तन्तुभिर्ग्रन्थने)—साना To sew—सौष्यति, सेविष्यति । सौष्यति बह्व सौचिक ।

सो (सो) नाशने—नष्ट कराना To kill, destroy—स्यति साम्प्रति । स्यति यमो जन्तून् ।

❀ अव + सो—अवसाने, वनासौ । अधि + क्व + सो—अव्यवसाये (टस्तादे, निश्चये च) । परि + अव + सो—अव्यवसाने समासौ, परिणामे । प्रति + क्व + सो—प्रत्यवसाने, भोजने । वि + अव + सो—अव्यवसाये, उद्यमे, चेष्टायाम् । अनु + वि + अव + सो—अनुव्यवसाये (बुद्धार्थस्य पुनर्वोधे) । ❀

दिवादि अकर्मक परस्मैपदी धातु ।

क्रुप् क्रोधे—क्रुद्ध होना To be angry—क्रुष्यति ; क्रोशन्ति । त्रिपर क्रोध क्रिया जाता है, उममे प्रायत चतुर्धा होती है ; क्रुशन्ति माता शिशवे ; "क्रुष्यन्ति द्वित्वादिने" ऋद० । किन्तु 'प्रति' शब्द-

के योगसे द्वितीया, और 'उपरि' शब्दके साथ पद्योभी होती है,
 "मां प्रति स कुपित", "कुपितश्चन्द्रगुप्तश्चाणश्यस्योपरि" मुद्रा०२ ।
 ११ प्र + कुप्—अतिक्रोध, प्राबल्ये च—“दोषा प्रकुप्यन्ति”
 सञ्चत० । ११

कृष् कोपे—रोष करना—कृष्यति, क्रोत्स्यति ।

कृम् (कृम्) श्लानौ (श्रमे)—हान्त होना, थकना To be fatigued
 or tired—कृम्यति, कृमिष्यति । “काय कृम्यति यस्य
 प्रहरतो रिपून्” ।

क्लिद् (क्लिद्) आर्द्राभावे—भीगना To become wet—क्लिचति ;
 क्लिद्यति, क्लिप्त्यति । क्लिचति वस्त्र पयसा ।

क्षुम् सञ्चलने* (क्षोभे, विकारे, उद्वेगे)—क्षुब्ध होना, विचलित होना,
 घबराना To shake, to be agitated or disturbed—
 क्षुम्यति, क्षोभिष्यति । “महाहृद इव क्षुम्भन्” भ० ९ ११८ ।

११ प्र + क्षुम्, सम् + क्षुम्—सञ्चलने । वि + क्षुम् + णिच्—
 विलोडने, विशोभयति । ११

जृ (जृप्) वयोहानौ (जरायाम्, जीर्णाभावे, क्षये, विलये, परिपाके)—
 (१) जीर्ण होना, क्षीण होना, (२) नष्ट होना, (३) पचना To
 grow old, wear out, decay, to perish, to be
 digested—जीर्ष्यति, जरिष्यति, जरोष्यति, (१) “जीर्ष्यन्ते
 जीर्ष्यस केशा दन्ता जीर्ष्यन्ति जीर्ष्यन् । जीर्ष्यतश्चक्षुषो श्रोत्रे,

* इसी अर्थमें 'क्षुम्'-धातु भ्वादिगणान् अत्मनेपदीभी होता है,
 लट्—क्षोभते ।

नृणोका तरणायने ॥" पञ्च० ५ १६ ; (२) "सौहृदानि जीर्णन्ति
कालेन" महाभा० ; (३) "उदरे चाजस्रान्ये" भ० १९ १९० ।

तम् (तम्) रलानौ (खेदे, धान्तौ, व्यथायाम्, वृशीभावे)—(१) धान्त
होना ; (२) परेशान होना, (३) मुत्सहाना To be exhausted
or fatigued, to be distressed (in body or
mind), to pine or waste away—ताम्यति ; तमि-
प्यति । (१) "ललितशिरीषपुष्पहननंरपि ताम्यति यत्" भाट्टी०
५ ३१, (२) "प्रविशति मुहु कुञ्ज, गुञ्जन् मुहुबंधु ताम्यति"
गीतगो० ५ १६, (३) "गाढोत्कण्ठा लुण्ठितलुण्ठितैरङ्गैस्ताम्य-
ताति" मालती० १ १८ ।

१० उक् + तम्—उत्कण्ठायाम् । सम् + तम्—रलानौ । १०

तुप् प्रीतौ—तुष्ट होना To be contented or satisfied with
anything—तुप्यति, तोष्यति । "तुप्यन्ति ब्राह्मणा नित्यम्" ;
नृतीयान्त पदके साय—"रत्नैर्महाहंस्तुतुपुर्न देवा" भर्तृ० ।

१० परि + तुप्, प्र + तुप्—परितोषे । सम् + तुप्—सन्तोषे । १०

तृप् तृप्तौ—तृप्त होना, राजी होना, To become satisfied—तृप्य-
ति ; तर्पिष्यति, तृप्स्यति, तृप्स्यति । प्रायश नृतीयाके साय,
पान्तु कर्हो पष्टो और सप्तमीके सायमी प्रयुक्त होता है ; "को न
तृप्यति रिप्तेन १" हितो० २ १७३ ; "नामिन्तृपति काष्ठानाम्"
पञ्च० १ १४८, "तस्मिन् हि तृपुर्देवास्तने यज्ञे" महाभा० ।

१० परि + तृप्—सम्पत्कृतौ । १०

तृप् (त्रितृप्) पिपासायाम् (तृष्णायाम्, आकाङ्क्षायाम्)—प्यासा होना

To be thirsty—तृष्यति, तर्पिष्यति । “क्षताश्च कपयोऽन्तु पन्” म० १५ ५१ ।

त्रस् (त्रसो) उद्भ्रमे (त्रासे)—डरना To fear, dread—त्रप्यति, त्रसति, त्रसिष्यति । “प्रमदघनात् त्रस्यति” काद०, “त्रसति क सति नाश्रयबाधने १” न० ४ १६ ।

दम् (दम्) उपसामे (शान्तीभावे) शान्तीकरणे (शासने, दमने) च—(१) शान्त होना, (२) दबाना (सक०) To be calm or tranquil, to subdue—दाम्यति दमिष्यति । (१) दाम्यति मुनि, (२) “यमो दाम्यति राक्षसान्” म० १८ २० ।

दुप् वैश्ल्ये (अशुद्धोभावे, दोषे)—दोषयुक्त वा अशुद्ध होना To be bad or corrupted, to become impure or contaminated—दुष्यति, दोष्यति । दुष्यति लोक पापात्; “दवान् पितृश्राव्यित्वा त्वादन् मासं न दुष्यति” मनु० ५ ३२ ।
 प्र + दुप्—व्यभिचारः ।

दृप् गर्वे (द्वेषे)—घमण्ड करना To be proud—दृष्यति, दर्पिष्यति, द्रप्स्यति, द्रप्स्यन्ति । “स किल नात्मना दृष्यति” उत्तर० ८, “को न दृष्यति वित्तेन १” हितो० ३ १७३ ।

दृ विदारे—फटना To burst or break asunder, split open—द्रीष्यति, दरिष्यति, दरोष्यति । “हृदय द्रीष्यतीव मे” महाभा० ।

दृ भव + दृ + गिच्—अवदारणे, खनने, अवदारयति । वि + दृ—विदारे, “वैदेहिबन्धोर्हृदयं विदरे” २० १४ ३३ । वि + दृ +

विध्—विदारणे (फाड़ना), विदारयति । ❀

द्रुह् जिघासायाम् (अनिष्टचिन्तने, अपहारे)—द्रुहाइं चाहना, ईद करना To seek to hurt or injure, meditate mischief—द्रुहति, द्रोहिष्यति, ध्रोष्यति । जिप्सर द्रोह किन्ना डाता है उसमे चतुर्थी होती है द्रुहति षड् वाचने • “दोऽन्वेनि ना द्रुहति मध्यमेव साऽन्वेत्युगलम्भि तशाऽऽलिङ्गं ” शै० ३. ७ ।

❀ अभि + द्रुह्—अपहार । ❀

नश् (णश्) नामे (क्षये, मरणे) अदराने (लुप्त्यापने, पनापने) च—
(१) नष्ट होना (२) अदृश्य होना, छिप जाना, (३) भागना To be destroyed, perish, to disappear; to escape—
नश्यति, नशिष्यति, नक्ष्यति । (१) “जीदनासं ननास च” म० १४. ३१. (२) “ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति” हिनो० १. २२०-
(३) “नेमुञ्चिष्य निशाचरा” म० १४. १६२ ।

❀ प्र + नश्—‘नश्-वच्- प्रगात्, प्रनष्ट । वि + नश्—
विनाशे । ❀

नृत् (वृत्) नर्तने—नाचना To dance—नृत्यति; नर्तिष्यति,
नन्व्यति । “नृत्यति युवतिर्जनेन रुम सखि ।” गीतगो० १. ।

पुष्प् विद्वाद्ये—विडना To open, bloom—पुष्पति; पुन्पिष्यति ।
पुष्पति कुन्दकोरकम्, शरीदि पुष्पन्ति समच्छदा ।

भ्रंत् (भ्रृत्) भ्रम पतने—भ्रष्ट होना, छुन होना To tumble;
to stray from—भ्रश्यति; भ्रशिष्यति । “भ्रश्यन्ति कर्मान्-
पश्यथ” महाभा० १. ३९, “मन्दात्राभ्रयन रुतं कलाद्गुरुत्”

४० १४. १६. । प्रायत पञ्चमीके साथ ।

• परि + अश्, प्र + अश्—च्युती, हानी । •

अन् (अमु) चटने (अमगे) , अन्तौ (अयपर्यज्ञाने) च—(१)
बूमना, (२) चूकना To rove, move to err—आम्यति,
अमिष्यति । (१) ‘सुदर्पो आम्यति नित्यमेव गमन’ मचुं०,
(२) “आभरणकारस्तु तालव्य इति वदाम” ।

मद् (मदी) हपे, मत्तनायाञ्च—(१) आनन्दित होना, (२)
मनवाला होना To be glad or rejoiced to be drunk
or intoxicated—माद्यति, नदिष्यति । (१) “संलोक-
निशयिन्या विमूढा न च माद्यति” , (२) “शोऽन मयमितरा
सु ममाद्” भाव० १० २७ ।

• उन् + मद्—उन्नादे, वित्तविकारे । प्र + मद्—प्रमादे, मनव-
धानतायाम् (गादिल होना) ; “न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चिन ”
ननु० २. २१७ । •

मुद् अदिवेके (मोदे, ज्ञानरहितोभावे)—मुग्ध होना, विवेकहित
होना, मत्तहीन होना To be infatuated, to be per-
plexed or bewildered, to faint, swoon—मुद्यति,
नोहिष्यति, मोक्ष्यति । “आरन्ध्रि न मुद्यन्ति नरा गण्डिनवु-
द्वर” हितो० १. १७१ ; “स शुद्धवान्स्त्वचन सुनोइ” म०
१. २० ।

य् (यत्) प्रयत्ने, यम्यति ।

• आ + य्—प्रयत्ने, “देव्यादुन्मुत्तदंशनापयने पिण्डार्थ-

मायम्यत सेवा लाघवकारिणो कृतधिय स्याने इववृत्ति विदुः”
मुद्रा० २ १४, खेदे च—“आयम्यसि नपत्यन्ती” भ० ६ ६९ ।
आ + यम् + गिच्—शेडने “आयाम्यति मां जलाभिलाष”
काद० । प्र + यम्—प्रयत्ने, “पुन पुन प्रायसदुस्त्ववाय स” ने-
१ १२० । श्नु

राष् सिद्धौ (निष्पत्तौ)—निष्पन्न होना To be accomplished
or finished—राष्यति, रात्स्यति । राष्यत्योदन ।

श्नु अप + राष्—अपराधे, अनिष्टाचरणे (कुमूर करना) ; व्यक्ति
और वस्तु-वाचक शब्दको पद्यी तथा सप्तमीके साथ—“अपराद्धोऽ-
स्मि तत्रभवत कश्चस्य” शकु० ७, “यस्मिन् कस्मिन्नपि पूजा-
होऽपराद्धा शकुन्तला” शकु० ४ कहाँ चतुर्थीके साथमी प्रयुक्त
होता है—“न दूये, सात्वतास्नुयन्महापराष्यति” माघ०
२. ११. । वि + राष्—अपकारे, दोहे । “त्रिशाम्नभिहारण विरा-
ष्यन्त क्षमेत क १” माघ० २. ४३, “विराद्ध एवं भवता विराद्धा
बहुधा च न” माघ० २. ४१. । श्नु

शम् (शम्नु) उपशान्ते (शान्तभावे, निवृत्तौ)—शान्त होना To
be calm, quiet or tranquil, be appeased or
pacified, to cease—शाम्यति; शमिष्यति। “शाम्येत् प्रत्यर-
कारेण नोपकारेण दुर्जनं” कु० २. ४०; “न जातु काम कामाना
सुरभोगेन शाम्यति” मनु० २ १४. ।

श्नु उप + शम्—‘शम्-वत् । नि + शम्—धवने* । नि +

* “निशम्य शब्दान्” शकु० ५ २ ।

शम् + णिच्—श्रवणे* , दर्शने च , “निशामयति वच ” (शृणो-
तीत्यर्थं) , दर्शने तु—“ रूप निशामयति ” । “ निशामय
प्रियमसि ! ” मालती० ७ —इत्यत्र तु श्रवणार्थं । १५

शुष् शौचे(शुद्धौ)—शुद्ध होना To become pure or purified—
शुष्यति ; शोत्स्यति । “अग्निगात्राणि शुष्यन्ति, मग सत्येन
शुष्यति” मनु० ५. १०९ ।

१५ शुष् + णिच्—उन्मूलने, ऋणोद्वारे, अशुद्धिसशोधने च , शोध-
यति । परि + शुष् + णिच्—ऋणोद्वारे, कष्टकायपसारणे, भ्रमा-
दिमशोधने च । वि + शुष्—शुद्धौ । १५

शुष् शोषे (स्नेहरहितोभावे)—सूखना To be dried—शुष्यति ;
शोष्यति । शुष्यति धान्यमातनेन ।

१५ परि, वि, सम् + शुष्—अतिशोषे । १५

श्रम् (श्रमु) तपसि, त्वेरे (श्रमे, क्लान्तौ , दु ले) च—(१) तप-
स्या करना , (२) यकना , दुखो होना To perform au-
sterities , to be wearied , to be afflicted—श्राम्य-
ति ; श्रमिष्यति । (१) “कियच्चिर श्राम्यसि गौरि ? ” कु० ५.
५० ; (२) “आतिथेयमनिवारितातिथि कर्तुमाश्रमगुह स नाश्र-
मत्” माघ० १४. ३८ , “यो बृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यता प्रोषि-
तानाम्” मेघ० ९९. ।

१५ परि + श्रम्—परिश्रमे । वि + श्रम्—विश्रामे । १५

साध् निष्कर्तौ—निष्पन्न होना To be completed or accom-

* “प्रणयिणो निशामय स्वस्वम्” माघ० ६ १९ ।

plished—माश्रयति ; सात्स्यति । माश्रयति घञ् (निष्प्रत्ययत्वात् इत्यर्थः) ।

शुं साध् + जिच्—सन्नादने ; प्राप्तीं पराङ्मने ; वषे ; गमने च—
“साधयान्प्रहमविह्वलमन्तु ने” २० १६ १६ - साधयति । २ + साध्
+ मिच्—मत्स्युरणे , कण्ठकणोषणे, वैजित्पानने च । शुं

निष् (पिष्) भ्रातृदौ (निष्प्रती)—निष् होना To be accomplish-
ed or fulfilled—निष्पति . संत्स्यति । ‘उद्यमेन हि निष्प-
न्ति कामांगि न मनोरथैः’ हितो० ३६. १

स्निह् (स्निह्) प्रीती (स्नेहे)—प्यार करना To feel or have
affection for, love, be fond of—स्निहति ; स्नेहिय-
ति, स्नेशयति । स्निहति वन्तु । स्निहति स्नेह किना जाता है,
उपने मलनी होता है ; “किं नु क्वु दातेप्रस्निह् जीरस इव पुत्रे
स्निहति मे नर १’ दाह० ७. १

स्विद् (स्विन्दिदा) मात्रप्रसारे (धर्मेषुती)—पसोडना To sweat,
perspire—स्विरति ; स्वेत्स्यति । “२ च स्विद्यति तस्याङ्गु” ।

हृद् हृद्यै (आनन्दे)—हृद् होना To rejoice, be delight-
ed—हृद्यति ; हर्षिष्यति । हृष्यति लोके हृषात् ।—(२)
होमहर्षे (बाल खड़ा होना) . “हृषन्ति तेनहृषादि” महाना० ।

दिवादि आत्मनेपदी यातु ।

मन् दाते (मन्भावने)—सोचना To think, believe,
im'gine

(महर्षे—‘मन्मानं मन्यते दलित्य वर्य’ नः ५. २६ ; ‘त्यन्मन्ना-

वित्तमात्मानं बहु मन्यामहे वयम्” कु० ६ २० —बहु मन्—इलाघायाम्

To esteem highly कथं भवान् मन्यते ?—आपका

मन क्या ? What is your opinion ?)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	मन्यते	मन्येते	मन्यन्ते
मध्यमपुरुष	मन्यसे	मन्येथे	मन्यध्वे
उत्तमपुरुष	मन्ये	मन्यावहे	मन्यामहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	मन्यताम्	मन्येताम्	मन्यन्ताम्
मध्यमपुरुष	मन्यस्व	मन्येथाम्	मन्यध्वम्
उत्तमपुरुष	मन्यै	मन्यावहे	मन्यामहे

लृट् ।

प्रथमपुरुष	अमन्यत	अमन्येताम्	अमन्यन्त
मध्यमपुरुष	अमन्यथा	अमन्येथाम्	अमन्यध्वम्
उत्तमपुरुष	अमन्ये	अमन्यावहि	अमन्यामहि

विधिलिट् ।

प्रथमपुरुष	मन्येत	मन्येयानाम्	मन्येरन्
मध्यमपुरुष	मन्येथा	मन्येयाथाम्	मन्येध्वम्
उत्तमपुरुष	मन्येथ	मन्येवहि	मन्येमहि

लृट् ।

प्रथमपुरुष	मंन्यते	मन्येते	मस्यन्ते
------------	---------	---------	----------

	एङवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	मस्यसे	मस्येधे	मस्यध्वे
उत्तमपुरुष	मस्ये	मस्यावहे	मंस्यामहे

१५० अनु + मन्—अनुन्तौ, आदेशे, न्वीकारे—'ध्वराय प्रदातव्या यदि कन्याऽनुमन्यते" मनु० ९ १७ । अभि + मन्—चिन्तने, विचारने, विवेचने; इच्छायाच्च । भव + मन्—भवज्ञायाम् । सम् + मन्—सम्मानने, पूजायाम् । १५१

जन् (जन्ती) प्रादुर्भावे (उत्पत्तौ)—उत्पन्न होना ;
होना To be born or produced ; to become.

(अकर्मक—घटो जायते , गोमशाङ्गुशिको जायते । "अनिष्टान्ष्टि-
लाभेऽपि न गतिर्जायते शुभा" हितो० १. ६. ।)

लट् ।

	एङवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जायते	जायेते	जायन्ते
मध्यमपुरुष	जायसे	जायेधे	जायध्वे
उत्तमपुरुष	जाये	जायावहे	जायानहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	जायताम्	जायेताम्	जायन्ताम्
मध्यमपुरुष	जायस्व	जायेधाम्	जायध्वम्
उत्तमपुरुष	जायै	जायावहै	जायामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अजायत	अजायेताम्	अजायन्त
------------	-------	-----------	---------

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	अजायेथा	अजायेथाम्	अजायध्वम्
उत्तमपुरुष	इजाये	अजायावहि	अजायामहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	जायेत	जायेयाताम्	जायेरन्
मध्यमपुरुष	जायेथा	जायेयाथाम्	जायेध्वम्
उत्तमपुरुष	जायेथ	जायेथहि	जायेमहि

लृट् ।

प्रथमपुरुष	जनिष्यते	जनिष्येते	जनिष्यन्ते
मध्यमपुरुष	जनिष्यसे	जनिष्येथे	जनिष्यध्वे
उत्तमपुरुष	जनिष्ये	जनिष्यावहे	जनिष्यामहे

❦ उत्पत्ति अर्थमे—अभि, उप, प्र, वि और सम् उपसर्गके साथ 'जन् -भातु प्रयुक्त होता है । किन्तु 'प्र' और 'वि' उपसर्गके साथ सवर्मकभी कहीं होता है—'प्रसव करना' अर्थमे, 'प्रजायन्ते इतान् नार्य्य' । ❦

सृ (षृट्) प्रसवे (जनने, उत्पादने)—पैदा करना, जनना
To bring forth , to produce.

(सवर्मक—स्यते पुत्र नारी , धर्मोऽयं स्यते ।)

लृट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	स्यते	स्येते	स्यन्ते
मध्यमपुरुष	स्यसे	स्येथे	स्यध्वे

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	सूये	सूयावहे	सूयामहे
		लोट् ।	
प्रथमपुरुष	सूयताम्	सूयेताम्	सूयन्ताम्
मध्यमपुरुष	सूयस्व	सूयेथाम्	सूयध्वम्
उत्तमपुरुष	सूयै	सूयावहै	सूयामहै
		लङ् ।	
प्रथमपुरुष	असूयत	असूयेताम्	असूयन्त
मध्यमपुरुष	असूयथाः	असूयेथाम्	असूयध्वम्
उत्तमपुरुष	असूये	असूयावहि	असूयामहि
		विधिलिङ् ।	
प्रथमपुरुष	सूयेत	सूयेयाताम्	सूयेरन्
मध्यमपुरुष	सूयेथा	सूयेयाथाः	सूयेध्वम्
उत्तमपुरुष	सूयेय	सूयेवहि	सूयेमहि
		लृट् ।	
प्रथमपुरुष	{ सविष्यते	सविष्येते	सविष्यन्ते
	{ सोष्यते	सोष्येते	सोष्यन्ते
मध्यमपुरुष	{ सविष्यसे	सविष्येथे	सविष्यध्वे
	{ सोष्यसे	सोष्येथे	सोष्यध्वे
उत्तमपुरुष	{ सविष्ये	सविष्यावहं	सविष्यामहे
	{ सोष्ये	सोष्यावहे	सोष्यामहे

अनुनाद कर्त्तव्यं—उत्तमपुरुषे मेरे उन वस्त्रोंको सीया था क्या ? उन्होंने

यहाँ नृत्य किया था । ज्वरसे उसका शरीर जीर्ण हो गया । ध्रुवने विजय वनमें कृष्णकी (द्वितांश) आराधना की थी, इसलिये उसका मनोरग सिद्ध हुआ । उस इण्डिको बाणसे विद्ध मत करो । कुटिल मनुष्य अपना भाव हृदयमें पोषण करते हैं । प्रदग्ध आतपतास्मे देहका रक्त शुष्क होता है । माता पुत्रको आलिङ्गन करती है ।

* * * *

दिवादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु ।

पद् गतौ (प्राप्तौ च)—(१) जाना , (२) पाना To go , to attain—पद्यते , पन्त्यते । (२) “ज्योतिषामाधिपत्यञ्च प्रभाव आन्पपद्यत” महाभा० ।

अनु, अभि + पद्—प्राप्तौ । आ + पद्—प्राप्तौ विप्रप्राप्तौ च—“अर्थधर्मो पग्मिथ्यय य काममनुवर्त्तते । एवमापद्यते क्षिप्र राजा दत्तारथो यथा ॥” रामा० । वि + आ + पद्—म गे । वि + आ + पद् + णिच्—व्यापारदने, हनन , व्यापादयति । उव् + पद्—उत्पत्तौ । वि + उव् + पद्—श्रुतरत्तौ । उर + पद्—(१) योग्यतायाम् , “मद्भावायोपपद्यते” (उपपुच्छो भवति) गीता १३ १८ , “नैतत् स्वश्रुतपद्यते” (योग्यं न भवति) गीता २ ३ , (२) सम्भावने ; “पुत्रदौहित्रयोर्विशेषो नोपपद्यते” (न सम्भाव्यने) मनुः १ १३९ , (३) प्राप्तौ , “उपपद्यन्व स्वकर्मोचिता गतिम्” दशकुः , (४) सिद्धौ, सम्पन्नतायाम् , “सर्वं मत्वे स्वश्रुतपद्यमेतत्” (सिद्धम्) कुः ३ १२ । अभि + उप + पद्—अनुपदे । निर + पद्—निष्पत्तौ, सिद्धौ । प्र + पद्—गर्तौ , प्राप्तौ च , “पे

यथा ना प्रपद्यन्ते" (सम्प्रपद्यन्ते) गीता ४ ११ । प्रति + पद्—प्राप्ती , ज्ञाने , अङ्गीकारे , उत्तरदाने च—“कथं प्रतिबन्धनमपि च प्रतिपद्यसे ?" सुद्रा० ६ । प्रति + पद् + णिच्—बोधने । वि + प्रति + पद्—विरोधे , विरुद्धज्ञाने सन्तरे । वि + पद्—विरुद्धी , मरणे च । सम् + पद्—सम्पन्नतायाम् (होना) , “मनस्तन्वने च कामोऽयम्" कु० २ ६८ , “सम्पत्स्वप्ने ममसि भवतो रात्रिं हमा सहाया ” (भविष्यन्ति) मेव० ११ , “साधो शिक्षा युगाय सम्पद्यते , नामाधो (युगम् उत्पादयति इत्यर्थ) पञ्च० १—मया चतुर्युगे त्वय । सम् + पद् + णिच्—सम्पादने , सम्पादयति । १* बुध् ज्ञाने , जागरणे च—(१) मनज्ञाना , (२) जागना (अङ्०) To understand , to wake up—बुध्यत ; भोत्स्वने । (१) बुध्यन्ते शान्त्रिं सुधी , (२) “ते च प्रापुरदन्वन्त बुभुवे चादिपूरुष ” २० १० ६ ।

१* अनु + बुर्—स्मरणे , ज्ञाने । अङ् + बुर्—ज्ञाने । उष् + बुर्—विक्रान्ते , जागरणे च । नि + बुर्—ज्ञाने ; श्रवणे च । न्यादि परस्मैसु—विशेषति । प्र + बुर्—जागरणे , विक्रान्ते ; ज्ञाने च । प्रति, वि + बुर्—जागरणे । सम् + बुर्—ज्ञाने । १*

टिवादि अकर्मक आत्मनेपदी घातु ।

मिदृ ईन्वे (दीदमां, उपतप्तीमां, टु लानुभवे)—दुःख पाना, विघ्न होता To suffer pain or misery, to be depressed or exhausted—विषये; ऐस्वने । “स्वएषनिमित्तापः सिचसे लोकेतो ” शकु० ६ ५ ; “म पुरपो य सिचसे नेन्द्रिये ”

दितो० २ १३९ ।

डी उड्यते (नमोगमने)—उडना To fly—डीयते, दविष्यते ।

दीप् (दीपी) दीप्तौ (उड्ज्वलीभावे, प्रकाशे, शोभायाम्, ज्वलने)—
चमकना To shine, to burn or be lighted—दीप्यते,
दीपिष्यते । दीप्यते निशि चन्द्रमा ।

ॐ उव्, प्र, सम् + दीप्—ज्वलने । ॐ

दू (दुः) उरताप (खेद)—दू खिन होना To be afflicted to
be sorry—दूयते, दविष्यते । “दुर्जनोक्तया न दूयते” ।

प्री (प्रीड्) प्रीतौ—प्रीत होना To be satisfied or pleased—
प्रीयते, प्रेष्यते । “प्रकाममप्रीयत यज्वना प्रिय ” माध० १ १७ ।

युद् समाधौ (वित्तवृत्तिनिरोधे), योग्यभारे च—(१) वित्तको
पूजाय करना, (२) योग्य होना To concentrate the
mind, to be fit or right, be proper—युज्यते,
योक्ष्यते । (१) युज्यते योगी, (२) श्रेयोक्त अर्थमे पश्या और
मत्समांके साथ प्रसुक होता है, “या यस्य युज्यते भूमिका, तां
खलु भावेन तथैव सर्वे वर्या पाठिना ” मालती० १, “त्रैलोक्य
स्यापि प्रमुत्त्व त्वयि युज्यते” दितो० १ ।

युर् युद्धे (अभिमानेऽत्रायाम्)—उडाई करना To fight—युष्यते ;
योत्स्यते । “तुण्डजात्मयुष्यत” भ० ५. १०१ ।

ली (लीड्) श्लेषे (लीनभावे)—लीन होना (चिपटना, छिपकर
रहना, गायर होना, गलना) To stick or adhere
firmly to, to lurk ; to disappear, to melt away—

लौयते, लेप्स्यते । लौयते चन्द्र सूर्ये ; “(मृद्गाङ्गना) लौयन्ते
मुकुलान्तरेषु शनकैः सञ्जातलज्जा इव” रत्ना० १. २६ ।

शु० नि + लो—मश्लेपे ; निमृतावस्थाने (डिभना) च । वि +
लो—नाशे ; द्रवीभावे (पिघलना) , अवस्थाने च—“पुरोऽस्य यादन्न
भुवि व्यलीयत” माघः १ १२. । वि + लो + गिच्—द्रवी-
करणे । शु०

विद् मत्तायाम् (विद्यमानतायाम्)—रहना To be, exist—दिष्टे ;
वेत्स्यते । “अशपाता कुं जाते मयि पाप न विद्यते” मृच्छः
० ३७ ।

शु० निर + विद्—आत्मावज्ञायाम् ; अनुज्ञापे , वेगव्ये च । शु०

दिवादि सकर्मक उभयपदी धातु ।

बन्ध् (णह्) बन्धने—बांधना To tie, bind, gird round—बन्ध-
ति, बन्धते ; नत्स्यति, नत्स्यते । “पूगवभासे विपगिष्यपग्या सर्वां
ङ्गनदाभरणेव नारी” २० १६ ४१. “क्षेपेयनक्षेपु शिलातरेषु नि-
पेद्बु” (व्याप्तेषु इत्यर्थे) कु० १. ५५ ।

शु० अपि + बन्ध्—बन्धने, आच्छादने च ; प्रायः अकारका लोभ
होता है ; “मन्दारमाला हरिणा पिनद्धा” शकु० ७. २ ; “क्वच
पिनद्धा” म० ३ ५७ । उत् + बन्ध्—उन्नमय्य बन्धने ; परि-
बन्ध्—बधने । सम् + बन्ध्—आच्छादने ; मिलने , उद्घोषणे (आत्मने-
पदी) च—“छेत्तु वज्रमणोन् शिरोपकुण्डमप्रान्तेन मय्यद्यते” मर्त्त० । शु०

नृप् तितिक्षायाम् (क्षमायाम्)—सहना ; क्षमा करना To put up
with ; to pardon—मृष्यति, मृष्यते ; मर्षिष्यति, मर्षिष्यते ।

“वाचन्ती—तत् किनिदमकार्प्यमनुष्ठित इवेव ? राम—लोको न
सृष्ट्यन्ति” उचरः ३ ; “वृथ्यन्तु लवन्व वाञ्छिताना तातपादा”
उचरः ६. ।

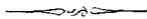
दिवादि अकर्मक उभयपदी धातु ।

ह्रिर्, डनाने (ह्रंमे)—ह्रंम पाना T. to be afflicted—ह्रियति,
ह्रिष्यते ; ह्रंसिष्यति, ह्रंसिष्यते । वोरदेयमने—उभयपदी पाणिनि-
नन्ते—आत्मनेपदा । “अथ पगधे ह्रियन्ति साक्षिण. प्रतिभू
कुडम्” मनुः ८. १६९ ।

रञ् (रञ्) राणे (आसक्तौ ; रञ्जीभावे च)—(१) अनुगन्त होना,
मायल होना ; (२) लाल होना To be attached or
devoted to : to become red—रञ्चति रञ्चते - रञ्चति,
रञ्चते । (१) “देवानिष्टं निपत्तावस्त्वन्त्यन्तो रुद्राश्च ज्ये-
नो न विदुर्मसृञ्” मैः १३. ३८ (२) “नेत्रे स्वयं रञ्चन”
उचरः ६. ३६. ।

रञ् + मिष्—रामादिना रञ्जीकरणे (रञ्जना), प्रसादने च
(सुग्न करना) ; रञ्चति । अनु + रञ्—अनुरागे । अप + रञ्—
विरागे । वन + रञ्—उत्तरागे, राहुप्राप्ते । वि + रञ्—विरागे । रञ्
कतुवाद कर्तो—विनादिनीने दो सन्तानका (द्वितीया) प्रमथ क्रिय
है । लक्ष्मणने इन्द्रचित्के साथ सुद्ध क्रिया या । वे पद-पदमे (प्रति-
पदन्) विपन्न होते हैं । यह काम तीन दिनोंने सम्पन्न हुआ या ; जो
इसे सनकोगा, वह एक पायेगा । उमजे परप भाषमले सर कोई दुःखित
हृद । यदि दन्ने व्याघ्र न रहे, तो जाओ । इन कर्मो उमके वचनसे सिद्ध

नहीं होंगे । सब लोकोने उक्तके शक्यता आशय अन्ते प्रकारसे नहीं समझा ।



स्वादि ।

क्रियाघटन-सूत्र ।

[ह्य प्रकरणमे २५८ । २६० । २६१ सूत्रोक्त कार्य्यं होगा ।]

२५० । अणुंकार परे रहनेसे, कर्तृवाच्यमे स्वादिगोप्य घातुके उत्तर 'नु' आगम होता है, यथा—उ + ति = उ + नु + ति—

२५६ । ङ सणुग (ति, मि, मि, तु, ड्, स्, आनि, आव, आम, अम्, ऐ, आवहै, आनहै) विभक्ति पर रहनेसे, 'नु' और 'ड' इन दोनों आगमोक्ताणुग होता है, यथा—तुनोति । उ—तनु + उ + ति = तनोति ।

२५७ । 'नु' परे रहनेसे, 'धु' के स्थानमे 'श्व', और 'धिष्' के स्थानमे 'धि' होता है, यथा—धु + ति = धु + नु + ति = श्व + णु + ति = श्व + णो + नि = श्वणोति; धिष् + ति = धिष् + नु + ति = धि + नु + ति = धि + नो + ति = धिनोति ॥

२५८ । ङ विभक्तिका ङणुग स्वरवर्ण पर रहनेसे, स्वरवर्णके परस्वित 'नु' और 'ड' आगमोके उकारके स्थानमे 'व्', और व्यञ्जनवर्णके परस्वित 'नु' के उकारके स्थानमे 'डव्' होता है, यथा—(स्वर) धु + अन्ति = धु + नु + अन्ति = श्व + णु + अन्ति = श्व + ण् + व् + अन्ति = श्वण्वन्ति । (व्यञ्जन) शक् + अन्ति = शक् + नु + अन्ति = शक् + न् + ड् + अन्ति = शम्नुवन्ति ।

२५९ । ङ 'व' और 'म' पर रहनेसे, 'नु' और 'ड' आगमोके

कारका विकल्पमे लोप होता है , किन्तु 'सु' व्यञ्जनवर्गमे मिलित होनेमे नहीं होता , यथा—(सु) शृणु + व = शृण्व , शृणुव । (उ) तन् + उ + व = तन्व , तनुव । व्यञ्जन—शकनुव ।

२८० । ङ अकार भिन्न अन्य वर्गके परस्थित 'अन्ते,' 'अन्ताम्' और 'अन्त' विभक्तिके नकारका लोप होता है , यथा—अश्नुत् + अन्ते = अश्नुत् + अने = अश्नुन्ते ।

स्वादि परस्मैपदी धातु ।

श्रु श्रवणे—सुनना To hear

(मन्त्रम्—“मागं तावच्छृणु कथयन्त्व
त्प्रयाणानुरूपम्” मेघ० १३ ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	शृणोति	शृणुत	शृण्वन्ति
मध्यमपुरुष	शृणोसि	शृणुथ	शृणुथ
उत्तमपुरुष	शृणोमि	शृणव , शृणुव	शृणम , शृणुम

लोट् ।

प्रथमपुरुष	शृणोतु	शृणुताम्	शृण्वन्तु
मध्यमपुरुष	शृणु	शृणुतम्	शृणुत
उत्तमपुरुष	शृणुवामि	शृणुवाव	शृणुवाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अशृणोत्	अशृणुताम्	अशृण्वन्
मध्यमपुरुष	अशृणो.	अशृणुतम्	अशृणुत

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	अष्टणवम्	अष्टव, अष्टणुव	अष्टम, अष्टणुम
		चिधिलिङ् ।	
प्रथमपुरुष	शृणुयात्	शृणुयानाम्	शृणुयु
मध्यमपुरुष	शृणुया	शृणुयातम्	शृणुयात
उत्तमपुरुष	शृणुयाम्	शृणुयाव	शृणुयाम
		लृट् ।	
प्रथमपुरुष	श्रोष्यति	श्रोष्यत	श्रोष्यन्ति
मध्यमपुरुष	श्रोष्यसि	श्रोष्यथ	श्रोष्यथ
उत्तमपुरुष	श्रोष्यामि	श्रोष्याव	श्रोष्याम

✱ आ + धु, प्रति + धु—प्रतिज्ञायाम् । सम् + धु—सम्भ्रमण
 आत्मनपदम्, मंशृणुते, "हिताद्य स शृणुते स किंप्रभु" भा० ६ ८ । ✱

शक् (शक्लृ) सामर्थ्ये—सकना To be able
 (अकर्मक, 'तुमुन्' अन्त क्रियापदके साथ प्रायश प्रयुक्त होत

है—भक्त शक्नोति हरिं द्रष्टुम् । सकर्मक धातुके योगसे सकर्मक

होता है, इदं वक्तुं शक्यते, "शक्योऽप्य मनुभवंता

विनेतुम्" २० २ ४०, अन्यत्रापि—"शमया

मयेनापि सुदोऽमराणाम्"—मन्वाद्या

इत्यर्थे—ने० ६ १८ ।)

लृट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	शक्नोति	शक्नुत	शक्नुवन्ति

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	शक्नोषि	शक्नुथ	शक्नुथ
उत्तमपुरुष	शक्नोमि	शक्नुव	शक्नुम

लोट् ।

प्रथमपुरुष	शक्नोतु	शक्नुताम्	शक्नुवन्तु
मध्यमपुरुष	शक्नुहि	शक्नुतम्	शक्नुत
उत्तमपुरुष	शक्नवानि	शक्नवाव	शक्नवाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अशक्नोत्	अशक्नुताम्	अशक्नुवन्
मध्यमपुरुष	अशक्नो.	अशक्नुतम्	अशक्नुत
उत्तमपुरुष	अशक्नवम्	अशक्नुव	अशक्नुम

विधिलिङ्—शक्नुयात् । लृट्—शक्यति ।

अनुवाद करो—सबसमय गुरुजनोका वाक्य सुनना । कर्मों अश्लील वाक्य सुनना नहीं चाहिये । मैंने प्रातःकालमें मेघका गर्जन सुना था । तु कोकिलकी मधुर ध्वनि नहीं सुनता है क्या ? राम क्याम दोनो भाई गान सुन रहे हैं ।

* * * *

स्वादि सकर्मक परस्मैपदी धातु ।

आप् (आप्लृ) प्राप्ति—पाना To obtain—आप्नोति ; आप्स्वति ।
ज्ञानाव कैवल्यमाप्नोति ।

१. अव + आप्—प्राप्तौ, लाभे । अ + आप्—प्राप्ति, उपगमने
च—“जज्ञायु प्राप रावणम्” म० ७ ९६, “प्रापद्वाधमम्” २०

१ ८९ । सम् + प्र + आप्—सम्प्राप्तौ । वि + आप्—व्याप्तौ ।
सम् + आप्—प्राप्तौ । म् + आप् + गिच्—मनापने, समाप्ति
करणे, सनापयति । *१*

क्षि हिंसायाम् (नाशे)—नष्ट करना To destroy—क्षिगोति, क्षेप्य
ति । “न तद्दयस शस्त्रवृत्ता क्षिगोति” १० २ २० ।

१ कर्मकर्त्तरि—क्षीयते (क्षीण होना), “प्रतिज्ञमप काय क्षीय-
नागो न दृश्यते” हितो० ८ ६९, “प्रत्यासन्नविरत्तिभूदमनस
प्रायो मति क्षीयते” पञ्च० २. ४ । *१*

दु (डुडु) उपतापने (पीडने)—दुखाना, सनाना To torment,
afflict—दुनोति, दोष्यति । “वर्गप्ररूपे सति कर्गिश्चरं दुनोति
निर्गन्धतया स्म चेत” कु० ३ २८ । “नन्नयेन दुनोमि” गौतमोः
३ ९—इत्यत्र अकर्मक ।

धिन् (धिदि) प्रीणने—मन्तुष्ट करना To please, satisfy—
धिनोति ; धिन्धिष्यति । “धिनोति इव्येन हिरण्येतसम्” ना०
१ २२ ।

पृ प्रीणने—पृणोति, परिष्यति । अतिथीन् पृणोति ।

हि प्रेरणे—प्रेरण करना, निक्षेप करना To send forth, impel,
to throw or discharge—हिनोति, हेप्सति । “गदा शक्र
जिता जिष्ये” अ० १४. ३६ ।

१ प्र + हि—प्रेरणे (भेजना) ; निक्षेपे च । *१*

स्वादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु ।

अग् (अश्) व्याप्तौ (पूरणे, आच्छादने, प्राप्ता)—(१) व्याप्त

करना , (२) प्राप्त होना To pervade, fill completely ,
to get, obtain

((१) “क्षमातल बलजलराशिरानने” माघ० १७ ४६ , (२) “अत्यु-
त्कटं पुण्यपापैरिहैव फलमश्नुने” हितो० १ ८४ ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अश्नुते	अश्नुवाते	अश्नुवते
मध्यमपुरुष	अश्नुषे	अश्नुवाथे	अश्नुध्वे
उत्तमपुरुष	अश्नुवे	अश्नुवहे	अश्नुमहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	अश्नुताम्	अश्नुवाताम्	अश्नुवताम्
मध्यमपुरुष	अश्नुध्व	अश्नुवाथाम्	अश्नुध्वम्
उत्तमपुरुष	अश्नुवै	अश्नुवावहै	अश्नुवामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	आश्नुत	आश्नुवाताम्	आश्नुवत
मध्यमपुरुष	आश्नुथा	आश्नुवाथाम्	आश्नुध्वम्
उत्तमपुरुष	आश्नुधि	आश्नुवहि	आश्नुमहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	अश्नुवीत	अश्नुवीयाताम्	अश्नुवीरन्
मध्यमपुरुष	अश्नुवीथा	अश्नुवीयाथाम्	अश्नुवीध्वम्
उत्तमपुरुष	अश्नुवीथ	अश्नुवीवहि	अश्नुवीमहि

लृट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	{ अशिष्यते	अशिष्येत	अशिष्यन्ते
	{ अदयते	अदयेते	अदयन्ते
मध्यमपुरुष	{ अशिष्यसे	अशिष्येथे	अशिष्यध्वे
	{ अदयसे	अदयेथे	अदयध्वे
उत्तमपुरुष	{ अशिष्ये	अशिष्याधहे	अशिष्यामहे
	{ अदये	अदयावहे	अदयामहे

स्वादि सकर्मक उभयपदी धातु ।

वृ (वृञ्) वरणे (प्रार्थनायाम्)—मनोनीत करना, पसन्द करना, चाहना To choose, select (as a boon).

(“ ववार रामस्य वनप्रयाणम् ” भ० ३. ६ ,

“ यदेव ववे तदपश्यद्राहतम् ” २० ३. ६ ।)

(परस्मैपद्)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	वृणोति	वृणुत	वृण्वन्ति
मध्यमपुरुष	वृणोषि	वृणुथ	वृणुथ
उत्तमपुरुष	वृणोमि	वृणव , वृणुवः	वृणम', वृणुम-
		लीट् ।	
प्रथमपुरुष	वृणोतु	वृणुताम्	वृणवन्तु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	वृणु	वृणुनम्	वृणुत
उत्तमपुरुष	वृणुथानि	वृणुथाव	वृणुथाम
		लङ् ।	
प्रथमपुरुष	अवृणोन्	अवृणुताम्	अवृणवन्
मध्यमपुरुष	अवृणोः	अवृणुतम्	अवृणुत
उत्तमपुरुष	अवृणथम्	अवृणथ, अवृणुव	अवृणथ, अवृणुम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	वृणुयात्	वृणुयाताम्	वृणुयु
मध्यमपुरुष	वृणुयाः	वृणुयातम्	वृणुयात
उत्तमपुरुष	वृणुयाम्	वृणुयाथ	वृणुयाम

लृट्—वरिष्यति, वरीष्यति ।

(आत्मनेपद्)

लट् ।

प्रथमपुरुष	वृणुते	वृणुवाते	वृणुवते
मध्यमपुरुष	वृणुथे	वृणुवाथे	वृणुध्वे
उत्तमपुरुष	वृणुथे	वृणुमहे	वृणुमहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	वृणुताम्	वृणुताताम्	वृणुताताम्
मध्यमपुरुष	वृणुथ्व	वृणुथाथाम्	वृणुध्वम्
उत्तमपुरुष	वृणुथै	वृणुतामहे	वृणुथामहे

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अवृणुत	अवृणुताताम्	अवृणुवत
मध्यमपुरुष	अवृणुथा.	अवृणुथाथाम्	अवृणुध्वम्
उत्तमपुरुष	अवृणुथि	अवृणुथहि	अवृणुमहि

विधिलिट् ।

प्रथमपुरुष	वृण्वीत	वृण्वीयाताम्	वृण्वीरन्
मध्यमपुरुष	वृण्वीथा	वृण्वीथाथाम्	वृण्वीध्वम्
उत्तमपुरुष	वृण्वीथि	वृण्वीथहि	वृण्वीमहि

लृट्—घरिष्यते, घरीष्यते ।

१. अप + वृ, अप + आ + वृ—उन्मोचने, प्रकाशने । आ + वृ—
गोपने, आच्छादने, रोधे च । प्र + आ + वृ—परिधाने । नि + वृ + गिच्—
निवारणे, निवारयति । निच् + वृ—निवृत्तौ, समे, स्वस्थतायाम् ।
वि + वृ—व्याख्याने, प्रकाशने च । परि + वृ—वेष्टे । सम् + वृ—
गोपने ; निरोधे च । १.

* * * *

स्वादि सकर्मक उभयपदी धातु ।

चि (चिञ्) चक्रे (राशीकरणे, सङ्ग्रहणे)—बुनना, बडोरना, इकट्ठा
करना To collect, gather, accumulate—चिनोति,
चिनुते, चेष्यति, चेष्यते । द्विकर्मक—वृक्षं पुष्पं चिनोति ।

१. कर्मकर्त्तरि—वृद्धौ (वृद्ध्या) ; चीयते ; “राजहम् ! तव मीव
शुभ्रता चीयते न च न चापचीयते” काव्यप्रकाश ; “चीयते बालिश-

स्यापि सत्प्रेत्रपतिता वृषि " मुद्रा० १ ३ । अप + वि—कर्मकृत्ति
—हानी, क्षये, अपर्चायते । अव + वि—चयने । आ + वि—सञ्चये,
सद्भेदे, व्यासौ, आच्छादने च । उव् + वि—सद्भेदे । उप + वि—
वर्द्धने (वृद्धाना) ; "यज्ञस्तोमानुर्द्ध्वविनु" अनर्गः १. ३५,—
कर्मकृत्ति—वृद्धौ, उपवीयते, "बनेनैव सहोपवीयते मद्" काद० ।
नि + वि—व्यासौ, प्रधानतः 'क्त'-प्रत्ययान्तर्हो व्यवहृत होता है,
"शकुन्तनीडनिचितं विभ्रज्जटामण्डलम्" शकु० ७ ११ । निर् + वि
—निश्चये । परि + वि—ज्ञाने, अभ्यासे च । प्र + वि—कर्मकृत्ति
—वृद्धौ ; प्रवीयते । वि + वि—सञ्चये, अन्वेषणे च—"विष्णु
विविन्वन्ति योगिनो विमुक्तये" (ध्यायन्तीत्यर्थ) २० १० २३ ।
सम् + वि—सञ्चये । १५

धु (धुञ्), धू (धूञ्) कम्पने—हिलाना To shake—धुनोति,
धुनुते, धूनोति, धूनुते, धु—भनिट्, धू—वेट्, धोप्यति धोप्यते,
धविष्यति धविष्यते । "धूनोति चम्पकवनानि धुनोत्यशोक (वायु)" ।
(२) अपनोदने, "स्रजमपि शिरस्यन्ध क्षिप्ता धुनोत्यहिराङ्गुया"
शकु० ७ २४ ।

१५ अव + धू—निरासे । आ + धू—इपत्कम्पे । उव् + धू—उत्क्षेपे ।
निर् + धू, वि + धू—निरासे, नासे । १५

धु (धुञ्) हरासन्धाने, सोमादे पादने, मन्थने ; स्नाने च—(१)
मद्य जुमाना ; (२) सोमहताप्रभृतिको निषोदना ; (३) मथना,
(४) नहाना (ङक=) To distil, to press out or
extract juice ; to churn, to bathe—धुनोति, धुनुते,

सोप्यति, सोप्यते ।

१० अभि + सु—स्नाने; अभियुगोति; “वारांक्षीतभियुग्वते” अ-
न्धः २ २९ । ११०

सृ (सृञ्) आच्छादने—टांपना, बिजाना To spread, strew,
cover—सृगोति, सृणुते, स्तरिप्यति, स्तरिप्यते । “शितोभि
मर्हो तस्तार” २० ४ ६२ ।

१२ आ + सृ—विस्तारे (बिजाना) । परि + सृ—विस्तारे, आव
रणे च । वि + सृ—विस्तारे । १११

अनुवाद करो—जो सर्वांन्त ऋणसे प्रयत्न करता है, वह उपयुक्त फल
पाता है । इस वर्ष धणिक् लोगोने वाणिज्यते लक्ष रुपये प्राप्त किये हैं ।
परिधमका फल तुमने पाया, परन्तु उमने क्यों नहीं पाया ? मनुष्य पूर्ण
अध्यवसायसे क्या नहीं पा सकता ? मेघ चारों दिशाये व्याप्त करता है ।
प्रबल क्षुब्धावातसे वृक्षसमूह कम्यित होते हैं । मच्छगग प्रातःकालमे
उठकर (उत्थाय) पुष्प चयन करते हैं । परिमित और नियमित भोजन-
से शरीरका स्वास्थ्य और बल बढ़ते हैं । बाल्यकालसेही प्रतिदिन
थोड़ी थोड़ी बिया सञ्चय करना और उसके लिये (तर्पणम्) सद्गुरुका
(द्वितीया) वरण काना चाहिये । शूलू नत करो । मेरे माय रामचन्द्र-
को प्रेरण करो । राक्षस हमे अत्यन्त सताते हैं । रामचन्द्र अवश्य
राक्षसीका (द्वितीया) महार करनेने (संदर्भम्) समर्थ होगा ।



तनादि ।

क्रियाघटन-सूत्र ।

[इस प्रकरणमें २७८ । २६० । २६१ । २७६ । २७८ । २७९ । २८० सूत्रोंका कार्य्य होगा ।]

२८१ । चतुर्थकार परे रहनेसे, कर्तृवाच्यमें तनादिगणाय धातुके उत्तर 'उ' आगम होता है, यथा—तन् + ति = तन् + उ + ति = तनोति ।

२८२ । सगुण विभक्ति परे रहनेसे, कृ—कर्, अन्यत्र 'कुर' होता है ।

२८३ । इ, म और य परे रहनेसे, 'कृ' धातुक उत्तर विहित 'उ' आगमका लोप होता है ।

तनादि सकर्मक उभयपदी धातु ।

कृ (कृञ्) करणे—करना To do

("तात । किं न करवाण्यहम् ?", "सत्सङ्गति
कथय किं न करोति पुमान्" मर्त्तु० ।)

(परस्मैपद)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	करोति	कुरुत	कुर्वन्ति
मध्यमपुरुष	करोषि	कुरुथ	कुरुथ
उत्तमपुरुष	करोमि	कुर्वं.	कुर्म

लोट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	करोतु	कुरुताम्	कुर्वन्तु
मध्यमपुरुष	कुरु	कुरुतम्	कुरुत
उत्तमपुरुष	करवाणि	करवाव	करवाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अकरोन्	अकुरुताम्	अकुर्वन्
मध्यमपुरुष	अकरो	अकुरुतम्	अकुरुत
उत्तमपुरुष	अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	कुट्यात्	कुट्याताम्	कुट्युः
मध्यमपुरुष	कुट्या	कुट्यातम्	कुट्यात
उत्तमपुरुष	कुट्याम्	कुट्याव	कुट्याम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	करिष्यति	करिष्यत	करिष्यन्ति
मध्यमपुरुष	करिष्यसि	करिष्यथ	करिष्यथ
उत्तमपुरुष	करिष्यामि	करिष्याथः	करिष्याम

(आत्मनेपद)

लृट् ।

प्रथमपुरुष	कुरुते	कुर्वानि	कुर्वन्ते
मध्यमपुरुष	कुरुथे	कुर्वथि	कुरुथे
उत्तमपुरुष	कुर्वे	कुर्वहे	कुर्वहे

लोट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्
मध्यमपुरुष	कुरुष्व	कुर्वाथाम्	कुरुध्वम्
उत्तमपुरुष	करवै	करवावहै	करवामहै

लड ।

प्रथमपुरुष	अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वत
मध्यमपुरुष	अकुर्यात्	अकुर्वाथाम्	अकुरुध्वम्
उत्तमपुरुष	अकुर्वि	अकुर्वहि	अकुर्महि

विधिलिट् ।

प्रथमपुरुष	कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीरन्
मध्यमपुरुष	कुर्वीथाः	कुर्वीयाथाम्	कुर्वीध्वम्
उत्तमपुरुष	कुर्वाय	कुर्वीवहि	कुर्वीमहि

लृट् ।

प्रथमपुरुष	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते
मध्यमपुरुष	करिष्यसे	करिष्येथे	करिष्यध्वे
उत्तमपुरुष	करिष्ये	करिष्यावहे	करिष्यामहे

• अलम् + कृ—भूपणे (सजाना) ; अलङ्करोति । उरी, उररी + कृ—स्वीकारे । पुत्रम् + कृ—पुत्रायाम्, अग्रत करणे च । तिरस् + कृ—नन्दने, आच्छादने च । बहिस् + कृ—दूरीकरणे ; बहिष्करोति । सव् + कृ—आदेरे । नमस् + कृ—नमस्कारे । सजू + कृ—सहायीकरणे । अधि + कृ—स्वामिन्वे, निगोत्रे, विषयोकरणे च । अनु + कृ—अनुकरणे । अप +

हृ—उपकारे; जिमसा उपकार किया जाय, उमसे प्रायश पछी होती है :
 “किं तस्या मयाऽपकृतम् ?” पञ्च० ४. कहीं द्वितीया और सप्तमीनी
 होती है : “अथवा संनिष्ठा. केविदपकुञ्चुंविष्टिस्म” महाना० : “न
 परेषु महौवमदग्नादपकुर्वन्ति मलिन्तुवा इव” भाष० १६. ५२. । आ
 + हृ + गिच्—आह्वाने, आकारयति । अप + आ + हृ—अपसारणे ।
 उप + आ + हृ—सम्कारपूर्वकवेदग्रहणे, सम्कारपूर्वकपशुहने च । “सौ-
 नित्रे ! गोमहस्रमुगकुर” रामा० । निर + आ + हृ—निराकरणे, नितते ।
 वि + आ + हृ—व्याख्यायाम् । उप + हृ—उपकारे; प्रायश पछीके
 माय, “न हि दीपौ परस्परस्योपकुल्ल” शार्दूलकमाप्यम्; (२) कर्त्ते च ।
 “किं ते भूय प्रियसुरकरोमि ?” । परा + हृ—परिहरणे । परि + हृ—
 भूषणे; शोधने, निर्मल्यकरणे च; परिष्करोति, पश्यंस्करोत् । वि + प्र +
 हृ—रीडने; “किं मत्त्वानि विप्रकरोपि ?” शकु० ७; (२) विकारप्रारणे
 च; “कमपरमवशं न विप्रकुञ्चुंविभुमपि त यदनी सृष्टान्ति भावा ?”
 कु० ६. ९६. । प्रति + हृ—प्रतिकारे । वि + हृ—विकारे; “उपरव्रणन्
 धर्मो विकरोति हि धर्मिणम्”; “वित्तं विकरोति कान” ; सवर्त्मक
 होनेसे आत्मनेपदी होता है; “हीनान्यनुपकुर्वन्ति प्रबुद्धानि विकुर्वन्ति
 (मित्रामि)” २० १७. ५८. (विल्ल वेष्टने अपकुर्वन्ते इत्यर्थः) ।
 सम् + हृ—अलङ्करणे; शोधने च; सम्करोति । ✽

* * * *

तनु (तनु) चिन्तारे (प्रसारणे)—तानना, पसारना, फैलाना To spread,
 stretch, extend—तनोति, तनुते; तनिष्यति, तनिष्यते ।
 “तनोति रविरातनम्” कु० २. ३३ ।—(२) कर्त्ते, उत्सादने:

“त्वयि विमुञ्चे मयि स्यदि सुधानिधिरपि तनुने तनुदाहम्” मोतगो०
४ ७, “पितुर्मुद तेन ततान सोऽर्भक ” १० ३ २९, (३) अनु-
ष्टाने, निष्पादने; “नवर्ति नवाधिका महाञ्जुना तनान” १० ३.
६९ (४) रचने च, “तनुने षीकाम्” ।

१. अव + तन्—व्याप्तौ । आ + तन्—व्याप्तौ, “आतेने वनगह-
नानि वाहिनां सा” भा० ७. २९, (२) उत्पादने, “जडतामात-
नोति” उत्तर० ३ १२, (३) करणे, “सपथ्यामाततान” काद० ।
प्र + तन्—विस्तारे । वि + तन्—विस्तारे, व्याप्तौ, करणे, उत्सा-
दने, रचने च । वि + तन् + णिच्—द्रीर्घाकरणे, विस्तारे, वितान-
यति । सम् + तन्—विस्तारे । १.

तनादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु ।

मन् (मनु) बोधे—जानना, भ्रमज्ञाना To consider, regard,
deem—मनुते, मस्यते । “मनुते मनुतुल्योऽस्तौ प्रजामात्मजवत्
प्रभु” , “समीभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्म मनुते” भर्तृ० ।

अनुवाद करो—समी अपना अपना काम करो । उन्होंने इस कामको
उत्तमरूपसे किया । भोजनके पश्चात् और रात्रिमें स्नान नहीं करना ।
जो लोग मसख कार्यों करते हैं, वे अवश्य दू ख पाते हैं । तू कर, मैं भी
करूँ । वह करे तो करे, मैं नहीं करूँगा । रामकी माताने मनोयोगसे
गृहसंस्कार किया है । शिष्यगण गुरुका (द्वितीया) अनुकरण करते हैं । मैं
वस्त्रका प्रतिकार करूँगा । प्राणपणसे दूमरेका उपकार करना ।



क्रधादि ।

क्रियावटन-सूत्र ।

[इन प्रकारमें २६० । २६१ । २६३ । २८० सूत्रोंका कार्य होगा ।]

२८४ । वृत्तकार परे रहनेसे, कर्तृवाच्यमें क्रयादिगणेष धातुके उक्त 'ना' आगम होता है, यथा—अश् + ति = अभ्राति ।

२८५ । 'अम्'-भिन्न विभक्तिका स्वरवर्ग परे, 'ना'—'नू' होता है : यथा—अश् + भन्ति = अश् + ना + भन्ति = अश् + नू + भन्ति = अभन्ति ।

२८६ । 'ना' परे रहनेसे, धातुके उरधा नकारका लोप होता है : यथा—मग् + ति = मग् + ना + ति = मघ्नाति ।

२८७ । सगुण वृत्तजनवर्ग परे रहनेसे, 'ना'—'नो' होता है, यथा—अश् + ना + त = अभ्रोत ।

२८८ । 'ना' परे रहनेसे, पू, लू, धू, गृ, दू, वृ और शू धातुका वन्त्य स्वर ह्रस्व होता है, यथा—पू + ना + ति = पुनाति ।

२८९ । वृत्तजनवर्गके परस्थित 'ना'—'हि' के साथ मिलकर 'आन' होता है, यथा—अश् + हि = अश् + ना + हि = अश् + आन = अज्जान ।

२९० । 'ना' परे रहनेसे, ग्रह—गृह, और ज्ञा—जा होता है : यथा—ग्रह + ति = गृह्णाति ; ज्ञा + ति = जानानि ।



क्रयादि ।

सकर्मक उभयपदी धातु ।

क्री (क्रीड्) कये (मूल्यदानेन द्रव्यग्रहणे)—

मोल लेना To buy

(क्रीणाति क्रीणीने धान्य धनेन लोक ।)

(परस्मैपद)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	वहुवचन
प्रथमपुरुष	क्रीणानि	क्रीणीत	क्रीणन्ति
मध्यमपुरुष	क्रीणसि	क्रीणीथ	क्रीणीथ
उत्तमपुरुष	क्रीणामि	क्रीणीव.	क्रीणीम.

लोट् ।

प्रथमपुरुष	क्रीणानु	क्रीणीताम्	क्रीणन्तु
मध्यमपुरुष	क्रीणीहि	क्रीणीतम्	क्रीणीत
उत्तमपुरुष	क्रीणानि	क्रीणाव	क्रीणाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अक्रीणात्	अक्रीणीताम्	अक्रीणन्
मध्यमपुरुष	अक्रीणा	अक्रीणीतम्	अक्रीणीत
उत्तमपुरुष	अक्रीणाम्	अक्रीणाव	अक्रीणीम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	क्रीणीयात्	क्रीणीयाताम्	क्रीणीयु
------------	------------	--------------	----------

	एङ्यचन	द्विचन	बहुचन
मध्यमपुरुष	क्रीणीया	क्रीणीयात्तम्	क्रीणीयात्
उत्तमपुरुष	क्रीणीयाम्	क्रीणीयाव	क्रीणीयाम्

लृट्—क्रेष्यति ।

(आत्मनेपद्)

लृट् ।

प्रथमपुरुष	क्रीणीते	क्रीणाते	क्रीणते
मध्यमपुरुष	क्रीणीषे	क्रीणाधे	क्रीणीध्वे
उत्तमपुरुष	क्रीणे	क्रीणीवहे	क्रीणीमहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	क्रीणीताम्	क्रीणाताम्	क्रीणताम्
मध्यमपुरुष	क्रीणीष्व	क्रीणाथाम्	क्रीणीध्वम्
उत्तमपुरुष	क्रीणै	क्रीणावहे	क्रीणामहे

लृट् ।

प्रथमपुरुष	अक्रीणीत	अक्रीणाताम्	अक्रीणत
मध्यमपुरुष	अक्रीणीथा	अक्रीणाथाम्	अक्रीणीध्वम्
उत्तमपुरुष	अक्रीणि	अक्रीणीवहि	अक्रीणीमहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	क्रीणीत	क्रीणीयाताम्	क्रीणीरन्
मध्यमपुरुष	क्रीणीथा.	क्रीणीयाथाम्	क्रीणीध्वम्
उत्तमपुरुष	क्रीणीय	क्रीणीवहि	क्रीणीमहि

लृट् ।

प्रथमपुरुष	क्रेष्यते	क्रेष्येने	क्रेष्यन्ते
मध्यमपुरुष	क्रेष्यसे	क्रेष्यथे	क्रेष्यध्वे
उत्तमपुरुष	क्रेष्ये	क्रेष्यावहे	क्रेष्यामहे

• परि + क्री—क्रयविशेषे (किराया लेना To hire, purchase for a time) । वि + क्री—विक्रये, विक्रीणीते, 'विनिमय' (अदला बदला करना To barter, exchange) अयमे परस्मैपदी होता है, "विक्रीणाति तिलैस्तिन्नान्" पञ्च० २ ७२ । •

ज्ञा बोधे (ज्ञाने)—जानना To know

• ("आपन्थ मित्रं जानीयात्" हितो० १ ७४ । उपसर्गविहीन उभयपदी, "जाने तसो वीर्यम्" शकु० ३. २, "न त्वं हृष्टा न पुनरल्का शाम्यसे कामचारिन् !" मेघ० ६३ ; "सन्दर्भ-शुद्धिं गिरां जानीते जयदेव एव" गीतगो० १. ४. १)

(परस्मैपद्)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जानाति	जानीत	जानन्ति
मध्यमपुरुष	जानासि	जानीथ	जानीथ
उत्तमपुरुष	जानामि	जानीव	जानीम.

लोट् ।

प्रथमपुरुष	जानातु	जानीताम्	जानन्तु
मध्यमपुरुष	जानीहि	जानीतम्	जानीतु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	जानानि	जानाव	जानाम

लट् ।

प्रथमपुरुष	अजानात्	अजानाताम्	अजानन्
मध्यमपुरुष	अजाना	अजानीतम्	अजानीत
उत्तमपुरुष	अजानाम्	अजानीव	अजानीम

विधिलिट् ।

प्रथमपुरुष	जानीयात्	जानीयाताम्	जानीयु
मध्यमपुरुष	जानीयाः	जानीयातम्	जानीयात्
उत्तमपुरुष	जानीयाम्	जानीयाव	जानीयाम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	ज्ञास्यति	ज्ञास्यत	ज्ञास्यन्ति
मध्यमपुरुष	ज्ञास्यसि	ज्ञास्यथ.	ज्ञास्यथ
उत्तमपुरुष	ज्ञास्यामि	ज्ञास्याव	ज्ञास्याम

(आत्मनेपद्)

लट् ।

प्रथमपुरुष	जानीते	जानाते	जानते
मध्यमपुरुष	जानीथे	जानाथे	जानीध्वे
उत्तमपुरुष	जाने	जानीवहे	जानीमहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	जानीताम्	जानाताम्	जानताम्
मध्यमपुरुष	जानीध्व	जानाथाम्	जानीध्वम्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	जानै	जानावहै	जानामहै
प्रथमपुरुष	अजानीत	अजानाताम्	अजानत
मध्यमपुरुष	अजानीथा.	अजानाथाम्	अजानीध्वम्
उत्तमपुरुष	अजानि	अजानीवहि	अजानीमहि

लट् ।

विधिलिट् ।

प्रथमपुरुष	जानीत	जानीथाताम्	जानीरन्
मध्यमपुरुष	जानीथा	जानीथाथाम्	जानीध्वम्
उत्तमपुरुष	जानीथ	जानीवहि	जानीमहि

लृट् ।

प्रथमपुरुष	ज्ञास्यते	ज्ञास्येते	ज्ञास्यन्ते
मध्यमपुरुष	ज्ञास्यसे	ज्ञास्येथे	ज्ञास्यध्वे
उत्तमपुरुष	ज्ञास्ये	ज्ञास्यावहे	ज्ञास्यामहे

अनु + ज्ञा—अनुमती, “तदनुजानां हि मा गमनाय” उत्तर २. । अनु + ज्ञा + णिच्—गमनाय आदेशग्रहणे, कामन्त्रणे, आपच्छने ; अनुज्ञापयति ; “स मातरमनुज्ञाप्य तपस्येव मनो दधे” महामा० । अभि + ज्ञा—अनुमृती, ज्ञाने च । प्रति + अभि + ज्ञा—अनुस्मरणे । अव + ज्ञा—अनादरे, अवमाननायाम् । आ + ज्ञा—ज्ञाने । आ + ज्ञा + णिच्—आदेशे, शासने, विज्ञापने च । उप + ज्ञा—आद्यज्ञाने, “पाणिनिनः उपज्ञातं व्याकरणम्” (विनोपदेशेन ज्ञातम्) । परि + ज्ञा—परिज्ञाने, निश्चये । प्र + ज्ञा—सम्यग्बोधे, परिज्ञाने । प्रति + ज्ञा—प्रतिज्ञायाम्,

कात्मनेपदी : "हरदाशरोरणेन कन्यादानं प्रतिजानीते" प्रमदरावदन् १. ।
 वि + ज्ञा—विशिष्टज्ञाने । वि + ज्ञा + जिच्—विज्ञाने ; विज्ञायते । ५

ग्रह उपादाने (ग्रहणे, स्वीकारे)—लेना

To take, accept

("प्रज्ञानानेव नृशयं स ताम्यो बलिमप्रहीत्" २० १ १८. ।—(२)

धारणे ; "तं कण्ठे जग्राह" वा० (३) वशीकरणे ; "ग्रही-

तुनाम्नांन् परिचर्यया सुहृन्शत्रुभावा हि नितान्तन-

यित्" भाष० १. १७ ; (४) ज्ञाने ; "नयाऽपि

सृतिःशुद्धिना तथैव गृहीतम्" शकु० ६ ;

"नेत्रवक्त्रदिकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं

नन" मनु० ८. २६, (८)

आश्रये ; "शस्त्रैर्द्र न

गृहीयात्" ।)

(परस्मैपद्)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	गृह्णाति	गृह्णातः	गृह्णन्ति
मध्यमपुरुष	गृह्णासि	गृह्णोथ	गृह्णोथ
उत्तमपुरुष	गृह्णामि	गृह्णीवः	गृह्णीम.

लोट् ।

प्रथमपुरुष	गृह्णातु	गृह्णीताम्	गृह्णन्तु
मध्यमपुरुष	गृह्णाण	गृह्णीतम्	गृह्णीत

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	गृह्णानि	गृह्णाव लट् ।	गृह्णाम
प्रथमपुरुष	अगृह्णात्	अगृह्णीताम्	अगृह्णन्
मध्यमपुरुष	अगृह्णाः	अगृह्णीतम्	अगृह्णीत
उत्तमपुरुष	अगृह्णाम्	अगृह्णीव	अगृह्णीम
		विधिलिट् ।	
प्रथमपुरुष	गृह्णीयात्	गृह्णीयाताम्	गृह्णीयु
मध्यमपुरुष	गृह्णीया.	गृह्णीयातम्	गृह्णीयात
उत्तमपुरुष	गृह्णीयाम्	गृह्णीयाव	गृह्णीयाम
		लृट्—ग्रहीष्यति ।	
		(आत्मनेपद्)	
		लट् ।	
प्रथमपुरुष	गृह्णीते	गृह्णाते	गृह्णते
मध्यमपुरुष	गृह्णीषे	गृह्णाथे	गृह्णीष्वे
उत्तमपुरुष	गृह्णे	गृह्णीवहे	गृह्णोमहे
		लोट् ।	
प्रथमपुरुष	गृह्णीताम्	गृह्णाताम्	गृह्णताम्
मध्यमपुरुष	गृह्णीष्व	गृह्णायाम्	गृह्णीष्वम्
उत्तमपुरुष	गृह्णै	गृह्णावहै	गृह्णामहै
		लृट् ।	
प्रथमपुरुष	अगृह्णीत	अगृह्णाताम्	अगृह्णत

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	अगृहीथा	अगृहाथाम्	अगृहीध्वम्
उत्तमपुरुष	अगृह्णि	अगृहीवहि	अगृहीमहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	गृहीत	गृहीयाताम्	गृहीरन्
मध्यमपुरुष	गृहीथा	गृहीयाथाम्	गृहीध्वम्
उत्तमपुरुष	गृहीय	गृहीवहि	गृहीमहि

लृट् ।

प्रथमपुरुष	ग्रहीष्यते	ग्रहीष्येते	ग्रहीष्यन्ते
मध्यमपुरुष	ग्रहीष्यसे	ग्रहीष्येथे	ग्रहीष्यध्वे
उत्तमपुरुष	ग्रहीष्ये	ग्रहीष्यावहे	ग्रहीष्यामहे

ग्रृ + णिच्—तिक्ष्णं, पाहयति । अद् + ग्रह्—अनुषेदे ; “महात्मानोऽनुगृह्णन्ति भजमानानरीनपि” भाष्य० २ १० । अव + ग्रह्—निषेधे । उद् + ग्र + णिच्—उपन्यासे ; उद्ग्राहयति । उप + ग्रह्—परिषेधे ; “अव्यवसायिन प्रमदव वृद्धपतिं नेच्छत्सुरग्रहांतु लक्ष्मी” हितो० । नि + ग्रह्—पीडने । परि + ग्रह्—आदाने, स्वीकारे । प्र + ग्रह्—प्रकपेण ग्रहणे । प्रति + ग्रह्—स्वीकारे ; आक्रमणे च । त्रि + ग्रह्—दुर्दे, कलदे, सनस्तस्य दृयर्काणे च । सम् + ग्रह्—सङ्ग्रे । ११

* * * *

क्रथादि सकर्मक परस्मैपदी धातु ।

अन् भोजने—खाना To eat—कभाति, अतिष्यति । अभात्यन्न

बुमुञ्चिषित ।

१५ उप + अश्—उपभोगे, प्राप्ते च । प्र,सम् + अश्—मोजने । १५
कुप् निष्करो (नि सारणे, बहिष्करणे)—काडन निशालना To tear,
extract, pull or draw out—कुष्णाति, कोपिष्यति ।
“शिवो कुष्णन्ति मांसानि” म० १८ १२ ।

१५ निर् + कुप्—बहिर्नि सारणे, विदारणे, निःकुष्णाति, निष्को
क्षयति, निष्कोपिष्यति । १५

क्रिश् (छिश्) बाधने (पीटने)—दुख दना To torment,
afflict, molest, distress—छिद्यति, छेदियति,
क्षेद्यति । “स छिद्यति भुवनत्रयम्” तु० २ ८० ।

गृ शब्दे (उक्ती, उच्चारणे, स्तुती)—(१) कहना, (२) स्तव
करना To speak, utter, relate, to praise, extol—
गृणाति, गरीष्यति, गरीष्यति । (१) गृणाति वाक्य लोके,
(२) “केचिद्गोता प्राञ्जलयो गृणन्ति” गीता ११. २१. ।

ग्रन्ध् सन्ध् (ग्रन्थने, रचनायाम्)—(१) गृथना, (२) बनाना
To tie or string together, to write, compose—
ग्रथ्नाति, ग्रन्थियति । (१) ग्रथ्नाति मालां मालिङ्क, “काच
मणि काञ्चनमैकसूत्रे ग्रथन्ति मूढा”, (२) “ग्रथ्नामि काव्यस-
शिनं विततार्थरदिमम्” काव्यप्रकाश १० ।

१५ उद् + ग्रन्ध्—बन्धने । सम् + ग्रन्ध्—रचनायाम् । १५

दृ विदारणे—काडना To tear, rend, sunder—दृणाति, दृरि-
ष्यति, दरीष्यति । “दृणाति च रिपून् रणे” ।

१५५ वि + दृ—विदारणे, “स्वन विदार काठ ” अनर्घे० । १५५
 पुष् पोषणे (भरणे, बढ़ाने)—(१) पालना, (२) बधना To
 nourish, maintain, support, to increase,
 augment—पुष्णाति; पोषियति । (१), “तेनाद्य स्तममिव
 लारुममु पुषाण” भर्तृ०, (२) “पुषोष लाज्ज्यमवान् बिनेवान्”
 कु० १ २० ।—(३) प्रकाशने, बोधने, “न हीश्वरव्याहृतय
 कदाचित् पुष्णन्ति लोके विपरीतमयम्” कु० ३ ६३ ।

१५६ बन्ध् बन्धने—बाँधना To bind, tie, fasten—बध्नाति; बन्धस्य-
 ति । “प्रस्थानभिन्ना न बन्ध नोदीम्” र० ७. ९ ।—(२) परि-
 धाने, “न हि चूडामणि पादे प्रमदान्तीति बन्धने” पञ्च० १ ७८ ;
 (३) रचने, “श्लोक एष त्वया बद्ध ” रामा० ।

१५७ अनु + बन्ध्—सम्बन्धे, अपरित्यागे, अनुकरणे; “सत्वोऽथ
 जनप्रवादो यद्विपद्विपद सम्भन् सम्भदमनुबन्धाति” काद० । आ +
 बन्ध्—बन्धने, करणे च—‘आवद्वाञ्छलि’ । उक्त् + बन्ध्—गलरञ्ज्वा-
 दिना ऊर्द्ध्वबन्धने । नि + बन्ध्—बन्धने, स्थिरीकरणे, रचनायाञ्च ।
 निर् + बन्ध्—भाषणे । प्र + बन्ध्—रचनायाम् । प्रति + बन्ध्—व्या-
 घाते, निरोधे, ‘प्रतिबध्नाति हि धेव पूज्यपूजाव्यतिक्रम’ र० १.
 ८० । सम् + बन्ध्—सम्बन्धे, सयोगे । १५७

मन्ध् विलोडने* (मन्थने, मक्षोभे, पीडने, विनाशे)—(१) मथना,
 (२) हिलाना, विचलित कृता, सत्ताता (३) विलष्ट कराना

* ‘मन्ध्’ (मथि) धातु न्वादि परस्मैपदीभी होता है, मन्थति ।
 ‘मथ’ (मथे) धातुभी होता है न्वादि परस्मैपदी, मथति ।

To churn , to agitate , to oppress, afflict , to destroy—मघ्नाति , मन्घियति । (१) मघ्नाति दधि बलवी ; द्विकर्मक—सुधा सागर मन्घ्यु , (२) “मा मघ्नार्ताव मन्मथ ” महाभा० , “मन्मथो मा मघ्नन् भिजनाम सान्धयं करोति” दशकु० , (३) “मघ्नामि कौरवशत समरे न कोपात् १” वेगी० १ १५ ।

मुप (मुपु) स्तेपे (चौर्ये, लुण्ठने , अपाकरणे)—(१) चोरि करना ; (२) दूर करना To steal, rob, plunder , to dispel—मुष्णाति , मोषियति । (१) “मुष्पाण स्तनानि” माघ० १. ५१ , द्विकर्मक—देवदत्त शत मुष्णाति , (२) “दैवं प्रजा मुष्णाति” महाभा० , “विषयश्चाहुल्य कालनिप्रकर्षश्च न स्मृतिं मुष्णाति” महावीर० ।

मृद् क्षोदे (मर्दने , चूर्णीकरणे , विनाशने)—(१) मीडना, मलना , चूर्णा , (२) त्रिष्टकना To rub, press, squeeze , to pound, pulverize , to destroy—मृद्नाति , मर्दिष्यति । (१) “मम च मृदित क्षौम बाल्ये त्वद्गुणविवर्त्तने ” वेगी० ५ ४० , “मृद्नाति द्विषता दर्ष यो भुजाभ्या भुव पति ” , (२) “बलाभ्यमृद्नात्रलिनाभयच् ” २० १८ ५ ।

१. अभि, सव + मृद्—निपेपणे, पीडने, दग्ने, उच्छेद । उर + मृद्—हनने, विनाशने । वि + मृद्—घर्षणे । सम् + मृद्—पीडने, सम्चूर्णने । १.

श हिंसने (हनने , छेदने)—हिंसा करना, मारना , टुकटा करना To kill, destroy , to tear to pieces—श्रणाति , शरि

प्यति, शीत्यति । “वनाधना कन्द्य दृगा परिग्रहा ऽ मृगानि
यस्यान् प्रथमेन तस्य ते” भा० १४ १३ ; “पशुनिव परसु पर्व
शस्या मृगानु” महावीर० ३. ३२. ।

स्तम् (स्तम्भ) रोधने : जडोक्तेषु च—(१) रोधना ; (२) निवृत्त
करणा, चे-शेष काना To stop, hinder suppress; to
stupefy, paralyze, benumb—स्तन्नानि, स्तन्नीति
(स्त्वादि) स्वन्मिन्नति । (१) “कण्ट स्तन्मिन्नवाप्यवृत्तिरुत्प
शकु० ८ ०, (२) “प्राणा वध्मिन्, गात्रं तन्मन्मे च द्विधे हृदे”
भा० १४ ५६. ।

✽ अव + स्तम्—अवलम्बने . त्तिरोधे च । उव् + स्तम्—धार-
णे, आधारे । उर + स्तम्—आधारे । वि + स्तम्—विन्दत्ये,
निवारणे ; म्यापने, धारणे च । वन् + स्तम्—निरोधे ; स्थितो-
करणे च । ✽

द्राव्यादि सकर्मक उभयपदी धातु ।

५ (धृन्) कम्पने—हिलाना To shake—धुनाति, धुनीते ; धोष्य-
ति धोष्यते, धविष्यति धविष्यते ; चूर्णं धुनानि वायु ।

६ (धृन्) रोधने (रविद्वीकरणे)—शुद्ध करणा, पवित्र करणा To
purify, cleanse—धुनानि, धुनीते ; पविष्यति, पविष्यते ।
“जहरी न धुनानु” ; “भागोरोधि ! धुनीहि मान्” ; “पुण्याधनद-
र्शनं तावदात्मनं धुनीमेह” शकु० १. ।

७ (ध्रीन्) प्रीयते—प्रीत करणा, खुश करणा To satisfy—
ध्रीनाति, ध्रीनीते ; प्रीष्यति, प्रीष्यते । “प्रीणानि च सुखरिदं चित्तं

स पुत्र" भर्तृ० । "प्रभु प्रीणानु विश्वभुक्", "कविन्मनस्ते प्रीणाति वनवासे १" महाभा०—इत्यत्र अकर्मकोऽपि ।

व (वृञ्) वरणे—प्रार्थना कर्ता To choose, ask for—वृणाति, वृणीते, वरिष्यति वरिष्यते, वरीयति वरीष्यते । "वुत्र । वरं वृणीव" १० २ ६३ ।

लू (लृञ्) उद्घने—काटना, लावनी करना To cut, sever, reap—लुनाति, लुनीते, लविष्यति, लविष्यते । "शरासनज्यामलुनाद्वि-
डौत्रम" १० ३ ८९, "लुनीहि नन्दनम्" भाष० १ ११ ।

स्तृ (स्तृञ्) आच्छादने—ढाँकना, विडाना To cover, stre v—
स्तृणाति, स्तृणीते, स्तरिष्यति स्तरिष्यते, स्तरीष्यति स्तरीष्यते ।

अनुवाद करो—ग्रालेलोग सांझके समय दूध मयने है । दूसरेका द्रव्य नहीं छुताना । लडके पूरते माला भूयते हैं । रावगने त्रिभुवनको मनाया था । माता दुग्धसे बालकका (द्वितीया) पोषण करती है । चाबाड़े इस मैदानमे गायोंको दांधते हैं । बाजारमे (विरगि, आपग) सब लोग द्रव्यादि ऋय करते हैं । यहाँ दूकानदारलोग (आपणिक, त्रिरगिन्) सब द्रव्य बेचते हैं । धर्मशील पुत्र रिताको पवित्र काता है । मै कर्म भी सन्धमार्ग नहीं छोडूगा,—उमने यह प्रतिज्ञा की थी । हमशेर्गोंको भोजनके लिये अनुज्ञा कीजिये । क्रिमानलोग दाघ्न द्वारा धान्य उद्घन करते हैं । मन्थयजन वृक्षको हिजाता है । अनन् उपायसे उर्गाजित वस्तु ग्रहण नहीं काना । धर्मके लिये सद्गइ करो ।



चुरादि ।

क्रियाघटन-सूत्र ।

२९१ । चुरादिगणोय धातुके उत्तर स्वार्थमे 'णिच्' होता है ; 'णिव्'-
का 'इ' रहता है ।

२९२ । * 'णिच्' परे रहनेमें, धातुके उपधा अकार तथा अन्त्य-
स्वरकी वृद्धि, और उपधा लघुस्वरका गुण होता है, यथा—(वृद्धि)
वृ + इ = वारि, (गुण) चुर + इ = चोरि ।

२९३ । * 'णिच्' परे रहनेमें, पूर्ववर्ती अकारका लोप होता है ;
यथा—कथ + इ = कथि ।

२९४ । 'णिच्' परे रहनेमें, कृत्-कोत्, और कृप्—कल्प् होता है ।

२९५ । * णिजन्त, सनन्त, यङन्त और काम्यादि* प्रत्ययान्त-
की फिर 'धातु' मजा होती है, और चतुर्लकारमें भ्वादिगणोय धातुके
दुल्य कार्य्य होता है ; यथा—कथि + ति = कथि + अ + ति = कथे +
अ + ति = कथयति ।

चुरादि सकर्मक परस्मैपदी धातु ।

भक्ष् अदने (भक्षणे)—खाना To eat.

(भक्षयति तण्डुलान् मूषिक ।)

लट् ।

एकवचन

द्विवचन

बहुवचन

प्रथमपुरुष

भक्षयति

भक्षयत

भक्षयन्ति

* काम्य, कथ, कथद्, क्विप् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	भक्षयसि	भक्षयथ	भक्षयथ
उत्तमपुरुष	भक्षयामि	भक्षयाव.	भक्षयाम्

लोट् ।

प्रथमपुरुष	भक्षयतु	भक्षयताम्	भक्षयन्तु
मध्यमपुरुष	भक्षय	भक्षयतम्	भक्षयत
उत्तमपुरुष	भक्षयाणि	भक्षयाव	भक्षयाम

लट् ।

प्रथमपुरुष	अभक्षयत्	अभक्षयताम्	अभक्षयन्
मध्यमपुरुष	अभक्षयः	अभक्षयतम्	अभक्षयत
उत्तमपुरुष	अभक्षयम्	अभक्षयाव	अभक्षयाम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	भक्षयेत्	भक्षयेताम्	भक्षयेयु
मध्यमपुरुष	भक्षयेः	भक्षयेतम्	भक्षयेत
उत्तमपुरुष	भक्षयेदम्	भक्षयेव	भक्षयेम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	भक्षयिष्यति	भक्षयिष्यत	भक्षयिष्यन्ति
मध्यमपुरुष	भक्षयिष्यसि	भक्षयिष्यटः	भक्षयिष्यथ
उत्तमपुरुष	भक्षयिष्यामि	भक्षयिष्याव	भक्षयिष्याम-

* * * *

चुरादि सकर्मक परस्मैपदो धातु ।

कञ् (कञ्ज्) विभेपणे (प्रकाशने, जनने, वर्द्धने)—प्रकाश करना, बढ़ाना

To manifest, produce, increase—अज्जयति, अज्जयिष्यति । “सुदन्ञ्जय” गीतगो० १८. ११ ।

अञ् पूजायाम्—पूजा करना, सम्मान करना To adore, worship, honour—अञ्जयति । “दूरन्थो नाञ्जयद्गुम्” मनु० २. २०२. ।

ञ् अग्नि और सम् उपसर्गके साथभाई इषी अर्थमे प्रयुक्त होता है । ञ्

अञ् अर्जने—कमाना To earn—अर्जयति ।

ञ् उप + अञ्—उपार्जने, “चिरकालोर्गर्जित छद्म” द्वितो० । ञ्

अर्ह पूजायाम्—अर्हयति ।

ईर् प्रेरणे, छेपणे, चालने, कथने च—(१) फेंकना ; (२) हिडाना ;

(३) कटना To throw, cast, to move, shake, to utter, say—ईरयति । (१) ऐरिष्य महाद्गुम्” म० १६. ५२ ;

(२) “वातेरितपल्लवाङ्गुलिभि” शकु० १, (३) “न च सरसजनेष्वपि तेन वागपरस्या परपादारमोरिता” २० ९. ८ ।

ञ् उल् + ईर्—उच्चारणे, उक्ती, उन्नेपणे, प्रकाशने, उत्पादने च ।

अभि + उल् + ईर्—उक्ती । प्र + ईर्—प्रेरणे । सम् + ईर्—वित्प्रेरणे ; कथने च । ञ्

वृ मगदने (कात्तने)—कथन करना mention, repeat, utter, declare—कीर्त्तयति । “कीर्त्तयन्ति च गोशेषु यद्गुणान्पठेगणा”, “विप्रसेवेव शूद्रस्य प्रगल्भं कर्म कीर्त्तयेत्” मनु० १० १२३. ।

चलृप् (छृप्) कल्पने (विन्यासे, रचनायाम्, निर्माणे ; निरूपणे)—

(१) सोचना ; (२) तैयार करना, (३) निर्देश करना To consider, imagine ; to prepare, to compose, to

settle—कल्पयति । (१) “मत्सगन्तु मे विररीत कल्पयति”
सुदा० ७ , (२) “शयननभ्याकल्पयन्” काद० , “इदं शास्त्रमकल्प
यन्” मनु० १. १०२ , (३) “अमन कल्पयामास” महाभा० ।
१. अत्र + कल्प्—सन्मात्रनायाम् । उप + कल्प्—विन्यासे, आयो-
जने । परि + कल्प्—करणे, निश्चये च । प्र + कल्प्—उद्गावने ;
निरूपणे च । वि + कल्प्—मशये । मन् + कल्प्—सङ्कल्पे, मानस
क्रियायाम् , इच्छायाम् । १.

शन् शोधने (क्षालने)—घोना To wash, purify—क्षालयति ।
“क्षालयामि तत्र पादपङ्कजे” महाना० ३ ४६ ।

१. प्र + क्षल्, वि + क्षल्—प्रक्षालने । १.

खग् (खडि) भेदने (मञ्जने, खण्डने, छेदने, विनाशे)—(१) टुकड़ा
करना, काटना , (२) नष्ट करना To break to pieces,
cut ; to destroy—खण्डयति । (१) “खण्डं खण्डनखण्डयद्-
बाहुसङ्घनम्” महाना० २. ४ , (२) “रजनीचरनाथेन खण्डिते ति-
मिरे निशि” द्वितो० ।

गह् कुम्पायाम्—निन्दा करना To blame—गर्हयति । “विषमां
हि दत्त प्राप्य देव गर्हयते नर ” द्वितो० ४ ३ —इत्यत्र आत्मने-
पदनवि । “त विगर्हन्ति गाधव ” मनु० १. ६८ (म्वादि० उभय-
पदी) ।

गुर् गोचने—उपाना To conceal—गोचयति । “वित्त न गोचयति
यन्तु वनीयकेभ्य ” ।

घद् सजाते (योचनायाम्)—जोडना To join, unite—घाद्यति ।

घाटयति कशट द्वारि जन (सयोजयतीत्यर्थ) ।

१११ उत् + घट्—उद्घाटने (मोलना), “मञ्जूषा चन्द्रैस्त्वाटग-
मास”, “कपाटमुद्घाटयामि” मृच्छ० ३ । १११

घट् चालने—हिलाना To shake—घट्टयति ।

१११ आ + घट्—आघाते । वि + घट्—अभिघाते । सम् + घट्—
सङ्घट्टे । १११

घुप् (घुषिर्) विशङ्खने (कथने, भाविष्करणे, घोषणायाम्) टण्डोरा
करना, शुद्धत देना, मनादी करना To cry or proclaim
aloud, announce or declare publicly—घोषयति ।
“इति घोषयताव द्विण्डिम” हितो० २ ८४, “चमूत्स्य जयमनो-
पयत्” २० ९ १० ।

१११ आ, वि + घुप्—घोषणायाम् । प्र + उत् + घुप्—निनादने । १११
चद् भेदने—चाटयति ।

१११ उत् + चद्—उच्चाटने, अपसारणे ; “उच्चाट गिष कर्तालिङ्गाना
दानादिदानो भवतीभिरेष १” नै० ३ ७ । १११

चर्च् अध्ययने (अनुशीलने)—चर्चा करना To peruse, study
repeatedly—चर्चयति । चर्चयति वेदे विप्र ।—अनुत्पन्ने,
“चन्द्रनर्चाचतनीलकण्ठेवर०” गीतगो० १ ४० ।

चर्च् भदने (चर्चणे)—चशना To chew, eat, browse—चर्चयति,
चर्चति । चर्चयति चर्चति तण्डुल बालक, “रथ वक्त्रे निक्षिप्य दशनै-
श्चर्चयति” सप्तशती ।

चिन्त् (चित्ति) स्मृत्याम् (चिन्तायाम्)—चिन्ता करना, गौर करना To

think, reflect—चिन्तयति । “चिन्तय तावत् केनापदेनेन पुनराश्रमवर्द्धं गच्छाम ” शकुः २ ।—उद्गावने To devise, “सोऽप्युगापध्विन्त्वताम्” हितो १ ।

चु परि, वि, सम् + चिन्—अत्यन्तचिन्तयान्, ध्याने, स्मरणे ।
 चु प्रेते (क्षरणे, चालने; नियोगे, प्रदने च)—(१) फेंकना, (२) चालना, (३) निरुक्त करना; (४) पूरना, शङ्का करना To throw, to drive on, to prompt, impel, to ask, to adduce as an argument or objection—चोदयति ।
 (१) “शरीरं नमयवोदितै ” महामा०, (२) “चोदयाच्चान्” शकुः १; (३) “तान् वये मातुरवोदयत्” महामा०; “चोदयामास त, समा वै क्रियतामिति” महामा०, (४) “शिन्यान् समानीयाचा च्योऽर्थमवोदयत्” महामा० ।

चु प्र + चुद्, सद् + चुद्—प्रेरणे,—कथने च; परिवेषिते प्रयत्नो गुणान् स्वान् प्रवोदयन्” मनु० ३ २७८; “सप्तोदयामास शीघ्रं याहोति मारयिन्” ताना० ।

चु स्तेरे (चौध्वं)—चोरी करना To steal—चोरयति । चोरयति इति चोर; “अचूचुरक्षत्रमनोऽभिरामताम्” माघ० १० १६० ।

चुर् दधने (चूर्णाकरणे)—चूरना To pulverize, pound—चूर्णयति । “चूर्णयत्यस्मिन्गड्डं ८” ।

चु अन्वारणे (आच्छादने, गोपने)—ढकना, छिपाना To cover hide, conceal, veil—उद्वययती; छादयति, आदधने; उद्वि, उद्वने । उद्वयति छादयति दिस मेव ।

११ अव, आ, प्र + उच्—आच्छादने, मवरणे, गोपने । सम् +
उच्—आच्छादने, व्यापने । ११

छन्द—११ उप + छन्द—प्रलोभने, प्रायनायाञ्च—उपच्छन्दयति । ११
जम् हिंसायाम्, ताडने च—जासयति ।

११ उत् + जस्—उन्मूलने To kill, destroy, extirpate—
उजासयति । पृष्ठाके साथ, निजौजसोजासयितुं जगद्ब्रह्मम्”
माव० १ ३७ । ११

टट (टकि) बन्धने—शंकना To tie, fasten, to stitch—
टटयति ।

११ उन् + टट्—उल्लेगे, सर्वेऽपि घातवोऽत्र सार्था उट्टङ्किता । ११
तट् आघाते (ताडने)—मारना, पीडना To beat, strike—
ताडयति । “लालयेत् पञ्चवर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत्” चाणक्य ।—
वादने, “अताडयन् मृदङ्गांश्च” म० १७ ७ ।

तप् दाहे (उष्णीकरणे, व्यथने च)—(१) गर्म करना ; (२) पीडा देना
To heat, to torment—तापयति । (१) “न हि ताप-
यितुं शक्य सागराम्भन्तृणोलक्या” हितो० १ ८७ ; (२) भृशं तापित-
कन्दर्पेण” गीतगो० २१ २२ ।

तर्क् वितर्के (विचारे, उद्दे, सदाये)—गुमान करना, विचार करना,
अनुमान करना To conjecture, infer, suspect—तर्क-
यति । “स्व तावन् कतमां तर्कयसि ?” शकु० ६ , “वृक्षमेचनाद-
ग्रमवर्ती परिश्रान्तां तर्कयामि” शकु० १ , “(पातु) त्व चेदृष्ट-
स्फटिकविशदं तर्कयंस्तिर्य्यंगम्भ ” मेघ० ६१ ।

शु० प्र. वि + तर्क्—वितर्के । शु०

तिञ् निशाने (तीक्ष्णीकरणे)—तेज कर्ता, दैनाना To sharpen, whet—तेजयति । “कुसुमघापमतेजयद्गुभिर्हिमरू २० ० ३९ ।

शु० उक् + तिञ्—उद्दीपने, प्रोत्साहने, व्यग्रकरणे , तीक्ष्णीरु णे च । शु०

तुल् उन्माने (परिमाणे)—तोलना To weigh measure—
तोलयति । तोलयति काञ्चन वणिक् ।—उत्प्रापने , “कैलासे
तुलिते” महावीर० ८ ३७ ।

शु० उक् + तुल्—उत्तोलने, उर्द्धनयने । शु०

दुल् उल्लेपे—दुलाना, झुलाना To swing, shake to and fro—
दोलयति । “त दोलयति मुदा छद्ददाली” ।

ध धारणे , गृहीतापरिशोधने च—(१) धारण करना , (२) धारना To
hold, sustain , to assume , to put on (clothes,
ornaments &c), to owe anything to a person—
धारयति । (१) “धारयन् मस्करिषितम्” भ० ८ ६३ , (२)
“तस्मै तस्य वा धन धारयसि” ।

पद् विदारणे (छेदने)—धीरना, फाटना , तोटना To split, tear
up , to break—पाटयति । “कञ्चिन्मध्यात् पाटयामास दन्ती”
माघ० १८. ५१ । “अन्याह भित्तिषु मया निशि पाटितास्तु”
मृच्छ० ३. १४. ।

शु० उक् + पद्—उत्पाटने, उन्मूलने (उखाटना) । शु०

पाल् रक्षणे (पालने)—पालना To protect, nourish—पाल
यति । अदत्यद्वत् पालयति प्रजा नृप ।

पीड् वाधने (पीडने, क्लेशदाने)—दुखाना To pain, torment—
पीडयति । पीडयति शत्रु लोक ।—मर्दने च (दावना), “लभेन
सिकताह तैलमपि पत्नत पीडयन्” भरतृ० ।

प्री० डव् + पीड्—सङ्घप, उत्सारणे, नोदने, पीडने च । डर +
पीड्—संदलेपे, पीडने च । नि + पीड्—पीडने, धारणे, आलि
ङ्गने च । निष् + पीड्—निष्पीडने, आर्द्रवस्त्रादेर्निर्जलाङ्गणे
(निचोटना) । प्री०

पुष् धारणे (पोषणे)—पोषण करना To nourish, bring up,
maintain—पोषयति । “परदिण्डेनारमान पोषयामि” हितो० ।

पूज् पूजयान् (सम्माने, प्रदासायान्)—पूजा करना To worship,
revere—पूजयति । “राजान पूजयति” रत्ना० १. ।

पूर् आप्यायने (पूणे)—पूर्ण करना To fill, to fulfil, satisfy—
पूरयति । “पूरय मधुरिषुकामम्” गीतगो० ६ १४ ।

न् विन्नायाम्; शोधने; मिश्रणे, उत्पादने; वर्द्धने च—(१) विन्ता
करना (२) शुद्ध करना, (३) मिलाना, (४) पैदा करना;
(५) ब्रह्मना To think or reflect, consider, to
purify, to mingle or mix, to produce, to
foster, cherish—भावयति । (१) “अर्थमर्थे भावय
नित्यम्” मोहमुद्गर, (२) ‘वपसा भावितारमानो ज्ञान विन्दन्ति
निश्चितम्’, (३) “भूतानि भावयति जनपति वर्द्धयतीति वा
भूतभावन” विष्णुसहस्रनाममाप्यम्, (४) “देवान् भावयतानेन,
ते देवा भावयन्तु व । परम्पर भावयन्त श्रेय परमवाप्यय ॥”

गीता ३ ११ ।

भूष् अलङ्करणे (भूषणे)—मिह्वारना To adorn—भूषयति । “शुवि
भूषयति शून वपु, प्रशमस्तस्य नदत्वलङ्घिया” भा० २ ३२ ।
मण्ड् (मडि) भूषायाम्—भूषित कराना To adorn, decorate—
मण्डयति । मण्डयति हारो जन्म् ।

मान् पूनायाम् (सम्मानने)—सम्मान कराना To honour,
respect—मानयति । “मान्यान् मानय” भर्तृ० ।

मार्गं अन्वेषणे (प्रतिपन्धाने)—हूँटना To seek for—मार्गयति,
मार्गति । मार्गयति मार्गति गुण गुणी ।

मार्त्, मृत् (मृद्) शोधने (मार्जने, दूरीकरणे)—मलना, हटाना
To purify, cleanse, to wipe—मार्त्यति । “यो मार्ज
यति सात्राङ्गद्विषयापलववाच्यताम्” ।

मृत् तितिशायाम् (क्षमायाम्)—क्षमा कराना To endure, to
pardon, excuse—मृषयति, मृषयते । “आप्यं !
मृषय मृषय” वेनी० १ ।

मोक्ष् मोक्षणे—मुक्त कराना, ओढना, फेंकना To release, to
cast—मोक्षयति । “त्वा क्षारान्मोक्षयिष्यति” मद्राभा०, “सङ्घरेषु
मोक्षयति यश्च नरं मनुष्ये” ।

यन् परिमरे (ताडने), अङ्गुष्णे च—यातयति ।

❖ निर् + यद्—प्रत्यर्पणे (पेर र्ना To return), प्रतिदाने,
वैरुद्घोषे च (उद्वान् लेना To requite, repay, retaliate)—
“रामाङ्गनयोर्वैर स्वयं निर्यातयामि वै” रामा० । १५

यन्त्र् (यत्रि) बन्धने (नियमने)—रोम्ना, अटम्ना, दवाना To restrain, curb, check—यन्त्रयति । “स्नेहकारण्ययन्त्रित ” महाभा० ।

❦ नि + यन्त्र्—‘यन्त्र्’ वत् । ❦

लक्ष् दर्शने (ज्ञाने) , अङ्कने (चिह्निकरणे) च—(१) देखना , (२) चिह्नित करना To perceive , to apprehend , to mark—उभयपदी , लक्षयति, लक्षयते । लक्षयति लक्षयते घट लोच (पश्यति, चिह्नयति करोति वा इत्यर्थ) , “वरितान्यस्य लक्षय” महाना० ।

❦ आ + लक्ष्—आलोचने , ज्ञाने च । उप + लक्ष्—ज्ञाने, अनुभवे , विभेषणे—“केशोरपञ्चिन ” , लक्षगया बोधो च—“कावेभ्यो दधि रक्षयतामित्यादौ दध्युपधात्कर्तृत्वेन आदिरपलक्षयने” । सम् + लक्ष्—सम्यग्दृष्टौ, परीक्षायाम् । ❦

लङ् (लधि) लङ्घने (अतिक्रमणे)—लांघना, पार होना To leap or pass over—लङ्घयति । “गिरिमलङ्घयत्” २० ४ ०२ ; “यज्ञो भवद्गुरुर्लङ्घयितु नमोद्यत ” २० ३ ४८ । भ्यादिगणीय उभयपदीभौ होता है , लङ्घति, लङ्घते, “लङ्घते स्म मुनिषे विमानान्” नै० ६ ४ ।

❦ उव्, वि + लङ्घ्—उलङ्घने । ❦

लड् उपसेवायाम् (अत्यन्तपालने, लालने)—लाड वाना To caress, fondle—लाडयति । लालयति । “लालने बहवो दोषास्तादने बहवो गुणा । तस्मान् पुनश्च सिन्दूर ताडनेत्र तु लालयेत् ॥” चाणक्य ।

१५० उष + लृच्—“बालकमुपलालयन्” शकुः ७ । १५०

लृच् (लोक्) दर्शने—देखना To behold—लोक्यति ।

१५१ अत्र, आ, वि + लृच्—दर्शने । १५१

लृच् (लोच्)—१५१ आ + लृच्, परि + आ + लृच्—विन्तने, विचारणे, निरूपणे । १५१

वच् परिभाषणे (वाचने, पाठे)—वाचना To read, peruse—वाचयति । “नानादेशममुद्गता वाचयत्यखिला लिपिम्” ।

वण्ट् (वटि) विभाजने (वण्टने)—बाँटना To divide—वण्टयति ।
पठ्—म्वादि परस्मैपदी—वण्टति । “वण्टयन्ति गुण रत्नं, विप्रा वण्टन्ति द्वादशम्” ।

वृ वारणे—रोकना fo prevent—वारयति । यरेभ्यो गा वारयति,
“प्रविशन्त न कश्चिद्वारयन्” ।

१५२ अप + वृ—आच्छादने, गोपने । १५२

वृञ् (वृञी) वर्जने (त्यागे)—ग्रेडना To shun, give up, abandon—वर्जयति । “वर्जयेद्दस्ता रुद्रम्” ।

१५३ अप + वृञ्—त्यागे, दाणे, छेदने च । आ + वृञ्—आनमने, दाणे, प्रसादने च । वि + वृञ्—परित्यागे । १५३

शिप् अस्तव्ययोगे (पारशेषीकरणे)—बचाना, ओह इना, बार्गी रखना To leave as a remainder, spare—शेषयति, शेषति ।
शेषयति शेषति यशोवर्ति लोक् (अवशिष्ट करोतीत्यर्थ) ।

१५४ अत्र + शिप्, परि + शिप्—गवनेषु । वि + शिप्—अतिशयने, अतिश्रमे, परामदे, तिष्ठकारे । निर + शिप्—शून्यीकरणे,

उन्मुत्ने, उत्पादने, विलोसने । १५

धृच् दाने To give away, bestow—आपेगायं 'वि' पूर्व—
विभ्राणयति । "विभ्राणयति य धीमान् विप्रेभ्यो विबुल वस" ।

सृच्—१५ आ + सृच्—प्राप्ती, गमने (सन्निरुपे) च—पाना, जाना
To obtain, to go to, approach—आसादयति ।
"सासादयति विद्यानां पारम्", "एष स्वस्थानमासाद्य गजेन्द्र-
मणि कर्षयि" । १५

सान्च् नमाघासने (सान्त्वनायाम्)—रमणी देना To soothe,
comfort—सान्दयति । सान्त्वयति शोकान्त दयालु ।

सृच्—१५ नि + सृच्—हिलने To kill—निसृदयति, निपृदयति । १५

स्फुच् भेदने—फोडना To burst or rend asunder, split—
स्फोटयति ।

१५ आ + स्फुच्—नाडुवाडो, "याहृ चात्पोडयच्छनै" महाभा० । १५
रवृच् भास्वादने (रसोपादाने)—चपना To taste—स्वादयति ।
स्वादयति शोर लोके ।

१५ आ + स्वृच्—आस्वादने, अनुसने । १५

चुरादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु ।

कुन्च् न्यसने (निन्दायाम्)—निन्दा करना To abuse—कुत्सयने ।
"पूज्येदशन नित्यमघाघनदृक्कुत्सयन्" मनु० २ ७४—इत्यत्र परस्मै-
पदी, आर्षप्रत्यये पदनिघमाभावात् ।

चिच् ज्ञाने—जानाना To know—चेत्तये* । "कादम्बतराममेण

* ज्ञानार्थमे 'चित्' (चिती) धातु ३-शदिगर्तर परस्मैपदीमी होता

समन्त एव मत्तो न जिद्धिदनि चेतस्ते जनोऽयम्" कादम्बरी ।

तन्त् कुटुम्बधारणे (धारणे, पोषणे)—To support, maintain (as a family)—तन्त्यते ।—आत्मने, निरत्मने, "प्रजाः प्रजा स्या इव तन्त्रमिया" शकुः ७ ७ ।

तर्त् मर्त्यने—डॉटन, सिद्धकला To scold to threaten—
तर्त्तयते । बहुधा परस्मैरदानेर्भा महाकविप्रयोग दीक्षता है, "सखी-
नहुल्या तर्त्तयति" शकुः १, 'अदिताननिशोद्धृतस्तर्त्तयन्निव
केतुमि" २० ४. २८ ।

मर्त् मर्त्यने (घनदाना)—मर्त्ययते । परस्मैरदो—वोपदेश ।

मर्त्—मृ० लि + मर्त्—दर्शने—निभालयते । परस्मैरदो अपि । मृ०

मन्त् (मन्त्रि) युक्तन्यापो (मन्त्रतायाम्)—सहाय करना To con-
sult—मन्त्रयते । "हृत् तन्त्र या मन्त्रयते" मै० ३. १०७ ।
कदिव् परस्मैपदीर्भा होता है "किमेकादिर्भा मन्त्रयन्ति?" शकुः ३,
"हृत् । सङ्गीतशालारसिद्धेऽप्युक्तिद्विर्ताया त्वं कि मन्त्रयन्त्या-
मी १" भावार्थः २ ।

मृ० क्तु, अभि + मन्त्—अभिमन्तो, मन्त्रतायाम्भङ्गणे ।

आ + मन्त्—कथने प्रत्यानानुनिप्रार्थने रम्येष्टने, निमन्त्रणे
५ । वि + मन्त्—विमन्त्रणे । मृ०

दन्त् (दन्तु) निप्रलम्भे (प्रत्ययणे, वदनायाम्)—घोला देना,

है; यथा—वेदति; वेनिष्ठाति । अविद्यमिदयाऽऽकान्ते जगयेत् —
वेति" (जागृत्, प्रकृतयते दानय), "अथमस्थित रेतथेनति" (वे
तन्मदुक्त मवनेत्यर्थः) परमर्षी. ६ १०७; "दिवेन रामस्तन् कृत्यम् ।

उगना To chest, deceive—बद्धने । “कथनय बद्धते
जन्मनुगतममनसरत्नरत्नम्” गीतगो० ८ ७ । परमैर्दानी
होता है ; “ (बन्धन) बद्धयन् प्रगथिनोद्धार स ” २ १९ १७ ।

सकर्मक अदन्त चुरादि घातु ।

अङ्ग लक्षणे (चिह्निकरणे)—चिह्नित करना, निशान काना To mark—
जडूपति । अङ्गापति । “अङ्गयानाम वस्तान्” महाभा० ।

अर्थ पाचने—माङ्गना To beg, ask, solicit—कार्तननेचदी ; अर्थ-
पत्ने । द्विकर्मक—“रक्षामिनमर्थमर्थपते” दशकु० ; “द्वैष्यं मत्वाऽर्धपन्व
घनम्” महाभा० ।

••• अग्नि + अर्थ, प्र + अर्थ—प्रार्थनायाम् । सन् + अर्थ—दिन्नने ;
दृढीकरणे, प्रमाणीकरणे च । •••

अवधीर अवज्ञायाम्—अनादर करना To disregard—अवधीरयति ।
“अवधीरयति नाधुनमायु ” ।

••• इडा—अवधीर्ये . “हितइदन्मवधीर्ये” हितो० ; “इतीव
धारामवधीर्ये” नै० १. ७२. । •••

आन्दोल दोलने—झुलाना, हिलाना To swing, to shake—
आन्दोलयति । “नन्दमारवान्दोलिता एवेव” दशकु० ।

उप वाक्यप्रबन्धे (कथने, वर्णने)—बहना To tell, relate—कथ-
यति । प्रायस चतुष्टयन्त व्यक्तिसावक शब्दने माथ ; “रामनिष्प-
सन्दर्शनोत्पत्तं मैयिष्ठाय कथयान्द्रवम् ” २० ११ ३७ ।

कर्ण भेदने ।—••• आ + कर्ण—ध्रवणे, आकर्णयति । •••

करु गनी ; मद्गुत्रायाम् (गगनायाम्) च—कण्ठयति । “कलि. कान-

धेनु" ।—(१) धारणे, पहणे To hold, bear, assume, put on, "स्लेच्छनिवद्धनिरने कञयमि कावालम्" गीतगो० १. ; "कल्पति हि हिमांशोर्निष्कलङ्कस्य लक्ष्मीम्" मालती० १ २२ ; "कल्प बलयधेर्गो पागौ" गीतगो० १२ २६ ।—(२) गगनायाम् To count, reckon, "काल कल्पतामहम्" गीता. १०-३० ।—(३) करणे To make, "सदा पान्य पूया गगनरिमाण कल्पति" मत्तुं०, "मनुमिलिनमनुपकृष्कलिनराणे (केलिसदने)" गीतगो० ११ १९. ।—(४) ज्ञाने To know, "कलयन्नपि सत्ययोऽप्रतस्ये" भाष० ९ ८३, "स्या निषिद्धालिजनां यदेना द्यायाद्वितोयां कन्याञ्चकार" नै० ३ १२. ।—(५) चिन्तने, विचारणे To think, consider, "व्यालनिलयमिलनेन गरलमिव कल्पति मलयनमोरम्" गीतगो० ४ ७, "कलयामि मणि रूपगं बहुदुपाम्" गीतगो० ७ ७ ।—(६) निर्माणे To form, "मरकतनाकलकलिनकडमौतलिनं" गीतगो० ८ ४ ।

‡ आ + कल्—बोने, धन्वने ; आक्रमणे, पहणे, अधिकारे च ।
परि + कल्—ज्ञाने । मन् + कल्—पट्टलने (योजने ; सङ्गृहे च) To add or sum up ।
वि + अच् + कल्—व्यवकलने, वियोजने
To subtract or deduct ‡

क्षर क्षेरणे (द्रविकण्णे ; अतिवाहने)—(१) दूर करना ; (२) काटना, गवाना To cast, to remove ; to pass—क्षययनि ।
(२) "पक्षिर्गो ह्यपयेत्रिशाम्" स्मृति ।

गन सङ्ख्याने (गगनायाम् ; विचारे, ज्ञाने)—गिनना To count,

number, to consider—गणयति । “लीलाकर्मलपत्राणि
गन्धानास पार्वती” कु० ६ ८४, “पाण्डव्य महिमा स गण्यते,
कक्षद्वज्जलति सागरेऽपि य” १० ११ ५५ ।

गुं वि + गण—जाने, निश्चये । अव + गण—अवेज्ञायाम् । गुं
गन्धेप मार्गणे (अन्वेषणे, अनुमन्धाने)—हँदना To seek—गन्धेपयति ।
गन्धेपयति गुण गुणी, “तस्मादप यत प्राहस्त्वैवान्यो गन्धेप्यताम्”
कथासरित्सागर । “गन्धेपमाण महिषीकुलं जलम्” ऋतु० १ २१ —
इत्यत्र भ्यादिगणीय आत्मनेपदा ।

गुण अभ्यासे (गुणने, पूरणे, ‘आच्छेदने’ इति महिनाय.—माघ० २ ७०)
गुण करना, जर्ब करना To multiply—गुणयति । “इति
पूर्तिश्च गुणने” इति अष्टविद् ।

चित्र चित्रोकरणे (आलेख्यकरणे)—तम्बीर वा शशीह् र्छाया To
paint—चित्रयति । चित्रयति प्रतिमा लोक । ‘वाग्देवताचरित-
चित्रितचित्तमद्या’ (अलङ्कृत) गीतगो० १ २, “श्रीरूपदालीचि-
त्रिततीरा” छन्दोमञ्जरी ।

दण्ड दण्डनिपातने—दण्ड देना, डाण्डना To punish—दण्डयति ।
दण्डापयति । दण्डयति अपराधिन राजा । द्विकर्मक—“तान् सहस्रज
दण्डयेत्” मनु० ९. २३४; “अनृतन्तु ददन् दण्ड्य स्वयित्तल्याशन
एवम्” मनु० ८ ३६ । “कौटमाक्ष्य कुवाणान् दण्डयित्वा प्रवान
येन्” मनु० ८ ३६ ।

पार कर्मसमाप्ती (शक्ती)—करना To be able—पारयति । “न स
मातापितरौ भर्तृदियोगदु खिता दुहितरं द्रष्टुं पारयन्” शत० ६

“अधिर्न न हि पारयामि दक्षुम्” भाषिणी० २ ५९ ।

मह पूजायाम् To honour, worship—महयति । “गोहार न निधीना महयन्ति महेश्वर विबुधा ”, “छा पुमानित्यगास्थैषा घृत्तं हि महित सताम्” कु० ६ १२. ।

मिश्र सम्पर्क (मिश्रणे, संयोजने)—मिलाना To mix—मिश्रयति ।
मिश्रयति घृतेनान्नं लोके , “वाच न मिश्रयति यद्यपि मूत्रचोभि ”
शकु० १. २६ ।

मूत्र प्रस्रावे—पेशात् करना To make water—मूत्रयति । “तिष्ठन् मूत्रयति” महाभा० ।

मृग अन्वेषणे—ढूँढना To search for—आत्मनेपदो, मृगयते ।
“रामो मृगं मृगयते वनवीथिच्छाते” महाभा० ३ ५६ ।

रच रचनायाम् (प्रणयने, निमाणे, करणे)—रचना, तैयार करना To prepare, to make, to compose—रचयति । “रचयति शयन सचकितनयनम्” गीतगो० ५ १०, “मौलौ वा रचयाञ्जलिम्” वेणी० ३ ४२, “अश्वधार्दो जगन्नाथो विश्वहृद्यामरोरचम्”, “रचयति चिकुरे कुरवःकुष्ठमम्” (विन्यम्यति) गीतगो० ७ २३, “विरचितानुसूत्रेश ” १० ५ ७६ ।

रस भास्वादाने—चखना To taste, relish—रसयति ; रसयति मधु द्विरेफ , “मृष्टीका रसिता” भाषिणी० ४ १४ ।

रह त्यागे—छोडना To quit, abandon—रहयति । रहयति शोकं धीर , “रहयत्यापदुपेतन्नायति ” भा० २ १४ ।

रूप रूपकरणे—बनाना To form—रूपयति । रूपयति प्रतिमा शिल्पी,

—(२) अभिनये (नाट्येन प्रकारेण—नाट्ये दिखयान्) To represent on the stage; “राकुन्तला मांडां रुरयति” राहुः ४ ।
 भृ० नि + रुर—निरुरणे (निर्गये, निष्पये, दर्शने; विदग्धने, स्वस्व-
 रूपने च) । भृ०

वर् इत्सायाम्—वर्ता करना, पत्तन्द करना To ask for, choose, seek to get—वर्षति । “इत्या वर्षते रुरम्” ।

वर्णं कुहादिपञ्चकाले (रुद्रने), वर्णने, स्तुतौ च—(१) रङ्गना; (२) वर्णन करना, (३) स्तुति करना To colour; to describe; to praise—वर्णयति । (१) प्रतिमा वर्णयति; (२) कथां वर्णयति; (३) हरिं वर्णयति ।

भृ० निर + वर्ण—दर्शने । भृ०

वास उरतेवायाम् (गुमान्तराधाने, सारभोकरणे)—सुगन्धित करना, सु-
 कृत्तर करना To scent, perfume—वासयति । वासयति कश्च
 चन्दन ; “उदे चन्दनमहर्शनयति सुखं कुशरस्य” द्विती० ।

भृ० अधि + वाम—‘वास’-वत् । भृ०

विदम्ब अनुकरणे (सहस्रीकरणे) - चञ्चने च—(१) अनुकरण करना, नकूल
 करना; (२) टाढा To imitate, copy, resemble; to cheat, to ridicule—विदम्बयति । (१) “(तं) ऋतुर्विदम्ब-
 यान्नास, न पुन प्राव सच्चिद्रूपम्” २० ४. १०; (२) “एवमात्मा-
 भिप्रायतम्भादिनेष्टजलचित्तवृत्ति प्राप्यंयिता विदम्बये” राहुः २. ।

वाञ्ज व्यञ्जने (वापुनञ्जालने)—पह्ना झालना To fasc—वाञ्जयति ।
 स्वरूपं राकुन्तलां वाञ्जयत; “दोन्धने स हि मंल्लञ्जानरै”

कु० २. ४२ ।

व्यय वित्तममुत्सग (धनव्यये)—व्यय करना, खर्च करना, To expend—व्यययति । “बहु व्यययति द्रव्यम्” ।

शाल अभ्यासे (अनुशीलने)—अभ्यास करना To practise repeatedly, study—शीलयति । “शीलयन्ति यतय सशीलताम्” भा० १३ ४३ ।—(२) परिधाने, “शीलय नीलनिषोलम्” गीत गो० ६ ११ ।—आश्रयणे, गमने, “यदनुगमनाय त्रिशि गहनमपि शीलितम्” गीतगो० ७ ४, “स्मेरानना सपदि शीलय सौधमौलिम्” भाषिनी० २ ४ ।

श्लथ शौबल्ये (शिथिलीकरणे)—शिथिल (ढीला) करना To slacken, loosen, relax—श्लथयति । “परित्राणस्नेह श्लथयितुमशक्य खलु यथा” महालक्ष्मी ३७ ।

सनात्र पूजने (सत्कारे), प्रीणने च—सम्मान करना, आनन्दित करना To salute, greet, pay respects, congratulate; to please, gratify—समाजयति । “स्नेहात् समाजयितुमेत्य” उच्चा० १ ७, “सुवर्तिनन्दिन ऋषयो इव समाजयितुमागता इति तर्क्यामि” शकु० ६. ।—अलङ्कारे, “बहुपरिषद पुण्यश्रीक द्वियैव समाजयन्” उत्तर० ४. १९ ।

सूच व्यर्थाकरणे—सूचित करना, प्रकाश करना, ज्ञाहिर करना To indicate, reveal—सूचयति । “स्त्रा सूचयिषति तु माल्यमसुद्भवोस्य (गन्ध)” मृच्छ० १. ३९, “मन्त्रो गुमदारो न सूचये” २० १७ ६० ।

स्तेन चौर्ये—चोरी करना To steal—स्तेनयति ।

“वाक्यथां निश्चिता सर्वे दाह्मूला वाग्बिनि सृता ।

ता तु य स्तेनपेद्वाच स सर्वस्तेयवृद्धर ॥” मनु० ४ २५६ ।

स्पृह इच्छायाम्—चाहना To wish, long for—स्पृहयति । चतुर्थी-
के साथ, पुण्येभ्य स्पृहयति, “न मयिलेय स्पृहयाम्बभूव भवे
दिवो, नाप्यल्पेश्वराय” २० १६ ४२ ।

अनुवाद कर्ता—कभी अपरिमित भोजन नहीं करना । कोई द्रव्य
पकाकी भाजन नहीं करना । तू अब खा, मैं उसके साथ बात करूँ ।
बाज शिक्षक हमलोगोंको नीतिवाक्य कहेंगे । किसीके साथ झूठ मत
कहो । आपने मुझे क्या कहा ? किसीका द्रव्य चुराना नहीं चाहिये ।
रामदास एक पुरु करके (पुर्वकश) रपया गिनता है । रातमें वहाँ नहीं
खाना । किसीकी (द्वितीया) अज्ञता मत करो । बट गिनना कनाता है,
सभी व्यय करता है । इन फलोंमें बाँट दो । सबका गुण कीर्त्तन करो ।
मे दुस्तीको तसही देते थे । दुष्ट लोग जहाँ तहाँ सभीदा दोष कीर्त्तन
करते हैं । बाल्मीकिजीने एल्लिलित पद्योमें रामचन्द्रका चरित्र ममम वर्णन
किया है । साधुलोग सर्वदा सद्बिषयकी (द्वितीया) आलोचना करते हैं ।



रुधादि ।

क्रियाघटन-सूत्र ।

[इस प्रकरणमें २६० । २६१ सूत्रोंका कार्य होगा ।]

२९६ । चतुर्थकार पर रहनेसे, कर्तृवाक्यमें रुधादिगर्णाय धातुके
अन्त्यस्वरके पश्चात् 'न्' होता है, यथा—रुध् + ति = रुध् + ति—

२९७ । मृगुग विभक्ति परे रहनेसे, 'नृ'के स्थानमे स्वरान्त 'न' होता है, यथा—रन्ध् + ति = रगध् (१०० (क) सूत्र) + ति—

२९८ । * धस्तरसे परे 'त' अथवा 'ध' रहनेमे, दोनो मिलका 'द्ध' होता है, यथा—रगध् + ति = रगद्धि ।

२९९ । * एक ईर्गके तीन वर्ग एकत्र होनेमे, मध्यम वर्गका लोप होता है, यथा—रन्त् + त = र (नृद्ध) = रन्त् ।

३०० । * 'म' परे रहनेसे, 'द्' और 'ध'के स्थानमे 'श्' होता है, यथा—रगध् + मि = रणस्मि ।

३०१ । * व्यञ्जनवर्णके परस्थित 'हि'—'धि' होता है, यथा—रध् + हि = रन्ध् + धि = रन्द्ही + धि = रन्धि (२९९ सू०) ।

३०२ । * व्यञ्जनवर्णके परस्थित लङ् का 'द्' और सकारका लार होता है, यथा—अ + रगध् + द् = अरगध् = अरगत् (२६० सू०) ।

३०३ । * लङ्क सकारका लोप होनेमे, धातुके 'द्' और 'ध'के स्थानमे विकल्पसे रेफ होता है, यथा—अरगत्, अरण ।

३०४ । * 'च' अथवा 'ज'—परस्थित तकारमे मिलका 'क्त', और यकारमे मिलका 'क्थ' होता है, यथा—भुन् + ते = भुन्त् + ते = भुन् + क्ते = भुक्ते ।

३०५ । * च, छ, ज, झ, ष, ह और घ—परस्थित द्रव्य सकारमे मिलकर 'क्ष' होता है, यथा—भुन्त् + ते = भुन्क्षे ।

३०६ । * 'घ' परे रहनेसे, 'च' और 'ज'के स्थानमे 'ग' होता है,

† एह वर्गके दो चतुर्थ वर्ण एकत्र होनेसे, आदिवा वर्ण तृतीय वर्ण होता है ।

और विरामने लघांत कोई वर्ण पर न रहनेसे अन्तस्थित 'ङ्' और 'ञ्' के स्थानमे 'क्' होता है ; यथा—मुञ्ज् + ष्वे = मुञ्ज् + ष्वे = मुञ्ज् + ष्वे ; मुञ्ज् + इ = ममुनम् ।

३०७ । चतुर्थवार पर रहनेसे, कर्तृमाचने 'हिन्'के स्थानमे 'हिम्' होता है ; यथा—हिन् + त्रि = हिन्स्त्रि । •

३०८ । * 'घ' पर रहनेसे, पूर्ववर्ती 'म' के स्थानमे 'श' होता है, अथवा सकारका लोप होता है यथा—हिन् + हि = हिन् + धि = हिन्धि ।

३०९ । ति, मि, नि, तु, द्, स्—इन विभक्तियों पर रहनेसे, 'रह' धातुका 'वृ'—'ने' होता है . यथा—रह + त्रि = रद् + त्रि = रद् + त्रि—

३१० । य, र, ल, व, ह, ज, ञ, न, न निम्न व्यञ्जनवर्ग पर रहनेसे, 'ह'के स्थानमे 'ट' होता है, यथा—वृगेद् + त्रि = वृगेट् + त्रि—

३११ । * टवर्ग और वृद्धान्त प्रकारके परस्मिन्पुं लवर्गके स्थानमे टवर्ग होता है ; पान्तु 'ट'के दन्वित 'त' और 'घ' के स्थानमे 'ट' होता है ; यथा—वृगेट् + त्रि = वृगेट् + त्रि—

३१२ । 'ट' पर रहनेसे, पूर्व टकारका लोप होता है, और क निम्न उपना स्वर दीर्घ होता है ; यथा—वृगेट् + टि = वृगेदि । वृद् + त = वृद् + त = वृद् + त = वृद् + त = वृद् । (दीर्घ) वृद् + ष = वृद् ।

३१३ । * कोई वर्ण पर न रहनेसे, धातुके ट, टा, ए और ह के स्थानमे 'ट' अथवा 'टा' होता है . और 'घ' पर रहनेसे, 'ट' होता है :

यथा—अतृणेह् = अतृणेत् अथवा अतृणेत् ।

३१४ । * वर्गके प्रथम और द्वितीय वर्ग तथा श, ष, स परे रुदने-
से, श, ष, स, ह भिन्न 'हृट्' वर्गके स्थानमे प्रथमवर्ग होता है, यथा—
छिद् + ति = छितरि ।

रुधादि ।

सकर्मक परस्मैपदी धातु ।

मल्ल् (मन्जो) आमर्दने (भङ्गे)—तोडना To break
("भन्क्त्युत्थन कपि " म० १ २, "भनञि मर्दमयांदा "

६ ३८ ।—पराभवे, "क्षत्राणि राम परिभूय रामात्
क्षत्रादूययाऽभज्यत स द्विजेन्द्र " ने० २२ १३३ ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	भनक्ति	भङ्ग	भङ्गन्ति
मध्यमपुरुष	भनक्ति	भङ्गथ	भङ्गथ
उत्तमपुरुष	भनञि	भञ्ज्व	भञ्जम

लोट् ।

प्रथमपुरुष	भनक्तु	भङ्गाम्	भङ्गन्तु
मध्यमपुरुष	भङ्गधि	भङ्गम्	भङ्ग
उत्तमपुरुष	भनजानि	भनजाव	भनजाम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	अभनक्	अभङ्गाम्	अभङ्गन्
------------	-------	----------	---------

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	अभनक्	अभङ्कन्	अभङ्कन्
उत्तमपुरुष	अभनजम्	अभञ्ज्य	अभञ्जन्

विधिलिट् ।

प्रथमपुरुष	भञ्ज्यान्	भञ्ज्याताम्	भञ्ज्यु
मध्यमपुरुष	भञ्ज्या	भञ्ज्यातम्	भञ्ज्यात
उत्तमपुरुष	भञ्ज्याम्	भञ्ज्याव	भञ्ज्याम

लृट्—भङ्गाते, भङ्गात', भङ्गान्ति ।

हिंस् (हिंसि) हिंसायाम्—मार डालना, नष्ट करना
 'To kill, destroy completely
 ("हिनस्ति दुःकृत सूत्रता वाक्" ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	हिनस्ति	हिंस्नः	हिंसन्ति
मध्यमपुरुष	हिनरिस	हिंस्यः	हिंस्य
उत्तमपुरुष	हिनस्मि	हिंसव	हिंसम

लोट् ।

प्रथमपुरुष	हिनस्तु	हिंस्नाम्	हिंसन्तु
मध्यमपुरुष	हिन्धि	हिंस्तम्	हिंस्त
उत्तमपुरुष	हिनसानि	हिनसान	हिनसाम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	अहिन	अहिंस्नाम्	अहिंसन्
------------	------	------------	---------

	एङ्प्रचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	अहिन्.	अहिंस्तम्	अहिंस्त
उत्तमपुरुष	अहिन्सम्	अहिंस्व	अहिंस्म

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	हिंस्यात्	हिंस्याताम्	हिंस्युः
मध्यमपुरुष	हिंस्या	हिंस्यातम्	हिंस्यान
उत्तमपुरुष	हिंस्याम्	हिंस्याव	हिंस्याम

लृट्—हिंसिष्यति, हिंसिष्यत, हिंसिष्यन्ति ।

रिप् (रिप्लृ) सञ्चूयणे (पीयणे)—पीसना To pound, grind, crush—पिनष्टि, पंश्यति । पिनष्टि लोको गोधूमम् ।

शिप् (शिप्लृ) अवशेषे, विशेषणे (विशेषकरणे) च—(१) बाका रखना, (२) विशेष करना, इमतियाज करना, तमीज करना, फर्क काना To leave as a remainder, to distinguish or discriminate from others—शिनष्टि, शेषयति ।

शुं शिप्—कर्मकर्त्तरि—बाको रहना, शिष्यते, “तेषामेक शिष्यते, अन्ये तुष्यन्ते” । अव + शिप्—कर्मकर्त्तरि, “यञ्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यन्नातन्वमशिश्यते” गीता ७ २ । वि + शिप्—वदने,—कर्मकर्त्तरि; अतिदाये (विद्वत्तर होना, अफ़ज़ल होना), “मौनान् मत्तु विशिष्यते” मनु० २ ८३, “सर्वेषामेव दानाना ब्रह्मदान विशिष्यते” मनु० ४ २३३ । परि + शिप्—अवशेषे । शुं

तृह् हिंसायाम् (वधे)—To kill, hurt, injure

(“तृगे तृगेडि ज्वलन् सतु ज्वलन् क्रमात् कर्त्तव्य-

दृमशाण्डमण्डलम् ॥ नै० ९ १०१ ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	तृणेदि	तृणदः	तृंहन्ति
मध्यमपुरुष	तृणेन्ति	तृणद	तृणद
उत्तमपुरुष	तृणेधि	तृह	तृह

लोट् ।

प्रथमपुरुष	तृणेदु	तृणदाम्	तृंहन्तु
मध्यमपुरुष	तृणिद	तृणदम्	तृणद
उत्तमपुरुष	तृणहानि	तृणहाव	तृणहाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अतृणेद्	अतृणदाम्	अतृंहन्
मध्यमपुरुष	अतृणेद्	अतृणदम्	अतृणद
उत्तमपुरुष	अतृणहम्	अतृह	अतृह

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	तृह्यात्	तृह्याताम्	तृह्यु
मध्यमपुरुष	तृह्या.	तृह्यातम्	तृह्यात
उत्तमपुरुष	तृह्याम्	तृह्याव	तृह्याम

लृट्—सर्हिष्यन्ति, तदर्थन्ति ।

अञ् (अञ्ज्) अक्षणे (लेपने), व्यतीक्षणे च—(१) लेपन करना, तेल लगाना, (२) प्रकाश करना To anoint, to show—अनक्ति । (१) "अनक्ति गात्रं तैलेन जन", (२) मा नाञ्जी

राक्षसीर्माया ” म ९ ४९ ।

११ अञ्ज् + णिच्—अञ्जत लगाना , अञ्जयति , “नाञ्जयन्तीं
स्त्रे नेत्रे, न चाभ्यक्तामनावृताम् (पदयेद्भाष्यां द्विजोत्तम)”
मनु० ४ ४४ । अभि + अञ्ज्—अभ्यङ्गे, तैर्यादिमर्दने । वि + अञ्ज्—
व्यक्तौ, प्रकाशने । अभि + वि + अञ्ज्—अभिव्यक्तौ, प्रकृतने । ११

रुधादि सकर्मक उभयपदी धातु ।

रुध् (रुधिर्) आवरणे (रोधे)—रुद्ध करना, रोकना

To obstruct, oppose , to besiege

(“इदं रुणद्धि मा पद्ममन्तं कृजितपद्पदम्”

विश्वसो०, ४ २१ , “रुन्धन्तु* वारणवटा

नगर मदीया ” मुद्रा० ४ १७ ।)

(परस्मैपद)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	रुणद्धि	रुन्ध	रुन्धन्ति
मध्यमपुरुष	रुणत्सि	रुन्ध.	रुन्ध
उत्तमपुरुष	रुणधिमि	रुन्ध्व	रुन्धम

लोट् ।

प्रथमपुरुष	रुणद्धु	रुन्धाम्	रुन्धन्तु
मध्यमपुरुष	रुन्धि	रुन्धाम्	रुन्ध
उत्तमपुरुष	रुणध्वानि	रुणध्वाम	रुणध्वाम

* ‘रोत्स्यन्ति’ इति पाठान्तरम् ।

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अरुणत्	अरुन्धाम्	अरुन्धन्
मध्यमपुरुष	अरुणत्, अरुण	अरुन्धम्	अरुन्ध
उत्तमपुरुष	अरुणधम्	अरुन्ध	अरुन्धम्

विधिलिट् ।

प्रथमपुरुष	रुन्ध्यात्	रुन्ध्याताम्	रुन्धु
मध्यमपुरुष	रुन्ध्या	रुन्ध्यातम्	रुन्ध्यात
उत्तमपुरुष	रुन्ध्याम्	रुन्ध्याथ	रुन्ध्याम

लृट्—रोत्स्यति, रोत्स्यत, रोत्स्यन्ति ।

(आत्मनेपद्)

लट् ।

प्रथमपुरुष	रुन्धे	रुन्धाते	रुन्धते
मध्यमपुरुष	रुन्धे	रुन्धाथे	रुन्धे
उत्तमपुरुष	रुन्धे	रुन्धहे	रुन्धहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	रुन्धाम्	रुन्धाताम्	रुन्धाताम्
मध्यमपुरुष	रुन्धाम्	रुन्धाथाम्	रुन्धाम्
उत्तमपुरुष	रुन्धाम्	रुन्धाथहे	रुन्धामहे

लृट् ।

प्रथमपुरुष	अरुन्ध	अरुन्धाताम्	अरुन्धत
मध्यमपुरुष	अरुन्ध्या	अरुन्धाथाम्	अरुन्धाम्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	अरुन्धि	अरुन्ध्वहि	अरुन्धमहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	रुन्धीव	रुन्धीयाताम्	रुन्धीरन्
मध्यमपुरुष	रुन्धीथा	रुन्धीयाथाम्	रुन्धीध्वम्
उत्तमपुरुष	रुन्धीव	रुन्धीवहि	रुन्धीमहि

लृट्—रोत्स्यते, रोत्स्येते, रोत्स्यन्ते ।

• अनु + रच्—दिवादिमणोय आत्मनेपदी—अनुव्रतने, अनुरक्षणे, “सद्रुत्तिमनुरक्षन्ता भवन्त ” महावार्त्त० २, “हन्त तिष्यञ्चोऽपि परि चक्षमनुरक्षन्ते” उत्तर० ३, “वात्मरयमनुरक्षन्ते महात्मान ” महावार्त्त० ६ ; “मद्रवतमनुरक्ष्यते वा मवान् ?” काद० । अव + रच्—अवरोपे । वर + रच्—निर्वन्ने, प्रतिबन्धे, अवरोपे To besiege, आच्छादने च । नि + रच्—निरोपे, नियमने । प्रति + रच्—प्रतिरोपे । वि + रच्—ईर्षकर्त्ति—विरोधे (अनैक्ये, कलहे च), विरक्षणे । मन् + रच्—प्रतिबन्ने, स्वयमने च । •

भुज् पालने To rule, govern, to protect

(भुनक्ति पृथिवी राजा ।)

(परस्मैपदौ)

लृट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	भुनक्ति	भुङ्क्ते	भुङ्क्न्ति
मध्यमपुरुष	भुनक्ति	भुङ्क्थ	भुङ्क्थ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरष	भुनक्ति	भुञ्ज्वः	भुञ्जमः

लोट् ।

प्रथमपुरष	भुनक्तु	भुङ्क्तुम्	भुङ्क्तु
मध्यमपुरष	भुङ्क्ष्वि	भुङ्क्ष्व	भुङ्क्ष्व
वचमपुरष	भुनजानि	भुनजाव	भुनजान

लट् ।

प्रथमपुरष	अभुनक्तु	अभुङ्क्तुम्	अभुङ्क्तु
न्यमपुरष	अभुनक्	अभुङ्क्ष्व	अभुङ्क्ष्व
उत्तमपुरष	अभुनजाम्	अभुञ्ज्व	अभुञ्जम

विधिलिङ्—भुञ्ज्यात्, भुञ्ज्याताम्, भुञ्ज्युः ।

लृट्—भोक्ष्यति, भोक्ष्यतः, भोक्ष्यन्ति ।

भुङ् अभ्यवहारे (भोजने) : उपभोगे (अभुजवे) च—

(१) खाना ; (२) भोग करना To eat ;

to enjoy ; to suffer.

((१) "शयनस्यो न भुङ्जीत" मनु० ४. ७४ ; (२) "अथ स

केरल भुङ्क्ते य पक्ष्यात्मकारणात्" मनु० ३ ११८ ;

'रक्षो जने दुःखानि भुङ्क्ते' ।)

(आत्मनेपदी)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरष	भुङ्क्ते	भुङ्क्ताने	भुङ्क्ते

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	भुङ्हे	भुञ्जाथे	भुङ्ग्ध्वे
उत्तमपुरुष	भुञ्जे	भुञ्ज्वहे	भुञ्जमहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	भुङ्काम्	भुञ्जाताम्	भुञ्जताम्
मध्यमपुरुष	भुङ्क्ष्व	भुञ्जाथाम्	भुङ्ग्ध्वम्
उत्तमपुरुष	भुनजै	भुनजावहै	भुनजामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अभुङ्क्ते	अभुञ्जाताम्	अभुञ्जत
मध्यमपुरुष	अभुङ्क्ष्व	अभुञ्जाथाम्	अभुङ्ग्ध्वम्
उत्तमपुरुष	अभुञ्जि	अभुञ्ज्वहि	अभुञ्जमहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	भुञ्जीत	भुञ्जीयाताम्	भुञ्जीरन्
मध्यमपुरुष	भुञ्जीथा.	भुञ्जीयाथाम्	भुञ्जीध्वम्
उत्तमपुरुष	भुञ्जीय	भुञ्जीवहि	भुञ्जीमहि

लृट्—भोदयते, भोदयेते, भोदयन्ते ।

❧ ट् + भुञ्—उपमोणे । परि, सम् + भुञ्—सम्मोणे । ❧
छिद् (छिदिन्) द्वैधीकरणे (छेदने, नाशने)—(१)

काटना, (२) नष्ट करना To cut, to destroy.

((१) "नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि" गीता २. २३ ;

(२) "वृष्णा छिन्धि" मत्स्य० ।)

(परस्मैपद)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	द्विनत्ति	द्विन्त	द्विन्दन्ति
मध्यमपुरुष	द्विनत्सि	द्विन्य	द्विन्य
उत्तमपुरुष	द्विनमि	द्विन्द	द्विन्म.

लोट् ।

प्रथमपुरुष	द्विनत्तु	द्विन्ताम्	द्विन्दन्तु
मध्यमपुरुष	द्विन्धि	द्विन्तम्	द्विन्त
उत्तमपुरुष	द्विनदानि	द्विनदाव	द्विनदाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अद्विन्नत्	अद्विन्ताम्	अद्विन्दन्
मध्यमपुरुष	अद्विन्नत्, अद्विन्न.	अद्विन्तम्	अद्विन्त
उत्तमपुरुष	अद्विन्नदम्	अद्विन्द	अद्विन्म

विधिलिट्—द्विन्धात्, द्विन्धाताम्, द्विन्धु ।

लृट्—द्वेत्स्यात्ते, द्वेत्स्यत, द्वेत्स्यन्ति ।

(आत्मनेपद)

लट् ।

प्रथमपुरुष	द्विन्ते	द्विन्दाने	द्विन्दते
मध्यमपुरुष	द्विन्से	द्विन्दाथे	द्विन्धे
उत्तमपुरुष	द्विन्दे	द्विन्दते	द्विन्महे

लोट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	छिन्ताम्	छिन्दाताम्	छिन्दताम्
मध्यमपुरुष	छिन्स्व	छिन्दाथाम्	छिन्धाम्
उत्तमपुरुष	छिनदै	छिनदावहै	छिनदामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अच्छिन्त	अच्छिन्दाताम्	अच्छिन्दत
मध्यमपुरुष	अच्छिन्था	अच्छिन्दाथाम्	अच्छिन्धाम्
उत्तमपुरुष	अच्छिन्दि	अच्छिन्द्वाहि	अच्छिन्द्वाहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	छिन्दीत	छिन्दीयाताम्	छिन्दीरन्
मध्यमपुरुष	छिन्दीथा	छिन्दीयाथाम्	छिन्दीध्वम्
उत्तमपुरुष	छिन्दीय	छिन्दीवहि	छिन्दीमहि

लृट्—छेत्स्यते, छेत्स्येते, छेत्स्यन्ते ।

१* आ + लिट्—आह्वय ग्रहणे (छीन लेना), छेदे च । उव + लिट्—उन्मूलने । परि + लिट्—इयत्तया अवधारणे, निर्गमे । वि + लिट्—छेदे, विभागे । १*

* * * *

भिद् (भिदिर्) विदारणे (भङ्गे, विच्छेदे)—तोडना, भेद करना To break, pierce—मिनत्ति, मिनते, भेत्यति, भेत्यते । मिनत्ति मिनते कूल नदी ; “तेषां कथं तु हृदयं न मिनत्ति लज्जा ?” सुत्रा० ३ ३३ ।

❦ कर्मकर्त्तरि—भिन्न होना, भिद्यते, “पैशुन्याद्भिद्यते स्नेह”
पञ्च० १ १११. (नश्यति इत्यर्थं), “पट्कर्णो भिद्यते मन्त्र”
(प्रकाशते इत्यर्थं) पञ्च० १. १०८ । उक् + भिद्—कर्मकर्त्तरि—
उद्गमे, प्रकाशे, “अद्यापि पश्चावपि नोज्झियेते” काद० । निर +
भिद्—भेदने, प्रकाशने च । प्रति + भिद्—भत्सने । सम् + भिद्—
मिश्रणे, सद्वर्षे । ❦

युज् (युजिर्) योगं (सहते) —सयुक्त करना, मिलायना, जोड़ना To
join, unite—युनक्ति, युक्ते, योजयति, योज्यते । युनक्ति युक्ते
घृतेनात्र लोक । “यम युनक्ति कालेन” भ० ६ ३७ ।

❦ ‘उक्’ और स्वरात् उपसर्गके योगसे आत्मनेपदी होता है ।
अनु + युज्—प्रश्ने, अनुयुक्ते । अभि + युज्—उद्योगे, आक्रमणे,
अपराधयोजने च अभियुक्ते । आ + युज्—मयमने, आयुक्ते ।
उत् + युज्—उद्योगे, उद्युक्ते । उप + युज्—प्रयोगे, सेवने,
उपयोगे च, उपयुक्ते । नि + युज्—नियोगे, प्रेरणे, आदेशे ;
नियुक्ते । नि + युज् + णिच्—नियोगे, नियोजयति । प्र + युज्—
प्रयोगे, निदेशे च, प्रयुक्ते । वि + युज्—त्यागे, वियोजने च ;
वियुक्ते । सम् + युज्—संयोजने । ❦

रिच् (रिचिर्) विरेचने (शुद्धीकरणे) —सूना करना, खाली करना To
empty, evacuate, clear—रिणक्ति, रिक्ते, रेदयति,
रेदयते । “रिणक्ति जल्पेन्तोयम्” भ० ६ ३६, “तिमिररिच्यमानं
पूर्वदिद्भुम्बमालोरुधमग हृदये” विजमो० ३ ।

❦ अति + रिच्, वि + अति + रिच्, उक् + रिच्—कर्मकर्त्तरि—

अतिशये, पञ्चमीके साथ, “अश्वमेघसहस्रेभ्य सत्यमेवातिरिच्यते”
हितो० ४ १३५, “स्तुतिभ्यो व्यतिरिच्यन्ते दूराणि चरितानि ते”
र० १०. ३०, “भ्रमैवोतिरिच्यते जन्म—तत्र जन्मन ” महाभा० ।
विच् (विचिर्) पृथक्करणे—अलग करना To separate, dis-
criminate—विनक्ति, विद्धे, वेक्ष्यति, वेक्ष्यते । वोपदेवमते—
द्वादिगणोपमी होता है, वेत्ति, वेदित्ते ।

भ्रि + विच्—पृथक्करणे विचारणे, निर्णये च । भ्रि

अनुवाद करो—राजा विद्रोहियोंको रद्द करता है । अशोकवनमे
सीताको अवरुद्ध किया था । राम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंने तीन वाणो-
से खर दूपणका मस्तक छेदन किया था । यदि फल चाहो, तो पुष्प मत
तोड़ो । नौकरलोग कुठारसे लकड़ी फाटने हैं । आदमी आलस्यके कारण
दुःख भोगता है । बार-बार भोजन करना नहीं चाहिये । तुम्हारे पुत्रको
असत् सद्गुणसे वियुक्त करो । वहाँ तान आदमी भेजो । उस कार्यमें निर-
र्थक आदमी नियुक्त मत करो ।

अदादि ।

क्रियाघटन-सूत्र ।

[इस प्रकरणमें तुदादि और रधादिके धार (ः)-विहित सूत्रोंका
कार्य यथासम्भव होगा ।]

३१५ । ‘अद्’-धातु लृक्के ‘द्’ और ‘स्’ मे मिलकर यथाक्रम ‘आदत्’
और ‘आद’ होता है, यथा—अद् + द् = आदत्, अद् + स् = आद ।

३१६ । ः शकार, छ और च्छ—परस्थित ‘त’ और थकारमे मिल-

कर यथाक्रम 'ष्ट' और 'ष्ट' होता है, यथा—वश् + ति = वष्टि ।

३१७ । * अगुण विभक्ति वा प्रत्यय परे रहनेसे, 'वश्'के स्थानमे 'उश्' होता है, यथा—वश् + थ = उष्ट ।

३१८ । * य, व और म भिन्न अगुण व्यञ्जनवर्ग परे रहनेसे, 'हन्' धातुके नकारका लोप होता है, और अन्ति, अन्तु तथा अन् परे रहनेसे, 'हन्'के स्थानमे 'म्' होता है, यथा—हन् + त = हत, हन् + अन्ति = मन्ति । हन् + यात् = हन्यात्, हन् + व = हन्व; हन् + म = हन्म ।

३१९ । * 'हि'के साथ मिलकर हन्—जहि, अस्—एधि, और शास्—शाधि होता है, यथा—हन् + हि = जहि, अस् + हि = एधि; शास् + हि = शाधि ।

३२० । विधिलिट्, और लट् लोटकी अगुण विभक्ति परे रहनेसे, 'अस्' धातुके अकारका लोप होता है; और लट्का 'मि' परे रहनेसे, 'अस्' धातुके सकारका लोप होता है, यथा—अस् + यात् = स्यात्; अस् + त = म्त, अस् + ताम् = स्ताम्, अस् + मि = अमि ।

३२१ । लङ्के 'द्' और 'स्' परे रहनेसे, 'अस्' धातुके उत्तर 'ई' होता है; यथा—अस् + द् = आसीत्; अस् + स् = आसी ।

३२२ । * सगुण लट् आदि चार विभक्ति परे रहनेसे, अदादि और द्वादिगणीय धातुके अन्त्यस्वर और उपधा लजुस्वरका गुण होता है, यथा—द्विप् + ति = डेटि (३११ सूत्रानुसार 'त'के स्थानमे 'ट') ।

३२३ । * द्विप्, विद् और आकारान्त धातुके परस्मिन् 'अन्' विभक्त्यमे 'उम्' होता है, यथा—द्विप् + अन् = अद्विपु, अद्विपन् ।

३२४ । * अगुण व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, 'शास्'क स्थानमे 'शिप्' होता है, यथा—शास्+त = शिप्+त = शिष्ट ।

३२५ । * अभ्यस्त धातुको परल्लिखत 'अन्'—'उस्' होता है, 'उस्' परे अन्त्यस्वराका गुण होता है, और 'अन्ति' तथा 'अन्तु'के नकाका लोप होता है, यथा—शास्+अन् = अशास, शास्+अन्ति = शासति ।

३२६ । * लङ्का 'ट्' परे रहनेसे, धातुके अन्त्य 'स्'के स्थानमे 'त्', और 'स्' परे रहनेसे, विकल्पमे 'त्' होता है, यथा—चक्राम्+ट् = अचक्रात् ।

३२७ । * सगुण विभक्ति परे रहनेसे, 'मृज्'क स्थानमे 'मार्ज्' होता है, और विभक्तिका अगुण स्वर पर, विकल्पसे 'मार्न्' होता है, यथा—मृज्+ति = मार्ज्+ति—

३२८ । * त, थ, ध परे रहनेसे, मृज्, सृच्, यज् और भ्रज् धातुके 'ज्'के स्थानमे मूर्द्धन्य 'प्' होता है, यथा—मार्ज्+ति = मार्ष्टि, मृज्+त = मृष्ट, मृज्+हि = मृज्+धि (३०१ सू०) = मृष्ट्+धि = मृष्ट्+धि (३१३ सू०) = मृष्ट्धि (३११ सू०) ।

३२९ । अन्तल्लिखत 'मृज्' धातुके 'ज्'के स्थानमे 'ट्' अथवा 'ड्' होता है, यथा—मृच्+ट् = अमार्ज् = अमार्द् अमार्ड् ।

३३० । लट्, लोट्, लङ् विभक्तिका व्यञ्जनवर्ण परे रहनेसे, रट्, स्वप्, धम्, अन् और जश् धातुके उत्तर 'इ' होता है, और 'इ' 'स्'

† द्विरुक्त धातु, और जज, जाष्ट, दरिद्रा, चक्रास्, शास् धातुकी 'अभ्यस्त' सज्ञा होती है ।

परे 'इं' कथवा 'अ' होता है; यथा—रद्—ति=रोदिति (३२० सू०)
रद्+इ=अरोदीव, अरोदत् ।

३३१ । ति, त्ति, नि, तु, इ, स् परे रहनेसे 'इ' धातुके उत्तर 'इं' होता है; और वह 'इं' परे रहनेसे पुन होता है; यथा—इ—ति=इवाति ।

३३० । * अणुय स्वर परे रहनेसे धातुके इवगके स्थानसे 'इव्', और उवगके स्थानसे 'उव्' होता है; यथा—अधि+इ+जाते=अधि+इव्+जाते=अधीजाते; इन्+अग्नि=इवान्ति ।

३३३ । ऐ, आइहै, आनहै परे रहनेसे, 'स्' धातुके 'अकि' स्थानसे 'उक्' होता है; यथा—स्+ऐ=स्यै ।

३३४ । * दुहादि धातुका 'ह' परस्मिन् 'त', 'थ' और बहुवचने निलक 'थ' होता है; और 'भ' 'ञ' परे रहनेसे, कथवा कोई वां परे न रहनेसे, आदिस्मिन् 'इ'के स्थानसे 'थ', और कन्तस्मिन् 'ह'के स्थानसे 'क' होता है; यथा—दुह्+ति=दोधि; दुह्+मि=धोमि; दुह्+इ=अदोह्=अधोक् ।

३३५ । चतुर्थकारने 'शी' धातुका गुण होता है; और 'अन्ते', 'अन्ताम्', 'अन्त' विभक्ति परे रहनेसे, 'शो' धातुके उत्तर 'इं' होता है; यथा—शी+ते=शैते; शो+अन्ते=शेरते (२८० सू०) ।

३३६ । त, म, य, स परे रहनेसे, 'उष्'के स्थानसे 'उष्' होता है- यथा—उष्+ते=उष्टे ।

३३७ । लट्, लोट्, लृट्के 'ल' 'ष' परे रहनेसे, 'ईम्' और 'ईह्' धातुके उत्तर 'इं' होता है; यथा—ईम्+ते=ईहिनः; ईह्—

से=ईद्विपे ।

३३८ । अगुण व्यञ्जनवर्ण परे, 'दृदिद्रा' धातुके 'आ'के स्थानमे 'इ' होता है, और 'अम्' भिन्न विभक्तिका स्वर्ग परे रहनेसे, 'अदिद्रा' धातुके आकारका लोप होता है, यथा—दृदिद्रा + त = दृदिद्रित्, दृदिद्रा + अन्ति = दृदिद्रिति ।

३३९ । अगुण स्वर परे रहनेसे, 'इण्' धातुके 'इ'के स्थानमे 'य्' होता है, यथा—इ + अन्ति = यन्ति ।

३४० । ति, सि, मि, तु, दू, स् परे रहनेसे, 'ह' और 'लु' धातुके उत्तर विकल्पसे 'ई' होता है, और 'ई' परे गुण होता है; परे वृद्धि होता है, यथा—र + ति = रवीति, रौति ।

अदादि ।

सकर्मक परस्मैपदी धातु ।

अद् भक्षणे—खाना To eat

(फल्भक्ति विहङ्गम ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अत्ति	अत्त	अदन्ति
मध्यमपुरुष	अत्ति	अत्थ	अत्थ
उत्तमपुरुष	अद्भि	अद्भ	अद्भ

लोट् ।

प्रथमपुरुष	अत्सु	अत्ताम्	अदन्तु
------------	-------	---------	--------

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	अस्ति	अस्यम्	असु
उत्तमपुरुष	अदानि	अदाव	अदाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	आइत्	आताम्	आदन्
मध्यमपुरुष	आदः	आतम्	आसु
उत्तमपुरुष	आदम्	आद्व	आम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	अयात्	अयाताम्	अयु-
मध्यमपुरुष	अया	अयातम्	अयात
उत्तमपुरुष	अयाम्	अयाव	अयाम

लृट्, अत्स्यति, अत्स्यत, अन्स्यन्ति ।

इह हिंसायाम् (प्रहादे, ताडने; त्यागे च)—(२) बध करना, विनष्ट करना, (२) मारना, पीटना, (३) छोड़ना 'To kill, destroy, to strike, beat; to abandon.

(१) मृग ध्वंसन्ति मृगाविति, (२) ' शेषितेन कुम्भे जवान् "

२० २. १०, (३) "मा धम जहि" मक्षमाः० ।)

लृट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	हन्ति	हन-	घ्नन्ति
मध्यमपुरुष	हसि	हय	हथ
उत्तमपुरुष	हन्मि	हन्य-	हनमः

लोट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	हन्तु	हताम्	भन्तु
मध्यमपुरुष	जहि	हतम्	हत
उत्तमपुरुष	हनानि	हनाव	हनाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अहन्	अहताम्	अघ्नन्
मध्यमपुरुष	अहन्	अहतम्	अहत
उत्तमपुरुष	अहनम्	अहन्य	अहन्य

विधिलिट् ।

प्रथमपुरुष	हन्यात्	हन्याताम्	हन्यु
मध्यमपुरुष	हन्या	हन्यान्	हन्यान्
उत्तमपुरुष	हन्याम्	हन्याव	हन्याम

लृट् —हनिष्यति, हनिष्यन्, हनिष्यन्ति ।

१. अव + हन्—ध्वंसने, दूरीकरणे । अभि + हन्—आघाते, प्रहारे, वादने च । अघ्न + हन्—कण्ठने । आ + हन्—आघाते, प्रहारे ; वादने च,—अपना कोई अङ्ग-प्रत्यङ्ग कर्म होनेसे 'आ + हन्' आत्मनेपदी होता है, "आइते स्व वक्ष" । वि + आ + हन्—व्याघाते, प्रतिबन्धे । उघ्न + हन्—प्रहारे ; नाशने च । नि + हन्—विनाशे, आघाते, वादने च । वि + हन्—विनाशे, प्रतिबन्धे च । सम् + हन्—सहाते, योगे । २.

द्विष् अशीतौ (द्वेषे, निन्दायाम्, विरोधे)—द्वेष करना, बैर करना, नफरत करना To hate,

dislike, be hostile towards

(धातुपाठे—उभयपदौ । "द्विपन्ति मन्दाघरितं

महात्मनाम्" कु० १ ७० ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	द्वेष्टि	द्विष्ट	द्विपन्ति
मध्यमपुरुष	द्वेष्टि	द्विष्ट	द्विष्ट
उत्तमपुरुष	द्वेष्टिम्	द्विष्ट	द्विष्टम्

लोट् ।

प्रथमपुरुष	द्वेष्टु	द्विष्टाम्	द्विपन्तु
मध्यमपुरुष	द्विष्टु	द्विष्टम्	द्विष्ट
उत्तमपुरुष	द्वेष्टाणि	द्वेष्टाम्	द्वेष्टाम्

लृट् ।

प्रथमपुरुष	अद्वेष्टु	अद्विष्टाम्	अद्विष्टु , अद्विष्टन्
मध्यमपुरुष	अद्वेष्टु	अद्विष्टम्	अद्विष्ट
उत्तमपुरुष	अद्वेष्टम्	अद्विष्टम्	अद्विष्टम्

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	द्विष्यात्	द्विष्याताम्	द्विष्यु
मध्यमपुरुष	द्विष्यात्	द्विष्यातम्	द्विष्यात्
उत्तमपुरुष	द्विष्याम्	द्विष्याव	द्विष्याम

लृट्—द्वेष्टयति, द्वेष्टयन्, द्वेष्टयन्ति ।

शास् (शासु) अनुशासने (उपदेशे, शासने, आशायाम्)—

(१) शिक्षा देना , (२) पालन करना, हुकूमत करना , (३) आदेश करना To teach , to rule, govern , to order

((१) द्विकर्मक—“भाणवक धर्म शास्ति” , “स किमखा साधु न शास्ति योऽधिपम्” भा० १ ६ , (२) “राज्य रजोरिकमना शशास” २० १४ ८० , (३) “शापि न करवाम किम्” कु० ६ २४ १)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	शास्ति	शिष्ट	शासति
मध्यमपुरुष	शास्सि	शिष्ट	शिष्ट
उत्तमपुरुष	शास्मि	शिष्य	शिष्य

लोट् ।

प्रथमपुरुष	शास्तु	शिष्टाम्	शासतु
मध्यमपुरुष	शाधि	शिष्टम्	शिष्ट
उत्तमपुरुष	शासानि	शासाव	शासाम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	अशात्	अशिष्टाम्	अशानु-
मध्यमपुरुष	अशात् , अशा	अशिष्टम्	अशिष्ट
उत्तमपुरुष	अशासम्	अशिष्य	अशिष्य

विधिलिट् ।

प्रथमपुरुष	शिष्यात्	शिष्याताम्	शिष्यु
------------	----------	------------	--------

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	शिष्या	शिष्यातम्	शिष्यात
उत्तमपुरुष	शिष्याम्	शिष्याव	शिष्याम

लृट्—शासिष्यति, शासिष्यत, शासिष्यन्ति ।

५०० अनु + शाम्—उपदेशे, आदेशे, दण्डने च । प्र + शाम्—
'शाम्'-वत् । ५००

मृज् (मृजू) शुद्धीकरणे (मार्जने)—साफ करना,

पौचना To wipe or wash off, cleanse.

("स्वेदन्वान् ममार्ज" माघ० ३ ७०, "शेषप्रदा

दममृजन्" माघ० ६, २८ ।)

लृट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	मार्ष्टि	मृष्ट	मृजन्ति, मार्जन्ति
मध्यमपुरुष	मार्ष्टि	मृष्ट	मृष्ट
उत्तमपुरुष	मार्ष्टिम	मृष्ट्व	मृष्टम्.

लोट् ।

प्रथमपुरुष	मार्ष्टु	मृष्टाम्	मृजन्तु, मार्जन्तु
मध्यमपुरुष	मृष्ट्वि	मृष्टम्	मृष्ट
उत्तमपुरुष	मार्जानि	मार्जाव	मार्जाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अमार्ष्ट	अमृष्टाम्	अमृजन्, अमार्जन्
मध्यमपुरुष	अमार्ष्ट	अमृष्टम्	अमृष्ट

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	अमार्जम्	अमृज्य	अमृज्म

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	मृज्यान्	मृज्याताम्	मृज्यु
मध्यमपुरुष	मृज्या	मृज्यातम्	मृज्यात
उत्तमपुरुष	मृज्याम्	मृज्याव	मृज्याम

लृट्—मार्जिष्यति मार्ज्यन्ति, मार्जिष्यत

मार्ज्यन्तः, मार्जिष्यन्ति मार्ज्यन्ति ।

वश् इच्छायाम्—कामना करना To desire, long for

("नि स्वो वष्टि दात, दातो दशशतम्" शान्तिशतकम् .

"अमी हि वीर्य्यप्रभवं भवस्य जयाय सेनान्य-

मुशन्ति देवा " कु० ३. १५ ।)

लृट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	वष्टि	उष्ट	उशन्ति
मध्यमपुरुष	वन्ति	उष्ट	उष्ट
उत्तमपुरुष	वशिम	उश्व	उश्म

लोट् ।

प्रथमपुरुष	वष्टु	उष्टाम्	उशन्तु
मध्यमपुरुष	उष्टि	उष्टम्	उष्ट
उत्तमपुरुष	वशानि	वशाव	वशाम

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अवट्	श्रीष्टाम्	श्रीशन्
मध्यमपुरुष	अवट्	श्रीष्टम्	श्रीष्ट
उत्तमपुरुष	अवशम्	श्रीश्व	श्रीश्वम्

विधिलिट् ।

प्रथमपुरुष	उश्यान्	उश्याताम्	उश्यान्
मध्यमपुरुष	उश्या	उश्यान्तम्	उश्यान्
उत्तमपुरुष	उश्याम्	उश्याव	उश्याम

लृट्—वशिष्यति ।

वच् परिभाषणे (कथने)—कहता To say, speak
(“दितं मितञ्च यो वक्ति” ।)

लृट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	वक्ति	वक्तः	* * †
मध्यमपुरुष	वक्ति	वक्षथ	वक्षथ
उत्तमपुरुष	वक्षिम्	वक्ष्व.	वक्ष्वम्

लोट् ।

प्रथमपुरुष	वक्तुः	वक्ताम्	वचन्तु
मध्यमपुरुष	वक्षिथ	वक्तम्	वक्त
उत्तमपुरुष	वक्षानि	वक्षाव	वक्षाम

† अयम् ‘अन्ति’-परो न प्रयुज्यते, बहुवचनपर इत्यन्ये ।

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अवक्	अवक्ताम्	अवचन्
मध्यमपुरुष	अवक्	अवक्तम्	अवक्त
उत्तमपुरुष	अवचम्	अवच्च	अवचम

विधिलिट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	वच्यात्	वच्याताम्	वच्युः
मध्यमपुरुष	वच्या	वच्यातम्	वच्यात
उत्तमपुरुष	वच्याम्	वच्याव	वच्याम

लृट्—वदयति, वदयतः, वदयन्ति ।

*० निर् + वच्—निरन्धी, व्याख्यायाम् । प्र + वच्—कथने, वर्णने ।
प्रति + वच्—प्रतिवचने । *०

विद् जाने—जानना To know *

("विद्धि व्याविद्यान् प्रप्तम्

लोकं लोकहनञ्च समप्तम् ।" मोक्षमुत्र ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	वेत्ति	वेत्तः	वेदन्ति

* "सताया विद्यते, जाने वेत्ति, विन्ते विचारणे ।

विन्दते विदति प्रप्तौ, स्तन्-लृक्-स्तम् शोविद् क्मात् ॥"

"वेत्ति सर्वाणि शास्त्राणि, सर्वस्वस्य न विद्यते ।

विन्ते धर्मं सदा सद्भिः, तेषु पूजाञ्च विन्दति ॥"

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	वेत्सि	वित्य	विन्थ
उत्तमपुरुष	वेत्सि	विद्म	विद्मः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	वेत्तु	वित्ताम्	विदन्तु
मध्यमपुरुष	विद्धि	वित्तम्	वित्त
उत्तमपुरुष	वेदानि	वेदाव	वेदाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अवेत्	अविन्ताम्	अविदुः, अविदन्
मध्यमपुरुष	अवेत्, अवे	अवित्तम्	अवित्त
उत्तमपुरुष	अवेदम्	अविद्म	अविद्म

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	विद्यात्	विद्याताम्	विद्यु
मध्यमपुरुष	विद्या	विद्यातम्	विद्यात
उत्तमपुरुष	विद्याम्	विद्याव	विद्याम

लृट्—वेदिष्यति, वेदिष्यतः, वेदिष्यन्ति ।

विद् धातुके लृट् और लोट्मे और एकप्रकार रूप होने हैं, यथा—

लृट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	वेद्	विदतु	विदुः
मध्यमपुरुष	वेत्थ	विदधुः	विद
उत्तमपुरुष	वेद्	विद्म	विद्म

लोट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	विदाङ्करोतु	विदाङ्कुरुताम्	विदाङ्कुरुन्तु
मध्यमपुरुष	विदाङ्कुरु	विदाङ्कुरुतम्	विदाङ्कुरुन्
उत्तमपुरुष	विदाङ्करवाणि	विदाङ्करवाव	विदाङ्करवाम

१११ आ + विद् + णिच्—आपेदने, ज्ञापने, आपेदयति । नि + विद् + णिच्—निपेदने, ज्ञापने, उत्सर्गं च । १११

इ (इण्) गतौ (प्राप्तौ च)—(१) जाना, (२) पाना To go to, come to or near, to obtain, attain to

((१) “गगिन पुनरेति शर्वरी” २० ८. १६, (२) “न्त्रिंदि क्षयमेति” मृच्छ० १ १४ ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	पति	इत.	यन्ति
मध्यमपुरुष	पपि	इथ	इथ
उत्तमपुरुष	पमि	इथ	इम

लोट् ।

प्रथमपुरुष	पतु	इताम्	यन्तु
मध्यमपुरुष	इहि	इतम्	इत
उत्तमपुरुष	अयानि	अयाव	अयान्

लङ् ।

प्रथमपुरुष	पेत	पेताम्	आयन्
------------	-----	--------	------

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	पे.	पेतम्	पेत
उत्तमपुरुष	श्रायम्	पेव	पेम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	इयात्	इयाताम्	इयु.
मध्यमपुरुष	इया	इयातम्	इयात
उत्तमपुरुष	इयाम्	इयाव	इयाम

लृट्—एष्यति, एष्यत, एष्यन्ति ।

भू अति + इ, वि + गति + इ—अतिक्रमे । अनु + इ—अनुगमने ; अन्याये च । अप + इ—अपगमे, क्षये । वि + अप + इ—व्यपगमे, निवृत्तौ । अभि + इ—अभिमुखगतौ, प्राप्तौ च । अव + इ—ज्ञाने । सम् + अव + इ—समवाये, मिलने (मेलने वा), संयोगे । आ + इ—आगमने, प्राप्तौ ; ऐति । उन् + इ—उदये, उदमने, उद्वेगे । अभि + उन् + इ—उदये ; उद्वेगौ च । उप + इ—उपगमने, प्राप्तौ च । अभि + उप + इ—उपस्थितौ, स्वीकारे च । परा + इ—परायणे, प्राप्तौ च । परि + इ—प्रदक्षिणकरणे, वेष्टने च । वि + परि + इ—विपर्यये, विपरीत्ये, अन्यथाभावे । प्र + इ—परलोकगती, मरणे । अभि + प्र + इ—अभिप्राये, आशये (इच्छा करना, इरादा करना, मकसद रखना) । प्रति + इ—प्रतीती, ज्ञाने, विधाते, प्रतिगमने च । भू

अनुवाद करो—देखो, एक हरिण निविष्टचित्तसे घास खा रहा है । निरपराध जन्तुओंका (द्वितीया) इनन करना नहीं चाहिये । व्यर्थ मुझे मत मारो । अक्षर स्वभावसेही देवताओंके प्रति द्वेष करते हैं । दुष्टका

(द्वितीया) शासन को । बिडाल भोजनके पश्चात् मुख मार्जन करता है ।
जो आत्माका तत्त्व भ्रष्टे प्रकारसे जानता है, वह अनायास मुक्त होता है ।
आत्मज्ञानकोही सब धर्मोंसे धेष्ट जानना । आओ, चलें ।

अदादि अकर्मक परस्मैपदी धातु ।

अस् सत्तायाम् (विद्यमानतायाम्, स्थितौ)—रहना
To be, exist

(“नास्त्यगतिमंनोरथानाम्” विक्रमो० ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अस्ति	स्तः	सन्ति
मध्यमपुरुष	असि	स्थः	स्थ
उत्तमपुरुष	अस्मि	स्व	स्मः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	अस्तु	स्ताम्	सन्तु
मध्यमपुरुष	पथि	स्तम्	स्त
उत्तमपुरुष	अमानि	असाव	असाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	आसीत्	आस्ताम्*	आसन्
मध्यमपुरुष	आसीः	आस्तम्	आस्त
उत्तमपुरुष	आसाम्	आस्व	आस्म

विधिलिङ् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	स्यात्	स्याताम्	स्युः
मध्यमपुरुष	स्याः	स्यातम्	स्यात
उत्तमपुरुष	स्याम्	स्याव	स्याम

लृट्—भविष्यति ।

रुदादि* ।

रुद् (, रुदिर्) अश्रुविमोचने (रोदने)—रोना

To cry, weep, lament

(अश्रुविमोचनमात्रेऽकर्मक —रोदिति लोक. शोकात् । आह्वानविशिष्ट
रोदने तु सकर्मक —“नामप्राहमरोदीत् सा भ्रातरौ” भ० ६. ६ ।)

लृट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	रोदिति	रुदितः	रुदन्ति
मध्यमपुरुष	रोदिषि	रुदिथ	रुदिथ
उत्तमपुरुष	रोदिमि	रुदिवः	रुदिम

लोट् ।

प्रथमपुरुष	रोदितु	रुदिताम्	रुदन्तु
------------	--------	----------	---------

* रोदिति स्वपितिश्चैव श्वसिति प्राणिनिस्तथा ।

जक्षितिश्चैव विज्ञेयो रुदादि षष्को गण ॥

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	रुदिहि	रुदितम्	रुदित
उत्तमपुरुष	रोदानि	रोदाव	रोदाम

लट् ।

प्रथमपुरुष	{ अरोदीत् अरोदत्	अरुदिताम्	अरुदन्
मध्यमपुरुष	{ अरोदी- अरोदः	अरुदितत्	अरुदित
उत्तमपुरुष	अरोदम्	अरुदिव	अरुदिम

विधिलिट् ।

प्रथमपुरुष	रुधात्	रुधाताम्	रुधु
मध्यमपुरुष	रुधा	रुधातम्	रुधात
उत्तमपुरुष	रुधाम्	रुधाव	रुधाम

लृट्—रोदिष्यति, रोदिष्यत, रोदिष्यन्ति ।

स्वप् (त्रिष्वप्) शयने (निद्रायाम्)—सोना To sleep.

(' गुणानामेव शौरात्म्यादुरि घुष्यो नियुज्यते । असत्प्रातर्किगस्क्व

सख स्वपिति गौर्गडि ॥" काव्यप्रकाश १०. ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	स्वपिति	स्वपित	स्वपन्ति
मध्यमपुरुष	स्वपिषि	स्वपिथ	स्वपिथ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	स्वपिमि	स्वपिव लोट् ।	स्वपिमः
प्रथमपुरुष	स्वपितु	स्वपिताम्	स्वपन्तु
मध्यमपुरुष	स्वपिहि	स्वपितम्	स्वपित
उत्तमपुरुष	स्वपानि	स्वपाव लङ् ।	स्वपाम
प्रथमपुरुष	{ अस्वपीत् अस्वपत्	अस्वपिताम्	अस्वपन्
मध्यमपुरुष	{ अस्वपी अस्वप	अस्वपितम्	अस्वपित
उत्तमपुरुष	अस्वपम्	अस्वपिव विधिलिङ् ।	अस्वपिम
प्रथमपुरुष	स्वप्यात्	स्वप्याताम्	स्वप्यु-
मध्यमपुरुष	स्वप्या	स्वप्यातम्	स्वप्यात
उत्तमपुरुष	स्वप्याम्	स्वप्याव	स्वप्याम

लृट्—स्वप्स्यति, स्वप्स्यत, स्वप्स्यन्ति ।

श्वस् प्राणने (श्वासे, जीवने)—इम लेना, जीना To breathe, respire, draw breath; to live.

(“क्षमप्यवतिष्ठते क्षमन् यदि जन्तुनं-
लामवानमौ ।” २० ८ ८७. १)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	श्वसिति	श्वसित	श्वसन्ति
मध्यमपुरुष	श्वसिषि	श्वसिष	श्वसिष
उत्तमपुरुष	श्वसिमि	श्वसिष	श्वसिम

लोट् ।

प्रथमपुरुष	श्वसितु	श्वसिताम्	श्वसन्तु
मध्यमपुरुष	श्वसिहि	श्वसितम्	श्वसित
उत्तमपुरुष	श्वसानि	श्वसाव	श्वसाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	{ अश्वसीत् अश्वसत्	अश्वसिताम्	अश्वसन्
मध्यमपुरुष	{ अश्वसी अश्वस.	अश्वसितम्	अश्वसित
उत्तमपुरुष	अश्वसम्	अश्वसिष	अश्वसिम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	श्वस्यात्	श्वस्याताम्	श्वस्यु
मध्यमपुरुष	श्वस्या	श्वस्यातम्	श्वस्यात
उत्तमपुरुष	श्वस्याम्	श्वस्याव	श्वस्याम

लृट्—श्वसिष्यति, श्वसिष्यत, श्वसिष्यन्ति ।

१. आ + श्वम्, सम् + आ + श्वस्—आश्वासे, सान्त्वनायाम् ।

टप् + इवस्—उच्छ्वासे (बहिर्मुखश्वासे , अन्नमुखश्वासे इत्यन्ये) ।
 नि + इवस्, निर् + इवस्—निश्वासे (अन्तर्मुखश्वासे , बहिर्मुख-
 श्वासे इत्यन्ये) । त्रि + इवस्—विश्वासे , प्राय मसमोक् माथ , “पुंसि
 विश्वसिति कुत्र कुमारी ?” न० ८. ११० । १५१

प्र + अन्—प्राणने (श्वासःश्यामे , जीवने)—सोस
 छोडना , जीता रहना To respire , to
 live, be alive.

(“अथमसी क्षीणा क्षण प्राणिति ” गीतगो० ४. २१ ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	प्राणिति	प्राणित्	प्राणन्ति
मध्यमपुरुष	प्राणिषि	प्राणिथ	प्राणिथ
उत्तमपुरुष	प्राणिमि	प्राणिथ	प्राणिम

लोट् ।

प्रथमपुरुष	प्राणितु	प्राणिताम्	प्राणन्तु
मध्यमपुरुष	प्राणिहि	प्राणितम्	प्राणिन्
उत्तमपुरुष	प्राणानि	प्राणाव	प्राणाम

लृट् ।

प्रथमपुरुष	प्राणीत्, प्राणत्	प्राणिताम्	प्राणन्
मध्यमपुरुष	प्राणी, प्राण	प्राणितम्	प्राणिन्
उत्तमपुरुष	प्राणम्	प्राणित्र	प्राणम

विधिलिङ ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	प्राण्यात्	प्राण्याताम्	प्राण्युः
मध्यमपुरुष	प्राण्या.	प्राण्यातम्	प्राण्यात
उत्तमपुरुष	प्राण्याम्	प्राण्याथ	प्राण्याम

लृट्—प्राणिष्यति, प्राणिष्यतः, प्राणिष्यन्ति ।

जक्षादि ।*

जक्ष् भक्षणे—खाना To eat

(सकर्मक—“जक्षिमोऽनपराधेऽपि नरान्” भ० ४ ३९ ।)

लृट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जक्षति	जक्षित.	जक्षति
मध्यमपुरुष	जक्षिषि	जक्षिथ	जक्षिथ
उत्तमपुरुष	जक्षिमि	जक्षिव.	जक्षिम.

लोट् ।

प्रथमपुरुष	जक्षितु	जक्षिताम्	जक्षतु
मध्यमपुरुष	जक्षिहि	जक्षितम्	जक्षित
उत्तमपुरुष	जक्षणि	जक्षाय	जक्षाम

* जक्ष्, जाण्ट् दरिद्रा, चकास्, शास् ।

जक्ष जाण्ट् दरिद्रा च चकास्ति शास्तिरेव च ।

दीर्घा वेषा च विज्ञेयो जक्षादि सप्तको गण ॥

लङ् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अजतीत्	अजतिताम्	अजन्तु
	अजत्त		
मध्यमपुरुष	अजतीः	अजतिनम्	अजन्ति
	अजत्त		
उत्तमपुरुष	अजत्तम्	अजन्ति	अजन्ति

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	जदयात्	जदयाताम्	जद्यु
मध्यमपुरुष	जदया	जदयातम्	जदयान
उत्तमपुरुष	जदयाम्	जदयाथ	जदयात्र

लृट्—जक्षिष्यति ।

जागृ निद्राक्षये (जागरणे)—जागना To be awake.

("दण्ड एतेषु जागर्ति, दण्डं धमं विदुर्दुषा " मनु० ७. १८ ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जागर्ति	जागृत	जाग्रति
मध्यमपुरुष	जागर्षि	जागृथ	जागृथ
उत्तमपुरुष	जागर्मि	जागृव	जागृमः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	जागर्तु	जागृताम्	जाग्रतु
मध्यमपुरुष	जागृहि	जागृतम्	जागृत

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	जागराणि	जागराव	जागराम
		लड् ।	
प्रथमपुरुष	अजाग०	अजागृताम्	अजागरु
मध्यमपुरुष	अजाग०	अजागृतम्	अजागृत
उत्तमपुरुष	अजागरम्	अजागृव	अजागृत
		विधिलिङ् ।	
प्रथमपुरुष	जागृयात्	जागृयाताम्	जागृयु०
मध्यमपुरुष	जागृयाः	जागृयातम्	जागृयात
उत्तमपुरुष	जागृयाम्	जागृयाव	जागृयाम

लृट्—जागरिष्यति ।

चकास् (चकास्) दीप्तौ (शोभायाम्)—चमकना
To shine, be bright

(“गण्डश्रृण्ड । चकास्ति नीलनलिनीश्रीमोचन लोचनम्”

गीतगो० १०. १४, “चकास्ति योग्येन हि

योग्यसङ्गम ” मे० ६ १६. १)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	चकास्ति	चकास्त	चकासति
मध्यमपुरुष	चकास्ति	चकास्थ	चकास्थ
उत्तमपुरुष	चकास्मि	चकास्य	चकास्मः

लोट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	चकास्तु	चकास्ताम्	चकासतु
मध्यमपुरुष	चकाधि, चकाद्धि	चकास्तम्	चकास्त
उत्तमपुरुष	चकासानि	चकासाव	चकासाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अचकात्	अचकास्ताम्	अचकास्तुः
मध्यमपुरुष	अचकात्, अचका	अचकास्तम्	अचकास्त
उत्तमपुरुष	अचकासम्	अचकास्व	अचकास्म

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	चकास्थात्	चकास्याताम्	चकास्युः
मध्यमपुरुष	चकास्या.	चकास्यातम्	चकास्यात
उत्तमपुरुष	चकास्याम्	चकास्याव	चकास्याम

लृट्—चकासिष्यति ।

अदादि आकारान्त सकर्मक परस्मैपदी धातु ।

पा रक्षणे (पालने)—रक्षा करना To protect.

("अधर्मान्मा पाहि" महाभा० ।)

लृट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	पाति	पात	पान्ति
मध्यमपुरुष	पासि	पाथ	पाथ
उत्तमपुरुष	पामि	पावः	पामः

लोट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	पातु	पाताम्	पान्तु
मध्यमपुरुष	पाहि	पातम्	पात
उत्तमपुरुष	पानि	पाव	पाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अपात्	अपाताम्	अपु, अपान्
मध्यमपुरुष	अपाः	अपातम्	अपात
उत्तमपुरुष	अपाम्	अपाव	अपाम

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	पायात्	पायाताम्	पायु
मध्यमपुरुष	पाया.	पायातम्	पायात
उत्तमपुरुष	पायाम्	पायाव	पायाम

लृट्—पास्यति ।

ॠ प्रति + पा + णिच्—(१) प्रतिपालने, रक्षणे, (२) प्रतीक्षा याञ्च, प्रतिपालयति, “अन्यासक्तो देव, तदवसर प्रतिपालयामि” शकुः ९, “प्रतिपालय माम्, यावदुपसपामि” वेगी० ६ । ॠ

* * * *

ख्या कथने—कथना To tell, declare—ख्याति, ख्यास्यति ।
“ख्याति साधु कथां हरे” ।

ॠ ख्या + णिच्, अग्नि + ख्या + णिच्—ख्यापने, विज्ञापने, प्रकाशने, ख्यापयति । आ + ख्या—कथने, वर्णने । उप + आ + ख्या—

चर्गने । प्रति + आ + रुपा—निराकारे , वाग्बीकारे । वि + आ +
रुपा—व्याख्यायाम् , विवरणे । सम् + रुपा—गगनायाम् । ११

मा माने (परिमाणे)—नापना To measure—माति , मास्यति ।
माति भूमि नरेन राजा । “न माति मानिनो यस्य पशुभिर्भुवलो-
दरे” ; “तनी ममुस्तत्र न चैतमद्विपस्तपोधनाभ्यागममम्भवा मुद ”
माघ० १ २३ —इत्यादिषु अन्तर्भागाद्ये अकर्मक. , न माति—न
परिमाण गच्छति, अतिरिच्यते इत्ययं (नह्यं समात्ता Is not
contained or comprised in, does not find room
or space in) ।

११ अनु + मा—अनुमाने । उप + मा—उपमाने । निर् + मा—
निर्माणे , “निर्माति य पर्यणि पूर्वमिन्दुम्” नै० ३ ३२ । परि +
मा—परिमाणे ; “उदरं परिमाति मुष्टिना” नै० २. ३९. । प्र +
मा—प्रमायाम् , निश्चयज्ञाने । ११

या गतौ (प्राप्ती च)—(१) जाना , (२) पाना To go , to at-
tain to—याति , यास्यति । (१) “यथै तदीयामवलम्ब्य चाहू-
ष्टिम्” २० ३ २६ ; (२) “उम्वात् तु यो याति नरो दरिद्रता एन
दारीण मृत स जीवति” मृच्छ० १ १० ।

११ या + जिच्—अतिवाहने, क्षरणे , यापयति । अति + या—अति-
क्रमे । अनु + या—अनुवर्त्तने ; अनुकरणे, सादृश्ये ; सहगमने च ।
अप + या—पलायने । अभि + या—समीपगमने ; आक्रमणे च ।
आ + या—आगमने , प्राप्ती च । उत् + या—उत्पाने, उद्गतौ ;
उत्पत्तौ च । प्रति + उत् + या—प्रत्युद्गमने, सम्मानार्थं पुरोगमने ।

प्र + या—प्रयाणे, गमने, प्रस्थाने । १५

रा दाने—देना To bestow—राति, रास्यति । “न राति रोगिणोऽ-
पथ्य वाञ्छतेऽपि भिषक्तम ” ।

ला आदाने (ग्रहणे)—लेना To take, receive—लाति ; लास्य-
ति । “ललु खड्गान्” म० १४ ९२ ।

अदादि आकारान्त अकर्मक परस्मैपदी धातु ।

द्रा पलायने—भागना To run away—द्राति, द्रास्यति ।

१५ नि + द्रा—निद्रायाम् । १५

भा दीप्तौ (शोभायाम्, प्रकाशे)—चमकना, जगहिर होना To
shine, to seem, appear—भाति, भास्यति । “तावद्भा
भारत्येभांति यावन्मापस्व नोदथ ” उद्गट , “उभुक्षितं न प्रति भाति
किञ्चित्” महाभा० ।

१५ आ + भा, प्रति + भा—शोभायाम्, स्फुरणे, प्रकाशे, अव-
भाते च । १५

वा गतौ (वायोर्गतौ)—हवा चलना To blow—वाति ; वास्यति ।
वाति वायु ।

१५ निर् + वा—निर्वाणे (शीतलतायाम्, शान्तौ, निर्वृत्तौ) ;
“निरवात् कृशानु ” राववपाण्डवीयम् ८ ४२ , “तस्य वपुर्जलाद्वां
पवनैर्न निर्ववाँ” माथ० १ ६६ । निर् + वा + णिच्—निर्वाणने
(छडा करना, बुझाना), निर्वापयति । १५

स्ना स्नाने (स्नाने)—नहाना To bathe—स्नाति, स्नास्यति । “स्ना-
ति गङ्गाजलैर्नित्यम्” ; “मृगतृष्याम्भसि स्नात.” ।

दरिद्रा दुर्गता (श्रेयस्तावन्म्याने, अकिञ्चनोभावे)—दरिद्र होना To be poor or needy—(लृ) दरिद्रति, दरिद्रित, दरिद्रिति; (लोद्) दरिद्रात्, दरिद्रिताम्, दरिद्रितु, (लृ) अदरिद्रात्, अदरिद्रिताम्, अदरिद्रितु, (लृ) दरिद्रिष्यति । "उपर्युपरि षश्यन्त सर्व एव दरिद्रति" हितो० २ २ ।

अदादि उकारान्त सकर्मक परस्मैपदी धातु ।

नु (णु) स्तुतौ—स्तव करना, प्रशंसा करना

To praise, extol

("सास्वती तन्मिथुने नुनाव" क० ७. १० ।)

लृ ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	नौति	नुत०	नुचन्ति
मध्यमपुरुष	नौपि	नुय	नुष
उत्तमपुरुष	नौमि	नुव	नुम०

लोद् ।

प्रथमपुरुष	नौतु	नुताम्	नुवन्तु
मध्यमपुरुष	नुहि	नुतम्	नुत
उत्तमपुरुष	नवानि	नवाव	नवाम

लृ ।

प्रथमपुरुष	अनौत्	अनुताम्	अनुवन्
मध्यमपुरुष	अनौ	अनुतम्	अनुत
उत्तमपुरुष	अनयम्	अनुय	अनुम

विधिलिङ् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	नुयात्	नुयाताम्	नुयु
मध्यमपुरुष	नुया	नुयातम्	नुयात
उत्तमपुरुष	नुयाम्	नुयाव	नुयाम

लृट्—नधिष्यति, नोष्यति ।

अदादि उकारान्त अकर्मक परस्मैपदी धातु ।

क्षु (इक्षु) शब्दे (क्षुते)—छोंकना To sneeze—क्षौति, क्षविष्यति ।
- क्षौति कफो ।

रु शब्दे (रुते)—आवाज् करना To sound, to hum (as bees)—रौति रवीति, रुत र्वीत, र्वन्ति, रुषिष्यति रोष्यति ।
“कणे कष्ट किमपि रौति शनैर्विचित्रम्” हितो० १ ८२ ।

अदादि सकर्मक आत्मनेपदी ।

‘अधि’-पूर्वक इ (अधीङ्) अध्ययने—पठना

To read, study

(अध्यापकाद्ब्याकरणमीते ।)

लृट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अधीते	अधीयाते	अधीयते
मध्यमपुरुष	अधीये	अधीयाये	अधीधे
उत्तमपुरुष	अधीये	अधीयहे	अधीमहे

लोट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अधीताम्	अधीयाताम्	अधीयताम्
मध्यमपुरुष	अधीष्व	अधीयाथाम्	अधीध्वम्
उत्तमपुरुष	अध्यथै	अध्ययावहे	अध्ययामहे

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अध्यैत	अध्यैयाताम्	अध्यैयत
मध्यमपुरुष	अध्यैथाः	अध्यैयाथाम्	अध्यैध्वम्
उत्तमपुरुष	अध्यथि	अध्यैवहि	अध्यैमहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	अधीयीत	अधीयीयाताम्	अधीयीरन्
मध्यमपुरुष	अधीयीथाः	अधीयीयाथाम्	अधीयीध्वम्
उत्तमपुरुष	अधीयीथ	अधीयीवहि	अधीयीमहि

लृट् ।

प्रथमपुरुष	अध्येष्यते	अध्येष्येते	अध्येष्यन्ते
मध्यमपुरुष	अध्येष्यसे	अध्येष्यथे	अध्येष्यध्वे
उत्तमपुरुष	अध्येष्ये	अध्येष्यावहे	अध्येष्यामहे

सू (पूट्) प्रस्तवे (जनने, उत्पादने)—जनना, पैदा
करना To bring forth, produce
(विश्वरूपा पल्लवं सूते । “कीर्तिं सूते सृजता वाक्” ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	सूने	सुघाते	सुघते
मध्यमपुरुष	सूपे	सुघाथे	सूध्वे
उत्तमपुरुष	सुवे	सूवहे	सूमहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	सूताम्	सुवाताम्	सुवताम्
मध्यमपुरुष	सूध्व	सुवाथाम्	सूध्वम्
उत्तमपुरुष	सुवै	सुवावहै	सुवामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	असून्	असुवाताम्	असुवत
मध्यमपुरुष	असूथा.	असुवाथाम्	असूध्वम्
उत्तमपुरुष	असुवि	असूवहि	असूमहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	सुवीत	सुवीयाताम्	सुवीरन्
मध्यमपुरुष	सुवीथा	सुवीयाथाम्	सुवीध्वम्
उत्तमपुरुष	सुवीय	सुवीवहि	सुवीमहि

लृट्—सविष्यते, सोष्यते ।

अनुवाद को—सुख दुःख निरन्तर जाता आता है । नदीके तटमे वृक्षावली शोभा पाती है । मैं तुझे विपद्से रक्षा करुगा । उस दिन मैंने गङ्गामे स्नान किया था । जो सबके भङ्गलको (द्वितीया) कामना करते हैं, सर्वान्त कारणसे उनकी (द्वितीया) प्रशंसा करनी चाहिये । भक्तगण

जकिन्तते महानावाकी स्तुति कते हैं । गङ्गादेवते महान्मा नोपका
(हितोदा) प्रभव किया या । उनके अनुग्रहे इन जीते हैं । दूतके दुःख-
ने सीताका ज्ञानदाद हनकर (भुक्त्वा) रामने दीर्घ विधान छोडा ।
लदके ! दुःखदोष कहह नत्र को ।

चन् (चक्षिङ्) क्यते—कहना To speak, tell.

(प्रायेशात् 'आङ्'-पूर्व —आच्छे धर्म धर ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	चष्टे	चक्षते	चक्षते
मध्यमपुरुष	चक्षे	चक्षथे	चक्षुः
उत्तमपुरुष	चक्षे	चक्षहे	चक्षन्हे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	चक्षाम्	चक्षताम्	चक्षताम्
मध्यमपुरुष	चक्ष्व	चक्षायाम्	चक्षुम्
उत्तमपुरुष	चक्षौ	चक्षवहे	चक्षानहे

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अचष्ट	अचक्षताम्	अचक्षत
मध्यमपुरुष	अचक्ष्ठाः	अचक्षायाम्	अचक्षुम्
उत्तमपुरुष	अचक्षि	अचक्ष्वहि	अचक्षन्हि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	चक्षीव	चक्षीयाताम्	चक्षीरन्
मध्यमपुरुष	चक्षीथाः	चक्षीयायाम्	चक्षीष्वन्

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
एचमपुरुष चक्षीय	चक्षीवहि	चक्षीमहि

लृट्—र्यास्यति, र्यास्यते, क्शास्यति, क्शास्यते ।

१० प्रति + आ + चक्ष्—प्रत्याख्याने, सम्बोधारे । वि + आ + चक्ष्—व्याख्याने, विवरणे । प्र, परि + चक्ष्—कीर्तने, कथने । ११

* * * *

ईङ् स्तुतौ—स्तव करना To praise—(लट्) ईष्टे, ईंशते, ईंशते, ईंशिये, ईंशये, ईंशिये, ईंशये, ईंशिये । (लृट्) ईंशियते ।

“तं संसारध्वान्तविनाशं हरिमांसे” शङ्कर ।

ईङ् ऐश्वर्ये (प्रभुतायाम्)—प्रभु होना, प्रभुत्व करना, हुकूमत करना To rule, be master of, govern, command—(लट्) ईष्टे, ईंशते, ईंशते ; ईंशिये, ईंशये, ईंशिये ; ईंशे, ईंशते, ईंशते । (लृट्) ऐश्वर्यायाम्, ऐश्वर्यायाम्, ऐश्वर्यायाम्, ऐश्वर्यायाम्, ऐश्वर्यायाम्, ऐश्वर्यायाम् । (विधि) ईंशत । (लृट्) ईंशियते । प्रायः पर्याये साय प्रयुक्त होता है, “नायं गात्राणामीष्टे” काद०, “अर्थाणामीशिये त्वं, वयमपि च गिरामांसे यावदर्थम्” मत्त० ।—(२) सामर्थ्ये (सकता) ; “आधुर्यमीष्टे हरिणान् पशून्तुम्” २० १८. १३, “न तत् सोढुमीष्टे” २० १४ ३८, “कमिन्दाने रमयितु न गुणाः ?” भा० ६. २४ ।

वस् आच्छादने (परिधाने)—पहरना To put on—वस्ते, वसते, वसते ; वस्ते, वसते, वसते, वसते, वस्ते, वस्ते । वसिष्यते । “वसने परिधूयरे वसाना” शङ्क० ७ २१ ।

आङ् + शास् (शाठ) इच्छायाम् ; आशिपि (इष्टार्थांशमने) च—(१) चाहना , (२) आशीर्वाद करना To desire ; to bless, pronounce or give a blessing—(लृट्) आशास्ते, आशासाते, आशासते, आशास्ते, आशासाथे, आशाष्वे, आशासे, आशास्वदे, आशास्महे । (लृट्) आशासिष्यने । (१) कुतस्तम्य विजयादन्यत्, यस्य भगवान् पुराणपुरो नारायण स्वयं मङ्गलान्याशास्ते ?” वेणी० ६ ; (२) “किमन्यदाशास्महे ? केवलं वीरप्रमत्ता भूया ” उत्तर० १ ।

ह्र (ह्रृच्) अपनयने (अपहृये, गोपने ;—चौष्ये इति वोपदेव)—(१) दूर करना , अपहरण करना ; (२) डिमाना To take away, deprive (one) of ; to conceal, hide—हुते, हुवाते, हुवते ऽ ह्योप्यते । प्रायेण ‘अप’-पूर्वक , ‘नि’-पूर्वकश्चाप्यं प्रयुज्यते ।

१५० अप + हु—अपलापे, अस्वीकारे, गोपने । नि + हु—गोपने । १५१

अदादि अकर्मकं आत्मनेपदी ।

आस् उपवेशने (घासे , स्थितौ , सत्तायाम्)—

(१) बैठना ; (२) रहना To sit, to

dwell, to remain, to exist

((१) आस्ते सिंहासने नृप ; (२) “यत्रास्मै शेवने, तत्रापमास्ताम्” काद० ; “जगन्ति यस्या सविकाराशनासत्र”

माघ० १. २३ , आकाशमास्ते ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	आस्ने	आमाने	आसते
मध्यमपुरुष	आस्से	आसाथे	आद्धे, आध्वे
उत्तमपुरुष	आसे	आस्वहे	आस्महे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	आस्ताम्	आसाताम्	आसताम्
मध्यमपुरुष	आस्व	आसायाम्	आङ्गम्, आध्वम्
उत्तमपुरुष	आसै	आसावहै	आसामहै

लृट् ।

प्रथमपुरुष	आस्त	आसाताम्	आसत
मध्यमपुरुष	आस्या	आसाथाम्	आङ्गम्, आध्वम्
उत्तमपुरुष	आसि	आस्वहि	आस्महि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	आसीत्	आसीयाताम्	आसीरन्
मध्यमपुरुष	आसीथा	आसीयाथाम्	आसीध्वम्
उत्तमपुरुष	आसीय	आसीवहि	आसीमहि

लृट्—आसिष्यते, आसिष्येते, आसिष्यन्ते ।

❦ लधि + आम्—उपदेशने, कथिवासे, अधिष्ठाने च, सङ्गक ।
 अनु + आत्—पश्चादुपदेशने ; उपामनायाञ्च ; सङ्गक । उर + आम्—
 उदासीव्रतायाम्, उपेक्षायाम् । उर + आम्—नर्मापोपदेशने ; उपामना-
 याम्, अनुष्ठाने च—“अग्निहोत्रमुवाप्ते” मनुः ११ ४२ । परि +

त्य + भास्-सेवादान् । †

शी (शीङ्) स्वप्ने (शयने)—सोना

To lie down, sleep.

(“किं नि.शङ् शेषे ।

शेषं वपन सनागतो नृत्यु ।

अथवा एष शयीथा

निष्प्रे जागर्ति जाह्नवी जननी ॥”

मानिनोः ४. ३८. ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	शेते	शयाते	शेरते
मध्यमपुरुष	शेपे	शयाथे	शेष्वे
उत्तमपुरुष	शये	शेवहे	शेमहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	शेताम्	शयाताम्	शेरताम्
मध्यमपुरुष	शेष्व	शयाथाम्	शेष्वम्
उत्तमपुरुष	शयै	शयावहै	शयामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अशेत	अशयाताम्	अशेरत
मध्यमपुरुष	अशेषा	अशयाथाम्	अशेष्वम्
उत्तमपुरुष	अशयि	अशेवहि	अशेमहि

विधिलिङ् ।

	एभञ्चन	विञ्चन	दहुञ्चन
प्रथमपुरुष	शयीत्	शयसात्	शयीत्
मध्यमपुरुष	शयीथा	शयीथासाम्	शयीथम्
उत्तमपुरुष	शयीथ	शयीथहि	शयीमहि

लृट्—शयिष्यते, शयिष्येते, शयिष्यन्ते ।

❦ अति + शी—अतिशय, अतिवचन, तस्मिन् । अधि + शी—अधिष्ठाने (सक०) । शृ + शा—शृणुय, शृणुय (सक०) । मय + शी—मयाय । ❦

अदादि चञ्च क उभयपदी ।

न्तु (ष्टुञ्) स्तुता (अश्लोकात्)—स्तव करना

To praise extol, glorify

("किं विद्मः, तत्र तत्रानि कथं क्षीरार्णव ।

स्वामिन्" ऋषिर्गो १ ४० ।)

(परस्मैपद्)

लृट् ।

	एभञ्चन	विञ्चन	वहुञ्चन
प्रथमपुरुष	स्तोति, स्तवीति	स्तुत	स्तुयन्ति
मध्यमपुरुष	स्तोथि, स्तवीथि	स्तुथ	स्तुथ
उत्तमपुरुष	स्तोमि, स्तवीमि	स्तुव	स्तुमः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	स्तोतु, स्तवीतु	स्तुताम्	स्तुयन्तु
------------	-----------------	----------	-----------

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	स्तुहि	स्तुतम्	स्तुत
उत्तमपुरुष	स्तवानि	स्तवाव	स्तवाम

लट् ।

प्रथमपुरुष	अस्तौत्, अस्तवीत्	अस्तुताम्	अस्तुवन्
मध्यमपुरुष	अस्तौ, अस्तथोः	अस्तुतम्	अस्तुत
उत्तमपुरुष	अस्तधम्	अस्तुध	अस्तुम

विधिलिट् ।

प्रथमपुरुष	स्तुयात्	स्तुयाताम्	स्तुयु-
मध्यमपुरुष	स्तुया	स्तुयातम्	स्तुयात
उत्तमपुरुष	स्तुयाम्	स्तुयाव	स्तुयाम

लृट्—स्तोष्यति ।

(आत्मनेपद)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	स्तुते	स्तुयाते	स्तुयते
मध्यमपुरुष	स्तुपे	स्तुयाथे	स्तुध्वे
उत्तमपुरुष	स्तुधे	स्तुवहे	स्तुमहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	स्तुताम्	स्तुयाताम्	स्तुयताम्
मध्यमपुरुष	स्तुप्वा	स्तुवाथाम्	स्तुध्वम्
उत्तमपुरुष	स्तवै	स्तवावहै	स्तवामहै

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अस्तुत	अस्तुषाताम्	अस्तुवत
मध्यमपुरुष	अस्तुथा.	अस्तुथाथाम्	अस्तुष्वम्
उत्तमपुरुष	अस्तुधि	अस्तुधहि	अस्तुमहि

विधिलिङ् ।

प्रथमपुरुष	स्तुवीत	स्तुवीयाताम्	स्तुवीरन्
मध्यमपुरुष	स्तुवीथा.	स्तुवीयाथाम्	स्तुवीध्वम्
उत्तमपुरुष	स्तुवीय	स्तुवीधहि	स्तुवीमहि

लृट्—स्तोस्यते, स्तोष्येते, स्तोष्यन्ते ।

११ प्र+स्तु—प्रस्तावे, प्रारम्भे । ११

वृ (वृञ्) कथने—बोलना To tell, to declare

(“ब्रुवते हि फलेन साधवो न तु कण्ठेन निजो-

पयोगिताम् ।” नं० २ ४८ ।)

(परस्मैपद्)

लट् ।

प्रथमपुरुष	ब्रवीति, आह*	ब्रूत, आहतु	ब्रुवन्ति, आहुः
मध्यमपुरुष	ब्रवीषि, आत्थ	ब्रूथ, आहथु	ब्रूथ
उत्तमपुरुष	ब्रवीमि	ब्रूव	ब्रूम

* शिष्टप्रयोगे ‘आह’-पद अतीतकालने प्रयुक्त होता है, यथा—
 “अयाह वणी” (आह—उवाच इत्यर्थ) कु० ५ २५—अत्र टीकयाम्-
 “आहेति भूतार्थे ‘लट्’-प्रयोगे आन्तिमूल इत्याह वामन” इति महिनाथ ।

लोट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अमीनु	तृणाम्	धृवन्तु
मध्यमपुरुष	इहि	अनन्	धुव
उत्तमपुरुष	असि	अस्य	असाम

लट् ।

प्रथमपुरुष	अमीन्	अधनाम्	अधुवन्
मध्यमपुरुष	अमी	अध्वम्	अध्वन्
उत्तमपुरुष	अस्यम्	अस्य	अस्यम्

विधिलिट् ।

प्रथमपुरुष	शूयात्	शूयाताम्	शूयु
मध्यमपुरुष	शूया	शूयातम्	शूयात
उत्तमपुरुष	शूयाम्	शूयात्र	शूयाम

लृट्—उच्यति ।

(आत्मनेपद)

लृट् ।

प्रथमपुरुष	शूने	शूयाने	शूयन्ते
मध्यमपुरुष	शूये	शूयाथे	शूये
उत्तमपुरुष	शूये	शूयद्	शूयन्ते

लोट् ।

प्रथमपुरुष	शूनाम्	शूराताम्	शूरताम्
मध्यमपुरुष	शून्	शूयाथान्	शूयान्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	वने	वदामहे	वसानहे
		लङ् ।	

प्रथमपुरुष	अभू	अभूताताम्	अभूयन्
मध्यमपुरुष	अभूथा	अभूथाथाम्	अभूथम्
उत्तमपुरुष	अभूथि	अभूथहि	अभूथहि
		विभिलिङ् ।	

प्रथमपुरुष	ब्रूवीत	ब्रूवीयाताम्	ब्रूवीरन्
मध्यमपुरुष	ब्रूवीथा	ब्रूवीयाथाम्	ब्रूवीथ्वम्
उत्तमपुरुष	ब्रूवीथ	ब्रूवीथहि	ब्रूवीथाहि
		लृट्—बह्व्यते ।	

दुह्. प्रपूरणे (दोहने, निष्कासने)—(१) दोहना, निःशालना,
 (२) पूर्ण करना To milk or squeeze out,
 extract, to yield or grant (any
 desired object).

(१) द्विकर्मक—“एवो घटोक्षारपि मा दुहन्ति” भ० १२ ७३,
 “क्षानि धरित्रीं दुदुहु” कु० १. २, (२)
 “कामान् दुग्धे सूता वारु” ।)

(परस्मैपद्)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	दोषिथ	दुग्ध	दुहन्ति

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	धोक्षे	दुग्धः	दुग्ध
उत्तमपुरुष	दोक्षि	दुह्व	दुह्व
		लोट् ।	
प्रथमपुरुष	दोग्धु	दुग्धाम्	दुहन्तु
मध्यमपुरुष	दुग्धि	दुग्धम्	दुग्ध
उत्तमपुरुष	दोहानि	दोहाव	दोहाम
		लङ् ।	
प्रथमपुरुष	अधोक्	अदुग्गाम्	अदुहन्
मध्यमपुरुष	अधोक्	अदुग्गम्	अदुग्ध
उत्तमपुरुष	अदोहम्	अदुह्व	अदुह्व

विधिलिङ्—दुह्यात् । लृट्—धोक्ष्यति ।

(आत्मनेपद)

लृट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	दुग्धे	दुहाते	दुहते
मध्यमपुरुष	धुक्ते	दुहाथे	धुग्ध्वे
उत्तमपुरुष	दुहे	दुह्वहे	दुह्वहे
		लोट् ।	
प्रथमपुरुष	दुग्धाम्	दुहाताम्	दुहताम्
मध्यमपुरुष	धुक्त्र	दुहाथाम्	धुग्ध्वम्
उत्तमपुरुष	दोहै	दोहावहै	दोहामहै

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अदुग्ध	अदुहाताम्	अदुहत
मध्यमपुरुष	अदुग्धा	अदुहायाम्	अधुग्धम्
उत्तमपुरुष	अदुहि	अदुहहि	अदुहहि

विधिलिट् ।

प्रथमपुरुष	दुहीत	दुहीयाताम्	दुहीन्
मध्यमपुरुष	दुहीथा	दुहीयाधाम्	दुहीध्वम्
उत्तमपुरुष	दुहोव	दुहोवहि	दुहीमहि

लृट्—धोद्यते ।

दिह् लेपने, उगवये (वृद्धौ, वृद्धिभागे) च—(१) लोपना, (२) वदना (अक०), वदाना To anoint, smear, to increase—
देग्धि, दिग्धे, धेक्षति, धेक्षते । (१) देग्धि सौध सुग्या लेरु, (२) इग्धि दिग्धे देह (प्रतिदिनमुगधित स्यात्) ।

१११ सम् + दिह्—सन्नेहे, सनाये । १११

लिह् आस्वादाने (लेहने)—चाटना To taste, to lick.

("पिण्डमुत्सृज्य करं लेडि" इति न्याय ।)

(परस्मैपद्)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	लेडि	लीढ	लिहन्ति
मध्यमपुरुष	लेडि	लीढ	लीढ

	परमपुरुष	लिहाते	लिहते
उत्तमपुरुष	लेति	लिह लेट् ।	लित
प्रथमपुरुष	लेत्	लीढाम्	लिहन्तु
मध्यमपुरुष	लीढि	लीढम्	लीढ
उत्तमपुरुष	लेहाति	लेहात् लड् ।	लेहाम्
प्रथमपुरुष	अलेत्	अलीढाम्	अलिहन्
मध्यमपुरुष	अलेत्	अलीढम्	अलीढ
उत्तमपुरुष	अलेहम्	अलिह	अलिह

विधिलिङ्—लिह्यान् । लृट्—लेद्वन्ति ।

(धात्मनेपद)

		लट् ।	
प्रथमपुरुष	लीढे	लिहाते	लिहते
मध्यमपुरुष	लिहे	लिहाथे	लीढे
उत्तमपुरुष	लिहे	लिहहे लोट् ।	लिहरे
प्रथमपुरुष	लीढाम्	लिहाताम्	लिहताम्
मध्यमपुरुष	लिह्व	लिहाथाम्	लीढम्
उत्तमपुरुष	लेहै	लेहावहै	लेढामहै
		लड् ।	
प्रथमपुरुष	अलीढ	अलिहाताम्	अलिहत

	एकवचन	लिट्	वचन
मध्यमपुरुष	अलिङा	अलिङा	अलिङा
उत्तमपुरुष	अलिङि	अलिङि	अलिङि
		निबिडिड ।	
प्रथमपुरुष	लिङीत	लिङीयातान्	लिङीरन्
मध्यमपुरुष	लिङीथा	लिङीयाथान्	लिङीन्वम्
उत्तमपुरुष	लिङीय	लिङीयहि	लिङीमहि

लृट्—लेख्यने ।

अनुवाद करो—विपद् सम्पद्म ईश्वर लब्धा रक्षा करता है, और बट रुबके पाप पुण्यकी (द्वितीया) सत्पा करता है । दक्षिणमे मलय पर्वत आता है । मेर शरीरमे आनन्द नहीं समाता । वृक्षकी शाखाने चिडियाँ ख करती थीं । आओ, इनलोग ईश्वरको (द्वितीया) स्तुति कर ।



ह्रादि ।

क्रियाघटन-सूत्र ।

[इस प्रकरणमे यथासम्भव पूर्व पूर्व प्रकरणोक्ते धार (ः) चिह्नित सूत्रोंका कार्य होगा ।]

३४१ । चतुर्लकार परे रहनेसे, कर्तृवाच्यमे ह्रादिगणीय धातु अभ्यस्त (द्विरुक्त) होता है, और अभ्यस्त होकर, हु—शुडु, भी—विभी, नृ—विभृ, हा—जहा, ही—जिही, दा—ददा, धा—दधा, निज्—नेनिज् और विज्—वेविज् होता है, यथा—हु + ति = शुडु + ति = शुडोति (३२२सू०) ।

३४२ । अगुण स्वर परे रहनेसे, 'हु' धातुके उच्चारके स्थानमे 'हृ' होता है; और 'हु' धातुके परस्थित 'हि' के स्थानमे 'धि' होता है; यथा—जुहु + अन्ति = जुहति (३२६ सू०), जुहु + हि = जुहुधि ।

३४३ । लट्-आदिका अगुण व्रजजनवर्ग परे रहनेसे, परस्मैपदी अभ्यस्त 'हा' और 'भी' धातुके अन्तमे विकल्पसे 'ह' होता है; यथा—विभी + त = विभित, (पत्रे) विभीत, जहा + त = जहित, (पत्रे)—

३४४ । अगुण स्वर परे रहनेसे, अभ्यस्त आकारान्त धातुके आकार-वा लोप होता है, और व्रजजनवर्ग परे रहनेसे, आकारके स्थानमे 'ई' होता है, परन्तु 'टा' और 'धा' धातुका आ—ई नहीं होता, यथा—जहीत ; (अगुण स्वर) जहा + अन्ति = जहित ।

३४५ । # अगुण स्वर परे रहनेसे, अनेकप्वराविशिष्ट धातुके 'इ' 'ई' के स्थानमे 'य्' होता है; यथा—विभी + अन्ति = विभ्यति; जिही + अन्ति = जिहियति (३३२ सूत्रानुसार 'ह्य्') ।

३४६ । विधिलिट्का 'य' परे रहनेसे, परस्मैपदी 'हा' धातुके अन्तमे आकारका लोप होता है, और 'हि' परे हा—जहा, जहि तथा जही होता है ।

३४७ । म, घ, त और थ परे रहनेसे, दधा—धद्, और ददा—दद् होता है, और 'हि' परे रहनेसे, ददा—दे, और दधा—धे होता है; यथा—दधा + ते = धत्ते; ददा + ते = दत्ते, दधा + हि = धेहि; ददा + हि = देहि ।

३४८ । लट्-आदिका अगुण स्वर परे रहनेसे, अभ्यस्त (द्विरल्य) धातुको उपसर्गका गुण नहीं होता; यथा—नेनिञ् + आनि = नेनिञ्चानि ।

३४९ । चतुर्लकार परे रहनेसे, कर्त्तवाच्यमे मा—मिमा, और आत्मनेपदी हा—मिहा होता है ।

ह्लादि सकर्मक परस्मैपदी धातु ।

हु दाने (प्रक्षेपे, वैधे आधारे देवतोद्देश्यकहविस्त्यागे, होमे)—हवन करना To offer or present

(as an oblation to fire), sacrifice

(जुहोति घृतमग्नौ कृष्णाय होता , “जशधर सन्

जुहुर्धाह पावकम्” भा० १ ४४ ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जुहोति	जुहुत	जुह्वति
मध्यमपुरुष	जुहोषि	जुहुथ	जुहुथ
उत्तमपुरुष	जुहोमि	जुहुव	जुहुम-

लोट् ।

प्रथमपुरुष	जुहोतु	जुहुताम्	जुह्वतु
मध्यमपुरुष	जुहुधि	जुहुतम्	जुहुत
उत्तमपुरुष	जुह्वानि	जुह्वाथ	जुह्वाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अजुहोत्	अजुहुताम्	अजुह्वु
मध्यमपुरुष	अजुहो.	अजुहुतम्	अजुहुत
उत्तमपुरुष	अजुह्वम्	अजुहुव	अजुहुम

विभिरिति ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जुहुयात्	जुहुयाताम्	जुहुयन्
मध्यमपुरुष	जुहुया	जुहुयातम्	जुहुयान
उत्तमपुरुष	जुहुयाम्	जुहुयाव	जुहुयान

लृट्—होष्यति ।

हा (श्रोहान्) त्यागे—छोटना To leave, abandon.

("मूढ । जशीहि धनागमवृत्त्याम्" माहमुद्रम् ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जहाति	जहिन , जहेत	जहनि
मध्यमपुरुष	जहासि	जहिय	जहिय
उत्तमपुरुष	जहामि	जहिय	जहिस

लोट् ।

प्रथमपुरुष	जहातु	जहिताम्	जहतु
मध्यमपुरुष	जहिहि	जहितम्	जहित
	जहीहि		
	जहाहि		
उत्तमपुरुष	जहानि	जहाव	जहाम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अजहात्	अजहिताम्	अजहु
मध्यमपुरुष	अजहा	अजहितम्	अजहित

	प्रेतवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	अजरात्	प्राशिव	प्रजहिम

निद्रिद्रिट्—उह्यात् । लृट्—हास्यति ।

••• वयञ्चि—न्यूनाभावे को व 'हीयते हि मणिः तान ! तीर
नह समागन्तव्यं' श्लो० ४० । •••

ल्लादि अकर्मक परस्मैपदी धातु ।

भी नि- भये—डरना, to fear, to be afraid of
('सुभादिभ्ये किं वात् । - व भीत विभुजति' ।)

लृट् ।

	पदवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	विभेति	विभीत *	विभ्यति
मध्यमपुरुष	विभेसि	विभीथ	विभीथ
उत्तमपुरुष	विभेति	विभीव	विभीम

लोट् ।

	पदवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	विभेतु	विभीताम्	विभ्यतु
मध्यमपुरुष	विभीहि	विभीतम्	विभीत
उत्तमपुरुष	विनयानि	विनयाव	विभयान

लृट् ।

	पदवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अविभेत्	अविभीताम्	अविभ्यतु
मध्यमपुरुष	अविभे	अविभीतम्	अविभीत

* अगुण व्यञ्जनवर्ण परे रहनेके, 'भी' धातुके ईकारके स्थानमे विभ्यत से ह'व डर होता है, यथा—विभीत, विभित ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	अविमयम्	अविमौव	अविमीमः
	विधिलिङ् ।		
प्रथमपुरुष	विभीयात्	विभीयाताम्	विभीयुः
मध्यमपुरुष	विभीया	विभीयातम्	विभीयात
उत्तमपुरुष	विभीयाम्	विभीयाव	विभीयाम

लृट्—भेष्यति ।

हो लज्जायाम्—शर्मिन्दा होना To blush,
to be ashamed.

(स्वयम् अथवा पञ्चमी पंथीके साथ प्रयुक्त होता है ; “जिहेम्यार्थ-
पुत्रेण सह गुरमनीप गन्तुम्” दशु० ७ , ‘ जिहेति नीचमदेभ्य ’,
“अन्योन्यस्यापि जिहीन , किं पुन सहनासिनाम्”

मा० ११. ८८ ।)

लृट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जिहेति	जिहीत	जिहियति
मध्यमपुरुष	जिहेपि	जिहीथ	जिहीथ
उत्तमपुरुष	जिहेमि	जिहीव	जिहीम

लोट् ।

प्रथमपुरुष	जिहेतु	जिहीताम्	जिहियतु
मध्यमपुरुष	जिहीहि	जिहीतम्	जिहीत
उत्तमपुरुष	जिहयारि	जिहयाव	जिहयाम

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अजिहेत्	अजिह्वीताम्	अजिह्वयु
मध्यमपुरुष	अजिहे	अजिह्वीतम्	अजिह्वीत
उत्तमपुरुष	अजिह्वयम्	अजिह्वीव	अजिह्वीम

विधिलिट्—जिह्वीयात् । लृट्—हेष्यति ।

ह्लादि सकर्मक आत्मनेपदी धातु ।

मा माने—मापना, नापना To measure

(“व्यधित मिमान इवावर्ति पदानि” भाष० ७ १३ ,

“पुर रुह्नानामिमोत लोचने” कु० ५ ५१ ।)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	मिमीते	मिमाते	मिमते
मध्यमपुरुष	मिमीथे	मिमाथे	मिमिध्वे
उत्तमपुरुष	मिमै	मिमिबहे	मिमिमहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	मिमिताम्	मिमाताम्	मिमताम्
मध्यमपुरुष	मिमिध्व	मिमाथाम्	मिमिध्वम्
उत्तमपुरुष	मिमै	मिमावहे	मिमामहे

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अमिमित	अमिमाताम्	अमिमत
मध्यमपुरुष	अमिमिथा	अमिमाथाम्	अमिमिध्वम्

	एवञ्च	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	अभिहित्	अभिर्मावहि	अभिमीमहि
		विप्रिलिङ् ।	
प्रथमपुरुष	मिर्मा	मिमावाताम्	मिमीरन्
मध्यमपुरुष	मिर्मा ।	मिर्मावाथाम्	मिमीध्वन्
उत्तमपुरुष	मिर्मा	मिर्मावहि	मिमावहि

लृट्—माभ्यन्ते ।

❦ ध्रु + न — अजात । "अग्निः प्रकृतिं त्वाहृच्छिद्रेतुमिमीमहे" महाभा० । वष + ना — उपमान । निर् + ना — निर्माणे ; "सृष्टिव्यति-
विश्रमस्योच्छ्रया निर्माणे" महाभा० १ ६ । परि + ना — परि-
माणे ; प्र + न् — प्रेषणार्थे , "न परोपहितं न च स्वतः प्रमिमींस्तु न
वापनेऽस्त्वया" भाष० १६ ४० । ❦

हा (ग्रीहात्) गतौ—जाना To go, move.

("जिहीते नज्जाध्वम्" ।)

लृट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जिहीते	जिहाते	जिहने
मध्यमपुरुष	जिहीरे	जिहाथे	जिहीध्वे
उत्तमपुरुष	जिहे	जिहीमहे	जिहीमहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	जिहीताम्	जिहाताम्	जिहताम्
मध्यमपुरुष	जिहीष्व	जिहाष्वाम्	जिहीध्वन्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	जिहै	जिहावहै	जिहामहै

लट् ।

प्रथमपुरुष	अजिहीत	अजिहाताम्	अजिहत
मध्यमपुरुष	अजिहीथाः	अजिहाथ्याम्	अजिहीथ्यम्
उत्तमपुरुष	अजिहि	अजिहीषहि	अजिहीमहि

विधिलिङ—जिहीत, जिहीयाताम्, जिहीरन् ।

लृट्—हास्यते ।

१५ उप+हा—आगमने; उपाजिहीया न महीतलं यदि" माघ०
१. ३७ । उन्+हा—उदये, "उजिहीने दिमाद्यु" मशाना० ४ ३९ ।
अपगमे च, "उजिहानजोविताम्" मालती० १० । १५

ह्रादि सकर्मक उभयपदी धातु ।

भृ (डुभृञ्) धारणे; पोषणे च—(१) धारण करना;
(२) पोषण करना To bear, to maintain.

((१) "दृमो विभर्ति पर्यां खलु वृष्टकेन" चौरपञ्चाशिका ५०;

(२) सार्ध्यां मास्यां विभृयात्" मनु० ९. १९ ।)

(परस्मैपद)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	विभर्ति	विभृतः	विभ्रति
मध्यमपुरुष	विभर्षि	विभृथ.	विभृथ
उत्तमपुरुष	विभर्मि	विभृव	विभृमः

लोट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	विभर्त्तुं	विभृताम्	विभ्रतु
मध्यमपुरुष	विभृहि	विभृतम्	विभृत
उत्तमपुरुष	विभरारि	विभराय	विभराम

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अविभ	अविभृताम्	अविभरुः
मध्यमपुरुष	अविभ	अविभृतम्	अविभृत
उत्तमपुरुष	अविभरम्	अविभृव	अविभृम

विधिलिङ्—विभृयात्, विभृयानाम्, विभृयुः ।

लृट्—भरिष्यति ।

(आत्मनेपद्)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	विभृते	विभ्राते	विभ्रते
मध्यमपुरुष	विभृषे	विभ्राथे	विभृध्वे
उत्तमपुरुष	विभ्रे	विभृवहे	विभृमहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	विभृताम्	विभ्राताम्	विभ्रताम्
मध्यमपुरुष	विभृष्व	विभ्राथाम्	विभृध्वम्
उत्तमपुरुष	विभरे	विभरावहे	विभरामहे

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अविभृत	अविभ्राताम्	अविभ्रत
मध्यमपुरुष	अविभृथा	अविभ्राथाम्	अविभृथम्
उत्तमपुरुष	अविभ्रि	अविभृवहि	अविभ्रमहि

विधिलिट्—विभ्रीत, विभ्रीयाताम्, विभ्रीरन् ।

लृट्—भरिष्यते ।

शुः सम् + भृ—सञ्चये, सघ्ने, निष्पादने, उत्पादने च । शुः

दा (डुदाञ्) दाने—देना To give.

("अवकाश किलोदन्वान् रामायाम्यर्पितो ददौ" २० ४ १८ ,

"कथमस्य स्तन दास्ये ?" इतिवशम् ।)

(परस्मैपद)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ददाति	दत्त	ददति
मध्यमपुरुष	ददासि	दत्थ	दत्थ
उत्तमपुरुष	ददामि	दद्व	दद्यः

लोट् ।

प्रथमपुरुष	ददातु	दत्ताम्	ददतु
मध्यमपुरुष	देहि	दत्तम्	दत्त
उत्तमपुरुष	ददानि	ददाथ	ददाम

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अददात्	अदत्ताम्	अददुः
मध्यमपुरुष	अददा.	अदत्तम्	अदत्त
उत्तमपुरुष	अददाम्	अदत्थ	अदत्थ

विधिलिङ्—दद्यात्, दद्याताम्, दद्युः ।

लृट्—दास्यति ।

(आत्मनेपद)

लृट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	दत्ते	ददाने	ददते
मध्यमपुरुष	दत्से	ददाथे	दद्वे
उत्तमपुरुष	ददे	ददहे	ददहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	दत्ताम्	ददाताम्	ददताम्
मध्यमपुरुष	दत्स्य	ददाथाम्	दद्वम्
उत्तमपुरुष	ददै	ददावहे	ददामहे

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अदत्	अददाताम्	अददत्
मध्यमपुरुष	अदत्था.	अददाथाम्	अदद्वम्
उत्तमपुरुष	अददि	अदद्वहि	अदद्वहि

विधिलिङ्—ददीत्, ददीयाताम्, ददीरन् ।

लृट्—दास्यते ।

१ आ + दा, उप + आ + दा—ग्रहणे, स्वीकरणे, आत्मनेपदी ।
वि + आ + दा—व्यादाने, प्रदाने । प्र + दा—प्रदाने । सम् + प्र +
दा—सम्प्रदाने, समन्वयत्वात् । ११९

धा (डुधाञ्) (१) धारणे, (२) पोषणे च To hold
up, sustain, to maintain.

((१) "निरसि मसीपटल दधाति दीप" भाषिणी० १ ७४, (२)

"सम्पद्विनिमयेनोमौ दधतुमुंवनद्वयम्" २० १ २६ ।—(३) स्थापने
To put, place, "विज्ञातदोषेषु दधाति दण्डम्" महाभा० ;

"धत्ते चक्षुमुंकुलिनि रणटकोकिले बालचूते" मालती० ३ १२,

"धमे दध्यान्मन " मनु० १२ २३,—(४) दाने To be

stow anything upon one, "धुष्यां लक्ष्मी-

मय मयि भृश धेहि देव ! प्रसीत" मालती० १.५. १)

(परस्मैपद)

लृट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	दधाति	धत्त.	दधति
मध्यमपुरुष	दधासि	धत्थ.	धत्थ
उत्तमपुरुष	दधामि	दध्वः	दधम

लोट् ।

प्रथमपुरुष	दधातु	धत्ताम्	दधतु
मध्यमपुरुष	धेहि	धत्ताम्	धत्त

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	दधाति	दधाव	दधाम
		लङ् ।	
प्रथमपुरुष	अदधात्	अधत्ताम्	अदधु
मध्यमपुरुष	अदधा.	अधत्तम्	अधत्त
उत्तमपुरुष	अदधाम्	अदध्व	अदध्म

विधिलिङ्—दध्यात्, दध्याताम्, दध्युः ।

लृट्—धास्यति ।

(आत्मनेपद्)

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	धत्ते	दधाते	दधते
मध्यमपुरुष	धत्से	दधाथे	धत्से
उत्तमपुरुष	दधे	दध्वहे	दध्महे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	धत्ताम्	दधाताम्	दधताम्
मध्यमपुरुष	धत्स्व	दधाथाम्	धत्स्व
उत्तमपुरुष	दधै	दधावहे	दधामहे

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अधत्त	अदधाताम्	अदधत्
मध्यमपुरुष	अधत्थाः	अदधाथाम्	अधत्तुम्
उत्तमपुरुष	अदधि	अदध्वहि	अदध्महि

विधिलिङ्—दधोत्, दधीयाताम्, दधीरन् ।

लृट्—घास्यते ।

१५ अन्तर् + घा—अभ्यन्तरीकरणे, स्वीकरणे, “विश्वम्भरे देवि + मामन्तर्धातुमर्हसि” २० १९, ८१, आवरणे, आच्छादने, “पितुरन्तर्दधे कीर्त्ति शीलवृत्तिसमाधिमि” महाभा०, अन्तर्धाने च (छिप जाना, गायब होना, पोशीदा होना—अक०)—आत्मनेपदी (पञ्चमीके साथ); —कर्मकत्तरि, अन्तर्धीयते, “इषुभिर्व्यतिसर्पद्रिरादित्योऽन्तर्धीयत” महाभा०, “रात्रिरादित्योदयेऽन्तर्धीयते” निरुक्तम् । तिरस् + घा—अन्तर्धाने । पुरस् + घा—पुरस्करणे, अप्त स्यापने । अर् + घा—श्रद्धायाम्, विद्वासे (द्वितीयान्त वस्तुके साथ), “क श्रद्धास्यति मूत्तार्थम् ?” मृच्छ० ३. २५. । अपि + घा—आच्छादने । अभि + घा—आलयने, कथने । अब + घा—स्थापने, प्रणिधाने, मन सयोगे च, आत्मनेपदी । वि + अब + घा—व्यवधाने, अन्तरे । आ + घा—स्थापने, धारणे, अर्पणे, उत्पादने च । सम् + अर + घा—एकाग्रीकरणे, सिद्धान्ते, विरोधभङ्गने, प्रतिकारे च । उप + घा—स्थापने, उपधानीकरणे, प्रयोगे, अर्पणे च । नि + घा—स्थापने, व्याप्ते । प्र + नि + घा—स्थापने, अर्पणे, प्रसारणे च । सम् + नि + घा—स्थापने, —कर्मकत्तरि—उपस्थितौ, सन्निधीयते । परि + घा—परिधाने । वि + घा—करणे, अनुष्ठाने । अनु + वि + घा—अनुवर्त्तने । प्रति + वि + घा—प्रतिकारे । सम् + घा—संयोजने, मिलने, सौहार्दस्थापने, आरोपणे (बाणादीना धनुषि), उत्पादने च । अति + सम् + घा—वृद्धने, प्रवारणे । अनु + सम् + घा—अन्वेषणे, विन्दने, विचारणे, अनुसरणे च । अभि + सम् + घा—उद्देशे, अभिप्राये, वचना-

वार, वसोऽरणे च । १५

* * * *

निञ् (गिजिर्) शौचे (निर्मलीकरणे)—धोना To wash, cleanse, purify—(लट्) नेनेक्ति, निनिक्च, नेनिजति; नेनिक्के, नेनिजाते, नेनिजते । (लोट) नेनेचु, हि—नेनिग्चि, आनि—नेनिजानि । (लृट्) अनेनद्, अनेनिसाम्, अनेनिजु, अम्—अनेनिजम्, अनेनिक । (विधिलिङ्) नेनिज्यात्, नेनिजोत । (लृट्) नेक्षति, नेक्षते ।

१५ अच + निञ्—अचनेजने, प्रक्षालने । निर् + निञ्—निगेजने, शोधने । १५

विञ् (विजिर्) वृथककरणे—अलग करना To separate—इसके रूप 'निञ्' धातुवद ।

विप् (विप्लृ) व्याप्तौ—व्याप्त होना, फैलना To pervade—(लट्) वेवेटि, वेवेटि, वेविपति; वेवेटि । (हि) वेवेटि । (लृट्) अवेवेद्, अवेवेटाम्, अवेवेपि, अम्—अवेवेपम्; अवेवेपि । (विधिलिङ्) वेवेप्यात्, वेवेपोत । (लृट्) वेक्षति, वेक्षते ।

१५ परि + विप् + गिञ्—परिवेपणे, ब्रह्माष्टारसमरंणे (परोक्षता) ; वेष्टने च; परिवेपति । १५

अनुवाद फती—देवतालोग घृत भक्षण करते हैं । धूमसे अग्निमें हवन करते । ब्राह्मणोंने प्रतिदिन होम करना चाहिये । छोटे बड़े सब कोई दुष्टसे उरते हैं । देवतालोग अटोते बड़े दग्ने थे । शतवर्षमना (द्वितीया) त्याग दाता । मुने दो दक्षदीक्षिते । उन्होंने मुने ऐसा कहा है । अब करदे पहनी ।

शत्रुके साथ मन्धि नहीं करना । अनन्तर वे अन्तर्हित हो गये । गुरु और शास्त्रके वाक्यमे श्रद्धा करनी चाहिये ।

✽ एक कालकी क्रिया समझानेसे, प्रथम, मध्यम, उत्तम— इन तीन पुरुषोंके बीचमे इसी क्रममे परवर्ती पुरुषके अनुसार क्रियाका पुरुष, और समष्टि सङ्घाके अनुसार क्रियाका वचन होगा ; अर्थान् कर्त्ता—प्रथम और मध्यम पुरुष होनेसे मध्यम पुरुषके अनुसार, कर्त्ता—प्रथम और उत्तम पुरुष होनेसे उत्तम पुरुषके अनुसार, और कर्त्ता—प्रथम, मध्यम तथा उत्तम पुरुष होनेसे उत्तम पुरुषके अनुसार क्रिया होगी, यथा—(वह और तू जाओ) स त्वञ्च यातम्, (वह और मैं जायें) स च अहञ्च याव ; (वह, तू और मैं जाये) स त्वम् अहञ्च याम ।

कर्त्ता व्यस्तरूपसे अर्थान् अनियमसे विन्यस्त होनेपरभी इसी नियमानुसार क्रिया होगी, यथा—(तू और वह जाओ) त्व स च यातम्, (मैं और तू जायें) अहञ्च त्वञ्च याव, (मैं, तू और वह जायें) अह त्व स च याम ।*

* पुलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग पदका एकही विशेषण होनेसे, वह पुलिङ्ग होता है ; और उनमे एकके अथवा दोनोंके साथ ह्रस्वलिङ्ग पद रहनेसे, उनका विशेषण ह्रस्वलिङ्ग होता है । यथा—महान्तौ वृक्ष शाखा च, महान्तौ वृक्ष शाखा प्रशाखाश्च, महती वृक्ष पत्रञ्च, महाम्नि वृक्ष शाखा पत्रञ्च । वृक्ष शाखा च पतितौ, वृक्ष फलञ्च पतिने, वृक्ष शाखा फलञ्च पतितानि ।

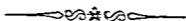
ह्रस्वलिङ्गके स्थलमे विकल्पसे एकवचनान्त होता है । यथा—महत् वृक्ष

* अथ ; महत् वृक्ष शाखा पत्रञ्च ।

अनुवाद को—तू और मैं चन्द्र देवों हैं । राम, श्याम और मैं जायेंगे । तुम और वे क्यों नहीं आये ? मैं, तू और वह कभी झूठ नहीं कहेंगे । तुम और वे काम क्यों नहीं करते ? वे और हम खा चुके हैं ।

✽ एक क्रिया और काल समन्वये, हिन्दीमें व्यवहृत 'वा', 'अथवा', 'या' (or, either—or, neither—nor)—इन अव्ययोंके योगमें क्रियाके पास जो कर्त्ता रहता है, उसीके अनुसार क्रियाके पुरुष और वचन होते हैं, जथा—(तू या मैं जाऊंगा) त्वम् अहं वा यास्यामि (तुन अपरा वे जायें) चूय ते वा यान्तु ; (वे अथवा तू गया था) ते त्व वा अगच्छ ।

अनुवाद को—हल्के या शिक्षक जानता है । उन पुस्तकको मैं लपटा तू पढ । मेरे पढ़नेका व्यय पिता वा भ्राता देता था । उसने, नहीं तो तूने, मेरी हानि की है । इस बच्चे में अथवा तू पहनेगा । इस बातसे तू या वह हसा है ।



शिष्टप्रयोगेण अन्तिम पद वा निवृत्तवर्ति पदके अनुसारमां वदोपप वा द्विपदके लिङ्ग वचन होते हैं, यथा—“जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी”, “स्त्रियो धनं मुनीं चानां”, “विषादप्यमृतं प्राणम्, अमेषादां काशनम् । नांवादप्युत्तमा विद्या, स्मरन्नुत्तुलादपि ॥” “यस्य वीर्येण कृत्विनो वदन्त भुरगान च” उत्तर० १ ३२ (भुवनानि कृत्वाणि); “कामश्च जृम्भितपुणो नवर्षेव नश्च” मालवी० १. ३५ ।

विषय-सूची ।

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
इद् विधान	४७६	भाववाच्य	५६५
अनिद्घातु	४७६	कर्मकर्तृवाच्य	५७३
लृट्—साधनप्रणाली	४७८	वाच्यान्तरप्रणाली	५७४
लृङ्	४८१	सञ्ज्ञित कृत्-प्रकरण	५७६
लुट्	४८२	तुमुन्	५७८
आशीर्लिङ् परस्मैपद	४८४	त्का	५७९
आशीर्लिङ् आत्मनेपद	४८५	ल्यप्	५८३
लिट्—साधनसूत्र	४८७	तव्य	५८५
लिट्—धातुरूप	४९४	अनीय	५८५
लुङ्—साधनसूत्र	५११	यन्	५८६
लुङ्—धातुरूप	५१८	ण्यत्	५८७
प्रत्ययान्तधातु	५३१	ह्यण्	५८७
णिजन्तधातु	५३१	क्यप्	५८८
इत्कार्य्य	५३२	शतृ	५९०
सनन्तधातु	५४१	शानच्	५९१
यङन्तधातु	५४६	क	५९४
यङ्लुगन्तधातु	५४८	कवतु	६०२
नामधातु	५४९	ह्यमु	६०३
परस्मैपद और		कानच्	६०४
आत्मनेपद-विधान	५५५	स्यत्	६०५
कर्मवाच्य और		स्यमान	६०५

विषय सूची ।

विषय	पृष्ठ	विषय
णसुल्	६०७	तत्पुरुष-समास
प्रश्नमाला	६१०	प्रथमतत्पुरुष
कारक प्रकरण	६१२	द्वितीयातत्पुरुष
कर्ता		तृतीयातत्पुरुष
कर्म		चतुर्थीतत्पुरुष
करण		पञ्चमीतत्पुरुष
सम्प्रदान		षष्ठीतत्पुरुष
अपादान	६१३	सप्तमीतत्पुरुष
अधिकरण	६१९	नन्तत्पुरुष
विभक्ति निर्णय		कर्मधारय समास
प्रथमा	६२१	उपमानकर्मधारय
द्वितीया	६२३	अपमितकर्मधारय
तृतीया	६२५	रूपककर्मधारय
चतुर्थी	६२९	मन्व्यपरलोपी कर्मधारय
पञ्चमी	६३०	द्विगु-समास
षष्ठी	६३६	नित्यसमास
सप्तमी	६४५	द्वन्द्व-समास
विधेय-विशेषण	६४९	इतरेतरद्वन्द्व
प्रश्नमाला	६५१	समाहारद्वन्द्व
समास प्रकरण	६५५	एकनोपदद्वन्द्व
समासलक्षण	६५४	बहुव्रीहि समास
समासविभाग	६५४	मन्व्यपरलोपी बहुव्रीहि

विषय सूची ।

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
तुल्ययोगे बहुव्रीहि	६८०	अनर् (ल्युट्)	७२८
व्यतिहारे बहुव्रीहि	६८०	अप्	७१७
अव्ययीभाव-समास	६८५	उ	७३१
पृषोदरादि निपातन		क	७१८
समास	६८९	कि	७२९
अलुक्समास	६८९	क्ति	७३२
पूर्वनिपात वा प्राग्भाव	६९०	क्यप्	७३६
समासशब्दार्थे (पूर्व		कनिप्	७३३
पदमे)	६९३	क्किप्	७३३
पदकार्थ्यं	६९९	खच्	७१९
पुवङ्गात्	६९९	खल्	७२०
समासशब्दार्थे (उत्तर		खश्	७२०
पदमे)	७०१	खि (इन्)	७२९
समासप्रत्यय	७०२	घन्	७१६
समासप्रत्ययनिषेध	७११	चिनुण्	७३१
समासविच्छेद	७१२	ट	७२१
प्रश्नमाला	७१३	टक्	७२२
इत् परिशिष्ट		ड	७२३
अ	७१४	णक् (ण्वुल्)	७२६
अद्	७१६	णिन् (णिनि)	७३०
अच्	७१६, ७१७	तृच्	७२६
अण्	७२४	यनिप् (ह्वनिप्)	७३३
अन (ल्यु)	७२६	विण् (णिव)	७३६

विषय-सूची ।

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
एक (एतन्)	७२६	इन्	७६९
अधु प्रमृति	७३६	इनि	७७८
स्त्रीप्रत्यय-प्रकरण		इमन्	८०६
आप्	७४०	इय	७८२, ७८६, ७९१, ७९६
ईप्	७४१	इल	७६२
आनीप्	७६०	इष्ट	७७०
ऊप्	७६१	ईन	७९६
प्रश्नमाला	७६२	ईप	७८६, ८००
तद्धित-प्रकरण		ईपसु	७७०
तद्धितकार्य	७६२	उर	७६२
अव्	७६४	एतुस्	८२०
अतसु	८२२	एनप्	८२२
अन्	७८८	कन्	७८०, ७८४, ७९२, ७९७, ८०३, ८१०
असि	८२२	कन्	७६४, ७६६, ७८८
अस्ताप्	८२१, ८२२	कलर	७६८
आकिन्	७६१	काण्ड	७९८
आच्	८२२	किन्	७६३
आति	८२२	कृत्वसुच्	८१८
आमिन्	७६३	खण्ड	७९८
आलु	७६३	घाम	७९९
आहि	८२२	घञ	७९०
इत्	७७८	चतमाम्	७७३
इयुक्	८०८		

विषय सूची ।

विषय	पृष्ठ	विषय	, पृष्ठ
चतराम्	७७३	गीत	७८६,
चन	८२६	७८७, ७९१, ८००, ८१०, ८१२	
चरद्	७६९	तनद्	८११
चशस्	८१७	तम	७७०
चित्	८२६	तमद्	८०७
च्चि	८२३	तयद्	७७६
जुञ्चु	७९०	तर	७७०
जार्तीय	७६९	तरद् (ष्टच्)	७६७
जाह	८०६	तल्	७६६,
ठ	८१९		७९८, ८०४
ठ	७७८	तमिल्	८१८
डद्	८०६	ति	८०६
दतम	७७३	तिकन्	७६६
दतर	७७३	तिथुक्	८०८
दति	७७६	तीय	८०७
दयद् (मयच्)	७७७	त्य	८११
दाच्	८२४	त्यण्	८११
दामह	८०८	त्रल	८१९
डिम	८१२	त्राच्	८५४
डुल	८०८	त्व	८०४
द्वतुप् (द्मतुप्)	७६९	यद्	८०७
द्वल्प्	७६३	धाच्	८२१

विषय सूची ।

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
दक्षिण	७७४	वर्तित्	८१७
दा	८१९, १२०	वस्तुप्	७७६
दानांम्	८२०	वल	७६३
देशीय	८६८	विन्	७६९
देश्य	७६८	व्य	८०८
द्वयसद्	७७४	दा	७६१
घाच्	८१६	ष्ण (अण्)	७६४.
घेय	७६६		७८१, ७८२, ७८३,
पाश	७६९		७८४, ७८५, ७८६,
भ	७६४		७८७, ७८८, ७८९,
भद्	८०६		७९२, ७९४, ७९७,
भ	८१२		७९९, ८००, ८०२,
भतुप्	७५६		८०४, ८०९
भयद्	८०१	ष्णायन (फक्)	७९४
भावद्	७७४	ष्णि (इन्)	७९३
व	७९८	ष्णिक (टक्)	७६४,
वत्	७८१,		७८०, ७८१, ७८३,
	७८६, ७८६,		७८४, ७८५, ७८६,
	७९१, ७९२, ७९६		७८७, ७८८, ७८९,
यु	७, ५		७९०, ७९१, ७९२,
र	७६२, ७६७		७९८, ८०९, ८१२
रुप	७६८	ष्णीक (ईकक्)	७६०, ७८०
ल	७=६		

विषय सूची ।

विषय	पृष्ठ	विषय	पृष्ठ
ष्णीय (छ)	७८६, ७८८, ७९६, ८१०	स	७६६
ष्णीय (डक्, डञ्)	७८२, ७८६, ७८७, ७९६, ८१०, ८१२	सात्तिच्	८२३, ८२४
ष्ण्य (ष्य, ष्य, यञ्, ष्यञ्)	७१४, ७८२, ७८८, ७९२, ७९४, ७९८, ८००, ८०२, ८०३, ८१०, ८१२	सुच्	८१६
		स्यान	७९०
		स्यानीय	७९०
		स्न	७६६
		हिल्	८१९, ८२०
		प्रश्नमाला	८२६

पाठ-परिशुद्धि ।

- पृष्ठ २८ पंक्ति ८ में—'खिद्यंस्तदतर' के स्थानमें 'भ्लार्यंस्तदतर' पढ़ना ।
- पृष्ठ ४३ पं ७ के नीचे पढ़ना—'विश्लेष करो—राम उवाच, कत एव, देव ऋषि ।'
- पृष्ठ १०२ पं १७ (च) में पढ़ना—'कोटि' शब्दभी खोलिङ्ग ।
- पृष्ठ १८२ पं ६ में पढ़ना—'(पूज्य अक्षयापक कहां ?) क तत्रभवान् अक्षयापक ?)'
- पृष्ठ २०३ पं १ के नीचे पढ़ना—'यहासे Hence—इत ।'
- पृष्ठ २०७ पं ८ में—'अच्छे तौरसे' पढ़ना ।
- पृष्ठ २१६ पं ६ में—'बुद्धि' शब्दके पश्चात् 'देवी'-शब्द पढ़ना ।
- पृष्ठ २२४ पं ३ में पढ़ना—'क्रियामे प्रथमपुरपकी विभक्ति होती है ।'
- पृष्ठ २२६ पं १ में पढ़ना—'सकर्मक धातु कर्तृशाच्य तथा कर्मनाच्यमे ।'

पाठ परिशुद्धि ।

- शृ० २७१ प० ७ के पश्चात् ('गम् गतौ' के नीचे) पदना—("सर्वे गत्यर्थो प्राप्त्यर्थो ज्ञानार्थाश्च" । "काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्" हितो० ।—प्राप्तौ, यथा—गृप्ति गच्छति, विषाद् गच्छति ।)
- शृ० २७२ प० १२ में 'उप + आ + गम्' के पश्चात् निम्नलिखित अंश छूट गया, सो ठीक करके पदना—
 'उप + आ + गम्—प्राप्तौ । प्रति + आ + गम्—प्रत्यावर्त्तने (लौटना) । सम् + आ + गम्—मिलने ।'
- शृ० ३२३ प० १६ में पदना—'ह्वयति, ह्वयने, ह्वाम्भति, ह्वाम्यते ।
 (१) ह्वयति ह्वयने महो महम् ।'
- शृ० ३४२ प० १२ में—'बुध्यते शास्त्रे उच्यते' पदना ।
- शृ० ३७२ प० १३ में—'सम्पत् सम्पदमनुबध्नति' पदना ।
- शृ० ५०६ पं० २२ में—'म० ८, १६' पदना ।
- शृ० ५६४ प० ३—'गिज्जन्त धातु' यह शीर्षक ५३९ सूत्रके उपर होना चाहिये ।
- शृ० ५६७ प० १७ में—'अगुग ध' के स्थानमें 'अगुग य' पदना ।
- शृ० ६१३ प० १२ में—'जिपसे' के स्थानमें 'जिपसे' पदना ।
- शृ० ६२६ प० १० में—'एकेन ऊना गणिता दशप्रहा' के स्थानमें 'ऊना किल्वेन मता दशप्रहा' पदना ।
- शृ० ६४३ प० १२—'वृत्तीयाप्रतिषेध' इत्यादि टिप्पणीस्यधिपय टिप्पणी-विभाजक 'लाङ्ग' के नीचे जाना चाहिये ।
- शृ० ७०६ पं० १९ में—'२० १४ ३३' पदना ।
- शृ० ११३ 'शुद्धि'—'सर्वनाम खालिङ्ग शब्द' पदना ।

इट्-विधान ।

३५० । लट्, लोट्, लङ् और य भिन्न व्यञ्जनवर्ग परे रहनेसे, धातुके उत्तर 'इट्' होता है, 'इ' नहीं रहता । जिन धातुभोंके उत्तर 'इट्' होता है, उनको 'सेट् धातु' कहते हैं ।

३५१ । दरिद्रादि (१) भिन्न आकारान्त, इवगोन्त, उकारान्त, ऋकारान्त धातु, और शकादि (२) व्यञ्जनान्त धातुके उत्तर 'इट्' नहीं होता । जिन धातुभोंके उत्तर 'इट्' नहीं होता, उन्हें 'अनिट् धातु' कहने हैं ।

३५२ । लृट्, चाय्, स्फाय्, प्याय्, सू (अदादि), सु (दिवादि), धू, रधादि (३) धातु, उकार इत् (४) धातु, और रु, दु, छ, नु धातुके उत्तर विकल्पसे 'इट्' होता है । इनको 'वेट् धातु' कहते हैं । यथा—रध् + स्यति = रधिष्यति, गत्स्यति ।

नीचे आकारान्त आदि-क्रमसे अनिट्

धातु लिखे जाते हैं—

दरिद्रादि । (१)

आकारान्त—'दरिद्रा' भिन्न सब ।

आकारान्ता अदरिद्रा अनिट् परिकीर्तिता ।

इकारान्त—श्चि और श्चि भिन्न सब ।

श्चि श्चि-भिन्ना इकारान्ताश्चानिट् कथिता बुधै ।

ईकारान्त—शी शी दीधी वेवी भिन्न सब ।

शी शी वेवी दीधी-भिन्ना ईकारान्तास्तथाऽनिट् ।

उकारान्त—यु र नु स्तु छु श्चु ऊर्णु भिन्न सब ।

वर्जयित्वा सु रु नु स्नु क्षु क्षण् कर्णञ्च गतमन् ।

अनिट् स्युरन्तरान्ता ।

ऋकारान्त—वृ क्षीर जागृ भिन्न सन् ।

ऋकारान्ता वृ-जागृभ्या विना सर्वेऽनित्ये मता ।

शकादि । (२)

वान्त—केवल दाकृ धातु ।

कान्तेषु शकृ एवानिट् ।

चान्त—पच् मुच् रिच् वच् विच् सिच् ।

चान्तेषु पच्-मुच-रिचो यच् विचौ सिच एव च ।

अनिट् पट् परिव्रजेया ।

छान्त—केवल प्रच्छ् धातु ।

प्रच्छदछान्तेष्वनिट् स्मृत ।

जान्त—त्यज् निज् भज् मनज् भुज् भ्रमज् ममज् मृज्

यज् युज् रज् रज् विज् मन्ज् मृज् स्वन्ज् ।

त्यजो निजो भजो मनजो भुज्-भ्रमजौ ममज् मृज्-यज् ।

युजो रजो रज् विजौ मन्जौ स्वन्ज एव च ।

पोद्धरीतान् जकारान्तान् जानीयादिद्विवर्जितान् ॥

दान्त—अद् क्षुद् खिद् छिद् तुद् पुद् पद् भिद् विद्*

विन्दि† दाद् सद् स्कन्द् स्विद् हद् ।

अद् क्षुद् खिदध्वं छिद् तुनौ तुद्-पदी भिद् ।

* दिवादि ।

† व्याप्रभृत्यादिमतेऽयं रुट्, चात्रादिमतेऽनिट् ।

विदो विन्द गद् सद्दौ स्कन्द त्विद दृडास्तथा ।

दकारान्तेषु विलेया इमे पञ्चशानिड ॥

धान्त—ब्रुध् क्षुध् वृध् बन्ध् युध् राध् रुध् व्यध् शुध् साध् सिध् * ।

क्रुध् क्षुधो वृधो बन्धो युधो राधो रधो व्यध ।

शुध साध सिधधेति धान्तेष्वेकादशानिड ॥

नान्त—मन् और हन् घातु ।

अनिटौ मन् हनौ नान्ते ।

पान्त—आप् क्षिप् क्षुप् तप् तिप् तृप् अर्प् हृप् लिप् लुप् वप् शप्
सृप् स्वप् ।

आप्. क्षिपक्षुपश्चैव तप्-तिप्-तृप् अर्प् हृपो लिप ।

लुप् वप् शप् सृप्-स्वप् पान्तेष्वनिड. स्युध्वतुर्दश ॥

मान्त—यम् रम् लम् ।

यम् रम्-लभो मकारान्तेष्वनिटो गदितास्त्रय ॥

मान्त—गम् नम् यम् रम् ।

गम् नमौ यम् रमौ चेति मकारान्तेष्विमेऽनिड ।

धान्त—कृद् दन्श् दिश् हृद् मृद् रिश् रुद् लिश् विद् स्पृन् ।

कृश्-दन्श-दिश्-हृशश्चैव मृश् रिश्-रुद्-लिश् त्रिंशस्तथा ।

स्पृशश्चेति शकारान्तेष्वनिड कीर्त्तिना दश ॥

पान्त—कृप् तुप् त्विप् दृप् द्विप् पिप् पुप् † मृप् बिप् शिप् क्षुप् शिल्प् ।

कृप्-तुप् त्रिप्-दृप्-द्विप्श्चैव पिप् पुप्-मृप् बिप् शिपस्तथा ।

* दिवादि ।

† दिवादि पुप् । कथादि पुप् सेद् ।

शुप् स्लिपौ चेति कथ्यन्ते पान्तेषु द्वादशानिष्ट ॥

सान्त—घम् और वम् धातु ।

अनिटौ घस्-वमौ सान्ते ।

हान्त—रह् दिह् दुह् नह् मिह् रह् लिह् वह् ।

दहो दिहो दुहधैव नहो मिह-न्हौ णिह् ।

वदधेति हकारान्तेष्वनिटोऽष्टौ प्रकीर्त्तिता ॥

रधादि । (३)

रध् तृप् दृप् दुह् नद् मुह् म्निह् स्नुह् ।

रधयतिस्सृप्य-दृप्यौ च द्रुद्यतिर्दृश्यतिस्तथा ।

सुयति स्निद्यति स्नुद्यो रधादाबट धातव ॥

ऊकार-इत् (ऊदित्) धातु । (४)

सृज्, लिष्, तृप्, दृप्, क्षम्, गुह्, सुह्, अद् (स्वादि), गाह्, नृह्, म्निद्, कृष् (कृप्), स्निह्, नद्, द्रुह् इत्यादि ।

लृट् ।

[ययामन्मव पूर्वं पूर्वं प्रकरणोक्ते स्वार (३) विहित सूत्रोक्ताकार्यं होमाः ।]

३५३ । * लृट्, लृट् और लृट् विभक्ति परे रहनेसे, धातुके अन्त्य-स्वर और उपधा लघुस्वरका गुण होना है, यथा—भू + स्यति = भविष्यति, (ज्ञानार्थ) विद् + लृट् = वेदिष्यति, कथि—कथयिष्यति ।

३५४ । * 'स्य' परे रहनेसे, ङकारान्त धातु और हन् धातुके उत्तर 'इट्' होता है, और वृन्, कृट् (कृप्) रमृति धातुके उत्तर

परस्मैपदके 'स्य' परे 'इट्' नहीं होता, किन्तु आत्मनेपदमे नित्य, अन्यत्र विकल्पसे होता है, यथा—(कृ) करिष्यति, (हन्) हनिष्यति, (वृत्) वत्स्यति, वत्तिष्यते ।

३५५ । * लृट्, लृङ् परे रहनेसे, वृत्, छृट्, चृत्, छृत् और तृट् धातुके उत्तर, और आशीर्लिङ्के आत्मनेपदमे वृत् आदि, वृ तथा ऋकारान्त धातुके उत्तर विकल्पसे 'इट्' होता है, यथा—(वृत्) वत्तिष्यति, नत्स्यति ।

३५६ । * 'स' परे रहनेसे, परस्मैपदमे गम् धातुके उत्तर 'इट्' होता है; आत्मनेपदके योग्य होनेसे विकल्पसे होता है; यथा—गमिष्यति ।

३५७ । * चतुर्लकार परे रहनेसे अकचैनाद्यमे, और लृट्-आदि त्रिभक्ति वर प्रत्यय परे रहनेसे समन्त वाच्यमे, एकारान्त, ऐकारान्त तथा ओकारान्त धातु आकारान्त होता है, यथा—(धे) धास्यति, (गै) गास्यति, (शो) शास्यति ।

३५८ । * उक्त विषयमे धू—धृच्, अस्—भृ, चक्ष्—क्ष्णा अथवा रूपार् होता है, यथा—धू + स्यति = वक्ष्यति (३०५ सू०), (अस्) भविष्यति, (चक्ष्) क्ष्णास्यति, क्ष्णास्यते, ख्यास्यति, ज्यास्यते ।

३५९ । * स्वरवर्ण परे गुह्—गूह् होता है, यथा—गुह् + स्यति = गूहिष्यति (३५२ सू०) । सर्वत्र क्लृप् (कृप्)—कल्प् होता है, केवल 'कृपण' प्रभृति स्थानमे नहीं होता, यथा—कल्पस्यते ।

३६० । * 'स' परे रहनेसे, 'भ' के स्थानमे 'प', और वृत्, वृष्, वृष् धातुके 'व' के स्थानमे 'भ' होता है, गुह् और गाह् धातुके 'ग' के

† अन, उस्, अस् परे नहीं होता । क्ष्णा और रया उभयपदी ।

(वम्) वत्स्यति ।

३६७ । * 'स' और 'त' परे रहनेसे, नश् और मस्ज् धातुके अकारके पश्चात् अनुस्वार होता है, यथा—(नश्) नह्यति, (मस्ज्) मह्यति ।

लृङ् ।

[लृट्-विभक्तिमे धातुके त्रिसप्रकार रूप होते हैं, लृङ्-विभक्तिमेभा उसीप्रकार रूप होंगे, केवल अधिक २६१ और २६३ सूत्रोका कार्य होगा, यथा—(नृ) नमविष्यत्, (विद्—अत्रादि) अवेदिष्यत् ।]

शु धातु ।

(परस्मैपद्)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अकरिष्यत्	अकरिष्यताम्	अकरिष्यन्
मध्यमपुरुष	अकरिष्यः	अकरिष्यतम्	अकरिष्यत
उत्तमपुरुष	अकरिष्यम्	अकरिष्याव	अकरिष्याम

(आत्मनेपद्)

प्रथमपुरुष	अकरिष्यत	अकरिष्येताम्	अकरिष्यन्त
मध्यमपुरुष	अकरिष्यथा	अकरिष्येथाम्	अकरिष्यध्वम्
उत्तमपुरुष	अकरिष्ये	अकरिष्यावहि	अकरिष्यामहि

३६८ । लृङ्-विभक्ति परे रहनेसे, 'अधि'-पूर्वक 'इ' धातुके स्थानमे विकल्पसे 'गी' होता है, यथा—अधि + इ + स्यत = अध्यगीष्यतां ।

† 'गी' का गुण नहीं होना ।

(पने) अर्धव्यत ।

अनुवाद करो—उसका धन होता, तो मुझे देता । विद्या रहनी, तो श्यामका (द्वितीया) सर कोई आदर करते । ज्ञान होता, तो एम्ब होता । मैं भक्त होता, तो ईश्वरकी कृपा पाता । सामर्थ्य रहता, तो अभी इस कामको करता ।



लुट् ।

[इस प्रकरणमें यथासम्भव पूर्व पूर्व स्वार (#)-विहित सूत्रोंका काव्य्य होगा ।]

३६९ । # 'त' परे रहनेमें, नृ, स्तु, शुब्, सद्, रिप्, रप्, लुम्, अर्त् और इप् धातुके उत्तर विकल्पसे 'इट्' होता है, यथा—(नृ) भरिता, भर्षा ; (स्तु) स्तविता, स्तोता इत्यगदि ।

३७० । # सद् और वद् धातुका 'ह्' परस्मिन् तकारमें मिलकर 'ट' होता है, और पूर्वस्मिन् अकारके स्थानमें ओकार होता है ; यथा—सद् + ता = सहिता, (पञ्चे) मोटा, वद् + ता = वोटा ।

३७१ । 'भ'—परस्मिन् 'त' अथवा 'थ'में मिलकर 'ब्ध' होता है ; यथा—लम् + ता = लब्धा ।

परस्मैपदी—भू धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	भविता	भवितारौ	भवितारः
मध्यमपुरुष	भवितासि	भविताम्य	भवितास्य
उत्तमपुरुष	भवितास्मि	भवितास्वः	भविताम-

आत्मनेपदी—शी धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	शयिता	शयितारौ	शयितारः ।
मध्यमपुरुष	शयितासे	शयितासाथे	शयिताथ्वे
उत्तमपुरुष	शयिताहे	शयिताम्बहे	शयितास्महे
कृ—कर्ता ।		दृश्—दृष्टा (३१६।३६९ सू०) †	
भृ—भरिता, भर्ता ।		नद्—नष्टा, नशिता (३०२ सू०) †	
तृ—तरीता, तरिता (३६४ सू०) ।		प्रच्छ्—प्रष्टा (३१६ सू०) ।	
जि—जेता ।		गम्—गन्ता ।	
नी—नेता ।		मन्—मन्ता ।	
शु—श्रोता ।		हन्—हन्ता ।	
गै—गाता (३९७ सू०) ।		वच्—वक्ता (३०४ सू०) ।	
अधि + इ—अध्येता ।		लभ्—लब्धा ।	
कृप् (कृप्)—कल्पता ।		वस्—वन्ता ।	
अद्—ग्रहीता (३६४ सू०) ।		रुध्—रोद्धा (२९८ सू०) ।	
बल्—बलिता ।		शक्—शक्ता ।	
त्यज्—त्यक्ता ।		भ्रग्—भर्षा, भ्रष्टा (३६० सू०) †	
दद्—दग्धा (३३४ सू०) ।		मस्ज्—मष्टा ।	
		दरिद्—दरिद्रिता (३६३ सू०) ।	

दिवादि विद्—वेत्ता, अदादि विद्—वेदिता ।

सृज्—सृष्टा । या—याता । दा—दाता । सह्—सहिता, सोढा । वह्—वोटा ।

† लुट्के परस्मैपदमे कल्प् (कृप्) धातुके उत्तर 'इट्' नहीं होता ।

अनुवाद करो—कल राम राजा होगा । परमो तुम्हारे घर जाऊगा ।
तू शीघ्र इसका फल पायेगा । राजा शत्रुभोके साथ युद्ध करेगा । वे तुझे
किसी कार्यमें नियुक्त करेंगे । तू अवश्य युद्धमें शत्रुभोको जीतेगा ।

आशीर्लिङ्-परस्मैपद ।

३७२ । * आशीर्लिङ्के परस्मैपदमें दा, धा, धे, धा, मा, हा और
मै धातुके अन्तमें 'ए' होता है, यथा—दा + याव = देयाव, (धा)
धेयाव, (धा) धेयाव, (मा) मेयाव, (हा) हेयाव, (मै) मेयाव ।

३७३ । * अगुण 'य' परे रहनेमें, अन्त्य 'इ' और 'उ' दीर्घ होते
हैं, यथा—(जि) जीयाव, (ध्रु) ध्रूयाव ।

३७४ । * सयुक्तवर्णादि आकारान्त धातुका 'आ' विकल्पसे 'ए' होता
है, परन्तु स्था धातुके अन्तमें नित्य 'ए' होता है, यथा—(घ्रा) घ्रेयाव,
घ्रायाव, (स्था) स्थेयाव ।

३७५ । * अगुण 'य' परे रहनेसे, ह्रस्व ऋ—'रि' होता है, यथा—
(कृ) क्रियाव ।

३७६ । * अगुण 'य' और लिङ्की अगुण विभक्ति परे रहनेमें, सयुक्त-
वर्णादि ऋकारान्त धातु, और ऋ, जागृ धातुका गुण होता है, यथा—
(स्मृ) स्मर्याव, (ऋ) अर्याव, (जागृ) जागर्याव ।

३७७ । * अगुण 'य' वा प्रत्यय परे रहनेसे, धातुके 'ऋ' के स्थानमें
'इर्' होता है, यदि वह 'ऋ' ओष्ठ्यगर्गमें युक्त हो, तो 'ऊर्' होता
है, यथा—(कृ) कीर्याव, (पृ) पूर्याव ।

३७८ । * अगुण विभक्ति वा प्रत्यय परे रहनेसे, ग्रह्—गृह्, प्रच्छ्—

पृच्छ्, वय्—विध्, यञ्—इञ् और ह्ये—हु होता है; यथा—
(ग्रह्) गृह्यात्, (प्रच्छ्) पृच्छ्यात्, (वय्) विद्यात्; (यञ्)
इज्यात्, (ह्ये) ह्यात् (३७३ सू०) । किन्तु लिट् परे प्रच्छ्—पृच्छ्
नहीं होता ।

३७९ । * अगुण त्रिमक्ति वा प्रत्यय परे रहनेसे, वद्—उद्, वप्—
उव्, वप्—उप्, वम्—उस्, वह्—उह् और स्वप्—सप् होता है; यथा—
(वद्) उद्यात्, (वच्) उच्यात्, (वप्) उष्यात्, (वस्)
उष्यात्, (वह्) उह्यात्, (स्वप्) स्यात् ।

३८० । * अगुण त्रिमक्ति वा प्रत्यय परे रहनेसे, निन्दादि-भिन्न
धातुके उपधा नकारका लोप होता है, यथा—ददन् + यात् = दद्यात्,
(शत्रुस्) शश्यात् ।

भू धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासुः
मध्यमपुरुष	भूया.	भूयास्तम्	भूयास्त
उत्तमपुरुष	भूयासम्	भूयास्व	भूयासम

आशीर्लिङ्—आत्मनेपद् ।

३८१ । आशीर्लिङ्के आत्मनेपदमे धातुके अन्त्यस्वर और उपधा
लघुस्वरका गुण होता है, यथा—(शी) शशिपीठ, (द्युत्) द्योतिपीठ ।

† निन्दादि—निन्द्, चिन्त्, कम्प्, लद्, वन्द्, काङ्क्ष्, वण्, मन्त्र्
इत्यादि ।

३८२ । आशीर्लिङ्का आत्मनेपद् परे रहनेसे, अनिट् धातुके अन्तस्थित ऋकारका और उपधा लघुस्वरका गुण नहीं होता ; यथा—
(कृ) कृपीष्ट ; (भुञ्) भुञ्जीष्ट (३०९ सू०) । (वृ) वरिषीष्ट,
वृषीष्ट ।

३८३ । * अकार आकार भिन्न स्वरके परवर्ती लृट्, लिट् और आशीर्लिङ्के 'ध' के स्थानमे 'ड' होता है, यथा—कृ + सीध्वम् = कृषीद्धम् । परन्तु 'इट्'-युक्त ह, य, व, र और लकारके परस्थित 'ध' विकल्पसे 'ड' होता है, यथा—(सेव्) सेविषीद्धम्, सेविषीध्वम् ।

मृ धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	मृषीष्ट	मृषीयास्ताम्	मृषीरन्
मध्यमपुरुष	मृषीष्टा	मृषीयास्थाम्	मृषीद्धम्
उत्तमपुरुष	मृषीथ	मृषीथहि	मृषीमहि

शी धातु ।

प्रथमपुरुष	शयिषीष्ट	शयिषीयास्ताम्	शयिषीरन्
मध्यमपुरुष	शयिषीष्टा	शयिषीयास्थाम्	शयिषीद्धम्, शयिषीध्वम्
उत्तमपुरुष	शयिषीथ	शयिषीथहि	शयिषीमहि

सेव् धातु ।

प्रथमपुरुष	सेविषीष्ट	सेविषीयास्ताम्	सेविषीरन्
मध्यमपुरुष	सेविषीष्टाः	सेविषीयास्थाम्	सेविषीद्धम्, सेविषीध्वम्

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
उत्तमपुरुष	सेविषीवहि	सेविषीमहि
सेविषीय		

अनुवाद करो—इम दु बिनोकर एकमात्र पुत्र रामजीवन दीर्घकाल सीता रहे । ईश्वर तुम्हारा मङ्गल करे । आप मुझे आशीर्वाद करें, जिससे मैं कृतकार्य्य हो सकूँ । दरिद्रोंका दुःख दूर हो (अप+इ) । विषामार्त्त जउ पान कर । छात्रलोग सर्वदा गुरके आज्ञानुवर्त्ती हों ।

लिट् ।

[इस प्रकरणमें यथासम्भव पूर्व पूर्व स्वार (ः) विहित

सुत्रोंका काव्य्य होगा ।]

३८४ । लिट्कार व्यञ्जनवर्ग पर रहनेसे, सेट् अनिट् समस्त धातुओंके उत्तर 'इट्' होता है ।

३८५ । हु, झ, छ, म्यु, कृ, मृ, च धातुके उत्तर 'इट्' नहीं होता ।

३८६ । 'य' पर रहनेसे, दृग्, सृज्, स्वरान्त और अनिट् अकारवान् धातुके उत्तर विकल्पसे 'इट्' होता है, फेरल स्वरान्त ध्ये और अकारवान् अट् धातुके उत्तर नित्य 'इट्' होता है ।

३८७ । 'य' पर रहनेसे, ऋकारान्त धातुके उत्तर 'इट्' नहीं होता । ऋ, वृ, स्कृ धातुके उत्तर नित्य, और स्वृ धातुके उत्तर विकल्पसे 'इट्' होता है ।

३८८ । लिट् विभक्ति पर रहनेसे, धातु अभ्यन्त (द्विरक्त) होता है, यथा—नम् + अ = नम् नम् + अ—

३८९ । अभ्यन्तधातुके पूर्वभागके आदिस्वरके पश्चात् जो वर्ग रहता है, उसका लोप होता है, यथा—नम् नम् + अ = ननम् + अ—

स्था + अ = तस्थाय + अ = तस्थौ ।

३९७ । अनिट् 'थ'-भिन्न लिट् परे रहनेसे, आकारान्त धातुके आकारका लोप होता है, यथा—तस्थिथ, (अनिट् 'थ') तस्थाय ।

३९८ । ऋ असमानस्वरवर्ण परे रहनेसे, अभ्यन्त धातुके पूर्वभाग स्थित ढ, ऊ के स्थानमे—'उव्', और इ, ई के स्थानमे—'इय्' होता है, यथा—उप् + अ = उप् उप् + अ = उ उप् + अ = उ ओप् + अ = उव् ओप् + अ = उवोष, इ + अ = इ इ + अ = इ ऐ + अ = इय् ऐ + अ = इयाय ।

३९९ । लिट् परे रहनेसे, अभ्यन्त होकर भू—बभूव्, चि—चिचि और चिचि, जि—जिगि, और हि—जिधि होता है, यथा—(भू) बभूव् ; (चि) चिक्वाय, चिचाय, (जि) जिमाय, (हि) जिघाय ।

४०० । प्रथम और उत्तम पुरुषके पुरुषवचने 'अ'-भिन्न सगुण अगुण समस्त लिट् परे रहनेसे, दीर्घ 'ऋ' और मयुक्तवर्णमे मिलित ह्रस्व 'ऋ' का गुण होता है, यथा—कृ + थ = चकृ + इ + थ = चकरिथ, स्मृ + थ = सम्मृ + थ = सम्मर्थ ।

४०१ । लिट् का अगुण स्वर परे रहनेसे, ङकारान्त धातुके 'ऋ' के स्थानमे 'र्' होता है, यथा—कृ + अतु = चकृ + अतु = चक्रतु ।

४०२ । अगुण लिट् परे रहनेसे, इदित् (निन्द्-प्रभृति) और पूनार्थ 'अन्'-भिन्न धातुका उपधा 'न' विदल्यसे लुप्त होता है, यथा—दन्श् + अतु = ददन्तु, ददन्तु । (निन्द्) निनिन्दतु ।

४०३ । स्वादिगणाय अश् धातु, ऋकारादि धातु, और जिसके अन्तमे मयुक्तवर्ण रहे ऐसे अकारादि धातुके पूर्वभागके स्थानमे 'आन्'

होता है; यथा—(अच्) आनरो (ऋत्) आनर्त्त, आवृतत् , (अर्च्) आनर्त्त, आनर्त्तु, आनर्त्तु ।

४०४ । लिट् विभक्ति परे रहनेसे, अम्यस्त व्यधादि धातुके पूर्वभाग-
वे स्वरयुक्त 'ध' के स्थानमे 'ङ' होता है, यथा—व्यध् + ए = व्यध् व्यध्
+ ष = विज्यधे, व्यध् + अ = विज्याध, व्यच् + अ = विज्याच, चुत् +
ए = दिद्यते ।

४०५ । लिट् विभक्ति परे रहनेसे, व्ये धातुका 'ए'—'आ' नहीं
होता, और पूर्वभागके स्वरयुक्त 'ध' के स्थानमे 'ङ' होता है, यथा—व्ये
+ अ = विज्याय ।

४०६ । सगुण लिट् परे रहनेसे, अम्यस्त होकर यञ्—इयञ्, और
अगुण लिट् परे 'ईञ्' होता है, यथा—यञ् + अ = इयाञ्, यञ् + अतु
= ईयन्तु ।

(३७८ सूत्रानुसार) प्रह् + अतु = गृह् + अतु = गृह् गृह् + अतु
= जगृहत् , किन्तु—(प्रच्छ्) पप्रच्छत् ।

४०७ । सगुण लिट् परे, अम्यस्त वरादि*धातुके पूर्वभागके स्वरयुक्त
'व' के स्थानमे 'उ' होता है, और अगुण लिट् परे, पूर्वभाग तथा परभाग
उभयत्र 'व' के स्थानमे 'उ' होता है, यथा—सगुण—वर् + अ = वप् वप्
+ अ = ववप् + अ = उवाप, (वस्) उवाम, (वद्) उवाह, (वद्)
उवाद, (वू और वच्) उवाच । अगुण—वप् + अतु = ववप् + अतु =
ऊवत् , (वस्) ऊवत् , (वद्) ऊवत् , (वद्) ऊवत् , (वू और

* वरादि—वपो वहो वराश्च वचो वद वधी तथा ।

वत्) ऊवतु ।

४०८ । लिट् परे रहनेसे, 'वे' धातुके स्थानमे विकल्पमे 'व्य्' होता है, और अगुण लिट् परे, 'वे' धातुके स्थानमे 'ऊव्' और 'ऊय्' होने हैं, यथा—वे + अ = वय् + अ = वय् + अ = उवाय, (अगुण) वे + अतु = ऊवतु, ऊयतु । (विकल्पपक्षमे) वे + अ = ववौ, वे + अतु = ववतु ।

४०९ । लिट् परे रहनेसे, अभ्यस्त होकर 'द्व'—दिगि, 'व्वाय्'—पिपी, द्वे—शुशु, दिव्—शुशु और शिदिव् होता है, यथा—द्वे + ए = दिग्मे; प्याय् + ए = पिप्ये, द्वे + अ = शुशाय, द्वे + अतु = शुशुवतु, दिव् + अ = शुशाव, शिवाय, दिव् + अतु = शुशुवतु, शिधियतु, श्वि + य = शुशु-श्विय, शिधयिय ।

४१० । सगुण लिट् परे रहनेसे, अभ्यस्त होकर स्वप्—उप्वप; और अगुण लिट् परे, 'उपुप्' होता है, यथा—स्वप् + अ = उप्व्राप; स्वप् + अतु = उप्वतु, (थ) उप्वपिय, उपुप्य ।

४११ । लिट् परे रहनेसे, अभ्यस्त होकर हन्—जघन्, अद्—जयम् और आद् होता है, यथा—हन् + अ = जवान; अद् + अ = जगाम, आद् ।

४१२ । अगुण लिट् परे रहनेसे, अभ्यस्त होकर गम्—जग्म्, खन्—चटन्, जन्—जत्, घम्—जघ्, और हन्—जंन् होता है; यथा—गम् + अतु = जगमतु, (खन्) चटनतु, (अद्) जघनतु, आदतु; (हन्) जघनतु; जन् + ए = जले ।

४१३ । अनिट् 'य' परे रहनेसे, हस् और सृज् धातुके ऋकारके स्थानमे 'र' होता है, और ह्यादि धातुके 'रु' के स्थानमे विकल्पसे 'र'

होता है, यथा—दृश् + थ = दर्शयिष्य, दद्रष्ट, (कृप्) चक्षयिष्य, चक्षष्ट, चक्षष्ट, (तृप्) तर्तयिष्य, तत्रपथ, तत्तप्य, (हृप्) ददर्शयिष्य, दद्रपथ, ददर्प्य, (मृश्) ममर्शयिष्य, मम्रष्ट, ममर्ष्ट, (सृप्) ससर्तयिष्य, सम्रपथ, ससर्प्य ।

४१४ । आदि और अन्तमे सयुक्तव्यञ्जनवर्ण न रहनेमे, वीचमे अकार-युक्त अभ्यस्त धातुने उत्तर प्रथम और उत्तम पुरुषके एकवचनके 'अ' भिन्न लिट् परे, पूर्वभागका लोप होता है, और परभागके अकारके स्थानमे एकार होता है, यथा—चत् + अ = चचाट्, (अतु) चेतु, (थ) चेट्थि ।

४१५ । जिन अभ्यस्त धातुओंका पूर्वभाग रूपान्तरित होता है, उन सब धातुओंका और अन्त म्ये बहाराटि धातुका पूर्वसूत्रानुसार कार्य्य नहीं होता, यथा—(गृद्) जगाद, जगदतु, जगदु ; (धृज्) ववाज, ववजतु । (मृन्द्) मनन्द, मनन्दतु ।

४१६ । प्रथम और उत्तम पुरुषके 'अ'-भिन्न लिट् परे रहनेमे, अभ्यस्त होकर तृ—तेर्, फल्—फेल्, भृज्—भेज्, और भृप्—भ्रेप् होता है; यथा—तृ + अ = तनार, (अतु) तेतु । फल् + अ = पशाल, (अतु) फेतु । भृज् + अ = वभाज; (अतु) भेजतु । भृप् + अ = भ्रेपे ।

४१७ । प्रथम और उत्तम पुरुषके 'अ'-भिन्न लिट् परे रहनेमे, अभ्यस्त होकर राज्—रेज् और रराज्, ध्रम्—ध्रेम् और धध्रम्, वम्—वेम् और वध्रम् होते हैं, यथा—राज् + अ = राज; (अतु) रेतु, रराजतु । ध्रम् + अ = धध्राम, (अतु) ध्रेमतु, धध्रमतु । वम् + अ =

वचाम्, (अतु) रेमतु, परमतु ।

४१८ । लिट् परे, 'अधि' पूर्वक 'इ' धातुके स्थानमे—'गा', और अञ् धातुके स्थानमे—'धी' होता है, पश्चात् अभ्यस्त होता है, यथा—
अधि + इ + ए = अधिजगे, अञ् + अ = विवाय ।

४१९ । लिट् परे रहनेमें, द्य्, ज्य्, आम्, अनेकस्वरविशिष्ट धातु और आकार भिन्न गुरस्वरादि धातुके उत्तर 'आम्' होता है, 'आम्' परे, धातुके अन्त्यस्वर और उपधा लघुस्वरका गुण होता है, और 'आम्'-अन्त धातुके उत्तर कृ, भू, अस् धातुकी लिट् विभक्तिका रूप होता है, यथा—
(द्य्) दयाम्बभूव, दयामास, दयाञ्कार, अनेकस्वर—(कारि) कारयाम्बभूव, कारयामास, कारयाञ्कार, गुरुस्वरादि—(ईह्) ईहाम्बभूव, ईहामास, ईहाञ्कारे । *

४२० । लिट् परे रहनेमें, हु, भी, ही, भृ, जागृ, दरिद्रा, काश्, कास् और उप् धातुके उत्तर विस्ल्पमे 'आम्'† होता है, 'आम्' परे, धातुका गुण होता है, यथा—(हु) जुह्वाम्बभूव, जुह्वामास, जुह्वाञ्कार, (पक्षे) जुहाव । (भी) भिभयाम्बभूव, (पक्षे) विभाय । (ही) जिह्वाम्बभूव, (पक्षे) जिह्वाय । (भृ) विभराम्बभूव, (पक्षे) विभार । (जागृ) जागराम्बभूव, (पक्षे) जजागार । (दरिद्रा) दरिद्राम्बभूव, (पक्षे) ददरिद्रौ—'ददरिद्र' इति षेचित् । (काश्)

* कर्तृवाच्यमे 'आम्'-अन्त धातुके उत्तर प्रयुक्त 'भू' और 'अस्' परस्मैपदी रहते हैं । परस्मैपदी धातुके उत्तर 'कृ' परस्मैपदा, आत्मनेपदी धातुके उत्तर आत्मनेपदी, और उभयपदी धातुके उत्तर उभयपदी होता है ।

† 'आम्' परे, हु, भी, ही, भृ धातुका अभ्यस्त-कार्य्य होता है ।

कान्ताम्बभूव, (पञ्जे) चक्राग्रे । (क्त्वाम्) कासाम्बभूव; (पञ्जे) चक्रामे । (उप्) ओषाम्बभूव, (पञ्जे) उषोप ।

४०१ । लिट् परे रहनेसे, भदादि विद् धातुके उत्तर विकल्पसे 'ङाम्' होता है, 'ङाम्' अवशिष्ट रहता है, यथा—विद् + ञ = विदाम्बभूव, विदाद्यकार, विदामाम । विच्छत्यपञ्जेके रूप पञ्चान् दिसत्राये जायेंगे ।

(लिट्-रूप)

परस्मैपदी ।

पा धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	पपौ	पपतु.	पपु
मध्यमपुरुष	पपिथ, पपाथ	पपथु.	पप
उत्तमपुरुष	पपौ	पपिव	पपिम

स्था धातु ।

प्रथमपुरुष	तस्थौ	तस्थतुः	तस्थु
मध्यमपुरुष	तस्थिथ, तस्थाय	तस्थथु.	तस्थ
उत्तमपुरुष	तस्थौ	तस्थिव	तस्थिम

इ धातु ।

प्रथमपुरुष	इयाथ	इयतु	इयुः
मध्यमपुरुष	इयपिथ, इयेथ	इयथु	इय
उत्तमपुरुष	इयाथ, इयथ	इयिव	इयिम

जि धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जिगाय	जिग्यतु	जिग्युः
मध्यमपुरुष	जिगयिथ, जिगेथ	जिग्यथु-	जिग्य
उत्तमपुरुष	जिगाय, जिगय	जिग्यिव	जिग्यिम

श्रु धातु ।

प्रथमपुरुष	शुश्राव	शुश्रुवतु	शुश्रुवु
मध्यमपुरुष	शुश्रोथ	शुश्रुवथु	शुश्रुव
उत्तमपुरुष	शुश्राव, शुश्रव	शुश्रुव	शुश्रुम

भू धातु ।

प्रथमपुरुष	वभूव	वभूवतु	वभूवु
मध्यमपुरुष	वभूविथ	वभूवथुः	वभूव
उत्तमपुरुष	वभूव	वभूविव	वभूविम

सृ धातु ।

प्रथमपुरुष	ससृार	सस्रतु	सस्रु
मध्यमपुरुष	ससर्थ	सस्रथु	सस्र
उत्तमपुरुष	ससृार, ससर	सस्रुव	सस्रुम

स्मृ धातु ।

प्रथमपुरुष	सस्मृार	सस्मरतुः	सस्मरु
मध्यमपुरुष	सस्मर्थ	सस्मरथु	सस्मर
उत्तमपुरुष	सस्मृार, सस्मर	सस्मरिव	सस्मरिम

कृ धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	चकार	चरुतु	चकरुः
मध्यमपुरुष	चकरिथ	चकरथुः	चकर
उत्तमपुरुष	चकार	चकरिथ	चकरिम

प्रच्छ् धातु ।

प्रथमपुरुष	पप्रच्छ	पप्रच्छतु	पप्रच्छुः
मध्यमपुरुष	पप्रच्छिथ, पप्रष्ट	पप्रच्छथुः	पप्रच्छ
उत्तमपुरुष	पप्रच्छ	पप्रच्छिथ	पप्रच्छिम

दृश् धातु ।

प्रथमपुरुष	दृदर्श	दृदशतुः	दृदशुः
मध्यमपुरुष	दृदर्शिथ, दृदृष्ट	दृदशथुः	दृदश
उत्तमपुरुष	दृदर्श	दृदशिथ	दृदशिम

सृज् धातु ।

प्रथमपुरुष	ससर्ज	ससृजतु	ससृजुः
मध्यमपुरुष	ससर्जिथ, ससृष्ट	ससृजथुः	ससृज
उत्तमपुरुष	ससर्ज	ससृजिथ	ससृजिम

तय्ज् धातु ।

प्रथमपुरुष	तत्याज	तत्यजतुः	तत्यजुः
मध्यमपुरुष	तत्यजिथ, तत्यजथ	तत्यजथुः	तत्यज
उत्तमपुरुष	तत्याज, तत्यज	तत्यजिथ	तत्यजिम

गम् धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	जगाम	जग्मतु	जग्मुः
मध्यमपुरुष	जगमिथ, जगन्थ	जग्मथु	जगम
उत्तमपुरुष	जगाम, जगम	जग्मिथ	जग्मिम

हन् धातु ।

प्रथमपुरुष	जघान	जघ्नतु	जघ्नु
मध्यमपुरुष	जघनिथ, जघन्थ	जघ्नथु	जघ्न
उत्तमपुरुष	जघान, जघन	जघ्निथ	जघ्निम

वस् धातु ।

प्रथमपुरुष	उवास	ऊपतु	ऊपु
मध्यमपुरुष	उवसिथ, उवस्य	ऊपथु	ऊप
उत्तमपुरुष	उवास, उवस	ऊपिथ	ऊपिम

हस् धातु ।

प्रथमपुरुष	जहास	जहसतुः	जहसु
मध्यमपुरुष	जहमिथ	जहसथु	जहस
उत्तमपुरुष	जहास, जहस	जहसिथ	जहसिम

पत् धातु ।

प्रथमपुरुष	पपात	पेतु	पेतु
मध्यमपुरुष	पेतिथ	पेतथु	पेत
उत्तमपुरुष	पपात पपत	पेतिथ	पेतिम

इप् धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	इयेष	ईपतु*	इप्तु*
मध्यमपुरुष	इयेषिथ	ईपथु	ईप
उत्तमपुरुष	इयेव	ईपिव	ईपिम

प्र + आप् धातु ।

प्रथमपुरुष	प्राप	प्रापतु	प्रापु.
मध्यमपुरुष	प्रापिथ	प्रापथु	प्राप
उत्तमपुरुष	प्राप	प्रापिव	प्रापिम

रुट् धातु ।

प्रथमपुरुष	रुरोद	रुरदतु*	रुरुदुः
मध्यमपुरुष	रुरोदिथ	रुरुदथु.	रुरद
उत्तमपुरुष	रुरोद	रुरदिव	रुरुदिम

चिट् धातु ।

प्रथमपुरुष	चिवेद	चिविदतु	चिविदु.
मध्यमपुरुष	चिवेदिथ	चिविदथु	चिविद
उत्तमपुरुष	चिवेद	चिविदिथ	चिविदिम

मृज् धातु ।

प्रथमपुरुष	ममार्जं	$\left\{ \begin{array}{l} \text{ममार्जंतु} \\ \text{(३२७ मृ०)} \\ \text{ममृजतुः} \end{array} \right.$	$\left\{ \begin{array}{l} \text{ममार्जुं} \\ \text{ममृजु} \end{array} \right.$
------------	---------	---	--

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	{ ममार्जिथ ममार्थं	{ ममार्जथु. ममृजथु	{ ममार्ज ममृज
उत्तमपुरुष	ममार्जं	{ ममार्जिव ममृजिव	{ ममार्जिम ममृजिम

आत्मनेपदी ।

अधि + इ धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अधिजगे	अधिजगाते	अधिजगिरे
मध्यमपुरुष	अधिजगिषे	अधिजगाथे	अधिजगिद्वे
उत्तमपुरुष	अधिजगे	अधिजगिवहे	अधिजगिमहे

अप् धातु ।

प्रथमपुरुष	त्रेपे	त्रेपाते	त्रेपिरे
मध्यमपुरुष	त्रेपिषे	त्रेपाथे	त्रेपिद्वे
उत्तमपुरुष	त्रेपे	त्रेपिवहे	त्रेपिमहे

लभ् धातु ।

प्रथमपुरुष	लेभे	लेभाते	लेभिरे
मध्यमपुरुष	लेभिषे	लेभाथे	लेभिद्वे
उत्तमपुरुष	लेभे	लेभिवहे	लेभिमहे

उभयपदी ।

दा धातु ।

(परस्मैपद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ददौ	ददतु	ददुः
मध्यमपुरुष	ददिय, ददाथ	ददथु	दद
उत्तमपुरुष	ददौ	ददिव	ददिम

(आत्मनेपद)

प्रथमपुरुष	दटे	ददाते	ददिरे
मध्यमपुरुष	ददिये	ददाथे	ददिद्वे
उत्तमपुरुष	ददे	ददिवहे	ददिमहे

घा धातु ।

(परस्मैपद)

प्रथमपुरुष	जज्ञौ	जज्ञतु	जज्ञुः
मध्यमपुरुष	जज्ञिय, जज्ञाय	जज्ञथु	जज्ञ
उत्तमपुरुष	जज्ञौ	जज्ञिव	जज्ञिम

(आत्मनेपद)

प्रथमपुरुष	जज्ञे	जज्ञाने	जज्ञिरे
मध्यमपुरुष	जज्ञिये	जज्ञाथे	जज्ञिद्वे
उत्तमपुरुष	जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे

नी धातु ।

(परस्मैपद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	निनाय	निन्यतुः	निन्यु.
मध्यमपुरुष	निनयिथ, निनेथ	निन्यथु.	निन्य
उत्तमपुरुष	निनाय	निन्यिव	निन्यिम

(आत्मनेपद)

प्रथमपुरुष	निन्ये	निन्याते	निन्यिरे
मध्यमपुरुष	निन्यिषे	निन्याथे	निन्यिद्वे
उत्तमपुरुष	निन्ये	निन्यिवहे	निन्यिमहे

कृ धातु ।

(परस्मैपद)

प्रथमपुरुष	चकार	चकतु	चकु.
मध्यमपुरुष	चकर्थ	चकथु.	चक्र
उत्तमपुरुष	चकार, चकर	चकृव	चकृम

(आत्मनेपद)

प्रथमपुरुष	चक्रे	चक्राते	चकिरे
मध्यमपुरुष	चकृषे	चक्राथे	चकृद्वे
उत्तमपुरुष	चक्रे	चकृवहे	चकृमहे

ह धातु ।

(परस्मैपद)

प्रथमपुरुष	जहार	जहतु.	जहु
------------	------	-------	-----

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	जहर्थ	जहथु	जह
उत्तमपुरुष	जहार, जहर	जहिय	जहिम
(आत्मनेपद्)			
प्रथमपुरुष	जहे	जहाते	जहिरे
मध्यमपुरुष	जहिपे	जहाथे	जहिद्वे (ध्वे)
उत्तमपुरुष	जहे	जहियहे	जहिमहे
ग्रह्, धातु ।			
(परस्मैपद्)			
प्रथमपुरुष	जग्राह	जगृहत्तु.	जगृह्.
मध्यमपुरुष	जगृहिय	जगृहथु.	जगृह
उत्तमपुरुष	जग्राह, जग्रह	जगृहिय	जगृहिम
(आत्मनेपद्)			
प्रथमपुरुष	जगृहे	जगृहाते	जगृहिरे
मध्यमपुरुष	जगृहिपे	जगृहाथे	जगृहिद्वे (ध्वे)
उत्तमपुरुष	जगृहे	जगृहियहे	जगृहिमहे
गृ धातु ।			
(परस्मैपद्)			
प्रथमपुरुष	उवाच	ऊचतु	ऊचु
मध्यमपुरुष	उवचिय, उवचय	ऊचथु	ऊच
उत्तमपुरुष	उवाच	ऊचिय	ऊचिम

(आत्मनेपद्)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	ऊचे	ऊचाते	ऊचिरे
मध्यमपुरुष	ऊचिरे	ऊचाथे	ऊचिद्वे
उत्तमपुरुष	ऊचे	ऊचिवहे	ऊचिमरे

भक्षयामास् ।

प्रथमपुरुष	भक्षयामास	भक्षयामासतु	भक्षयामासुः
मध्यमपुरुष	भक्षयामासिथ	भक्षयामासथुः	भक्षयामासि
उत्तमपुरुष	भक्षयामास	भक्षयामासिव	भक्षयामासिम

भक्षयान्भू ।

प्रथमपुरुष	भक्षयान्भूय	भक्षयान्भूयतुः	भक्षयान्भूयुः
मध्यमपुरुष	भक्षयान्भूविथ	भक्षयान्भूवथुः	भक्षयान्भूव
उत्तमपुरुष	भक्षयान्भूव	भक्षयान्भूविव	भक्षयान्भूविम

भक्षयाङ् ।

प्रथमपुरुष	भक्षयाञ्चकार	भक्षयाञ्चकतुः	भक्षयाञ्चकुः
मध्यमपुरुष	भक्षयाञ्चकथं	भक्षयाञ्चकथुः	भक्षयाञ्चक
उत्तमपुरुष	भक्षयाञ्चकार	भक्षयाञ्चकुव	भक्षयाञ्चकुम

*

*

*

*

आकाशान्त प्रभृति क्रममे कई प्रचलित धातुभोके 'अ, अतुप्, थ', और आत्मनेपदमे 'ए, से' विभक्तिभोके रूप नीचे लिखे जाते हैं । इन विभक्तिभोके रूप जाननेसे अग्रशिष्ट रूप अनायास समझे जा सकते ।

रूपा—उच्यौ, चक्षुतु ; चक्षिथ चक्षयाथ ।

घ्रा—जघ्नौ, जघ्नतु ; जघ्निय जघ्नाथ ।

घ्ना—दध्मौ, दध्नतु , दध्मिय दध्नाथ ।

भा—बभौ, बभतु , बभिय बभाथ ।

स्ना—सम्नौ, सम्नतु , मस्निय सम्नाथ ।

हा—जहौ, जहतु , जहिय जहाथ ।

मा, या, वा—'हा'-धातुस्य ।

धा—'दा'-धातुस्य तुल्य ।

चि—चिक्वाथ चिचाथ, चिक्वतु चिचतु , चिक्विय चिक्वेथ, चिचयिथ चिचयेथ । चिरये चिच्ये ।

स्मि—सिष्मिये , सिष्मिदिपे ।

क्वी—चिक्वाथ, चिक्वितु ; चिक्विय चिक्वेथ । चिक्विरे , चिक्विदिपे ।

भी—विभयाम्बभूव, विभयामास, विभयाज्जहार ; विभयाम्बभूवतु इत्यादि , विभयाम्बभूविय इत्यादि । (पञ्चे) विभाय, विभ्यतु ; विभयिथ, विभयेथ ।

र्षी—शिरये , शिरिये ।

दु—दुदाव, दुदुवतु , दुदुयिथ ।

रु—रराव, ररवतु , ररयिथ ।

हु—उह्वाम्बभूव इत्यादि, उह्वाम्बभूविय इत्यादि । (पञ्चे) जुहाव ; जुहयिथ जुहोय ।

सू—सपुने , सपुदिपे । (तुदादि) सपाव, सपुवतु , सपुयिथ ।

जाण्—जजागार, जजागस्तु , जजागस्थि । (पञ्चे) जागरामास इत्यादि ।

दृ—दद्रे, दद्विपे ।

धृ—दधार, दधत्तु , दधर्थ । दधे, दध्विपे ।

भृ—(भ्वादि) बभार, बभत्तु , बभर्थ । बभे, बभृपे । (ह्वादि)
विभराम्यभूव, (पक्षे) बभार । ('ए'-विभक्तिमे) विभरा-
म्यभूव, विभरामास, विभराञ्चके, (पक्षे) बभे ।

मृ—ममार, ममत्तु , ममर्थ, मम्वि । (परस्मैपद होता है) ।

वृ—ववार, ववत्तु , ववरिथ, ववृष । ववे, ववृपे ।

स्तृ—तस्तार, तस्तारु , तस्तर्थ, तस्तरि । तस्तरे, तस्त्रिपे ।

तृ—ततार, तेरुत्तु , तेर , तेरिथ ।

दृ—ददार, ददरुत्तु ददरुत्तु , ददरिथ ।

हृ—जुहाव, जुहुवत्तु , जुह्विथ जुहोथ ।

गृ—जगौ, जगत्तु , जगिथ जमाथ ।

त्रै—तत्रे , तत्रिपे ।

ध्र्यै—दध्यौ, दध्यत्तु , दध्यिथ दध्याथ ।

तर्क्—तर्कयामास इत्यादि, तर्कयामासत्तु इत्यादि, तर्कयामासि ।

लोक—लुलोके , लुलुकिपे ।

शक्—शशाक, शेकत्तु , शेकिथ शशक्य ।

शङ्—शशङ्के, शशङ्किपे ।

लिख्—लिखेत्तु, लिखिषत्तु , लिखिषिथ ।

लृह्—लृहत्तु, लृहत्तु , लृहत्तिथ । (उपनासाथं) लृह्वे, लृह्विपे ।

शलाघ्—शशलाघे, शशलाघिपे ।

पृ—पपाच, पेचत्तु , पेचिथ पपच्य । पेचे, पेचिपे ।

- मुच्—मुमोच, मुमुचतु , मुमोचिथ । मुमुचे , मुमुचिपे ।
 याच्—ययाच, ययाचतु , ययाचिथ । ययाचे , ययाचिपे ।
 शुच्—शुशोच, शुशुचतु , शुशोचिथ ।
 सिच्—सिपेच, सिपिचतु , सिपेचिथ । सिपिचे , सिपेचिपे ।
 भञ्ज्—बभञ्ज, बभञ्जतु बभञ्जतु , बभञ्जिथ बभञ्जथ ।
 भुञ्—बुभोज, बुभुजतु , बुभोजिथ । बुभुजे , बुभुजिपे ।
 मञ्ज्—ममञ्ज, ममञ्जतु , ममञ्जिथ ममञ्जथ ।
 यञ्—इयाज, ईजतु , इयजिथ इयए । ईजे , ईजिपे ।
 युञ्—युभोज, युयुजतु , युयुजिथ । युयुजे , युयुजिपे ।
 रञ्ज्—ररञ्ज, ररजतु ररञ्जतु , ररञ्जिथ ररञ्जथ । ररजे ररञ्जे ।
 सञ्ज्—समञ्ज, समञ्जतु समञ्जतु , समञ्जिथ समञ्जथ ।
 जट्—जट्टे , जट्टिपे ।
 जेष्ट्—जेष्टे , जेष्टिपे ।
 पट्—पपाठ, पठतु , पठिथ ।
 श्राट्—श्रिफ्राड, श्रिफ्राडतु , श्रिफ्राडिथ ।
 कृत्—ककृत्तं, ककृत्ततु , ककृत्तिथ ।
 नृत्—ननृत्तं, ननृत्ततु , ननृत्तिथ ।
 यत्—येत्ते , येत्तिपे ।
 वृत्—ववृत्ते , ववृत्तिपे ।
 व्यप्—विव्यपे ; विव्यपिपे ।
 षन्त्—षकृन्द, षकृन्दतु , षकृन्दिथ ।
 शान्त्—शान्पाद, शान्पादतु , शान्पादिथ ।

छिङ्—चिच्छेद, चिच्छिद्यतु , चिच्छेदिय ।

पट्—पेद, पेदिपे ।

वट्—उवाद, ऊदतु , उवदिय ।

विट्—(दिवादि) विविदे , विविदिपे ।

सट्—समाद, सेदतु , सेदिय समत्य ।

स्पन्ट्—स्पन्दे , स्पन्दिपे ।

कृष्—कुक्रोध, कुकृषतु , कुक्रोधिय ।

बन्ध्—बध्न्ध, बध्न्तु बध्न्धतु , बध्न्धिय बध्न्ध ।

बाष्—बबाधे , बबाधिपे ।

बुष्—बुबोध, बुबुधतु , बुबोधिय । (दिवादि) बुबुधे , बुबुधिपे ।

रुष्—'रुष्' धातुवत् ।

युष्—युयुधे , युयुधिपे ।

वृष्—ववृधे , ववृधिपे ।

व्यष्—विज्याध, विविधतु , विज्यधित्त विज्यद् ।

सिष्—सिषेत्, सिषितु , सिषेधिय सिषेद् । (गति और निष्पत्त्यर्थमे 'इट्' नित्य) ।

जन्—जज्ञे , जज्ञिपे ।

मन्—मेने , मेनिपे ।

क्षिप्—क्षिषेत्, क्षिषितु , क्षिषेधिय । क्षिषिपे , क्षिषिपे ।

गुर्—गोपायाञ्कार इत्यादि, गोपायाम्बभूवतु इत्यादि ; गोपायाम्बभूविय । (षञ्) जुगोप, जुगुपतु , जुगोपिय जुगोप्य ।

तप्—तताप, तेपतु , तेपिय ततप्य ।

तृप्—ततर्पे, तत्रुपतु , ततर्पिय तत्रुप्य ततर्प्य ।

दृप्—'तृप्'-धातुवत् ।

दीप्—दिदीपे, दिदीपिपे ।

लृप्—लृलोप, लृलुपतु , लृलोपिय । लृलृपे ।

वृप्—डवाप, ऊपतु , डवपिय डवप्य ।

वेष्—वेपे, वेपिपे ।

शप्—शशाप, शेपतु , शेपिय शशाप्य । शेपे ; शेपिपे ।

स्वप्—स्रुवाप, स्रुपतु , स्रुपिय स्रुप्य ।

लृम्—लृलृपे, लृलृपिपे ।

क्षुम्—क्षुक्षोम, क्षुक्षुमतु , क्षुक्षोमिय । क्षुक्षुमे, क्षुक्षुमिपे ।

रुम्—रुमे, रुमिपे ।

लृम्—'रुम्' धातुवत् ।

शुम्—शुशुमे, शुशुमिपे ।

कम्—कामयाम्बभूव, कामयामाम, कामयाद्बभूवै ; कामयाम्बभूविय,
कामयामामिय, कामयाद्बभूवै । (पठे) चकमे, चकमिपे ।

क्रम्—चक्राम, चक्रमतु , चक्रमिय ।

नम्—ननाम, नेमतु , नेमिय ननन्थ ।

भ्रम्—दभ्रान, भ्रमतु दभ्रमतु , भ्रेनिय दभ्रमिय ।

वम्—'ध्रम्'-धातुवत् ।

यम्—ययाम, येमतु ; येमिय ययन्थ ।

रुम्—रुमे ; रुमिपे ।

शम्—शशाम, शेमतु ; शेमिय ।

धम्—शधाम, शधमतु, शधामिथ ।

चर्—बचार, चेतु, चेरिथ ।

त्वर—तत्वरं, तत्वरिथे ।

पूर—पुपूरे, पुपूरिथे ।

स्फुर्—पुस्फोर, पुस्फुरतु, पुस्फोरिथ ।

चल्—बचाल, चेतु, चेलिथ ।

ज्वल्—जज्वाल, जज्वलतु, जज्वलिथ ।

जीव्—जिजीव, जिजीवतु, जिजीविथ ।

दिव्—दिदध, दिदितु, दिदिविथ ।

धाव्—दधाव, दधावतु, दधाविथ ।

सिञ्—सिपेवं, सिपेविथे ।

वश्—आनशे; आनशिपे आनशे, आनशिष्टे आनशे ।

काश्—काशाम्बभूव, काशामास, काशाञ्ज्जे, काशाम्बभूविथ, काशामामिथ, काशाञ्ज्ज्ये । (पने) चकासे, चकाशिपे ।

ह्रिश्—चिह्रेत, चिह्रितु, चिह्रेशिथ चिह्रेष ।

दन्श्—ददश, ददशतु ददशतु, ददशिथ ददशिथ ददष्ट ।

दिश्—दिदश, दिदितु, दिदशिथ । दिदिते; दिदिशिपे ।

नश्—ननाश, नेशतु, नेशिथ ननष्ट, नेशित नेश ।

अन्श्—बभ्रश, बभ्रशतु बभ्रशतु, बभ्रशिथ ।

विश्—विवेश, विविशतु, विवेशिथ ।

स्पृश्—पस्पृश, पस्पृशतु, पस्पृशिथ ।

ईश्—ईक्षाम्बभूव, ईक्षामास, ईशाञ्ज्जे, ईक्षाम्बभूविथ, ईक्षामामिथ,

ईशाञ्चट्टये ।

काह्—चकाह, चकाहत्तु , चकाहिय ।

चक्ष्—चक्ष्यौ , चक्ष्ये चक्षे ।

कृप्—चकृष, चकृषत्तु , चकृषिय ।

दृप्—जघर्ष, जघृषत्तु , जघर्षिय ।

तुप्—तुतोष, तुतुषत्तु , तुतोषिय ।

दुप्—'तुप्' धातुवत् ।

द्विप्—दिद्वेष, दिद्विषत्तु , दिद्वेषिय । दिद्विषे ।

पिप्—पिपेष, पिपिषत्तु , पिपेषिय ।

पुप्—'पिप्' धातुवत् ।

भाप्—बभाषे , बभाषिये ।

मृप्—ममर्ष, ममृषत्तु , ममर्षिय । (दिवादि—उभयवदी) ममृषे ; ममृषिये ।

रक्ष्—ररक्ष, ररक्षत्तु , ररक्षिय ।

शुप्—शुतोष, शुशुषत्तु , शुतोषिय ।

छिप्—शिच्छेष, शिच्छिषत्तु , शिच्छेषिय ।

हृप्—जहर्ष, जहृषत्तु ; जहर्षिय ।

अम्—अभूद्य इत्यादि । (दिवादि) आस, आसत्तु आसिय ।

आम्—आमास्वभूय, आमासास, आमासक्रे , आसास्वभूषिय,

आमासासिय, आमासकृषे ।

यम्—(अदादि) यवसे ; यवसिये ।

शन्म्—शशंस, शशंसत्तु , शशंसिय ।

शाम्—शशास, शशासत्तु ; शशासिय ।

गाह्—जगाहे ; जगाहिये जगाभे ।

दह्—ददाह, देहतु , दहिय दग्ध ।

दुह्—दुदोह, दुदुहतु , दुदोहिय । दुदुहे , दुदुहिये ।

मुह्—मुमोह, मुमुहतु , मुमोहिय ।

रह्—ररोह, ररह्यु , ररोहिय । ररहे , ररहिये ।

लिह्—लिलेह, लिलिहतु । लिलिहे , लिलिहिये ।

वह्—उवाह, ऊहतु , उवहिय उवोह । ऊहे, ऊहिये ।

सह्—सेहे , सेहिये ।

अनुवाद करो—भीमने दुर्षोधनका ऊर भग्न किया था । हमने कभी उसे नहीं खाया । उसने ज्वराक्रान्त होकर (सन्) भर्त्सना की थी । प्राचीन कालमें छात्रलोग प्राण्यगमे गुहका वाक्य पालन करते थे । व्याम-देवजी महामारतका घृत्तान्त जानते थे । भीमने दु शासनका रक्त पान किया था । राम और लक्ष्मण पिताकी आज्ञासे वनमें गये थे । लक्ष्मणने इन्द्रजितको मारा था । वानर किष्किन्ध्यामें रहते थे । शिविने दूसे-के लिये प्राण दान किया था । दवताओंने असुरोंके भयमें विशुका स्तव किया था ।



लुङ् ।

[इस प्रकरणमें २५७, २६०, २६१, २६३, २८०, २९८, २९९, ३००, ३०४, ३०५, ३०६, ३०८, ३१४, ३१६, ३२४, ३२५, ३२७, ३२८, ३३४ सूत्र, और इट्विधान, आशीर्लिङ् तथा अन्यान्य प्रकरणके स्तर(६)-चिह्नित सूत्रोंका यथासम्भव कार्य्य होगा ।]

४२२ । लुङ्-विभक्ति परे रहनेसे, धातुके उत्तर 'सि' (यिच्) होता है, इकार इत्, 'स्' रहता है, यथा—भृ + इ = अभृ (२६१ सू०) + स् + इ—

४२३ । परस्मैपदकी विभक्ति परे रहनेसे, भू, स्या, दा, धा, (पानार्थ) पा और इ धातुके उत्तर विहित 'सि' का लोप होता है; यथा—अभृद् = अभृत् (२६० सू०), (ताम्) अभृताम् ।

४२४ । लुङ्-विभक्तिका स्वरवर्ण परे रहनेसे, भृ—भृत् होता है; यथा—भृ + अन् = अभृवन् ।

४२५ । 'सि' के परस्थित 'अन्'—'उम्' होता है, 'उम्' परे आकारान्त धातुका आकार लुप्त होता है, यथा—स्या + अन् = अस्या + स् + अन् = अस्या + उम् = अस्थु ।

४२६ । आत्मनेपदमे स्या, दा और धा धातुका 'आ'—'इ' होता है, यथा—दा + त = अदा + स् + त = अदित (४३१ सू०), (ताम्) अदिपाताम् ।

४२७ । लुङ् परे रहनेसे, 'इ'—'गा' होता है, यथा—इ + इ = अगा + स् + इ = अगात्, (ताम्) अगाताम्, (अन्) अगु ।

४२८ । परस्मैपदकी विभक्ति परे रहनेसे, घ्रा, धे, छो, शो और सो धातुके उत्तर विहित 'सि' का विकल्पमे लोप होता है, यथा—घ्रा + इ = अघ्रा + स् + इ = अघ्रात्, (प्ले) अघ्रा + स् + इ—

४२९ । लुङ्के 'इ' और 'म्' परे रहनेसे, धातुके उत्तर विहित 'सि' के पश्चात् 'ई' (ईद्) होता है; यथा—अघ्रा + स् + ई + इ = अघ्रासीत् ।

४३० । इ, म् भिन्न विभक्तिमे परस्मैपदी आकारान्त धातुके उत्तर

विहित 'सि' के पूर्वमे 'स्' और 'इद्' होते हैं, यथा—ज्ञा + ताम् = अज्ञा + स् + ताम् = अज्ञा + स् + इ + स् + ताम् = अज्ञामिष्टाम् ।

४३१ । त, थ, ध परे रहनेसे, ह्रस्वस्वर तथा वर्गके षष्ठमवर्ण और य, र, ल, व भिन्न व्यञ्जनवर्णके परस्थित 'सि' का लोप होता है, और 'इ' परे रहनेसे, 'इद्' के परस्थित 'सि' का लोप होता है; यथा—कृ + त = अकृ + स् + त = अकृत, (आताम्) अकृपाताम्, (अन्त) अकृपत (२८० सू०) ।

४३२ । 'सि' परे रहनेसे, परस्मैपदमे स्वरान्त धातुके अन्त्यम्बर, और अनिट् व्यञ्जनान्त धातुके उपधा लघुस्वराकी वृद्धि होती है, किन्तु णिजन्त धातु, श्वि और जागृ धातुका गुण होता है; यथा—नु + द् = अनु + स् + द् = अनु + इ + स् + ई + द् = अनौ + इ + ई + द् = अनावीत्, (पक्षे) भनौपीत् । श्वि + द् = अश्वि + स् + द् = अश्वि + इ + स् + ई + द् = अश्वे + इ + ई + द् = अश्वयीत् ।

४३३ । लुङ् विभक्ति परे रहनेसे, परस्मैपदमे उपधा लघुम्बरका, और आत्मनेपदमे अन्त्यम्बर तथा उपधा लघुम्बरका गुण होता है; यथा—सिद् + द् = असिद् + स् + ई + द् = असिद् + इ + स् + ई + द् = असेधीत्, (पक्षे) असिद् + स् + ई + द् = असैत्सीत् (३०० सू०) । (आत्मनेपदमे) शी + त = अशी + इ + स् + त = अशीतिष्ट, सुत् + त = अशोतिष्ट ।

४३४ । 'सि' परे रहनेसे, आत्मनेपदमे अनिट् ऋकारान्त धातुका गुण नहीं होता, यथा—कृ + आताम् = अकृ + स् + आताम् = अकृपाताम् ।

४३५ । 'सि' परे रहनेसे, परस्मैपदमे षण्, यद्, 'अर्' अन्त और

‘अल्’-अन्त धातुके उपधा अमारसो वृद्धि होती है, यथा—मज् + द् = अमज् + स् + द् = अमज् + इ + स् + ई + द् = अमाजीत्, (ताम्) अमाजिष्टाम् । यद् + द् = अयादीत्, (ताम्) अयादिष्टाम् । चर् + द् = अचारीत्, (ताम्) अचारिष्टाम् । चल् + द् = अचालीत्, (ताम्) अचालिष्टाम् ।

४३६ । ‘सि’ परे रहनेसे, परस्मैपदमे व्यञ्जनादि अर्थात् जिसके आदिमे व्यञ्जनवर्णे रहे णेसे सेट् धातुका उपधा अकार विकल्पसे वृद्धि प्राप्त होता है, किन्तु हान्त, मान्त, यान्त, क्षण्, रज्, वध् और पृसर इत् (एदित्) धातुका नहीं होता, यथा—गद् + द् = अगादीत्, अगदीत् । (हान्त) चह् + द् = अचहीत्, (मान्त) क्रम् + द् = अक्रमीत् ; (यान्त) हर्ष् + द् = अहर्षीत्, क्षण् + द् = अक्षणीत्, रज् + द् = अरज्सीत्, वध् + द् = अवधीत्, हन् + द् = अहसीत् (लुङ् परे हन्—वध् होता है), (एकार-इत् *) हम् + द् = अहसीत् ।

४३७ । एङ् विभक्ति परे रहनेसे, परस्मैपदमे यम्, रम्, नम् धातुके उत्तर विहित ‘सि’ के पूर्वमे ‘स्’ और ‘इट्’ होते हैं, यथा—यम् + द् = अयम् + स् + इ + य् + ई + द् = अयमीत् (६३ सू०), (ताम्) अयसिष्टाम् । नम् + द् = अनमीत्, (ताम्) अनसिष्टाम् । रम् + द् = अरमीत्, (ताम्) अरसिष्टाम् ।

४३८ । एङ्-विभक्ति परे रहनेसे, (अच्वयनाथं) अधि + इ धातुके स्थानमे विकल्पसे ‘गी’ होता है, यथा—अधि + इ + त = अधिगी, (पक्षे) अधिगी ।

* एकार-इत् धातु—इट्, अट्, अत्, रग्, लग्, हस् इत्यादि ।

४३९ । लुङ्-विभक्तिका परस्मैपद परे रहनेसे, शाम्, लृकार-इत्, *
 घृतादि[†] और पुपादि[‡] धातुके उत्तर 'ङ' (अङ्) होता है, 'अ' अवशिष्ट
 रहता है, यथा—शाम् + इ = अशिपत् (लुङ्मे शाम्—शिप् होता है),
 (लृकार इत्) गम् + इ = अगमत्, (घृत्) अघृतत् (लुङ्-विभक्तिमें
 घृत् उभयपदी), (आत्मनेपदमे) अद्योतिष्ट, (पुप्) अपुपत् ।

४४० । लुङ् विभक्तिका परस्मैपद परे रहनेसे, 'जृ' प्रभृति[§] और
 'इर्' इत् ॥ धातुके उत्तर विकल्पसे 'ङ' होता है, यथा—जृ + इ = अ
 जात्, (पथे) अजातीत् ('ङ' पर, जृ—जर् होता है) । ('इर्' इत्)
 च्युत् + इ = अच्युत्, (पथे) अच्योतीत्, भिद् + इ = अभिदत्,
 (पथे) अभिदताम्, (ताम्) अभिदतान्, (अन्) अभिदन्,
 अभिदस ।

* लृकार इत् (लृदित्) धातु—गम्, नश्, आप्, षस्, पत्,
 पिप्, शब्, सप् इत्यादि ।

† घृतादि—घृत्, दिवत्, स्विद् (भ्वादि), रुत्, शृत्, शृम्, क्षुम्
 (भ्वादि), ष्वम्, भ्रश् (भ्वादि), वृत्, वृत्, स्पन्द, कृप् (कलृत्), लृङ्
 इत्यादि । लृङ् परे, घृतादि उभयपदी ।

‡ पुपादि—पुप्, तुप्, शप्, शक्, शिप्, दुप्, छुत्, कुत्,
 स्विद्, तृप्, इप्, इद्, मुद्, स्निह्, क्षम्, कल्म्, मद्, भम्, तम्,
 दाम्, दम्, जम्, कुत्, लुप्, लुम्, सिच् इत्यादि ।

§ जादि—जृ, दिव, स्तन्म् इत्यादि ।

॥ 'इर्'-इत् धातु—इद्युत्, इन्द्, रिच्, विच्, रुञ्, रुद्, विञ्
 युञ् (रुगादि), भिद्, तिन्, इश्, दुद्, च्युत्, शप् इत्यादि ।

४४१ । कर्तृवाच्यमे लुङ्-विभक्तिमे, (अदादि) वच्, (दिवादि) खम्, रया और लिच्, सिच्, ह्ये धातुके उत्तर 'ड' होता है; और आत्मनेपदमे लिवादि धातुके उत्तर विकल्पसे 'ड' होता है ।

४४२ । लुङ्-विभक्तिमे धि, सु, ड्रु और कम् धातुके उत्तर 'अट्' होता है, दिव और पेट् धातुके उत्तर विकल्पसे 'अङ्' (चङ्) होता है, 'अ' वाचशिष्ट रहता है ।

४४३ । 'ड' परे रहनेसे, नत्-विकल्पसे नेत्, वच् और मू-वोच्, अम्-अस्म्, रया-ख्य्, ह्ये-ह्ये, पत्-पत्, अट्-अम् होता है, यथा-नत् + ट् = अनेदात्, अनदाव, (वच् और मू) अत्रोचत्; (अम्) आस्यत्; (रया) अख्यत्, (ह्ये) अह्यत्, (पत्) अपत्त्; (अट्) अषमत् ।

(आत्मनेपदमे लिवादि) लिप् + त = अलिपत्, अलित, (सिच्) असिचत्, असिक्त, (ह्ये) अह्यत्, अह्याम् ।

४४४ । 'अङ्' परे रहनेसे, ड्रु-ड्रुट्, सु-सुवृत्, धि-धिधिय्, कम्-कोकम् और चकम् होता है; यथा-(ड्रु) अद्रुवृत्; (सु) असुवृत्; (धि) अधिधियत्; (कम्) अकोकन्त्, अचकम् ।

४४५ । लृङ्-विभक्ति परे रहनेसे, र्त् और क् धातुके उत्तर विकल्पसे 'ड' होता है; 'ड' परे गुण होता है; यथा-स्त् + ट् = अस्तव, असार्थव्, (क्) अस्तव्, आर्थाव ।

४४६ । लृङ्-विभक्ति परे रहनेसे, ट् धातुके उत्तर विकल्पसे 'ड' होता है; 'ड' परे गुण होता है; यथा-ट्त् + ट् = अट्साव ।

४४७ । 'सि' परे रहनेसे, ट्-ट्सात्, और स्त्-सत् होता है; यथा-ट्त् + ट् = अट्साव (३०० सू०) ; (स्त्) अस्साव ।

४४८ । लुङ् परे दुहादि* धातुके उत्तर 'स' (कस) द्वोता है , 'स' परे गुण, इट् कुठभी नहीं होता , और आत्मनेपदमे दुह्, युह्, दिह्, लिह् धातुके उत्तर विकल्पसे 'स' होता है , यथा—दुह् + द् = अदुह् + स + द् = अभुक्षन् (३०६ और ३३४ सू०) , (आत्मनेपदमे) दुह् + त = अदुह् + स + त = अभुक्षन्, अदुग्ध , (अन्त) अभुक्षन्त ।

४४९ । लुङ् परे रहनेसे, कृप्, सृप्, स्पृश्, दिश्, द्विप्, स्विप् और भालिङ्गनाथं रिक् धातुके उत्तर विकल्पसे 'स' होता है , यथा—कृप् + द् = अकृप् + स + द् = अकृक्षन् ।

४५० । 'सि' परे रहनेसे, कृप्—क्राप्, सृश्—घ्राश्, तृप्—त्राप्, दृप्—द्राप्, स्वप्—स्त्राप् और स्पृश्—स्त्राश् होता है—विकल्पसे ; यथा—(कृप्) अक्राक्षीत् . (पक्षे) अक्राक्षीत् (४३२ सू०) ।

४५१ । लुङ्के आत्मनेपदके 'त' और 'थास्' परे, तनादि धातुके उत्तर 'सि' का विकल्पसे लोप होता है , और लोप होनेसे नकार लुप्त होता है , यथा—तन् + त = अतत, अतनिष्ट , (थास्) अतथा , अतनिष्ठा ।

४५२ । लुङ्के आत्मनेपदका 'त' परे रहनेसे, पद् धातुके उत्तर 'इण्' होता है , 'इण्' का 'ण्' इत्, 'इ' रहता है , और उस 'इण्' के परस्थित 'त' लुप्त होता है , यथा—पद् + त = अपद् + इ + त = अपादि , (ताम्) अपत्साताम् ।

४५३ । 'त' परे रहनेसे, प्याय्, ताय्, दीप्, पूर्, जन् और लुञ्

* उपधामे इकार और लकार रहे ऐसे अनिट् दुह्, मिह् प्रभृति हान्त धातु ।

धातुके उत्तर विकल्पते 'इण्' होता है, यथा—प्याच् + त = अप्यायि,
अप्यायिष्ट, बुध् + त = अभोधि*, अबुद्ध, (ताम्) अभुत्माताम् ;
(अन्त) अभुत्सत ।

(लुङ्-रूप)

परस्मैपदी ।

भू धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
मध्यमपुरुष	अभू	अभूतम्	अभूत
उत्तमपुरुष	अभूवम्	अभूय	अभूम

श्रु धातु ।

प्रथमपुरुष	अश्रौषीत्	अश्रौषाम्	अश्रीषु
मध्यमपुरुष	अश्रौषी	अश्रौषम्	अश्रीष्ट
उत्तमपुरुष	अश्रौषम्	अश्रौष्व	अश्रीष्व

तृ धातु ।

प्रथमपुरुष	अतारीत्	अतारिषाम्	अतारिषु
मध्यमपुरुष	अतारी	अतारिषम्	अतारिष्ट
उत्तमपुरुष	अतारिषम्	अतारिष्व	अतारिष्व

वट्ट धातु ।

प्रथमपुरुष	अवादीत्	अवादिषाम्	अवादिषु
------------	---------	-----------	---------

* 'इण्' परे बुध्—बोधि होता है ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	अवादी	अवादिष्टम्	अवादिष्ट
उत्तमपुरुष	अवादिषम्	अवादिष्य	अवादिष्य

वस् धातु ।

प्रथमपुरुष	अवात्सीत्	अवात्ताम्	अवात्सुः
मध्यमपुरुष	अवात्सीः	अवात्तम्	अवात्त
उत्तमपुरुष	अवात्सम्	अवात्स्य	अवात्सम्

रुद् धातु ।

प्रथमपुरुष	{ अरुदत् अरोदीत्	{ अरुदताम् अरोदिष्टाम्	{ अरुदन् अरोदिषुः
मध्यमपुरुष	{ अरुद- अरोदी-	{ अरुदतम् अरोदिष्टम्	{ अरुदत अरोदिष्ट
उत्तमपुरुष	{ अरुदम् अरोदिषम्	{ अरुदाव अरोदिष्य	{ अरुदाम अरोदिष्य

गम् धातु ।

प्रथमपुरुष	अगमत्	अगमताम्	अगमन्
मध्यमपुरुष	अगम-	अगमतम्	अगमत
उत्तमपुरुष	अगमम्	अगमाव	अगमाम

क्वम् धातु ।

प्रथमपुरुष	अकमीत्	अकमिष्टाम्	अकमिषु
मध्यमपुरुष	अकमी-	अकमिष्टम्	अकमिष्ट
उत्तमपुरुष	अकमिषम्	अकमिष्य	अकमिष्य

नम् धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अनंसीत्	अनंसिष्टाम्	अनसिपुः
मध्यमपुरुष	अनंसी	अनसिष्टम्	अनंसिष्ट
उत्तमपुरुष	अनंसिपम्	अनसिष्व	अनंसिष्व

दृश् धातु ।

प्रथमपुरुष	{ अदर्शत् अद्राक्षीत्	{ अदर्शताम् अद्राष्टाम्	{ अदर्शन् अद्राक्षुः
मध्यमपुरुष	{ अदर्शं अद्राक्षीः	{ अदर्शतम् अद्राष्टम्	{ अदर्शत अद्राष्ट
उत्तमपुरुष	{ अदर्शम् अद्राक्षम्	{ अदर्शाव अद्राक्ष्व	{ अदर्शाम् अद्राक्ष्व

स्पृग् धातु ।

प्रथमपुरुष	{ अस्पृक्षत् अस्प्राक्षीत् अस्प्राक्षीत्	{ अस्पृक्षताम् अस्प्राष्टाम् अस्प्राष्टाम्	{ अस्पृक्षन् अस्प्राक्षुः अस्प्राक्षुः
मध्यमपुरुष	{ अस्पृक्षं अस्प्राक्षी अस्प्राक्षी	{ अस्पृक्षतम् अस्प्राष्टम् अस्प्राष्टम्	{ अस्पृक्षत अस्प्राष्ट अस्प्राष्ट
उत्तमपुरुष	{ अस्पृक्षम् अस्प्राक्षम् अस्प्राक्षम्	{ अस्पृक्षाव अस्प्राक्ष्व अस्प्राक्ष्व	{ अस्पृक्षाम् अस्प्राक्ष्व अस्प्राक्ष्व

आत्मनेपदी ।

शी धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अशयिष्ट	अशयिषाताम्	अशयिषत
मध्यमपुरुष	अशयिष्ठा	अशयिषायाम्	अशयिद्भुम् (ध्वम्)
उत्तमपुरुष	अशयिषि	अशयिष्वहि	अशयिष्महि

सेव् धातु ।

प्रथमपुरुष	असेविष्ट	असेविषाताम्	असेविषत
मध्यमपुरुष	असेविष्ठा	असेविषायाम्	असेविद्भुम् (ध्वम्)
उत्तमपुरुष	असेविषि	असेविष्वहि	असेविष्महि

जन् धातु ।

प्रथमपुरुष	{ अजनि अजनिष्ट	अजनिषाताम्	अजनिषत
मध्यमपुरुष	अजनिष्ठा	अजनिषायाम्	अजनिद्भुम्
उत्तमपुरुष	अजनिषि	अजनिष्वहि	अजनिष्महि

पठ् धातु ।

प्रथमपुरुष	अपादि	अपत्साताम्	अपत्सत
मध्यमपुरुष	अपत्या	अपत्साथाम्	अपद्भुम्
उत्तमपुरुष	अपत्सि	अपत्स्वहि	अपत्स्महि

अधि + इ धातु ।

प्रथमपुरुष	{ अध्यगीष्ट अध्यैष्ट	{ अध्यगीषाताम् अध्यैषानाम्	{ अध्यगीषत अध्यैषत
------------	-------------------------	-------------------------------	-----------------------

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
मध्यमपुरुष	{ अर्ध्यगीष्ठाः अर्ध्यैष्ठाः	{ अर्ध्यगीपाथाम् अर्ध्यैपाथाम्	{ अर्ध्यगीद्वम् अर्ध्यैध्वम्
उत्तमपुरुष	{ अर्ध्यगीपि अर्ध्यैपि	{ अर्ध्यगीप्सहि अर्ध्यैप्सहि	{ अर्ध्यगीप्सहि अर्ध्यैप्सहि

उभयपदा ।

दा धातु ।

(परस्मैपद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अदात्	अदाताम्	अदुः
मध्यमपुरुष	अदा .	अदातम्	अदात
उत्तमपुरुष	अदाम्	अदात्	अदाम

(आत्मनेपद)

प्रथमपुरुष	अदित	अदिपाताम्	अदिपत
मध्यमपुरुष	अदिथाः	अदिपाथाम्	अदिद्वन्
उत्तमपुरुष	अदिपि	अदिप्सहि	अदिप्सहि

दा धातु ।

(परस्मैपद)

प्रथमपुरुष	अदासीत्	अदासिष्टाम्	अदासिषुः
मध्यमपुरुष	अदासी	अदासिष्टम्	अदासिष्ट
उत्तमपुरुष	अदासिषम्	अदासिष्य	अदासिष्य

(आत्मनेपद्)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अज्ञास्त	अज्ञासाताम्	अज्ञासत
मध्यमपुरुष	अज्ञास्था	अज्ञासाथाम्	अज्ञाध्वम्
उत्तमपुरुष	अज्ञासि	अज्ञास्वहि	अज्ञास्महि

कृ धातु ।

(परस्मैपद्)

प्रथमपुरुष	अकार्षीत्	अकार्षाम्	अकार्षुः
मध्यमपुरुष	अकार्षीः	अकार्षाम्	अकार्षी
उत्तमपुरुष	अकार्षम्	अकार्ष्व	अकार्ष्व

(आत्मनेपद्)

प्रथमपुरुष	अकृत	अकृपाताम्	अकृत
मध्यमपुरुष	अकृथा	अकृपाथाम्	अकृद्वम्
उत्तमपुरुष	अकृपि	अकृप्सहि	अकृप्सहि

भिद् धातु ।

(परस्मैपद्)

प्रथमपुरुष	{ अभिदत् अभैन्तीत्	{ अभिदताम् अभैत्ताम्	{ अभिदन् अभैत्सु.
मध्यमपुरुष	{ अभिद अभैन्सी.	{ अभिदतम् अभैत्तम्	{ अभिदत अभैत्त
उत्तमपुरुष	{ अभिदम् अभैन्स्वम्	{ अभिदाव अभैन्स्व	{ अभिदाम अभैत्स्म

(आत्मनेपद)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अभित्त	अभित्साताम्	अभित्तत
मध्यमपुरुष	अभित्या	अभित्साथाम्	अभिद्धुम्
उत्तमपुरुष	अभित्सि	अभित्सवहि	अभित्समहि

डुह् घातु ।

(परस्मैपद)

प्रथमपुरुष	अधुक्तत्	अधुक्तताम्	अधुक्तन्
मध्यमपुरुष	अधुक्त	अधुक्तनम्	अधुक्तत
उत्तमपुरुष	अधुक्तम्	अधुक्ताव	अधुक्ताम

(आत्मनेपद)

प्रथमपुरुष	{ अधुक्त अदुग्ध	अधुक्ताताम्	अधुक्तत
मध्यमपुरुष	{ अधुक्ताया. अदुग्धा	अधुक्ताथाम्	{ अधुक्तधम् अधुग्धम्
उत्तमपुरुष	अधुक्ति	{ अधुक्तावहि अदुहहि	{ अधुक्तामहि अदुह्यहि

३

४

५

आकारान्त-प्रकृति-रूपमे नः प्रचलित घातुश्लोके लृह् प्रथमपुरुष एकवचन, द्विवचन, बहुवचनके रूप दिखलाये जाते हैं । इनके जाननेसेही

अवशिष्ट पद एतान् होंगे ।

घा—अघात् अघात्ताम्, अघात्ताम् अघात्ताम्, अधु अघात्तु ।

पा—अपाव्, (रक्षार्थमे) अपासीव् ।

भा—अभासीत्, अभासिष्टाम्, अभासिषु ।

या, हा—'भा'-धातुवत् ।

इ—अगाव्, अगाताम्, अगु ।

जि—अजैषीत्, अजैष्टाम्, अजैषु ।

क्रो—अक्रैषीत्, अक्रैष्टाम्, अक्रैषु । अक्रैष्ट, अक्रैषाताम्, अक्रैषत ।

नो—'क्रो'-धातुवत् ।

मो—'जि'-धातुवत् ।*

स्तु—अस्तावीव् अस्तौषीत्, अस्ताविष्टाम् अस्तौष्टाम्, अस्ता-
विषु अस्तौषु । अस्तौष्ट ।

धु—'धु'-धातुवत् ।

पू—अपावीव्, अपाविष्टाम्, अपाविषु । अपविष्ट ।

सू—असविष्ट असोष्ट, असविषाताम् असोषाताम् ।

जागृ—अजागरीव्, अजागरिष्टाम्, अजागरिषु ।

मृ—अमृत, अमृषाताम्, अमृषत ।

वृ—अवरोव्, अवारिष्टाम्, अवारिषु । अवृत अवरिष्ट अवरोष्ट, अवृ-
षाताम् अवरिषाताम् अवरोषाताम् ।

स्मृ—अस्मार्षीव्, अस्मार्ष्टाम्, अस्मार्षु ।

हृ—अहर्षीव् । अहृत ।

कृ—अकरोव्, अकारिष्टाम्, अकारिषु ।

जृ—अजरत् अजारीव्, अजरताम् अजारिष्टाम्, अजरत् अजारिषु ।

* 'भा'-शब्दके योगसे—मा भै, मा भैषी—ये दो पद होते हैं ।

ङ्—'ङ्'-धातुश्च ।

गै—अगासौव, अगासिष्टाम्, अगामिषु ।

त्रे—अत्रास्त, अत्रासाताम् ।

शर्—अशकृव, अशकृताम्, अशकृन् ।

शङ्—अशङ्कित्, अशङ्किताम् ।

लिप्—अलेखौव, अलेखिष्टाम्, अलेखिषु ।

ह्राप्—अह्राविष्ट, अह्राविषाताम् ।

पव्—अप्राक्षौव, अप्राक्षाम्, अप्राक्षु । अपक्, अप्रक्षताम् ।

मुच्—अमुचव, अमुचताम्, अमुचन् । अमुक्, अमुक्षताम् ।

याच्—अयाचौव, अयाचिष्टान्, अयाचिषु । अयाचिष्ट ।

वच् और भू—अवोचव, अवोचताम्, अवोचन् ।

शुच् (श्रादि)—अशोचौव, अशोचिष्टाम्, अशोचिषु ।

मिच्—अमिचव, अमिचताम्, अमिचन् । अमिचत् अमिक्, अमि-
चेताम् अमिक्षताम्, अमिचन्त अमिक्षन् ।

प्रच्छ्—अप्राक्षौव, अप्राक्षाम्, अप्राक्षु ।

अर्च्—आर्जौव, आर्जिष्टान्, आर्जिषु ।

त्यच्—अत्याक्षौव, अत्याक्षाम्, अत्याक्षु ।

भञ्च्—अभ्राह्मौव, अभ्राह्माम्, अभ्राह्मन् ।

भुच्—अभौक्षौव, अभौक्षाम्, अभौक्षु । अभुक्, अभुक्षताम् ।

मन्च्—अमाह्वौव, अमाह्वाम्, अमाह्वन् ।

युच्—अयुजव अयौक्षौव, अयुजताम् अयौक्षाम्, अयुजन् अयौषु ।

अयुक्, अयुक्षताम्, अयुक्षत् ।

राञ्—अराजीत्, अराजिष्टाम्, अराजिषु । अराजिष्ट ।

लस्ञ्—अलञ्जिष्ट, अलञ्जिषताम् ।

सृञ्—अस्राक्षीत्, अस्राष्टाम्, अस्राक्षु ।

घट्—अघटिष्ट, अघटिषताम्, अघटिषत ।

चेष्ट्—अचेष्टिष्ट, अचेष्टिषताम्, अचेष्टिषत ।

वेष्ट्—'चेष्ट्'-धातुवत् ।

पङ्—अपाठीत्, अपठीत्, अपाठिष्टाम्, अपठिष्टाम् ।

क्रीड्—अक्रीडीत्, अक्रीडिष्टाम्, अक्रीडिषु ।

कृत्—अकृत्तीत्, अकृत्तिष्टाम्, अकृत्तिषु ।

नृत्—अनर्त्तीत्, अनर्त्तिष्टाम्, अनर्त्तिषु ।

पत्—अपसत्, अपसताम्, अपसन् ।

यत्—अयतिष्ट, अयतिषताम्, अयतिषत ।

वृत्—अवृत्त्, अवृत्तताम्, अवृत्त् । अवृत्तिष्ट, अवृत्तिषताम् ।

अद्—अघमत्, अघमताम्, अघमन् ।

क्रन्द्—अक्रन्दीत्, अक्रन्दिष्टाम्, अक्रन्दिषु ।

खाद्—अखादीत्, अखादिष्टाम्, अखादिषु ।

जिङ्—'भिङ्'-धातुवत् ।

विद्—अवेदीत्, अवेदिष्टाम्, अवेदिषु । (दिवादि) अवित्त, अ-

वित्ताताम् । (तुदादि) अविदत्, अवेदिष्ट अवित्त ।

कृध्—अकृधत्, अकृधताम्, अकृधन् ।

बन्ध्—अभान्त्सीत्, अभान्धाम्, अभान्त्सु ।

बुध्—(भ्वादि) अबुधत् अबोधोत्, अबोधिष्ट । (दिवादि) अबो-

धि अद्भुद, अभुत्साताम्, अभुत्सन ।

धुध्—अधुध, अधुत्साताम्, अधुत्सन ।

वृध्—अवृधत्, अवृधताम्, अवृधन् । अवर्द्धिष्ट, अवर्द्धिषाताम् ।

व्यध्—अव्यात्सीत्, अव्यात्ताम्, अव्यात्त ।

जन्—अजनि अजनिष्ट, अजनिषाताम्, अजनिषत् ।

मन्—अमस्त, अमसाताम्, अममन् ।

हन्—अवधीत्, अवधिष्टाम्, अवधिषु ।

आप्—आपत्, आपताम्, आपन् ।

क्षिप्—अक्षेप्सीत्, अक्षेप्ताम्, अक्षेष्ट, अक्षित, अक्षिप्साताम्,
अक्षिप्सत् ।

तप्—अताप्सीत्, अताप्ताम्, अताप्सत् ।

दीप्—अदीपि अदीपिष्ट, अदीपिषाताम्, अदीपिषत् ।

लुप्—अलुपत्, अलुपताम्, अलुपन् । अलुप्त, अलुप्साताम्,
अलुप्सत् ।

लभ्—अलब्ध, अलप्साताम्, अलप्सन् ।

शुम्—अशुमत्, अशुमताम्, अशुमन् । अशोभिष्ट, अशोभिषाताम्,
अशोभिषत् ।

क्षम्—(दिवादि) अक्षमत् अक्षमोत् । (भ्वादि) अक्षमिष्ट अक्षंस्त ।

अम्—(भ्वादि) अअमत् अअमोत्; (दिवादि) अअमोत् ।

यम्—अयमोत्, अयसिष्टाम्, अयसिषु ।

रम्—अरस्त, अरसाताम्, अरंसत् ।

शम्—अशमत् । ('अशमत् अशमोत्' इति शोपदेव ।)

श्रम्—अश्रमन् ।

षर्—अषारीत्, अषारिष्टाम्, अषारिषु ।

त्वर्—अत्वरिष्ट, अत्वरिषाताम् ।

पूर्—अपूरि अपूरिष्ट, अपूरिषाताम् ।

स्फुर्—अस्फुरीत्, अस्फुरिष्टाम्, अस्फुरिषु ।

ज्वल्—अज्वालीत्, अज्वालिष्टाम्, अज्वालिषु ।

जाञ्—अजीवीत्, अजीविष्टाम्, अजीविषु ।

दिव्—अदेवीत्, अद्विष्टाम्, अद्विषु ।

धाव्—अधात्रीत्, अधाविष्टाम्, अधात्रिषु । अधाविष्ट, अधाविषाताम्, अधाविषत ।

अश्—आशिष्ट आष्ट, आशिषाताम् आश्राताम्, आशिषत आश्रत ।

(ऋयादि) आशीत्, आशिष्टाम् ।

दन्ग्—अदाह्नीत्, अदाष्टाम्, अदाह्नु ।

दिश्—अदिक्षत्, अदिक्षताम्, अदिक्षन् । अदिक्षत, अदिक्षताम् ।

विग्—अविक्षन्, अविक्षताम्, अविक्षन् ।

इप्—ऐपीत्, ऐपिष्टाम्, ऐपिषु ।

ईश्—ऐक्षिष्ट, ऐक्षिषाताम्, ऐक्षिषत ।

काह्—अकाह्नीत्, अकाह्निष्टाम्, अकाह्निषु ।

कृप्—'कृष्ट्'—धातुवत् ।

तुर्—अतुपत्, अतुपताम्, अतुपन् ।

पुप्, सिप्—'तुप्' धातुवत् ।

द्विप्—अद्विक्षत्, अद्विक्षताम्, अद्विक्षन् । अद्विक्षत, अद्विक्षताम्, अद्विक्षन् ।

अद्विक्षन्त ।

भाप्—अभाषित्, अभाषिषाताम्, अभाषिषत ।

मृप्—(म्वादि) अमर्षीत् । (टिवादि) अमृषन्, अमृषताम्,
अमृषन्, अमर्षिष्ट, अमर्षिषाताम्, अमर्षिषत ।

रक्ष्—अरक्षीत्, अरक्षिषान्, अरक्षिषु ।

वृप्—अवर्षीत्, अवर्षिषाम्, अवर्षिषु ।

अस्—(अदादि) 'भृ' धातुवत् । (दिवादि) आस्यन्, आ-
स्यताम्, आस्यन् ।

आम्—आमिष्ट, आमिषाताम्, आमिषत ।

वस्—(अदादि) अवसिष्ट, अवसिषाताम्, अवमिषत ।

अन्त्—अशंसौत्, अशंसिषाम्, अशंसिषु ।

शाम्—अशपत्, अशपताम् अशपन् ।

अश्म्—अशमौत्, अशमिषान्, अशमिषु ।

हम्—अहमौत्, अहमिषाम्, अहमिषु ।

हिन्म्—अहिंसौत्, अहिंसिषाम्, अहिंसिषु ।

गाह्—अगाहिष्ट अगाह, अगाहिषाताम् अघाक्षताम्, अगाहिषत
अघाक्षत ।

अघ्—अग्रहौत्, अग्रहीषान्, अग्रहीषु । अग्रहीष्ट, अग्रहीषाताम्,
अग्रहीषत ।

अद्—अघाक्षौत्, अदाग्धाम्, अघाक्षु ।

अद्—अदक्षत् ।

अव्—अवाक्षीत्, अवोढाम्, अवाक्षु । अवोढ, अवक्षताम्, अदक्षत ।

✠ अङ्गरेजी 'Present perfect', 'past' or 'past perfect' इनके बीचमें जिस किसीका सस्कृतमें अनुवाद करना हो, उसीमें लङ्, लुङ् अथवा लिट् विभक्तिका प्रयोग करना होगा, अर्थात् इन तीनोंके बीचमें जहाँ जिसके प्रयोगसे सुननेमें अन्धा लगता, वहाँ उसीका प्रयोग करना चाहिये। यद्यपि पूर्वकालमें 'लङ्—हस्तनी, लुङ्—अद्यतनी, और लिट्—परोक्ष'—ऐसे विशिष्ट नामोंसे इनका अभिधान हुआ था, तथाऽपि साहित्यादिग्रन्थोंमें उसका व्यभिचार दृष्ट होनेमें, सम्प्रति तद्विषयक कोई निर्दिष्ट नियम नहीं किया जा सकता। यथा—

(1) I have done my duty—अहमकरव मदीय कृत्यम् ।

(2) I did my duty—मत्कार्यमहमकार्पम् ।

(3) He had done his duty before I came—

प्रागेव ममाभ्यागमात् स तत्कर्तव्य चकार ।

प्रत्ययान्त धातु ।

णिच्, मन्, यङ् प्रभृति प्रत्ययोंसे कई धातु निष्पन्न होते हैं, उनको 'प्रत्ययान्त धातु' कहते हैं। प्रत्ययान्त धातु भ्वादिगणीयमें गण्य होते हैं (केवल 'यद्गुगन्त धातु' सदादिगणीयके तुल्य)। प्रत्ययान्त धातुके बीचमें कई एकको 'नामधातु' कहते हैं, विशेष विशेष अर्थमें नाम अर्थात् शब्दके उत्तर 'क्य, क्यङ्' प्रभृति प्रत्यय द्वारा वे निष्पन्न होते हैं।

णिजन्त धातु (Causative verb) ।

४५४ । 'प्रेरण'-अर्थमें धातुके उत्तर 'णिच्' होता है। एक

कर्त्ताके अन्य कर्त्ताको कार्यमें नियुक्त करनेका नाम 'प्रेरण' । 'णिच्' का 'इ' रहता है । 'णिच्'-प्रत्यय करके जो धातु नि-
ष्पन्न होता है, उसको 'णिजन्त धातु' कहते हैं । णिजन्त धातु
उभयपदी । यथा—(कर्त्तुं प्रेर्यति = कराता है) कारयति ।

चि + इ = चायि (२९२ सू०)—चाययति, नो + इ = नायि—
नाययति, कृ और कृ = कारि—कारयति, ध्रु + इ = ध्रावि—ध्रावयति ;
भू + इ = भावि—भावयति । (उपधा 'अ') वद् + इ = वादि—वाद-
यति । (उपधा 'उ') नुद् + इ = नोदि—नोदयति, (उपधा 'इ')
लिख् + इ = लेखि—लेखयति, सिध् + इ = सेधि—सेधयति*, (उपधा
'ऋ') दग् + इ = दर्शि—दर्शयति । (उपधा 'आ') खाद् + इ = खा-
दि—वादयति, (उपधा 'ई') जीद् + इ = जीवि—जीवयति ।

इत्-कार्य ।

४१५ । प्रकृति, आगम और प्रत्ययके जो जो वर्ण नहीं
रहते, उन्हें 'इत्' कहते हैं ; यथा—'णिच्' के 'ण्' और 'च्' इत् ।

वर्ण 'इत्' के विशेष विशेष कार्य हैं, सो प्रदर्शित किये जाते हैं—

(१) उ—'उ' इत् (उदित्) होनेसे, खोलिहमे 'इप्' होता है ;
यथा—बुद्धि + मतु = बुद्धिमत्—बुद्धिमती ।

(२) ऋ—'ऋ' इत् (ऋदित्) होनेसे, खोलिहमे 'इप्' होता है ;
यथा—रद् + शत् = रदत्—रदती ।

(३) क—'क' इत् (किन्) होनेसे, गुण नहीं होता ; यथा—

* दिवादि 'सिध्'-धातुके स्थानमें विकल्पमे 'साध्' होता है ।

बुध् + क्ति = बुद्धि , कृ + क = कृत ।

यज्, व्यध् और व्ये धातुके स्वरसहित 'य' के स्थानमे 'इ' होता है ,
यथा—यज् + क = इष्ट ।

वच्, वद्, वप्, वश्, (भ्वादि) वस्, वह्, वे, धि, स्वप् और
ह्ये धातुके स्वरसहित 'व' के स्थानमे 'उ' होता है , यथा—वच् + क =
उक्त ।

ग्रह्, प्रच्य् और अम्य् धातुके स्वरसहित 'र' के स्थानमे 'ऋ' होता
है , यथा—ग्रह् + क = गृहीत* ।

शास्-धातुके स्थानमे 'शिप्' होता है , यथा—शाम् + क = शिष्ट ।

(४) ख—'ख्' इत् (खित्) होनेसे, स्वरान्त उपपदके उत्तर
अर्थात् धातु और तत्पूर्ववर्ती शब्दके बीचमे 'म्' आगम होता है , यथा—
भय + कृ + ख = भयङ्कर , भुज + गम् + ख = भुजङ्गम ।

(५) घ—'घ्'-इत् (घित्) होनेसे, प्रकृतिके 'च्' स्थानमे 'क्', और
'ज्' के स्थानमे 'ग्' होता है , यथा—पच् + घन् = पाक , त्यज् +
घन् = त्याग ।

(६) ङ—'ङ्' इत् (ङित्) होनेसे, गुण नहीं होता , यथा—
भिद् + अङ् = भिदा ।

(७) झ—'झ्'-इत् (झित्) होनेसे, धातुके अन्त्यस्वर और
उपधा अकारकी वृद्धि होती है , यथा—हृ + घञ् = हारि ; नश् +
घञ् = नान ।

* स्वरसहित 'य' के स्थानमे 'इ', 'व' के स्थानमे 'उ', और 'र'
के स्थानमे 'ऋ' होनेको 'सम्प्रसारण' कहते हैं ।

उपधा लघुस्वरका गुण होता है, यथा—शुच् + घञ् = शोक ।

आकारान्त धातुके उत्तर 'य' होता है; यथा—दा + घञ् = दाय ।

(८) ट—'ट्'-इत् (टित्) होनेसे, खोलिङ्गमे 'ईप्' होता है;

यथा—अनु + चर् + ट = अनुचर —अनुचरौ ।

(९) ड—'ड्' इत् (डित्) होनेसे, 'टि' अर्थात् प्रकृतिके अन्त्यस्वर और सत्परवर्ती व्यङ्गनवर्णका लोप होता है, यथा—द्वि + जन् + ड = द्विज ।

(१०) ण—'ण्'-इत् (णित्) होनेसे, 'प्'-इत्के तुल्य कार्य्य होता है; यथा—ट + णक = वारक ।

सद्वितका 'ण्' इत् होनेसे प्रातिपदिकके आदिस्वरकी वृद्धि होती है; यथा—विष्णु + ण्ण = वैष्णव ।

(११) प—'प्'-इत् (पित्) होनेसे, ह्रस्वस्वरान्त धातुके उत्तर 'त्' होता है; यथा—प्र + कृ + यप् = प्रकृत्य, विघ्न + त्रि + क्तिन् = विघ्नत्रिन् ।

(१२) श—'श' इत् (शित्) होनेसे, लृक्के तुल्य कार्य्य होता है, यथा—गम् + शन् = गच्छत्, दन् + शन् = पदयत् ।

(१३) ष—'ष्' इत् (षित्) होनेसे, खोलिङ्गमे 'ईप्' होता है; यथा—विष्णु + ण्ण = वैष्णव —वैष्णवी ।

४६६ । गिच् पगे, जु, जागृ, घटादि* और 'अम्'-भागान्ता धातुकी

* घटादि—घट्, व्यष्, त्वर्, ज्वर्, प्रष्, जन्, नट् (णट्), लृग् इत्यादि ।

† किन्तु इम्, चम्, अम् धातुकी वृत्ति नहीं है ।

वृद्धि नहीं होती, यथा—(जू) जरयति, (जागृ) जागरयति, (घट्) घटयति, (गम्) गमयति ।

४९७ । णिच् परे, आकारान्त धातुके उत्तर 'प' होता है*; यथा—(स्था) स्थापयति ।

४९८ । कई शिजन्त धातुश्रीकी विशेष आकृति ।—अस्—भावि, भावयति । इ—गमि, गमयति । अधि + इ—(अध्ययनार्थे) अध्यापि, (स्मरणार्थे) अध्यापयि, अध्यापयति, अध्यापयति । प्रति + इ—(ज्ञानार्थे) प्रत्यापि, प्रत्यापयति । क्—अर्पि, अर्पयति । क्री—क्रापि, क्रापयति । गे—गापि, गापयति । चल्—(कम्पनार्थे) चलि, (स्थानान्तर-प्रापणार्थे) चालि, यथा—चलयति तरुन् समीरण, चालयति हस्तिन यन्ता । चि—चापि, चापि, चापयति, चापयति । जि—जापि, जापयति । ज्वल्—ज्वलि, ज्वालि, (उपसर्गयुक्त) ज्वलि, ज्वलयति, ज्वालयति, प्रज्वलयति । दृप्—दूपि, दूपयति, —'चित्तविकार'-अर्थमें विकल्पसे होता है, यथा—दूपयति दोषयति चित्त काम । धू—धूनि, धूतयति, —धात्रि इति च केचिन्, धावयति । नम्—नमि, नामि, (उपसर्गयुक्त) नमि; नमयति, नामयति, प्रणमयति । पा—(पातार्थे) पापि, (रक्षणार्थे) पालि; पापयति, पालयति । प्री—प्रीणि, प्रापि, प्रीणयति, प्रापयति । मू, वच्—वाचि, वाचयति । भी—भोपि, भापि, (करण-कारक रहनेसे) भापि, भीपि, भापि आत्मनेपदी होने हैं, यथा—सर्व शिशु भीपयते, भापयते वा—यहां सर्प अन्यत्री अपेक्षा न करके स्वयं भयका जनक है, पुरपः सपेण शिशुं भापयति—यहां पुरप सर्प-द्वारा शिशुस्य भय उत्पादन

* 'प' परे 'शा'-धातुका ह्रस्वभी होता है ।

करदा है, अन्यनिरपेक्ष होकर स्वयं नहीं । रह्—रोहि, रोपि; रोहयति, रोपयति । लम्—लम्नि; लम्नयति । लीं—लापि, लापि, (द्रव्यदार्य कर्म होनेसे) लाटि, लीनि; यथा—लौहं विलापयति, जनु विलापयति : विलापयति विलीनयति विलापयति विलापयति वा घृतम् । वन्—वनि, वानि, (उपसर्गयुक्त) वनि; वनयति, वानयति, उद्वनयति । श्—(गत्यर्थे) शादि, (पत्यर्थे) शाति; यथा—गा शादयति गोराजः (गनयतीत्यर्थ) , पत्र शातयति गुप्तर (नागयति इत्यर्थ) । शम्—शानि, (दर्शनाय) शानि; यथा—शनयति गेर्ग निष्क; निदानयति रूपन् (परयतीत्यर्थ) । सिष्—(टिवादि) माधि; माधयति । स्ना—स्नापि, स्नापि, (उपसर्गयुक्त) स्नापि, स्नयति, स्नायति, प्रस्नायति । म्नि—म्नापि, (कर्ण कारक रहनेसे) म्नादि; म्नापि आत्मनेपदी होता है, यथा—मुण्ड तिष्ठुं दिम्नापयते; प्रेतो रूपेण मां दिम्नायति । हन्—घाति; घातयति । ह्यं—ह्येपि, ह्येपयति । स्तृष्—स्त्वारि, स्त्वोरि; स्त्वारयति, स्त्वोरयति ।

गिजन्त धातुके रूप ।

धाधि धातु ।

हृत्—धावयति । लोट्—धावपु । लृट्—अधावयत् । विधिलिट्—धावपेत् । लृट्—धावयिष्यति । लृट्—धावयिष्यति । लृट्—अधावयिष्यत् । आगो—(अशीर्लिट् परस्मैपदसे गिजन्त धातुके 'इ' का लोप होता है) धाव्यात्, धाव्याम्नात्, धाव्यात् ।

लिट्—

४५* । लिट्-गिजन्तधे गिजन्त धातुके उत्तर 'काम्' होता है, और

‘आम्’ के उच्चर भू, कृ, अस्—इन तीन धातुओंका प्रयोग होता है ;
यथा—आवयाम्बभूव, आपयाञ्चकार, आवयामास ।

लुङ्—अशिभ्रवत्, अशुभ्रवत् ।

४६० । लुङ्-विभक्ति परे रहनेसे, णिजन्त धातुके उच्चर ‘अङ्’ होता है ; ‘ठ’ ईत्, ‘अ’ रहता है, यथा—सेचि + ङ् = असेचि + अ + ङ्—

४६१ । ‘अङ्’ परे रहनेसे, णिजन्त धातु अम्यस्त होता है, और ‘णित्’के इकारका लोप होता है, यथा—असेच् सेच् + अ + ङ् = असित्सेच् + अ + ङ् (३९३ सूत्रानुसार इस्व)—

४६२ । ‘अङ्’ परे, अकारान्त (अदन्त) लुगादि और शास् भिन्न अम्यस्त धातुके परभागका दीर्घस्वर इस्व होता है, और अकार भिन्न पूर्वभागका इस्वस्वर दीर्घ होता है, यथा—असीसित् + अ + ङ् = असीपित्, मोचि + ङ् = अमूसुचत् ।

४६३ । अम्यस्त धातुका परभाग गुरुस्वर युक्त होनेसे, पूर्वभागका इस्वस्वर दीर्घ नहीं होता, यथा—निन्दि + ङ् = अनिनिन्दत् ।

४६४ । परभाग लघुस्वर-युक्त होनेसे, पूर्वभागका अकार—इकार होता है, यथा—पाति + ङ् = अ + पात् पात् + अ + ङ् = अपपत् + अ + ङ् = अपीपत् ।

४६५ । अनेकस्वरविशिष्ट धातुके पूर्वभागका ‘अ’ विकल्पसे ईकार होता है, यथा—चकापि + ङ् = अपीपत्, अचकासत् । (परभाग गुरुस्वर युक्त) शासि + ङ् = अशशासत्, (भक्षि) अवभक्षत् ।

४६६ । णिजन्त स्मृ, दृ, त्वर्, स्तृ, प्र्य् भिन्न मयुक्तर्गों परे रहनेसे, पूर्वभागके अकारके स्थानमें इकार होता है, यथा—व्यधि + ङ् =

अचिद्व्ययन् - (जारि) अचिद्व्ययन् । स्मारि + इ = अतस्मारत् ; (दारि)
 अददत् - (त्वरि) अतस्वरत् ; (स्तारि) अतस्तरत् ; (प्रथि)
 अथप्रथत् ।

गिञन्त चेद् और वेप् धातुका उक्त काल्य विकल्पते होता है ; यथा—
 (चेष्टि) अचिद्वेष्टन्, अचद्वेष्टन् ; (वेष्टि) अचिवेष्टन्, अचवेष्टन् ।

४६७ । गिञन्त आजादि*धातुके परनाशका टव्या गुरुस्वर
 विकल्पने लघु होता है ; यथा—आञि + इ = अदिञ्जन्, अदञ्जन् ;
 (दीवि) अदीदिन्, अदीदीन् ।

४६८ । जिन धातुओंकी टवधाने ञकार रहता है, गिञन्त कल्पते,
 वे 'अट्' परे विकल्पने धातुकी जाहति धारण करते हैं ; यथा—अञि +
 इ = अदञिन् + अ + इ = अ + इन् इन् + अ + इ = अदीइत् ; (पथे)
 अथपथत् ।

४६९ । 'अट्' परे, स्वाणि—तृपुण्, म्याणि—तिष्ठिर्, और (रागायं)
 पाणि—पीसो होता है ; यथा—स्वाणि + इ = अतृपुण् ; (स्वाणि)
 अतिष्ठिन् ; (पाणि) अपीण् ।

४७० । 'अट्' परे, गिञन्त झ, झ, झ, झ, षु और षु धातुके
 पूर्वभागके अकारके म्यानमे विकल्पते इकार होता है ; यथा—आञि
 + इ = अशिञ्जन्, अञ्जन् ; (झ) अदिञ्जन्, अदुञ्जन् ।

४७१ । 'अट्' परे रहनेमे, अकागन्त लुगादिके पूर्वभागके अकारके
 म्यानमे ई नहीं होता ; यथा—अञि + इ = अरञ्जन् ।

* आजादि—अञ्, दीञ्, नाञ्, नञ्, जीञ्, कीञ्, दीञ्, कञ्,
 रञ्, षञ्, भञ्, धञ्, लृञ्, टञ् इत्यादि ।

४७२ । 'अद्' परे, गण और कथ धातुके पूर्वभागका अकार विकल्प से 'इ' होता है, यथा—गणि + दू = अजीगणत्, अजगणत्, (कथि) अजीकथत्, अवकथत् ।

गण धातु ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	अजीगणत्	अजीगणताम्	अजीगणन्
मध्यमपुरुष	अजीगण'	अजीगणतम्	अजीगणत
उत्तमपुरुष	अजीगणम्	अजीगणाव	अजीगणाम

४७३ । णिजन्त धातुके प्रयोगमे, जो अन्य कर्ताको किसी कार्यमे प्रवर्तित (प्रेरण) करता है (अर्थान् अन्यद्वारा कोई काम कराता है), उसे 'प्रयोजक कर्ता' कहते हैं । कर्तृवान्यमे प्रयोजक कर्तामे प्रथमा होती है, और प्रयोजक कर्ताके अनुसार क्रियाके पुरुष और वचन होते हैं । प्रयोजक कर्ता जिसको क्रियामे नियुक्त करता है, अर्थान् प्रेरित होकर जो काम करता है, उसको 'प्रयोज्य कर्ता' कहते हैं । प्रयोज्य कर्तामे तृतीया विभक्ति होती है । यथा—गुरु छात्रेण लेखयति (लिखन्त छात्र प्रेरयति—गुरु छात्र द्वारा लिखाता है)—यहाँ 'गुरु'—प्रयोजक कर्ता, 'छात्रेण'—प्रयोज्य कर्ता ।

किसी किसी धातुके प्रयोगसे प्रयोज्य कर्ता कर्म होता है । जिस धातुके प्रयोगसे प्रयोज्य कर्ता कर्म होता है, सो नीचे दिखानाया जाता है ।

४५४ । गत्यर्थ*, प्राप्त्यर्थ†, ज्ञानार्थ‡, कथनार्थ, पठनार्थ, भोजनार्थ (अद्, खाद्-भिन्न) और अकर्मक धातुओंकी अणिजन्तावस्थामे जो कर्त्ता (प्रयोज्य कर्त्ता), वह उनही अणिजन्तावस्थामे कर्म होता है §, (तत्र उक्ते 'प्रयोज्य कर्म' कहते हैं, प्रयोज्य कर्ममे द्वितीया होती है), यथा—

(गत्यर्थ) पुत्र विद्यामन्दिर गच्छति—पिता पुत्र विद्यामन्दिरं गमयति ।

(प्राप्त्यर्थ) दरिद्र धन प्राप्नोति—आद्य दरिद्र धन प्रापयति ।

(ज्ञानार्थ) शिष्य गुरुं बुध्यते जानाति वा—गुरुः शिष्यं शास्त्रं बोधयति ज्ञापयति वा ।

(कथनार्थ) द्यात्र पाठं वक्ति—गुरुश्छात्रं पाठं वाचयति ।

(पठनार्थ) ब्रह्मचारी वेदं पठति—आचार्यः ब्रह्मचारिणं वेदं पाठयति ।

(ग्रहणार्थ) विप्रं दक्षिणां दृष्ट्वाति—यजमानः विप्रं दक्षिणां द्राहयति ।

(दर्शनार्थ) बालश्चन्द्रं पश्यति—जननी बालं चन्द्रं दर्शयति ।

(श्रवणार्थ) मन्त्रां पुराणं श्रवति—वाचकः सन्त्रयानं पुरा-

* प्रवेश, आरोहण, तरणभी गत्यर्थ ॥ 'नी'-धातुका नहीं होना ।

† 'प्रह'-धातुभी प्राप्त्यर्थ ।

‡ दर्शन, श्रवण, घ्राण, स्पर्श इत्यादिभी ज्ञानार्थ ।

§ गमनाहारबोधार्थ शब्दार्थकर्मधातुषु ।

अणिजन्तेषु स कर्त्ता, स्वाणिजन्तेषु कर्म तत् ॥

ण श्रावयति ।

(भोजनार्थ) ब्राह्मणा अन्न भुञ्जते—ब्रती ब्राह्मणान् अन्न भोजयति ।

(अकर्मक) शिशु शेते—माता शिशु शाययति ।

४७५ । ह और क धातुकी अण्णिजन्तावस्थामे कर्त्ता (प्रयोञ्च कर्त्ता) णिजन्तावस्थामे विकल्पसे कर्म होता है , विकल्पद्वामे वृत्तीया , यथा—

(ह) चौर धन हरति—चौर चौर चौरण वा धन हारयति ।

भृत्य भार हरति—प्रभु भृत्य भृत्येन वा भार हारयति ।

(क) दास कर्म करोति—प्रभु दास दासेन वा कर्म कारयति ।

सनन्त धातु (Desiderative verb) ।

[यथासम्भव पूर्व पूर्व प्रकरणोरे स्वार (ः)-विहित सूत्रोका कार्य्य और लिट्के तुल्य वाम्यस्त कार्य्य होगा ।]

४७६ । 'इच्छा'-अर्थमे धातुके उत्तर 'सन्-प्रत्यय होता है , 'सन्' वा 'स' रहता है । 'सन्' प्रत्ययान्त धातुको 'सनन्त धातु' कहते है । यथा—(कर्त्तुम् इच्छति—करनेको इच्छा करता है) चिक्कीर्यति ।

४७७ । स्वार्थमे क्तितादि* धातुने उत्तर 'सन्' प्रत्यय होता है , यथा—क्त् + स—

* क्तितादि—क्त्, तिज्, गुप्, वप्, मान् ।

गुपो वधेद्य निन्दार्या, क्षमाद्याय तथा तिज् ।

सशये च प्रतीकारे क्त् सन्नभिधायते ॥

४८८ । 'मन्'-प्रत्यय होनेसे, वे पुनः स्वतन्त्र मनन्त धातुओंमें परिगणित होकर, अनुसंकारमें भ्वादिगर्भीय धातुके तुल्य रूप धारण करते हैं ; और त्रिपदा धातुके उत्तर 'मन्' होता है, पञ्चात्-भी मनन्त धातु उपपदाही रहता है ।

४८९ । 'मन्' परे रहनेसे, धातु अन्वयन्त होता है ; यथा—किञ्चिद् + म = विचिञ्चि + म (३८८ । ३८९ । ३९३ सू०)—

४९० । 'त्तन्' परे रहनेसे, क्तिञ्चि धातुके उत्तर 'त्' नहीं होता ; यथा—चिकित्स + ति—

४९१ । अन्ति 'मन्' परे रहनेसे, गुण नहीं होता ; यथा—चिकित्सति । तिञ् + म = तितिक्षते , (गुप्) जुगुप्सते ।

४९२ । अन्वयन्त वच् और मान् धातुके पूर्वभागके अकारके स्थानमें 'श्' होता है, यथा—वच् + म + ते = ववच् + म + ते = वीमन्सते (३६० सू०) ; (मान्) मीमांसते ।

४९३ । 'मन्' परे रहनेसे, सेट् धातुके उत्तर 'इट्' होता है ; यथा—पट् + म + ति = पपटि + म + ति—

४९४ । अन्वयन्त मनन्त धातुके पूर्वभागका 'भ्र'—'श्' होता है ;

किञ्-धातुके उत्तर रोगापनदन और सहाय अर्थमें, 'तिञ्'-धातुके उत्तर क्षमा अर्थमें, 'गुप्' और 'वच्' धातुके उत्तर निन्दा-अर्थमें, और 'मान्'-धातुके उत्तर विचार-अर्थमें 'सन्' होता है ; यथा—चिकित्सति द्वा-पिन् ; विचिकिञ्चति मे मन ; तितिक्षते सायु ; जुगुप्सते वीमन्सते वा खिद्य दीयो ; मीमांसते शास्त्रम् । 'धु'-धातुके उत्तर सेवा अर्थमेंभी 'तन्' होता है, यथा—धुध्वते वितरम् ।

यथा—पिपठि + स + ति = पिपठिषति , (जीब्) जिजीगिषति , (सेव्) सिसेविषते ।

गुणकी सम्भावना न रहनेसे, अथवा अन्य किसी विशेष नियम द्वारा बाधित न होनेसे, यावत्तीय सद्-धातुका रूप ऐसा होगा ।

अनिद्-धातुका रूप, यथा—नम् + स + ति = निनसति (६३ सू०) ; दह् + स + ति = दिधक्षति (३३४ सू०) , (मिट्) विमित्पति , (बुष्) बुभुत्पते (३६० सू०) , (पा) पिपासति , (स्था) तिष्ठासति । किसी विशेष नियमसे बाधित न होनेसे, समस्त अनिद्-धातुका रूप इसप्रकार ।

४८६ । 'सन्' परे रहनेसे, वृतादि* धातुके उत्तर परस्मैपदमें 'इट्' नहीं होता , यथा—वृत् + स + ति = विवृत्पति , (स्यन्) सिस्वन्त्सति , (आत्मनेपद) सिस्वन्दिषते ।

४८६ । 'सन्' परे रहकर 'इट्' होनेसे, उस 'इट्' परे उपमा लुप्त्व-रका गुण होता है , किन्तु विदादि धातुका गुण नहीं होता , यथा—वृत् + स + ते = विवृत्तिषते । विदादि—(विट्) विविदिषति , (रुट्) रुदिषति , (मुष्) मुनुषिषति ।

४८७ । आदिमे व्यञ्जनपर्यन्त और उपग्रामे 'उ' अथवा 'इ' रहनेसे, सेट् धातुका विकल्पमे गुण होता है , किन्तु अन्तमे 'व' रहनेसे, नित्य गुण होता है , यथा—(व्यञ्जनादि उपधा 'इ') लिख्—लिखेतिषति , लिलिखिषति , (उपधा 'उ') रून्—रुगेचिषति , ररचिषति , (वान्त) दिव्—दिदिषति ।

४८८ । 'सन्' परे रहनेसे, उच्चान्त धातु, गुट् और मह् धातुके

* वृत्, वृप्, शुष्, स्यन्, इष्

उत्तर 'इट्' नहीं होता, यथा—हु + स + ति = तुहु + स + ति—

४८९ । 'सन्' पर रहनेसे, अन्त्यम्बर दीर्घ होता है; और हन् धातु तथा इङ् (अधि + इ) के स्थानसे जात गम्-धातुका उपधा अकार आकार होता है, यथा—हुपति ।

४९० । 'सन्' पर रहनेसे, प्रह्—गृह्, स्वप्—उप्, प्रच्छ्—पृच्छ्, जि—गि, हन्—घन्, इण्—गमि, और अधि + इङ्—गम् होता है; यथा—(प्रह्) जिष्टक्षति* (३३४ सू०), (स्वप्) लुप्सति; (जि) जिगीपति (हन्) निजामति, (इण्) जिगमिपति; (अधि + इ) अधिजिगामते ।

४९१ । 'सन्' पर रहनेसे, स्मि, पू, कृ, गृ, ह, छ, रनुञ्, गम् और प्रच्छ् धातुके उत्तर 'इट्' होता है, यथा—(स्मि) सिम्मयिपते; (कृ) चिररिपति, (गृ) जिगरिपति, (ह) दिदरिपते; (छ) दिभरिपते; (रनुञ्) रिग्जिपते, (गम्) जिगमिपति, (प्रच्छ्) पिगृच्छिपति ।

४९२ । ज, स, ल और पदम पर रहनेसे, सन्त अन्त्यन्त धातुके पूर्वभागेके उकारके स्थानसे इकार होता है; यथा—पू + स + ते = पू पू + स + ते = पु पू + स + ते = पिपिपते ।

४९३ । 'सन्' पर रहनेसे, अप्नादि धातुके उत्तर विकल्पसे 'इट्' होता है, यथा—अप्न् + स + ति = विमर्जिपति, विम्रजि-

* विभक्तिका 'स' पर रहनेसे, हान्त और चतुर्थेवर्गान्त धातुके आदि-रिपत वृत्तीयवर्गके स्थानसे चतुर्थेवर्ग होता है ।

। अम्ज, भि, स्त, यु, ऊर्जु, श् (स्वदि), दरिद्र, सन, तन्, पद इत्यादि ।

यति*, विभ्रञ्जति, (धि) सिध्रयिपति, सिध्रीपति, (सन्) सिपनिपति, सिपासति, (पन्) पिपतिपति ।

४९४ । 'सन्' परे रहनेसे, धातुके अन्तस्थित ऋवर्गके म्यान्मे 'इर्' होता है, किन्तु ऋवर्ग ओष्ठवर्णमे युक्त होनेसे 'ऊर्' होता है ; यथा—(कृ) चिकीर्षति, (सृ) सुसृपते ।

४९० । 'सन्' परे, अम्यस्त मा—निव्, दा—दिव्, धा—धिव्, रम्—रिव्, लम्—लिव्, शक्—शिव्, पद् और पन्—पिव्, आप्—इप् होता है, यथा—(मा) मित्मति, (दा) दित्मति, (धा) धित्मति, (रम्) रिप्सने, (लम्) लिप्सने, (शक्) शिञ्जति, (पद्) पित्मने, (पन्) पित्मति, (आप्) इप्सति ।

४९६ । 'सन्' परे, अम्यस्त अद्—जिपन्, दिव्—दुष्टु, (छिद्) तुष्टु, सिव्—सुम्यु होता है, यथा—(अद्) जिपत्मति ; (दिव्) दुष्टुपति, (छिद्) तुष्टुमति, (सिव्) सुम्युपति ।

सनन्त धातुके रूप ।

चिकीर्ष धातु ।

लट्—चिकीर्षति । लोट्—चिकीर्षतु । लृट्—अचिकीर्षत् । विधि-
लिट्—चिकीर्षेत् । लृट्—चिकीर्षिष्यति । लिट्—चिकीर्षामास, चिकीर्षा-
म्यभूव, चिकीर्षाञ्जकार (चिकीर्षाञ्जके) । लुङ्—अचिकीर्षीत् । लुट्—
चिकीर्षिता । लृङ्—अचिकीर्षिष्यन् । आदात्—चिकीर्ष्यात् ।

* 'इट्' परे, भ्रम्ज्—भज् और भ्रज् होता है ।

† अनिट् 'सन्' परे, सन्—मिपा होता है ।

यङन्त धातु (Freqventative verb) ।

[पूर्व पूर्व प्रकरणोंक स्थार(क)-विहित सूत्र यथासम्भव प्रयुक्त होंगे ।]

४९७ । पौन पुन्य वा अतिशय अर्थमे एकस्वरविशिष्ट व्यञ्जनादि धातुक उत्तर 'यङ्'-प्रत्यय होता है । 'यङ्'का 'य' रहता है । 'यङ्'-प्रत्ययान्त धातुको 'यङन्त धातु' कहते हैं । यङन्त धातु आत्मनेपदी होता है । यथा—(पुन पुन अतिशयेन वा करोति—धारवाग् अथवा अत्यन्त करता है) च-प्रोयते ।

४९८ । 'यङ्' पर रहनेसे, धातु अभ्यन्त होकर यादतीय अभ्यन्त कार्य प्राप्त होता है, अभ्यन्त होनेसे, सप्तस्तनाग धातुन्ता प्राप्त होकर स्वतन्त्र यङन्त धातुमें गम्य होता है, और चतुर्ङ्कारान् भ्वादिगणाय धातुके तुल्य रूप धारण करता है ।

४९९ । यङन्त होनेसे, अभ्यन्त धातुके पूर्वभागके अन्त्यम्बरका गुण, और अकारकी वृद्धि होती है, यथा—(पुन पुन शोचति) शुञ् + य + ते = शोच्यते (३८९ सू०) ; (लप्) लोलप्यते ; (रङ्) रोच्यते , (मिङ्) वेमिद्यते ; (लप्) लालप्यते ।

५०० । 'यङ्' पर रहनेसे, अभ्यन्त नकारान्त और मकारान्त धातुके पूर्वभागके स्वरङ्गके पश्चात् 'म्' होता है ; परन्तु लान्त, वान्त और यान्त धातुका विकल्पमे होता है, यथा—(मन्) मम्मन्यते, (वम्) वव्वम्यते (६४ सू०) । (चल्) चच्चल्यते, चाच्चल्यते ।

५०१ । जिम जिम धातुकी उपधामे ङकार रहता है, अभ्यन्त

उस उस धातुके पूर्वभागके पश्चात् 'री' होता है, यथा—(वृत्) नरीवृत्यने ।

६०२ । यङन्त होनेसे, अभ्यस्त ऋकारान्त धातुके पूर्वभागका 'ऋ'—'ए', और परभागका 'ऋ'—'री' होता है, यथा—(कृ) चेकी-यने ; (सृ) सेस्रीयने ।

६०३ । 'यङ्' परे रहनेसे, अभ्यस्त चर्—चञ्चूर्, फल्—फम्फुल्, हन्—जह्वन् और जेष्ठी, दह्—दन्दह्, शप्—शशप्, भञ्—बम्भन् होता है ; यथा—(चर्) चञ्चूर्यते, (फल्) फम्फुल्यते, (हन्) जह्व-न्यते, जेष्ठीयते, (दह्) दन्दश्यते, (शप्) शशायते, (भञ्) बम्भज्यते ।

६०४ । 'यङ्' परे रहनेसे, अभ्यस्त सन्म्—सनीसन्, पन्—पनीपत्, पद्—पनीपद्, वच्—वनीवच्, ध्वन्म्—दनीध्वन् होता है, यथा—(सन्म्) सनीसम्यते, (पत्) पनीपत्यते ; (पद्) पनी-पयने ; (वच्) वनीवच्यते, (ध्वन्म्) दनीध्वम्यते ।

६०५ । 'यङ्' परे रहनेसे, अभ्यस्त गृ—जेगिल्, दा—देदी, जन्—जाजन् और जङ्गन्, शी—शाशय्, स्वप्—सोपुप्, घ्रा—जेष्ठी, दन्श्—दन्दश्, स्था—तेष्ठी, अट्—अटाट् होता है, यथा—(गृ) जेगिल्यते, (दा) देदीयते, (जन्) जाजन्यते, जङ्गयने, (शी) शाशय्यते, (स्वप्) सोपुयते ; (घ्रा) जेष्ठीयते, (दन्श्) दन्दश्यते, (स्था) तेष्ठीयते ; (अट्) अटाक्यते ।

६०६ । 'यङ्' परे रहनेसे, अभ्यस्त व्ये—वेवी, और चाय्—चेकी होता है, यथा—(व्ये) वेवीयते, (चाय्) चेकीयते ।

यङन्त धातुके रूप ।

चक्रोय धातु ।

लट्—चक्रोयते । लोट्—चक्रायताम् । लृट्—अचक्रोयत । विधिलिट्—चक्रोयित । लृट्—चक्रोयिष्यते । लिट्—चक्रोयामास, चक्रोयान्बभूव, चक्रोयाज्जटे । लुट्—अचक्रोयिष्ट । लुट्—चक्रोयिता । लृट्—अचक्रोयिष्यत । आशी—चक्रोयिषीष्ट ।

दतुर्लकार भिन्न विभक्तियोंमें व्यञ्जनसर्गके परस्मित 'यङ्' का लोप होता है, यथा—

दन्दश्य धातु ।

लट्—दन्दश्यते । लोट्—दन्दश्यताम् । लृट्—अदन्दश्यत । विधिलिट्—दन्दश्यते । लृट्—दन्दशिष्यते । लिट्—दन्दशामास । लुट्—अदन्दशिष्ट । लृट्—दन्दशिता । लृट्—अदन्दशिष्यत । आशा—दन्दशिषीष्ट ।

**यङ्लुगन्त धातु (Frequentative verb
rejecting यङ्) ।**

१०७ । कई धातुओंके उत्तर रिक्तपक्षे 'यङ्' का लोप होता है । लोप होनेसे उनको 'यङ्लुगन्त धातु' कहते हैं । यङ्लुगन्त धातु परस्मैपदी होता है । यथा—(लिट्—लेलिष्ट—लेलिह्) लेलेष्टि । (लप्) लालपीति, लालसि, (सिच्) सेसे-चीति, सेसेक्ति, (दीप्) देदीपीति, देदीप्ति; (शुच्) शोशोचीति, शोशोक्ति; (भू) बोभयीति, बोभीति; (नृच्) नरीनानि, ननंर्त्ति; (धृच्) धरीर्त्ति, धर्यति ।

यद्‌लुगन्त धातुके रूप ।

लेलिङ् धातु ।

लृट्—लेलेङि । लोट्—लेलेटु । लङ्—अलेलेट् । विधिलिङ्—लेलिङ्यात् ।
लृट्—लेलेङिष्यति । लिट्—लेलिङ्यामास, लेलिङ्याम्बभूव, लेलिङ्याञ्कार ।
लृङ्—अलेलेङीत् । लृट्—लेलेङिता । लृङ्—अलेलेङिष्यत् । आशी—
लेलिङ्यात् ।

नामधातु (Nominal verb) ।

५०८ । काम्य (काम्यच्)—आत्मसङ्क्रान्त (अपनी)
इच्छा समझानेसे, शब्दके उत्तर 'काम्य' प्रत्यय होता है,
'काम्य'-प्रत्ययान्त धातु परस्मैपदी . यथा—(आत्मनः पुत्र-
मिच्छति—अपना पुत्र इच्छा करता है) पुत्रकाम्यति, धन-
काम्यति, यश काम्यति ।

आत्मसङ्क्रान्त इच्छा न समझाकर अन्यसङ्क्रान्त इच्छा समझा-
नेसे नहीं होता; यथा—गुरोः पुत्रमिच्छति—इत स्थलमे 'गुरोः पुत्र-
काम्यति'—एसा प्रयोग नहीं होगा ।

'काम्य'-प्रत्ययान्त धातुके रूप ।

लृट्—पुत्रकाम्यति । लोट्—पुत्रकाम्यतु । लृङ्—अपुत्रकाम्यत् ।
विधिलिङ्—पुत्रकाम्येत् । लृट्—पुत्रकाम्यिष्यति । लिट्—पुत्रकाम्यामास,
पुत्रकाम्याम्बभूव, पुत्रकाम्याञ्कार । लृङ्—अपुत्रकाम्यीत् । लृट्—
पुत्रकाम्यिता । लृङ्—अपुत्रकाम्यिष्यत् । आशी—पुत्रकाम्यात्* ।

* 'य' परे रहनेसे, व्यञ्जनवर्गके परवर्ती यकारका लोप होता है ।

५०२ । क्य (क्यच्)—आत्मसङ्क्रान्त इच्छा (निवेच्छा) समन्धान्ते, मकारान्त और अन्य-मिश्र शब्दके उत्तर 'क्य'-प्रत्यय होता है; 'क्' इत्, 'य' रहता है; 'क्य'-प्रत्ययान्त धातु परस्मैपदी; यथा—(आत्मन पुत्रमिच्छति) पुत्र + य + ति—

(क) 'क्य'-प्रत्ययका 'य' परे रहनेसे, पूर्व अक्षरके स्थानमें 'इ' होता है; यथा—पुत्रीयति । (नान्त) किञ्चन्यति, (अन्यन्) स्व अन्यति;—यहाँ 'क्य' नहीं हुआ ।

(न) 'क्य' और 'क्यच्' परे रहनेसे शब्दके अन्तस्थित इन्द्रधर दीर्घ होता है ।

(ग) 'आचरण' (पोषण सम्माननादिरूप व्यवहार) अर्थमें उप-नान* अर्थ और अधिकरण-कारकके उत्तर 'क्य' होता है । यथा—(शिष्ये पुत्रमिव आचरति—शिष्यके प्रति पुत्रके तुल्य आचरण करता है He treats his pupil like a son) पुत्रीयति शिष्यम् (पोषयति इत्यर्थ) : (शृत्वा मन्वायमिव आचरति) मत्पुत्रमिव शृण्वन् : (मित्रं शिष्यमिव आचरति) शिष्यमिव मित्रम् (पश्यतोत्यर्थ) ; (उपाध्यायं शिष्यमिव आचरति) शिष्यमिव उपाध्यायम् (सम्मानयति इत्यर्थ) ; (उपाध्यायं प्राप्तादिव आचरति—उपाध्यायं प्राप्तादिव तुल्य आचरण करता है) प्राप्तादीपति कुट्याम् ।

(घ) भोजनेच्छा अर्थमें 'भक्षणा'-शब्दके उत्तर, पानेच्छा-अर्थमें

* जिसके साथ उपमा दी जाती है, वह 'उपनान'; और जिसको उपमा दी जाती है, वह 'उपनेय' ।

† 'क्य' और 'क्यच्' परे अन्तस्थित 'ञ्'—'रि' होता है ।

'उदक'-शब्दके उत्तर, और आकाङ्क्षा अर्थमे 'धन'-शब्दके उत्तर 'क्य' होना है, 'क्य' पर रहनेसे, अशान—अशाना, उदक—उदन्, और धन—धना होना है, यथा—(अन्न भोक्तुम् इच्छति—अन्न खानेको इच्छा करता है) अशनायति अन्नम्, (जलं पातुम् इच्छति—जल पीनेको इच्छा करता है) उदन्यति जलम्, (धनम् अभिकाङ्क्षति—धन आकाङ्क्षा करता है) धनायति धनम् ।

(ङ) 'करण'-अर्थमे नमम्, तपम् और वरिवस् (सेवार्थ) शब्दक उत्तर 'क्य' होता है, यथा—(देव नमस्करोति—देवताको नमस्कार करता है) नमस्यति देवम्, (तापस तप करोति—चरति) तपस्यति तापस, (गुरुन् शुभ्रूपते—परिचरति, सेवते) वरिवस्यति गुरुन् (वरिव—परिचर्या—करोति = वरिवस्यति) ।

'क्य'-प्रत्ययान्त धातुके रूप ।

पुत्रीय धातु ।

लट्—पुत्रीयति । लोट्—पुत्रीयतु । लङ्—अपुत्रीयन् । विधिलिट्—पुत्रीयेत् । लृट्—पुत्रीयिष्यति । लिट्—पुत्रीयामास, पुत्रीयाम्बभूव, पुत्रीयाञ्चकार । लुट्—अपुत्रीयीत् । लुङ्—पुत्रीयिता । लृङ्—अपुत्रीयिष्यन् । आशी—पुत्रीष्यात् ।

५१० । (क्यङ्)—'आचरण'-अर्थमे उपमान कर्त्तृकारकके उत्तर 'क्यङ्'-प्रत्यय होता है, 'क्यङ्' का 'य' रहना है, 'क्यङ्'-प्रत्ययान्त धातु आत्मनेपदी, यथा—(दण्ड इव आचरति) दण्डायते, (पुत्र इव आचरति) पुत्रायते, (विष्णुरिव आचरति) विष्णूयते ।

(क) 'क्यङ्' पर रहनेसे, व्यञ्जनान्त सहासका विकल्पसे छेप

होता है, यथा—(पय इव भाचरति) पयायते, पयन्व्यते ।

(ख) 'करण' (करना) अर्थमे—शब्द, वैर और कलह शब्दके उत्तर 'क्यट्' होता है, यथा—(शब्द करोति) शब्दायते, (वैरं करोति) वैरायते, (कलह करोति) कलहायते ।

(ग) 'अनुभवा'-अर्थमे—सुख, दुःख और कृच्छ्र शब्दके उत्तर 'क्यट्' होता है, यथा—(सुखम् अनुभवति) सुखायते, (दुःखमनुभवति) दुःखायते, (कृच्छ्रमनुभवति) कृच्छ्रायते ।

(घ) 'उद्भवना' (उद्गिरण) अर्थमे—वाष्प, फेन, धूम और उपमनू शब्दके उत्तर 'क्यट्' होता है, यथा—(वाष्पम् उद्भवति) वाष्पायते, (फेनमुद्भवति) फेनायते, (धूममुद्भवति) धूमायते, (उपमाणमुद्भवति) उपमायते* ।

(ङ) 'उद्गार पूर्वक चर्षण' अर्थमे रोमन्थ-शब्दके उत्तर 'क्यट्' होता है, यथा—रोमन्थायने गो (उद्गोर्ष्यं—उगालकर—चर्षयति इत्यर्थ) ।

(च) भृश, शीघ्र, क्षण, मन्द, पण्डित, उत्कृष्ट, एमनस्, दुर्मनस्, उन्मनस्—इन शब्दोंके उत्तर 'अभृततद्भाव'-अर्थमे 'क्यट्' होता है, यथा—(अभृशो भृशो भवति) भृशायते, (अशीघ्र शीघ्रो भवति) शीघ्रायते, (अक्षणक्षणलो भवति) क्षणायते, (अमन्दो मन्दो भवति) मन्दायते, (अपण्डित पण्डितो भवति) पण्डितायते,

* 'क्यट्' परे, अन्य नकारका लोप होता है ।

† पूर्वमे जैसा नहीं था, वैसा हीना ।

(अनुत्सृज उत्सृजो भवति) उत्सृजायते, (अहमना समना भवति) समनायते* ; (अदुर्मना दुर्मना भवति) दुर्मनायते, (अनुन्मना उन्मना भवति) उन्मनायते ।

‘क्वड्’-प्रत्ययान्त धातुके रूप ।

दण्डाय धातु ।

लृट्—दण्डायते । लोट्—दण्डायताम् । लङ्—अदण्डायत । विधिलिङ्—दण्डायते । लृट्—दण्डायिष्यते । लिट्—दण्डायामास, दण्डायाम्बभूव, दण्डायाम्बभूव । लुङ्—अदण्डायिष्ट । लुट्—दण्डायिता । लृङ्—अदण्डायिष्यत । आशी—दण्डायिषीष्ट ।

५११ । क्तिप्—‘आचरण’ अर्थमे उपमान कर्तृकारकके उत्तर ‘क्तिप्’-प्रत्यय होता है, ‘क्तिप्’ का कुङ्क्षी नहीं रहता ; ‘क्तिप्’-प्रत्ययान्त धातु परस्मैपदी, यथा—(सुजन इव आचरति) सुजनति, (शिष्य इव आचरति) शिष्यति, (सखा इव आचरति) सखयति, (कविरिव आचरति) कवयति, (वन्धुरिव आचरति) वन्धयति, (गुरुरिव आचरति) गुरयति, (पितेव आचरति) पितरति, (मातेव आचरति) मातरनि ।

‘क्विप्’-प्रत्ययान्त धातुके रूप ।

सुजन धातु ।

लृट्—सुजनति । लोट्—सुजनतु । लङ्—असुजनत् । विधिलिङ्—सुजनेत् । लृट्—सुजनिष्यति । लिट्—सुजनामास, सुजनाम्बभूव, सुजनाम्बभूव । लुङ्—असुजनीत् । लुट्—सुजनिता । लृङ्—असुजनिष्यत् ।

* सुमनस् प्रवृत्ति शब्दके सकारका लोप होता है ।

आशा — छजग्वात् ।

५१२ । णिच्—'करण'-अर्थमे शब्दके उत्तर 'णिच्'-प्रत्यय होता है, 'णिच्' होनेसे, णिच् प्रकरणमे जैसा कार्यविधान है, यहाँभी वैसा होगा, यथा—(प्रश्न करोति) प्रश्नयति ; (शब्द करोति) शब्दयति, (पवित्र करोति) पवित्रयति ।

(क) 'णिच्' पर रहनेसे, श्थु—प्रथ्, मृदु—म्रद्, दृढ—द्रद्, स्थूल—स्थन्, दूर—रद्, अन्तिक—नेद्, बहुल—बद्, दीर्घ—द्राघ् होता है, यथा—(श्थु करोति) प्रथयति, (मृदु करोति) म्रदयति, (दृढ करोति) द्रढयति, (स्थूल करोति) स्थययति, (दूर करोति) दूरयति, (अन्तिक करोति) नेदयति, (बहुल करोति) बद्दयति, (दीर्घ करोति) द्राघयति ।

(ख) शब्दविशेषके उत्तर अर्थविशेषमेभी 'णिच्' होता है, यथा—(स्वधं गृह्णाति) स्वधयति, (पाश विमोचयति) विपाशयति ; (वस्त्रं समाच्छादयति) सवस्त्रयति, (धर्मणा सन्नहति) समर्धयति । (मुण्डं करोति) मुण्डयति, —एष इलङ्गयति, लङ्गयति । (सत्यं करोति, अक्षयं वा) मस्यापयति, (वेदमाचष्टे) वेदापयति । (वीगथा उपगायति) उगगीयति, (द्रव्योक्तेरुपस्तीति) उपद्रव्योक्तयति, (मेनया अभिमुखं याति) अभिपेक्षयति, (पुच्छम् टत्क्षिपति) उत्पुच्छयति ।

५१३ । य (यक्)—'कण्ठ'-प्रभृति धातुभोंके* उत्तर स्वार्थमे 'य'

* इनको 'नामधातु' कहने हैं । कण्ठन गात्रविषयमे (सुकथना) ; अग्न् उपतपे ; भियञ् चिकिंशायाम्, चित्रद् आध्वर्ये, महीद् पूजाशाम् ; दृणाद् रजायाम् ।

होता है, यथा—कण्डूयति, कण्डूयते, “मृगीमकण्डूयत वृणस्वार”
कृ० ३ ३६ ।

करह्वादि ।

असू—असूयति (असूया—दोषदर्शन—करता है, असन्तुष्ट वा विरक्त
होता है, पराङ्मुख होता है) । प्रायः चतुर्थ्यन्त व्यक्ति वा वस्तु-
के साथ प्रयुक्त होता है, “असूयन्ति मद्यं प्रकृतयः” विक्रमो० ४ ;
“असूयन्ति सच्चिबोपदेशाय” काद० ।

भिपज्—भिपज्यति (चिकित्सा करता है) ।

चित्री—चित्रीयते (विस्मय—माश्रय—उत्पादन करता है), “चित्रो-
यते हेमशृंग ” ।

मही—महीयते (पूजा लभते—पूजित, सम्मानित होता है, उखी, समृद्ध
होता है) ।

टणी—टणीयते (लजित होता है), “त्वयाऽथ तस्मिन्नपि दण्डधा-
रिणा कथं न पत्या धरणी हृणीयते ? ” जे० १ १३३ ।



परस्मैपद् और आत्मनेपद्-विधान ।

भ्वादिगण्य धातु ।

११४ । क्रम्—उपसर्गहीन क्रम् धातु विकल्पसे आत्मनेपदी होता
है यथा—क्रमते, कामति । किन्तु उत्साह, अप्रतिबन्ध और वृद्धि अर्थसे
नित्य आत्मनेपदी होता है, यथा—(उत्साह) ज्याकरणाद्ययनाच्च क्रमते
(उत्सहते इत्यर्थ), (अप्रतिबन्ध) शास्त्रेषु क्रमते बुद्धि (न प्रतिह-
न्यते, अप्रतिहता भवतीत्यर्थ), (वृद्धि) सना धो क्रमते (वदंते

इत्यर्थ) ।

(क) ग्रहनक्षत्रादि ज्योति पदार्थका उर्द्ध्वगमन समझानेसे, 'आ'-पूर्वक ऋम् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—आक्रमते भानु (नभो-मण्डलम् आरोहतीत्यर्थ) । ज्योतिर्भिन्न अन्य पदार्थका उर्द्ध्वगमन समझानेसे, नहीं होता, यथा—आक्रामति धूमो गगनम्, शैलमात्रामति ।

(ख) 'आरम्भ'-अर्थमे, प्र और उप पूर्वक ऋम् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—भोक्तुं प्रक्रमते, उपक्रमते (आरभते इत्यर्थे) ।

(ग) 'पादविजेष' अर्थमे, 'वि' पूर्वक ऋम् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—साधु विजमते वार्जा । अन्य अर्थमे नहीं होता, यथा—विजामति राजा (विजमं प्रशशयतीत्यर्थ) ।

६१५ । क्रीड्—आ, अनु और परि पूर्वक क्रीड् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—आक्रीडते, अनुक्रीडते, परिक्रीडते माणव्य ।

(क) 'सम्' पूर्वक क्रीड् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—“सङ्क्रोडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्या ” मेघ० ६८ । रिन्तु 'वृजन' (अव्यक्तध्वनि) अर्थमे नहीं होता, यथा—सङ्क्रोडति रथ ; सङ्क्रोडन्ति विहङ्गमा ।

६१६ । गम्—कर्म न रहनेसे, 'सम्' पूर्वक गम् धातु (मिलनार्थ) आत्मनेपदी होता है, यथा—“युते भगवत्यौ कलिन्दकन्धा-सन्दाकिन्यौ सङ्गच्छते” अनर्थ० ७, “अक्षधूत्तं समगति” दशकु० । कर्म रहनेमे, नहीं होता, यथा—सङ्गच्छति मित्रम् (प्राप्नोतीत्यर्थ) ।

'सम्'-पूर्वक अकर्मक क् (ऋच्) धातुभी आत्मनेपदी होता है, यथा—समृच्छते ; “समारन्त ममाभाषा सङ्गुल्पा ” अ० ८, १६ ।

५१७ । चर्—सकर्मक होनेसे, 'उत्' पूर्वक चर् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—गुस्वचममुचरते (उल्लङ्घयतीत्यर्थ) । अकर्मक होनेसे, नहीं होता, यथा—उचरति धूम (उपरिष्ठात् गच्छतीत्यर्थ) ।

(क) तृतीयाविभक्तयन्त पदके योगसे 'सम्'-पूर्वक चर् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—पादेन सञ्चरते, रथेन सञ्चरते, "क्वचित् पथा सञ्चरते सुराणाम्" रघु० १३ १९ ।

५१८ । जि—वि और परा पूर्वक जि धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—विजयते, पराजयते ।

५१९ । तप्—कर्म न रहनेसे, अथवा अपना अद्ग (अवयव) कर्म होनेसे, उत् और वि पूर्वक तप् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—उत्तपते, वितपते रवि (दीप्यते इत्यर्थ), उत्तपते, वितपते पाणिम् । स्वाद्ग कर्म न होनेसे नहीं होता; यथा—वितपति शुभ्र सविता ।

५२० । नी—कर्मणि अवस्थित किन्तु कर्त्ताक अद्गसे भिन्न कर्म होनेसे, अपनयन अर्थमे 'वि' पूर्वक नी धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—क्रोध विनयते (शमयतीत्यर्थ) । कर्त्तृगत न होनेसे नहीं होता, यथा—गुरो क्रोध विनयति । अद्ग होनेसे नहीं होता, यथा—व्रण विनयति ।

'शिक्षा'-अर्थमे 'वि + नी' परस्मैपदी, यथा—"विनिन्दुरेन गुरवो गुरुप्रियम्" र० ३ २९ ।

५२१ । यम्—अकर्मक होनेसे, 'आ' पूर्वक यम् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—आयच्छते (दीर्घो भवति इत्यर्थ) । सकर्मकका नहीं होता, यथा—आयच्छति कृशद्रज्जुम् (आकर्षति, उद्धरति इत्यर्थ) । अपना अवयव कर्म होनेसे आत्मनेपदी होता है, यथा—आयच्छते पांद्-

जातमानम् (दीर्घाङ्गोतीत्यर्थः) ।

(क) 'विदाह'-अर्थ समजानेने, 'उदा'-पूर्वक र्न् घातु जातमानेपरी होता है, यथा—दुलभगं कन्यामुपसृजते; "भंगं विधिनोस्येने" कु० १. ६८ ।

६२२ । रम्—वि, आ और परि-पूर्वक र्न् घातु परस्मैपदी होता है; यथा—“हा इन्त किन्निनि चिन विग्नति नाद्यावि विपदेन्य ?” नागिनो० ४ २६, आरमति टयाने “अगं पर्यगमन् कम्प दगंनान्” (तुष्टोऽनन्दित्यर्थः) म० ८. ६३ ।

(क) 'उदा'-पूर्वक र्न् घातु विकल्पसे परस्मैपदी होता है; यथा—इत्तुपक्षोपरराम; “यत्रोपरमने चित्तन्” गांता ६ २०; “वात्र कीतेत्यु-पारंस्त” म० ८. ६० ।

६२३ । घट्टु—मनभेद, कलह अर्थमें 'वि'-पूर्वक वट् घातु जातमाने-परी होता है; यथा—उत्थे विवदन्ते सुनथ (नादानन्त प्रकलयन्तीत्यर्थः); क्षेत्रे विवदन्ते करंका (विप्रतिपद्यमाना विचित्र वदन्तीत्यर्थः) ।

(क) दट्टुन आदभियोका मिलकर स्पष्ट शब्दोच्चारण (कथन) अर्थमें 'सम् + प्र'-पूर्वक वट् घातु जातमानेपरी होता है; यथा—मन्त्र-वदन्ते विप्रा (सम्भूय—मिलित्वा—उपक्रीं वदन्तीत्यर्थः) । मनुष्य भिन्न अन्यत्र नहीं होता; यथा—“वतनु ! मन्त्रवदन्ति बहुधा ” महा-भाष्यम् ।

(ख) कर्म न रहनेने, 'अनु'-पूर्वक वट् घातु जातमानेपरी होता है; यथा—गुरोरनुवदने शिष्य (यथा गुरगोक्तम्, कथा शिष्यो वदतीत्यर्थः) । कर्म रहनेसे नहीं होता, यथा—वापुक्तम् अनुवदति; “गिरम् अनुवदति

शुक्ते" २० ६ ७४ ।

(ग) अनेक मनुष्योंका एकत्र होकर परस्पर विरुद्ध वाक्यरूपन अर्थमें 'वि + प्र'-पूर्वक वद् धातु विकल्पमें आत्मनेपदी होता है, यथा—
विप्रवदन्ते विप्रवदन्ति वा वैद्या (एको यावद् वदति, तद्विरुद्धमपरो वदति इत्येवं सम्भूय विरुद्धमन्योन्य वदन्तीत्यर्थः) ।

(घ) निन्दा, तिरस्कार अर्थमें 'अप'-पूर्वक वद् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—न्यायमपवदते ।

६२४ । स्था—किसी सन्दिग्ध विषयमें निर्णयके लिये किसीका आश्रय ग्रहण (accepting as umpire) समझानेसे, स्था धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—“सशप्य कर्णाद्रियु तिष्ठते य ” (कर्णादीन् निर्णेतृत्वेन आश्रयति इत्यर्थः —रुशय दूर करनेके लिये कर्णप्रभृतिका आश्रय ग्रहण करता है) भा० ३ १४ —तिष्ठतेत्र अवस्थानमेवार्थः ।

(क) 'अभिप्राय प्रकाश' अर्थमें स्था धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—रामाय तिष्ठते सीता (स्वाभिप्राय प्रकाशयतीत्यर्थः) ।

(ल) 'प्रतिज्ञा' (अङ्गीकार) अर्थमें 'आ' पूर्वक स्था धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—शब्द नित्यमातिष्ठते (शब्दो नित्य इति प्रतिज्ञानीते, अभ्युपगच्छति, अङ्गीकरोतीत्यर्थः) ।

(ग) सम्, अव, प्र और कहीं वि उपसर्गके परवर्ती स्था धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—“दारिद्र्याव पुंसस्य बान्धवजनो वारये न सन्तिष्ठते" मृच्छ० १ ३६, “क्षणमप्यवतिष्ठते श्वसन् यदि जन्तुर्ननु लाभवानसौ" २० ८ ८७, “हरिर्हरिप्रस्थमथ प्रतप्ये" माघ० ३ १, “पदैर्भुवं व्याप्य वितिष्ठमानम्" माघ० ४ ४ ।

(घ) 'उत्' पूर्वक स्या धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—मुक्ती उत्तिष्ठते (उद्द्युक्ते, उद्यम करोतीत्यर्थ) । किन्तु 'उत्थान'-अर्थमे नहीं होता, यथा—आमनात् उत्तिष्ठति ।

(ङ) इवपूजा, मिलन, मैत्रीकरण और मार्गगमन (lead to—as a way) अर्थमे, 'उप' पूर्वक स्या धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—(देवपूजा) विष्णुमुपतिष्ठते वरण (पूज्यतीत्यर्थ) ; (मिलन) यमुनामुपतिष्ठत गङ्गा (यमुनया सह सहचरते, मिलतीत्यर्थ) ; (मैत्रीकरण) साधुमुपतिष्ठते साधु (मैत्रीकरोतीत्यर्थ) ; (मार्गगमन) अर्थ पन्था वाशीमुपतिष्ठते (प्राप्नोतीत्यर्थ — यह मार्ग वाशीवो जाता है This way leads to Benares) ।

(च) 'मन्त्र द्वारा आराधन' अर्थमे 'उप' पूर्वक स्या धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—गायत्र्या सूर्य्यमुपतिष्ठते ।

(छ) 'लाभेच्छा' समझानेमे, 'उप'-पूर्वक स्या धातु विकल्पमे आत्मनेपदी होता है, यथा—धनिसमुपतिष्ठते उपतिष्ठति वा भिक्षु (धनलाभेच्छया धनिसमीप गच्छतीत्यर्थ) ।

(ज) अकर्मक 'उप'-पूर्वक स्या धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—भोजनशाले उपतिष्ठते (सन्निहितो भवतीत्यर्थ) । कर्मक होनेसे नहीं होता, यथा—शियो गुरुमुपतिष्ठति ।

६०० । हे—स्पर्द्धा अर्थात् युद्धार्थे आद्धान अर्थमे 'आ' पूर्वक द्वे धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—शूण क्षममाह्वये (स्पर्द्धमान — परिभवेच्छया—आद्धान करोतीत्यर्थ) । स्पर्द्धा-भिक्ष अर्थमे नहीं होता, यथा—पिना पुत्रमा—

अदादिगणीय धातु ।

५२६ । विद्—‘पहवानना’ अर्थमे ‘सम्’ पूर्वक विद् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—“पितरावपि मा न प्रतिमविशते” दशकु० ।

(क) ‘जानना’ अर्थमे अकर्मक होनेसे, ‘सम्’-पूर्वक विद् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—“के न सविद्वते वायोर्मेनाकाद्रियया सखा १ ” भ० ८ १७ ।

५२७ । हन्—आत्म-अवयव (अपता अङ्ग) कर्म होनेसे, ‘आ’-पूर्वक हन् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—आहते स्व शिर (ताडयतीत्यर्थ) । स्वाङ्ग कर्म न होनेसे नहीं होता, यथा—आहन्ति चोरम् ।

ह्वादि और स्वादिगणीय धातु ।

५२८ । दा—‘आ’ पूर्वक दा धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—निधामादत्ते, शस्त्रमादत्ते । किन्तु ‘विस्तार’-अर्थमे नहीं होता; यथा—सुग्न व्याददाति सिंह (विस्तारयतीत्यर्थ), नदी कृत् व्याददाति; वैद्यो विस्फोटकं व्याददाति ।

५२९ । ध्रु—‘म्’ न रहनेसे, ‘सम्’-पूर्वक ध्रु धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—“मशृणुष्व कपे !” भ० ८ १६ । “हितात्र य सशृणुते स किंप्रभु ” (हितात् + न) भा० १ ८ —यहाँ कर्मकी विवक्षा नहीं, इसलिये आत्मनेपद ।

तुदादिगणीय धातु ।

५३० । कृ—‘तु’पद जन्तु अथवा पक्षी कर्ता होनेसे, हर्ष-हेतु अथवा आहारान्वेषणके या वासपहणके लिये भूमिविलेखन (पाँवसे मिट्टी खोदकर विपेरना) अर्थमे, ‘अप’-पूर्वक कृ धातु आत्मनेपदी होता है, और आदिमे

'सृद्' का आगम होता है, 'सृद्' का 'स्' रहता है, यथा—अपस्क्रिते वृषभ (हृषात् भूमिमालिखति इत्यर्थं), अपस्क्रिते मयूर (भक्षार्थी भूमिं विलिख्य विक्षिपति इत्यर्थं), अपस्क्रिते सारमेय (वासार्थी, शयनार्थी भूमिं विदारयति इत्यर्थं) ।*

किन्तु—अपस्क्रिति कुसमम् ।

१३१ । गृ—'अव'-पूर्वक गृ धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—अवगिरतेऽन्नम् ।

(क) 'प्रतिज्ञा'-अर्थमे, 'सम्'-पूर्वक गृ धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—सङ्गिरते (प्रतिजानीते इत्यर्थं), "शस्त्रे समगिरताम्" दशकु० ।

किन्तु—सङ्गिरति प्राप्तम् ।

१३२ । प्रच्छ्—'विदा' लेना' अर्थमे (taking leave of, bidding adieu to) 'आ'-पूर्वक प्रच्छ् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—"आपृच्छस्य प्रियसखममुम्" मेघ० १२. ।

१३३ । विश्—'नि'-पूर्वक विश् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—"किष्किन्ध्यादिं न्यविशत्" (प्रविशेत् इत्यर्थं) भ० ६ १४२. ।

रुधादिगणीय धातु ।

१३४ । भुज्—पालन (रक्षा) भिन्न अन्य अर्थमे, भुज् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—बोदन भुङ्क्ते (अन्यग्रहरतीत्यर्थं), "सद्यः सुभुजे स मेदिनीम्" (भुक्तवान् enjoyed), ह्यभुङ्क्ते (अनुभवतीत्यर्थं) ।

* "छायापस्क्रितमाशविष्किर०" (अपस्क्रिताया — मक्षार्थं चण्ड्या भूमिं लिखन्त इत्यर्थं) उत्तर० २ ९, "गृत्ररपस्कीर्णमहत्तदीभुवां कतुप्रताम्" (अपस्कीर्ण—आलेखित) माघ० १२ ७४. ।

('पालन' अर्थमे) "भुनक्ति स्वाराज्यम्" अन० ३ ।

६३५ । युञ्—स्वरादि और स्वरान्त उपमर्ग-पूर्वक युच् धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—(स्वरादि उपमर्ग) उद्युञ्क्ते, (स्वरान्त उपमर्ग) प्रयुञ्क्ते, नियुञ्क्ते, अनुयुञ्क्ते, उपयुञ्क्ते । यज्ञात्र कर्म होनेसे नहीं होता; यथा—सुव प्रयुनक्ति ।

तनादिगणीय धातु ।

६३६ । कृ—'अनु' और 'परा' पूर्वक कृ धातु परस्मैपदी होता है; यथा—"अनुकरोति भगवतो नारायणस्य" का०, पराकरोति दानम् (निरस्यतोत्पथं) ।

क्यादिगणीय धातु ।

६३७ । की—चि, परि और अव पूर्वक की धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—"गवा ज्ञानसहस्रेण विक्रीणीये हनं यदि" शमा०, परिक्रीणीते, अवक्रीणीते ।

६३८ । ज्ञा—'अपह्व' (अपलाप, गोपन) अर्थमे 'अप' पूर्वक ज्ञा धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—उक्तम् अपजानीते (अपलपनीत्यर्थं) ।

(क) स्मरण भिन्न अर्थमे सम् और प्रति-पूर्वक ज्ञा धातु आत्मनेपदी होता है, यथा—सज्जानीते (अपेक्षणे इत्यर्थं), "इरचापारोपणेन कन्यादान प्रतिजानीते" (अर्द्धीकरोतीत्यर्थं) । ('स्मरण'-अर्थमे) गुं शिष्य शिष्यस्य वा सज्जानीति (स्मरतीत्यर्थं) ।

(ख) 'अनु' पूर्वक ज्ञा धातु उभयपदी होता है, यथा—"अनुजानीहि मां गमनाय" उत्तर० ३, "तनोऽनुजाने गमनं एवम्य" म० ३ २३ ।

६३९ । गिपन्त डुच्, युच्, नच्, जन् और अग्नि + इ (अध्ययनार्थं)

धातु परस्मैपदी होता है ; यथा—बोधयति पद्मम् ; बोधयति सैनिकम् ;
नाशयति दुःखम् ; जतयति सत्त्वम् ; अश्यापयति शिष्यम् ।

णिजन्त धातु ।

६४० । णिजन्त भोजनार्थं और चष्टनार्थं धातु परस्मैपदी होता है ;
यथा—भोजयति, आशयति, चलयति, कल्पयति । किन्तु अद् धातु
नहीं होता ; यथा—आदयते ।

६४१ । अणिजन्त अवस्थामे प्रागी अर्थात् चेतन पदार्थं कर्त्ता होनेसे
अकर्मक णिजन्त धातु परस्मैपदी होता है . यथा—

अणिजन्त	णिजन्त
बाल श्रेते	माता बालं शाययति ।
शिशु जागर्ति	माता शिशुं जागरयति ।

प्रागी कर्त्ता न होनेसे नहीं होता ; यथा—जलं शुष्यति—सूर्यो जलं
शोषयति, शोषयते ; नदी वर्द्धते—एतद्काले नदीं वर्द्धयति, वर्द्धयते ।

सन्त धातु ।

६४२ । सन्त ज्ञा, घृ, म्भ और दृग् धातु आत्मनेपदी होता है ;
याथ—धर्मं विज्ञासते ; गुरुं शुभ्रूपते , नष्टं सुष्मृषते ; चन्द्रं दिदृक्षते ।

‘अनु’ पूर्वकं ज्ञा धातु नहीं होता ; यथा—अनुविज्ञामति ।

* * * *

६४३ । लुङ् विभक्तिमे सुतादि* धातु विह्वलने परस्मैपदी होता
है , यथा—असृत्त्, अघोतिष्ट ।

* ४३९ सूत्र टिप्पणी ।

५४४ । 'स्य' और 'सन्' परे रहनेसे, 'वृत्' आदि * धातु विकल्पसे परस्मैपदी होता है, यथा—वृत् + लट् = वल्त्व्यति, वर्तिष्यते, वृत् + सन् = व्रित्त्वति, विवर्तिष्यते ।

५४५ । लुट्-विभक्तिमेभी क्लृप् धातु विकल्पसे परस्मैपदी होता है, यथा—क्लृप्तासि, कल्पितासे ।

५४६ । लिट्, लुट्, लृट् और लृट् विभक्तिमे 'भृ' धातु परस्मैपदी होता है, यथा—(लिट्) ममार, (लुट्) मत्ता, (लृट्) मरिष्यति, (लृट्) ममरिष्यत् ।



कर्मवाच्य और भाववाच्य ।

५४७ । कर्मवाच्य और भाववाच्यमे समस्त धातुओंके उत्तरही आत्मनेपद् होता है ।

५४८ । कर्मवाच्य और भाववाच्यमे, चतुर्लकार परे रहनेसे, धातुके उत्तर 'यन्' होता है, 'यक्'का 'य' रहता है, 'यन्' प्रत्यय होनेसे, सब धातुओंके रूप चतुर्लकारमे द्विवादिगणीय आत्मनेपदी धातुके तुल्य, यथा—गम् + य + ते = गम्यते ।

* उदादि—वृत्, वृत्, वृत्, वृत्, वृत्, वृत्, वृत्, वृत्, वृत्, वृत् ।

† कर्मवाच्य और भाववाच्यमे—चतुर्लकारमे, और लृट्के प्रथमपुरुषके एकवचनमे धातुरूपकी विभिनता है । अन्यान्य विभक्तियोंमे कर्मवाच्यके ही तुल्य ।

गम् धातु ।

लट् ।

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमपुरुष	गम्यते	गम्येते	गम्यन्ते
मध्यमपुरुष	गम्यसे	गम्येथे	गम्यध्वे
उत्तमपुरुष	गम्ये	गम्यावहे	गम्यामहे

लोट् ।

प्रथमपुरुष	गम्यताम्	गम्येताम्	गम्यन्ताम्
मध्यमपुरुष	गम्यस्व	गम्येथाम्	गम्यध्वम्
उत्तमपुरुष	गम्यै	गम्यावहै	गम्यामहै

लङ् ।

प्रथमपुरुष	अगम्यत	अगम्येताम्	अगम्यन्त
मध्यमपुरुष	अगम्यथाः	अगम्येथाम्	अगम्यध्वम्
उत्तमपुरुष	अगम्ये	अगम्यावहि	अगम्यामहि

विधिलिट् ।

प्रथमपुरुष	गम्येत	गम्येयाताम्	गम्येरन्
मध्यमपुरुष	गम्येथा	गम्येयाथाम्	गम्येध्वम्
उत्तमपुरुष	गम्येथ	गम्येवहि	गम्येमहि

लृट् ।

प्रथमपुरुष	गंस्यते	गस्येते	गस्यन्ते
मध्यमपुरुष	गंस्यसे	गस्येथे	गस्यध्वे
उत्तमपुरुष	गंस्ये	गस्यावहे	गस्यामहे

लिट् ।

प्रथमपुरुष	जग्मे	जग्माते	जग्मिरे
मध्यमपुरुष	जग्मिषे	जग्माथे	जग्मिद्वे
उत्तमपुरुष	जग्मे	जग्मिवहे	जग्मिमहे

लुट्—गन्ता । लृट्—अगंस्यत । आशीः—गंसिष्ट ।

(३७३ सूत्रानुसार) जि + य + ते = जीयते , धु—ध्रूयते । (३७५ सू०) कृ—कृष्यते । (३७६ सू०) स्मृ—स्मर्यते , जागृ—जागर्यते । (३७७ सू०) कृ—क्रीर्यते ; तृ—तीर्यते (पृ—पूर्यते) । दा—दीयते , धा, धे—धीयते , (पानार्थ) पा—पीयते , मा—मीयते , हा—हीयते , स्था—स्थीयते , गे—गोयते , सो—सीयते* । दिव्—दीव्यते , छिच्—छीव्यते । (३७८ और ३७९ सू०) घट्—गृह्यते , प्रच्छ्—पृच्छते , व्यच्—विच्यते , यञ्—इज्यते , ह्ये—ह्यते , झ् , षच्—उच्यते , वच्—उच्यते , वप्—उच्यते , वम्—उच्यते , बह्—उच्यते , स्वप्—उच्यते । (३८० सू०) दन्श्—दन्त्यते । (३२४ सू०) शास्—शित्यते । भस्—भूयते , चक्ष्—ख्यायते । वे—ऊयते । कथि—कथ्यते , कारि—कार्यते , स्थापि—स्थाप्यते ।

५४९ । * अगुण 'थ' परे रहनेसे, जन् धातुके स्थानमे विकल्पसे 'जा', खन् धातुके स्थानमे विकल्पसे 'या', और शी-धातुके स्थानमे 'शप्' होता है, यथा—(जन्) जायते, जन्यते , (खन्) खायते, खन्यते , (शी)

* 'यक्' परे रहनेसे, दा, धा, (पानार्थ) पा, मा, हादि हा, स्था, गे और सो धातुका अन्त्यस्वर 'ई' होता है ।

† 'य' परे लिच्का 'इ' लुप्त होता है ।

राय्यते ।

५६० । 'यञ्'-प्रत्यय परे रहनेसे, तन् धातुके म्यानमे विकल्पते 'ता' होता है, यथा—(तन्) तायते, तन्यते ।

५६१ । कर्मवाच्य और भाववाच्यमे—लृट्, लृट्, लृङ् और आशी-
लिङ्,—तथा लृङ्-विभक्तिमे धातुके उत्तर जात 'सि' परे रहनेसे, स्वरान्त
धातु, प्रह्, हन् और हन् धातुके उत्तर विकल्पते 'इण्' होता है, 'इण्'-का
'ह' अवशिष्ट रहता है । 'ह' परे, हन्—घन, और जित्-कार्ये अर्थात् धातुके
अन्त्यस्वर और उपधा अकारकी वृद्धि, तथा उपधा लघुस्वरका गुण होना
है । विकल्पपक्षमे—कर्मवाच्यके नियममेही धातुके रूप होंगे, फेवल आ-
त्मनेपद होगा, यही विशेष । हन्—आशीर्णमे 'वञ्' होता है । यथा—

	लृट्	लृट्	लृङ्	आशीर्लिङ्
कृ—	{ कारिता { कर्ता	{ कारिष्यते { करिष्यते	{ अकारिष्यत { अकरिष्यत	{ कारिषीष्ट { कृषीष्ट
दृष्ट-	{ दर्शिता { द्रष्टा	{ दर्शिष्यते { द्रष्टव्यते	{ अदर्शिष्यत { अद्रष्टव्यत	{ दर्शिषीष्ट { द्रष्टीष्ट
हन्-	{ धानिता { हन्ता	{ धानिष्यते { हनिष्यते	{ अधानिष्यत { अहनिष्यत	{ धानिषीष्ट { वधिषीष्ट
गृह्-	{ ग्राहिता { ग्रहीता	{ ग्राहिष्यते { ग्रहीष्यते	{ अग्राहिष्यत { अग्रहीष्यत	{ ग्राहिषीष्ट { ग्रहीषीष्ट

५६२ । * जित् (ष् हृत्) और जित् (ण्-हृत्) प्रत्यय परे रहनेसे,
लाकारान्त धातुके उत्तर 'य' होता है, यथा—दायिता ; (पद्ये) दाता ।

५६३ । कर्मवाच्य और भाववाच्यमे लृट्के 'त' के स्थानमे 'इण्'

(धिष्) होता है , 'इष्' का 'इ' रहता है , 'इष्' परे, पूर्वोक्त 'इष्' के लुप्त्य कार्प्य होता है , यथा— $\text{इष्} + \text{लुट्-त} = \text{अधावि}$, (आताम्) अ-
आधिपाताम् , अधोपाताम् , (अन्त) अध्राविपत् , अध्रोपत् ।

अनुतापार्थक 'अनु + तप्' धातुके उत्तर 'इष्' नहीं होता , यथा—
अन्वत्स ।

लुट्का 'त' परे रहनेसे, हन्—वध् और घन् होता है , अन्यत्र विक
ल्पसे होता है , यथा—(लुट् प्रथमपुरष) अवधि अघानि, अवधिपा-
ताम् अइसाताम् अघानिपाताम् , अवधिपत् अइषत् अघानिपत् ।

५६४ । * 'इष्' और 'इत्'-का 'णम्' (णमुल्) परे रहनेसे, भन्ज्
और लम् धातुके नकारका विकल्पसे लोप होता है , यथा— $\text{भन्ज्} +$
 $\text{लुट्-त} = \text{अभाजि}$, अमज्जि , (लम्) अलामि, अलम्भि । (उर
सर्ग) प्रालम्भि ।

५६५ । लुट्, लृट्, लृङ्, आशीर्लिङ् विभक्तिमे पूर्वोक्त स्वरान्त-
प्रभृति-धातु-भिन्न यात्रतीय धातुके रूप कर्तृवाच्यके निधमसे होंगे , केवल
आत्मनेपद होगा, यही विशेष , यथा—

	लुट्	लृट्	लृङ्	आशीर्लिङ्
त्यङ्—	{ त्यक्ता त्यक्तारौ त्यक्तार	{ त्यक्ष्यते त्यक्ष्येते त्यक्ष्यन्ते	{ अत्यक्ष्यत अत्यक्ष्येताम् अत्यक्ष्यन्त	{ त्यक्षंष्ट त्यक्षीपास्ताम् त्यक्षार्व

५६६ । लिट्मे और कोई विशेष नहीं है , कर्तृवाच्यके नियमानुसार
धातुके रूप होंगे , केवल आत्मनेपद होगा, यही विशेष , यथा—

सिन्—	{	सिपेवे	भुन्—	{	उभुजे	श—	{	ददे
		सिपेवाते			उभुजाते			ददाते
		सिपेविरे			उभुजिरे			ददिरे

५५७ । कर्मवाच्यमे—कर्त्तामे तृतीया, और कर्ममे प्रथमा होती है, और क्रियापद कर्मके अनुसार बैठता है, अर्थात् कर्ममे जो पुरुष जो वचन रहता है, क्रियाकाभी वही पुरुष वही वचन होता है, यथा—

कर्त्तृवाच्य

स बालक पश्यति

त्व बालकौ पश्यमि

अह बालकान् पश्यामि

वय त्वा पश्यामः

ते युवा पश्यन्ति

तौ युष्मान् पश्यत

युवा मां पश्यथ

यूयम् आवां पश्यथ

न अस्मान् पश्यति

अह तम् अपश्यम्

अह त्वा द्रक्ष्यामि

म चन्द्र पश्यतु

क सूर्यं पश्येन् ?

कर्मवाच्य

तेन बालको दृश्यते ।

त्वया बालकौ दृश्येते ।

मया बालकाः दृश्यन्ते ।

अस्माभिः त्वं दृश्यसे ।

तै युवां दृश्येथे ।

ताभ्या यूयं दृश्यध्वे ।

युवाभ्याम् अह दृश्ये ।

युष्माभिः आवा दृश्यावहे ।

तेन वय दृश्यामहे ।

मया सः अदृश्यत ।

मया त्व द्रक्ष्यामे ।

तेन चन्द्रो दृश्यताम् ।

केन सूर्यो दृश्येत ?

जिन धातुओंका एक कर्म, उनका वाच्यान्तर ऐसा होगा ।*

परन्तु दुहादि और न्यादि † धातुके दो कर्म रहने हैं—एक, मुख्य अथवा प्रधान कर्म, दूसरा, गौण अथवा अप्रधान कर्म ‡ ।

५५८ । कर्मवाच्यमे—दुहादि-धातुके गौण कर्ममे, और न्यादि-धातुके मुख्य कर्ममे प्रथमा होती है † । अन्य कर्म द्वितीयान्तही रहता है । जिस कर्ममे प्रथमा हो, कर्मवाच्यकी क्रिया उसी कर्मके अनुसार होगी, यथा—

दुहादि—(कर्तृवाच्यमे) गोप गा दुग्ध दोग्धि (यहाँ 'गाम्' गौण कर्म, क्योंकि बत्ताकी इच्छासे इसमें अपादान-कारकभी हो सकता था), (कर्मवाच्यमे) गोपेन गौ दुग्ध दुह्यते । दरिद्र राजान धन याचते—दरिद्रेण राजा धन यान्यते । शिष्यक मा हितं वदति—शिष्यकेण अहं हितम् उच्ये । पूजक वृक्ष पुष्प चिनोति—

* कर्मवाच्यप्रयोगे तु तृतीया कर्तृकारके ।

कर्मणि प्रथमा प्रोक्ता, कर्माधीन क्रियापदम् ॥

† २०८ सूत्र (क) टिप्पणी द्रष्टव्य ।

‡ क्रियाके साथ जिसका निकट-सम्बन्ध रहता है, उसे 'मुख्य कर्म', और क्रियाके साथ जिसका दूर-सम्बन्ध (और जिसमें अन्य कारकभी हो सकता है), उसे 'गौण कर्म' कहते हैं । 'भिष्ठुः मुने (मेरे पास—आधिकरण) व स्र माज्ञता है' कहनेसे, जिस वस्तुको माज्ञता है, उसके साथही क्रियाका निकट-सम्पर्क होनेसे, 'वस्त्र' मुख्यकर्म, और जिसके पास माज्ञता है, उसके साथ क्रियाका दूर सम्पर्क होनेसे, 'मुने' गौणकर्म ।

‡ गौणे कर्मणि दुहादि, प्रधाने नी-हृ-कृप्-वहाम् ।

पूजकेन वृत्तं पुष्पं चीरते । राजा चौरं शतं दण्डयति—राजा चौरः
शतं दण्डयते । शिष्यं गुरुं धर्मं पृच्छति—शिष्येण गुरुः धर्मं
पृच्छयते । देवा जलधिम् अमृतं ममन्यु—देवैः जलधिं अमृतं
ममन्ये । गुरुः शिष्यं धर्मम् अनुशास्ति—गुरुणा शिष्यं
धर्मम् अनुशिष्यते ।

न्यादि-भृत्यं भारं गृहं नयति, हरति, कर्पति, ब्रहति वा (कर्तृवाच्य) ।

भृत्येन भारं गृहं नीयते, हियते, कृष्यते, उह्यते वा (कर्मवाच्य) ।

५५९ । णिजन्त-धातुके कर्मवाच्यमे—प्रयोज्यकर्ममे प्रथमा होती
है, और प्रयोज्यकर्मानुसार क्रिया होती है ; यथा—(कर्तृवाच्यमे)
प्रभुः भृत्यं प्राणं प्रेषयति, (कर्मवाच्यमे) प्रभुणा भृत्यं प्राणं प्रेष्यते ।

५६० । भाववाच्य*—तिङ्न्त-क्रियाके सकर्मक धातुका भाव-
वाच्य नहीं होता । भाववाच्यमे—कर्त्तामे तृतीया विभक्ति, और
क्रिया सबग्रही प्रथमपुरुषके एकवचनकी होती है † । कर्मवाच्यके
कर्त्ताके तुल्य भाववाच्यमेभी क्रियाके साथ कर्त्ताका कोई नन्वर्क
नहीं रहता । यथा—मया, युवाभ्याम्, तै वा अत्र स्थीयते । ‡

* 'भाव' शब्दका अर्थ—घात्वथ वा कर्म (कार्य) । कर्म—नाम,
स्त्रीबलिह और एकवचन ।

† प्रयोगे भाववाच्यस्य तृतीया कर्त्तृधारके ।

प्रथम पुरुषस्यैकवचन स्थात् क्रियापदे ॥

‡ कृदन्त क्रिया कर्त्तृवाच्यमे कर्त्ताका विशेषण, कर्मवाच्यमे कर्मका
विशेषण, और भाववाच्यमे स्त्रीबलिह तथा एकवचनान्त होती है ; यथा—
स युष्मान् उच्छवान्, तेन यूयम् उक्ता, तेन उक्तम् ।

कर्मकर्तृवाच्य ।

५६१ । कार्य्य करनेके समय जो कर्मकारक कर्ताके छत्रकर निजगुणोसे स्वयही सिद्ध होता है, उसको 'कर्मकर्त्ता' कहते हैं ।*

वस्तुतः कर्मही यदि कर्ता हो, अर्थात् क्रियाका कर्तृत्व यदि कर्ममें आरोपित हो, तो 'कर्म-कर्त्ता' होता है । कर्मकर्त्तामें प्रथमा विभक्ति होती है, अन्य कर्मपद नहीं रहता । कर्मकर्तृवाच्यमें क्रियाका रूप कर्मवाच्यकी क्रियाके तुल्य । यथा—(कर्तृवाच्य) भृत्य काष्ठ भिनत्ति, (कर्म-कर्तृवाच्य) काष्ठ भिद्यते (स्वयमेव)—लकड़ी फटती है (आपसे आप) ।

अनुवाद करो—(कर्तृवाच्य और भाववाच्यमें) राजा था । गाये चरती है । लडके नाचते हैं । फल गिरता है । छत्र होगा । वह मरा । तुमलोग जाओ । तुम मत रोओ । हमलोगोंने वहाँ वास किया था । वे नहीं रहेंगे । वह हसा था ।

(कर्तृवाच्य और कर्मवाच्यमें) बचवे बिड़ौनेमें सोते हैं । मैंने धन पाया है । वे धन पायेंगे । सब कोई छत्रही (कर्म) इच्छा करते हैं । तुम नक्षत्रोंको देखो । वह सत्य कहता है । हम काम करेंगे । मैं पुस्तक पढ़ता हूँ । हम दोनों कारागये थे । तुम फलोंको ग्रहण करो । राजाने शत्रुओंको जीता है । तुम इसको पीओ जानोगे । असरसद्गका (कर्म) परित्याग करो । हनुमान्ने लङ्काको जलाया था । उसको मैंने पाठ पूठा था । जो परिश्रम करता है, वह छत्र पाता ॥ प्राणियोंकी (कर्म) इत्या मृत करो । परद्रव्य हरण नहीं करना । बिडाल दुग्ध पान करता है । मे

* क्रियमाणन्तु यत् कर्म स्वयमेव प्रसिध्यति ।

सुद्धरै स्वर्गुणे कर्तुं, कर्म-कर्त्तति तद्बिदु ॥

जल पीऊंगा । उसका नाम पूजे । मैं उसे जानता हूँ । तू क्या सोचता है ? मैं तुम्हारे साथ जाऊंगा । तुमजोग कहां रहोगे ? सदा सत्य रहो । ये क्यों हसने हैं ? मेरा हाथ पकड़ो* ।

वाच्यान्तर-प्रणाली ।

जिम वाच्यका प्रयोग रहता है, उसको अन्य वाच्यमे परिवर्तित करना हो, तो समापिका क्रिया और उसके कर्ता और कर्मको परिवर्तित करना होगा । उस कर्ता और कर्मका यदि विशेषण रहे, तो वहभी बदल जायेगा, अन्यान्य पद नहीं बदलेगा । यथा—

	कर्ता	कर्म	समापिका क्रिया	वाच्य	
(१)	अह	चन्द्र	पश्यामि	(कर्तृ)	
	मया	चन्द्र	दृश्यते	(कर्म)	
	कर्ता	कर्म	असमापिका क्रिया	समापिका क्रिया	वाच्य
(२)	शिशु	वाद्य	श्रुत्वा (सुनकर)	नृत्यति	(कर्तृ)
	शिशुना	वाद्य	श्रुत्वा	नृत्यते	(भाव)
	कर्ता	कर्तृविशेषण		समापिका क्रिया	वाच्य
(३)	म	दुःखित		भवति	(कर्तृ)
	तेन	दुःखितेन		भूयते	(भाव)
	कर्ता	कर्म विशेषण	कर्म	समापिका क्रिया	वाच्य
(४)	त्वया	पूर्ण	चन्द्र	दृश्यताम्	(कर्म)
	त्वं	पूर्ण	चन्द्र	पश्य	(कर्तृ)

* यह दो प्रकारसे लिखा जा सकता है—'मेरा हाथ पकड़ो' अथवा 'मुझे हाथमे पकड़ो' ।

कर्त्ता	अन्यकारक	समापिका क्रिया	वाच्य
(५) मया	गृहे	स्थीयते	(भाव)
अह	गृहे	तिष्ठामि	(कर्त्)
कर्त्ता	कर्म	कृदन्त क्रिया	वाच्य
(६) स	०	गतवान्*	(कर्त्)
तेन	०	गतम्	(भाव)
(७) तै	दुग्ध	पीतम्	(कर्म)
ते	दुग्ध	पीतवन्त	(कर्त्)
(८) मया	०	गन्तव्यम्	(भाव)
अह	०	गमिष्यामि	(कर्त्)
(९) अस्माभि	सत्य	वक्तव्यम्	(कर्म)
वय	सत्य	ब्रूयाम	(कर्त्)
कर्त्ता	क्रिया विशेषण	विधेयविशेषण	क्रिया वाच्य
(१०) राम	अत्यन्त	सुशील	† (कर्त्)
रामेण	अत्यन्तं	सुशीलेन	भूयते (भाव)

* तिङन्त क्रिया-द्वाराही तिङन्त क्रियाका वाच्यान्तर, और कृदन्तक्रिया द्वाराही कृदन्त क्रियाका वाच्यान्तर करना । किन्तु कृदन्त क्रियाका अभाव होनेसे (अर्थात् वर्त्तमानकालके 'क्त' प्रत्यय, और तन्व्य, अनीय, य प्रत्यय-के स्थलमे) तिङन्तपदद्वारा वाच्यान्तर करना होगा, यथा—तस्य मतम्—स मन्यते, मया गन्तव्यम्—अह गमिष्यामि ।

† जहाँ क्रियापदका प्रयोग नहीं रहता, वहाँ 'अस्'-धातुके 'लट्' का रूप ऊच्य (Understood) करना होता है । इसलिये यहाँ 'अस्ति'-

वाच्यान्तर करो—अह गच्छामि । ते गच्छन्ति । युवा गां पश्यतम् । आवा
जल पान्याथ । युष्माभि कथ रथते ? नगरे बहवो धनिनो वसन्ति । वर्षास
नद्य प्रवला भवन्ति । पूजनीया हि गुरव । अहं सर्वे पशुभि भवत्सकाशे
प्रस्थापित । यद्येव छागः केनाप्युपायेन लभ्येत (अस्माभि) । अस्ति
मालवदेशे पद्मगर्भनामप्रेय सर । दशरथो नाम राजा आसीत् । मद्रवचन
शृणु । कश्चिद्रवाणसो हसति । धर्मात्मा राजा धर्मेण प्रजा पालयति ।

संक्षिप्त कृत्-प्रकरण ।*

(Verbal affix)

सगुण प्रत्यय ।

६६२ । क्त् (क् इत्) और ट्त् (ट् इत्) भिन्न—कुम्, शतृ,
शान, स्यन्, स्यमान, तव्य, अनीय, य, ष्यत्, ह्यन्, ङ्, ङ्, त्रिन्,
अण्, घण्, ण, खल्, अल्, अच्, अनद्, अन, णिन्, घिनुण्, इत्,
अम्, वम्, इण्, उ, णमुल्, णरु, परु, ट, खि, आलु इत्यादि ।

किया ल्य है । कर्तृवाच्यमेही यह नियम ।

* रचनादिनी सुविधाने लिये कई नितान्त प्रयोजनीय 'कृत्'-प्रत्यय
यहाँ अलग दिखे जाते हैं । परिशिष्ट 'कृत्'-प्रत्यय समासके पश्चात् लिखे जायेंगे ।

† व्याकरणान्तरमे ष्यत्, ष्यण्—इन दो प्रत्ययोंके स्थलमे एक 'ष्यत्'-
प्रत्ययही विहित है, परन्तु सहजमे समशानके लिये यहाँ ष्यत्, ष्यण्—दो
अलग किये गये ।

अगुण प्रत्यय ।

५६३ । क्तिव्—क्, क्वत्, क्का, क्कि, क्कव, कान, क्किप्, क्कनि, क्कि, क्क, क्वप्, 'क्का' के स्थानमे जात 'यप्' इत्यादि, क्तिव्—अङ्, नङ् इत्यादि ।

५६४ । तव्य, अनोय, य, ष्यत्, इयण्, क्यप्, केलिम*—इन प्रत्ययोंको 'कृत्य-प्रत्यय' कहते हैं ।

५६५ । क और क्वत् प्रत्ययको 'निष्ठा-प्रत्यय' कहते हैं ।

५६६ । धातुके उत्तर तुम्, क्का, कृत्य, निष्ठा-प्रभृति कई प्रत्यय करनेसे शब्द उत्पन्न होता है, उनको 'कृत् प्रत्यय' कहते हैं ।

[कृत् प्रकरणमें भी विशेष विशेष सूत्रोंसे बाधित न होनेसे तिङन्त प्रकरणके स्वर (*) चिह्नित सूत्रोंका कार्य्य होगा ।]

५६७ । कृत् प्रत्यय होनेसे, धातुके अन्त्यस्वर और उपधा लघुस्वरका गुण होता है । किन्तु क् अथवा क् इत् होनेसे नहीं होता ।

[४५५ (४) (५) (७) (१०) (११) सूत्रानुसार कृत् प्रत्ययका 'इत्' कार्य्य होगा ।]

५६८ । कृत् प्रत्यय परे रहनेसे, 'क्तिव्'-का लोप होता है । किन्तु क्कालु, इष्णु प्रभृति कई प्रत्यय और क् इत् (क्तिव्) प्रत्यय परे, तथा 'इत्'-व्यवधानसे नहीं होता । यथा—उद्गात्रनम् ।

५६९ । कृत् प्रत्ययका 'य' परे रहनेसे, धातुके अन्तस्थित 'ओ' के

* कर्मकर्तृवाच्यमे धातुके उत्तर 'केलिम्' (केलिम्) प्रत्यय होना है, 'क्' इत्, 'एलिम्' रहता है, यथा—(पच्) पचेलिम् (स्वय पक्), "ददर्श माह्वरपल पचेलिम्" नै० १ १५, (भिद्) भिदेलिम् (भङ्ग) ।

स्थानमे—भव, और 'औ' के स्थानमे—आव् होता है ।

तुमुन् (तुम्) । (Infinitive mood)

५७० । यदि उभय क्रियाका कर्त्ता एक हो, तो निमित्त्तार्थमे भविष्यत्कालमे धातुके उत्तर 'तुमुन्' प्रत्यय होता है, 'तुमुन्'-का—'उ' और 'न्' इत्, 'तुम्' रहता है, यथा—भोक्तु याति (भोजनके निमित्त—लिये—अर्थात् भोजन करनेको जाता है) ।

तुमन्त-क्रिया अव्यय, इसको 'असमापिका क्रिया' कहते हैं ।

लुट् का 'ता' परे जैसा कार्य्य हुआ है, 'तुमुन्' परेभी वैसा कार्य्य होगा, यथा—(हन्) द्रष्टु याति, (भुञ्) भोक्तुम् अभिलषति, (अधीद्) अध्येतुम् हञ्जति ।

दा—दातुम् ।	गै—गातुम् ।	नीद्—नीदितुम् ।
स्था—स्थातुम् ।	यच्—यत्तुम् ।	गम्—गन्तुम् ।
जि—जितुम् ।	प्रच्—प्रत्तुम् ।	क्षम्—क्षन्तुम्, क्षमितुम् ।
नी—नेतुम् ।	त्यच्—त्यत्तुम् ।	सुह्—मोहितुम्, मोक्षुम्,
कृ—कर्त्तुम् ।	भुञ्—भोक्तुम् ।	मोह्—मोह्युम् ।
शु—धोतुम् ।	अच्—अत्तुम् ।	सह्—महितुम्, मोह्युम् ।
	कारि—कारयितुम् ।	कथि—कथयितुम् ।

५७१ । कालवाचक शब्द और समयार्थक शब्दके योगमे धातुके उत्तर 'तुमुन्' होता है । यथा—अर्चयितुं कालोऽयम्, गन्तु समयोऽयम्, शायितुं नेष्टेयम् । बोद्धुं समर्थः, मोक्षुं पटुं, वर्त्तितुं निपुण, कारयितुं

कुशल , योजयितु प्रयोग , “व्याप्तोऽपि प्रजा पातुम्” २० १० २५ ।

✽ हिन्दीमें जहाँ ‘खानेको, जानेको’—ऐसी क्रियाका व्यवहार होता है, वहाँ उसके अनुवादमें ‘तुमुन्’ का प्रयोग करना चाहिये, यथा—(मैं खानेको जाऊंगा) अह खादितु यास्यामि, वा भोक्तु गमिष्यामि । परन्तु ‘मुझे खानेको दो’—ऐसे स्थलमें विभिन्न कर्त्ता होनेसे—भोजनका कर्त्ता एक, और दानका कर्त्ता दूसरा—‘भोजन’-शब्दके उत्तर चतुर्थी-द्वारा अनुवाद करना होगा, यथा—मह्य भोजनाय देहि ।

अनुवाद करो—माधव खान करवाका गया था । तू खानेको जा । हमलोग विवाह इखनेको जायेंगे । रवाला गाय दोहनेको गया । वह आखोते दण नहीं सकता । मुझे वह पुस्तक पढ़नेको दो । क्याम भाष घाटेमें (होरा) तीन चार पत्र लिख सकता है । पांकोते चल नहीं सकूंगा । मैं उसे यह सवाद कहनेको जाऊंगा । यहा खेलनेका समय । मैं पैरनेको असमर्थ । वह कुछ पहना चाहता है ।

(१) का ।

[किसी विशेष सूत्र द्वारा बाधित न होनेसे, तिङन्तप्रकरणमें रधादि और अदादिमें ‘त’ परे व्यञ्जनान्त धातुका जैसा कार्य हुआ है, ‘क्त्वा’-

* ‘तुमुन्’-प्रत्ययान्त शब्द कभी क्रियावाचक विशेषण होता है, यथा—एव कर्त्तुम् उचितम् (करणम् इत्यर्थ) । क्रियावाचक विशेषणके उत्तर निमित्तरथमें चतुर्थीकी प्राप्ति होनेसे, उसके स्थानमें ‘तुमुन्’-प्रत्ययान्त पदकाभी प्रयोग हो सकता है, यथा—पाठाय उपविशति, अथवा पठितुम् उपविशति ।

प्रत्यय परेमी प्राय हैसाही कार्यं, और कन्वाम्ब सूर्वांश्च कार्यं यदा सम्भव होगा ।]

५७२ । उभय क्रियाका एशही वर्त्ता होनेसे*, पूर्व-कालिक-क्रिया-बोधक धातुके उत्तरां अनन्तर-अर्थमे 'त्वा'-प्रत्यय हाता है, 'क्' इत्, 'त्वा' अवशिष्ट रहना है, यथा—भुक्त्वा व्रजति (भोजनके अनन्तर—पश्चात्, पीछे—अर्थात् भोजन करके जाता है) ।

* 'क्त्वा'-प्रत्ययान्त क्रिया कन्वय . इनको 'अमनापिका क्रिया' कहने हैं ।

५७३ । निदेशार्थक 'अल्प' और 'बहु' शब्दके योगसे 'क्त्वा' होता है; यथा—अल्प भुक्त्वा, बहु गत्वा (भोजन-मानने निषिद्धे—न भोक्तव्यम्, न गन्तव्यम् इत्यर्थ) । "निर्दारिनेऽप्ये तेन्नेन छट्त्वा छतु वाचिकम्" भाव० २ ७०. ।

५७४ । 'क्' इत् (क्त्वि) शतुग, किन्तु 'इत्' होनेसे गुण होता है ।

'त्वा' परं, धि, उवर्णान्त, वृ और ऋन्त धातुके उत्तर 'इत्' नहीं होता ।

जा—जात्वा, म्ना—स्नात्वा वि—जित्वा; धि—धित्वा; नी—नीत्वा; ध्रु—ध्रुत्वा; नृ—नृत्वा; हृ—हृत्वा, वृ—वृत्वा; स्मृ—स्मृत्वा ।

* किसी किसी स्थलमे (स्थित्ययोगे) 'स्थित'-पदके कागहारसे एक-कृतेकृता होती है, यथा—चन्द्रं दृष्ट्वा [स्थितस्य जनस्य] मनसि महान् हर्षो जायते ।

† किसी किसी स्थलमे परवर्ती धातुके उत्तरनी होता है; यथा—उदरं पूर्यन्तं भुङ्क्ते, मुखं व्यदाय स्वामिति; चक्षुः कर्मन्तर इक्षति; दृशित्वा इत्वा पठति पुनः ।

अनिट्—(चान्त) पच्—परका, सिच्—सिरका, मुच्—मुत्का ।
 (वान्त) त्यञ्—त्यरका; भुञ्—भुत्का, मृञ्—मृत्का । (दान्त)
 मिट्—मिरवा, डिट्—डित्वा । (घान्त) युष्—युद्धा; बुष्—
 बुद्धा, कुष्—कृद्धा । (पान्त) क्षिप्—क्षिप्त्वा, तप्—तप्त्वा,
 आप्—आप्त्वा । (भान्त) रभ्—रब्ध्वा, लभ्—लब्ध्वा । (शान्त)
 स्पृग्—स्पृष्ट्वा, दृग्—दृष्ट्वा । (पान्त) कृप्—कृष्ट्वा, पिप्—पिष्ट्वा,
 द्विट्—द्विष्ट्वा । (हान्त) दह्—दृग्ध्वा, दुह्—दुग्ध्वा, नह्—नद्धा ।

१७५ । * कित् प्रत्यय परे रहनेसे, दा—दत्, धा—दि, स्था—स्थि,
 मा—मि, गै—गौ, (पानार्थं) पा—पी, (त्यागार्थं) हा—दि, शो—शि,
 सो—मि, धाच्—विकल्पसे धौ होता है, यथा—(दा) दत्त्वा, (धा)
 दित्वा (स्था) स्थित्वा, (मा) मित्वा, (गे) गीत्वा, (पा)
 पीत्वा; (हा) हित्वा ।

* १७६ । कित् 'कृत्'-प्रत्यय परे रहनेसे, हन्, मन्, तन्, गम्,
 नन्, यम्, रन्, क्षग् प्रभृति धातुके अन्त्यवर्गका लोप होता है । 'रका'-
 के स्थानमे जो 'ल्यप्' होता है, उसमेभी यही नियम, किन्तु 'ल्यप्' परे,
 गम्-आदिके अन्त्यवर्गका विकल्पसे लोप होता है, यथा—(हन्)
 हत्वा, (मन्) मत्वा, (गम्) गत्वा, (नम्) नत्वा, (रम्)
 रत्वा इत्यादि ।

१७७ । 'रका' परे रहनेसे, उदित् (उकार-इन्) धातु*और पू धातु-

* उदित् धातु—अञ्च्, (तुदादि) इप्, कम्, भ्रम्, क्लम्, भ्रम्,
 शम्, दम्, रम्, क्षम्, वृन्, इप्, क्षिप्, शान्, प्रम्, मृप्, घनम्,
 भ्रन्श्, सिप्, क्षग्, कम्, धाच्, लुप्, सिध्, हप्, ठन् इत्यादि ।

के उत्तर विकल्पसे 'इट्' होता है, यथा—(अञ्) अञ्जित्वा, अञ्जु, (इप्) इपित्वा, इष्ट्वा ; (दिञ्) देवित्वा, द्यूत्वा, (सिञ्) सेवित्वा, स्यूत्वा ; (धाव्) धावित्वा, धौत्वा ; (पू) पवित्वा, पूत्वा । अञ् धातुके पूजा भिन्न अन्य अर्थमे नहीं होता ।

६७८ । ऋक्ता, ऋ, ऋ और ऋतु परे रहनेसे, ऋम्, ऋम्, ऋम्, ऋम्, ऋम्, ऋम्, ऋम् और ऋम् धातुके उपधा सकारके स्थानमे 'भा' होता है, यथा—(ऋम्) ऋमित्वा, ऋन्त्वा, (अम्) अमित्वा, आन्त्वा, (शम्) शमित्वा, शान्त्वा, (वम्) वमित्वा, वान्त्वा, (क्षम्) क्षमित्वा, क्षान्त्वा ।

(३७८ सूत्र) प्रह्—गृहीत्वा, प्रचद्—पृष्ट्वा, व्यध्—विद्ध्वा, यञ्—इष्ट्वा ।

(३७९ सूत्र) वद्—उदित्वा, वध्—उरक्ता, तम्—उपित्वा, वह्—उट्टा ; म्वष्—सप्तवा ।

(३८० सूत्र) दन्स्—दष्ट्वा ।

६७९ । 'रक्ता' परे रहनेसे, जान्त, थान्त, पान्त धातु, और वन्च् तथा लन्च् धातुके उपधा नकारका विकल्पमे लोप होता है । यथा—(जान्त) भन्च्—भरक्ता, भङ्क्ता, रन्च्—रक्ता, रङ्क्ता । (थान्त) प्रन्च्—प्रथित्वा, प्रथित्वा, मन्च्—मथित्वा, मन्यित्वा । (पान्त) गुम्प्—गुपित्वा, गुम्फित्वा । वन्च्—वचित्वा, वञ्जित्वा, लन्च्—लुचित्वा, लञ्जित्वा ।

६८० । 'इट्' परे रहनेसे, मृद्, मृद्, र्द्, विद्, मुद् और हिन् धातुका गुण नहीं होता, यथा—मृदित्वा, मृदित्वा ; रदित्वा, विदित्वा ;

मुपित्वा, क्लिशित्वा, क्लिष्ट्वा ।

५८१ । 'इद्' परे रहनेसे, 'मिल्'-आदि* धातुके उत्तर विकल्पसे गुण होता है, यथा—(मिल्) मिलित्वा, मेळित्वा, (लिख्) लिखित्वा, लेखित्वा, (कुप्) कुपित्वा, कोपित्वा, (द्युत्) द्युतित्वा, द्योतित्वा इत्यादि । सेद् धातु—(शौ) शयित्वा, (कारि) कारयित्वा ।

(अद् + क्त्वा = जग्ध्वा ।)

✽ हिन्दीमे 'खाके खाकर, जाके जाकर' प्रभृति प्रचलित क्रियाओंका अनुवाद सस्त्रुतमे प्रायश 'क्त्वा'-निष्पन्न-क्रिया-द्वारा करना होता है, यथा—(वे खाकर जायेगे) ते भुक्त्वा यास्यन्ति, (मैं स्नान करके खाऊंगा) अहं स्नात्वा भक्षयिष्यामि ।

अनुवाद करो—पुष्प चयन करके ला । जल सींचकर पड़को बग । लडके विद्यालयसे पढ़कर आते हैं । दयालु दरिद्रको धन देकर सुखी होता है । लडके खेलकर घर लौटते हैं । बैल रस्सी तोड़कर भागा । धार्मिक बालक प्रतिदिन ईश्वरका (कर्म) स्मरण और नमस्कार करके पाठ आरम्भ करता है ।

(२) ल्यप् (यप्) ।

५८२ । 'नञ्'-भिन्ना शब्दयय पदके साथ समास होनेसे धातुके उत्तर 'क्त्वा' के स्थानमे 'ल्यप्' होता है, 'ल्' और 'प्' इत्, 'य' रहता है । 'प्'-इत् का कार्य होता है । यथा—आ +

* मिल्, लिख्, स्तिम्, कुप्, क्षुप्, कुद्, द्युत्, रुप्, रुद्, कृत्, ल्यप्, मृप् ।

† 'नञ्'-अव्ययके योगसे 'ल्यप्' नहीं होता, यथा—(न गत्वा) अगत्वा ।

दा + ल्यप् = आदाय, (वि + जि) विजित्य; (वि + नी) विनीय, (प्र + हृ) ग्रहृत्य, (आ + हृ) आहृत्य, (वि + हा) विहाय, (नि + पा—पानार्थ) निपाय* ।

'ल्यप्' प्रत्ययान्त क्रिया अव्यय, इसको 'असमापिका क्रिया' कहते हैं ।

(३७७ सू०) प्र + कृ—प्रकीर्त्य, आ + पू—आपूर्य ।

सम् + त्यज्—सन्त्यज्य, वि + ध्रम्—विध्रम्य; सम् + दृग्—सन्दृश्य, प्र + विद्—प्रविश्य; आ + क्षिप्—आक्षिप्य, सम् + भृ—सम्भृय ।

(५७६ सू०) आ + हृन्—आहृत्य, आ + गम्—आगत्य, आगम्य, प्र + तम्—प्रगत्य, प्रगम्य, नि + यम्—नियत्य, नियम्य, वि + रम्—विरत्य, विरम्य इत्यादि ।

(५४९ सू०) सम् + शी—सशय्य ।

(३७८ सू०) सम् + प्रच्छ्—सम्प्रच्छय; सम् + प्रह्—सप्रहय; आ + ह्वे—आह्वय ।

(३७९ सू०) सम् + स्वप्—संस्प्य; प्र + वच्—प्रोच्य, सम् + वद्—ममुद्य ।

(३८० सू०) प्र + क्नुम्—प्रकन्म्य; प्र + मन्द्—प्रमन्द्य इत्यादि ।

५८३ । 'ल्यप्' परे रहनेसे, 'गिच्'का लोप होता है । यदि 'गिच्'का पूर्ववर्ती स्वर छुट्टा हो, तो 'गिच्'का लोप न होकर 'गिच्'के 'ङ'के

* निपाय—नि + पी (पानार्थ—दिवग्दि, आत्मने०) + ल्यप्, "निपाय सरय क्षितिर्दक्षिण वधाम्" नं० १ १ ।

स्थानमे 'अय्' होता है । यथा—(वि + चारि) विचार्य्य , (प्र + काञि) प्रकाश्य । (पूर्वस्वर लघु) वि + गणि—विगणय्य , वि + रचि—विरचय्य ।

(क) 'ल्यप्' परे रहनेसे, 'आपि'-धातुका 'इ' विकल्पसे 'अय्' होता है, यथा—(प्र + आपि) प्रापय्य, प्राप्य ।

✽ 'ल्यप्-प्रत्ययान्त क्रियाका व्यवहार 'क्ता' प्रत्ययान्त क्रियाके तुल्य ।

कृत्य-प्रत्यय (Potential passive participle) ।

(१) तव्य ।

५८४ । कर्मवाच्य और भाववाच्यमे धातुके उत्तर 'तव्य'-प्रत्यय होता है ।

'लुट्'का 'ता' परे धातुका जैसा कार्य्य हुआ है, 'तव्य'-प्रत्यय परे भी वैसा कार्य्य होता है, यथा—दा + तव्य = दातव्य, (शी) शयितव्य, (नी) नेतव्य, (श्रु) श्रोतव्य, (भू) भवितव्य, (कृ) कर्त्तव्य; (हन्) हन्तव्य, (गम्) गन्तव्य, (प्रच्छ्) प्रष्टव्य, (श्वस्) श्वसितव्य, (वद्) वोढव्य, (सद्) सोढव्य, (विस्) वैष्टव्य, (स्पृश्) स्पृष्टव्य, (कारि) कारयितव्य, (भोजि) भोजयितव्य इत्यादि ।

(२) अनीय (अनीयर्) ।

५८५ । कर्मवाच्य और भाववाच्यमे धातुके उत्तर 'अनीय'-प्रत्यय होता है ।

'यनीय' परे रहनेसे, अन्त्यम्बर और उपधा लघुम्बराका गुण होता है, यथा—रा + ऋनीय = पानीय, (भुञ्) भोजनीय, (श्रु) श्रवणीय, (कृ) करणीय; (हृ) हरणीय, (रम्) रमणीय; (शी) शयनीय इत्यादि ।

(३) घत् (य) ।

५८६ । कर्मवाच्य और भाववाच्यमे स्वर्गान्त (इवर्णान्त और उवर्णान्त), पवर्गान्त*, और शक्, मह-प्रभृति घातुके उत्तर 'घत्' होता है, 'त्' इत्, 'य' रहता है ।।

'घत्' परे रहनेसे, अन्त्यम्बराका गुण होता है । यथा—(स्वर्गान्त) चि + यत् = चेय, (जि) जेय; (नी) नेय, (श्रु) श्रव्य (नृ) नव्य । (पवर्गान्त) जर् + यत् = ज्य; (लृ) लव्य; (गृ) गव्य; (नृ) नव्य; (रम्) रव्य । (शक्) शक्य; (सहृ) सह्य ।

५८७ । 'घत्' परे रहनेसे, आकारान्त घातु और खन्-घातुके 'टि' के स्थानमे 'श्' होता है; यथा—(दा) देय; (ना) नेय; (म्या) स्पेय, (खन्) खेय ।

००० । उपसर्गविहीन गट्, मट्, यम् और च् घातुके उत्तर

* टप्, वप्, चम् मिन ।

† स्वल्-विशेषमे कारकवाच्यमे लभ्यादि होते हैं; यथा—वसतेति, वसन्वसति वा वास्तव्य (ऐषे स्वल्मे 'तव्य'-प्रत्यय परे वत् घातुकी वृद्ध होती है); जानते इति जन्म, स्नाति जनेनेति स्नानीयन्; दीयते अर्हम् इति दानीय, विभेति वदन्वा इति भेदव्य; रमते अरिनेति रमणीयम्, रमन्म् ।

'यत्' होता है, यथा—(गद्) गद्य , (मद्) मद्य , (यम्) यम्य ;
(चर्) चर्ष्य । किन्तु 'आ' पूर्वक चर् धातुके उत्तर 'यत्' होता है,
1* यथा—आचर्ष्य ।

(४) ण्यत् ।

५८९ । कर्मवाच्य और भाववाच्यमे उपर्णान्त धातुके उत्तर 'आवश्यक'-अर्थमे 'एयत्' होता है, 'ए' और 'त्' इत्, 'य' रहता है, यथा—(स्तु) स्नाद्य (अवश्यस्तवनीय) ।

५९० । कर्मवाच्य और भाववाच्यमे ऋकारान्त और व्यञ्जनान्त धातुके उत्तर 'ण्यत्' होता है । यथा—(ऋकारान्त) कृ—कार्य , (हृ) हार्य , (स्मृ) स्मार्य । (व्यञ्जनान्त) चहृ—वाह्य , हन्—घात्य ('एयत्' परे 'हन्'—'घात्' होता है) , (जन्) जन्य , (वध्) वध्य , (त्यज्) त्याज्य , (यज्) याज्य , (बुध्) बोध्य* , (भुज्) भोज्य , (वच्) वाच्य इत्यादि ।

(५) द्यण् ।

५९१ । कर्मवाच्य और भाववाच्यमे, 'शब्द'-अर्थमे—प्रच् , 'भोग'-अर्थमे—भुज् , और 'अहं' (औचित्य, सामर्थ्य) अर्थमे—युज् धातुके उत्तर 'द्यण्' होता है, 'च्' 'ण्' इत्, 'य' रहता है, यथा—(वच्) वाक्यम् (पदमङ्गात्) , (भुज्) भोग्य , (युज्) योग्य ।

(क) 'ज'-प्रत्ययमे क्निट्, ऐसे पच्, हज् प्रभृति धातुके उत्तरमे

* गित्-प्रत्यय परे उपधा लघुस्वरका गुण होता है ।

‘क्यप्’ होता है, यथा—(१च्) पाक्य, (२च्) रोग्य ।

(६) क्यप् ।

५९२ । कर्मवाच्य और भाववाच्यमे इ, ट, भृ, कृ, जुप्, शास्, स्तु धातु, और उपधामे ऋकार-विशिष्ट धातुके उत्तर ‘क्यप्’ होता है, ‘क्’ और ‘प्’ दत्, ‘य’ रहता है; यथा—(इ) इत्य, (ट) आदत्य, (भृ) भृत्य, (कृ) कृत्य (पदान्तरे ‘रयत्’—कार्य्य), (जुप्) जुप्य, (शास्) शिष्यः (३२४ सू०), (स्तु) स्तुत्य (४५५ (११) सू०), (दृश्) दृश्य ।

५९३ । कर्मवाच्य और भाववाच्यमे सवन्त पदके परवर्ती वद् धातुके उत्तर ‘क्यप्’ और ‘यत्’ होते हैं, ‘क्यप्’-पक्षमे ‘व’के स्थानमे ‘उ’ होता है; यथा—मह + वद् + क्यप् = महोद्यम्, मह + वद् + यत् = महयद्यम्, वेदवाच्य महजान वा इत्यर्थे । “महोद्याश्च कथा बुध्यान्” मनु० २ २३१. (‘परमात्मनिरूपणपरा कथाश्च बुध्यान्’ इति टीका) ।

‘मृषा’-शब्दके परवर्ती होनेसे केवल ‘क्यप्’ होता है; यथा—मृषा + वद् + क्यप् = मृषोद्यम् (मिथ्याप्रचाम् इत्यर्थे) । मृषोद्य—मिथ्यावादी (विरोपण) ।

५९४ । भाववाच्यमे सवन्त पदके परवर्ती मू धातुके उत्तर ‘क्यप्’ होता है; यथा—मद्मन् + मू = मद्ममूद्यम् (मद्मत्वम्), देवमूद्यम् (देवत्वम्), विप्रमूद्यम् (विप्रत्वम्) ।

५९० । भाववाच्यमे सवन्त पदके परवर्ती इन् धातुके उत्तर ‘क्यप्’ होता है; और ‘न्’के स्थानमे ‘ल्’, तथा स्त्रीलिङ्ग होता है; यथा—

खोहत्या, गोहत्या, ब्रह्महत्या ।

✕ भविष्यत्-कालमे और औचित्य, अनुज्ञा प्रभृति अर्थमे 'कृत्यप्रत्यय' होता है ।

कर्मवाच्यमे—कृत्यप्रत्ययनिष्पन्न शब्द जत्र क्रियाके तुल्य व्यवहृत होता है, तत्र कर्मका विरोध होता है, अर्थान् कर्मका जो लिङ्ग, जो विभक्ति, जो वचन, 'कृत्य'-निष्पन्न शब्दकाभी वही लिङ्ग, वही विभक्ति, वही वचन होता है, और कर्ममे—प्रथमा विभक्ति, कर्तामे—तृतीया अथवा षष्ठी विभक्ति होती है । यथा—भविष्यत्-कालमे—(तू अवश्य इसका फल पायेगा) त्वया नूनमस्य फल प्राप्स्यम् , (मैं काशी जाऊंगा) मया मम वा वाराणसी गन्तव्या । 'औचित्य'-अर्थमे—(असत्सङ्ग परित्याग करना चाहिये) अमत्सङ्ग परिहर्त्तव्य , (सत्रसमय मातापिताकी सेवा करनी चाहिये) सर्वदा मातापितरौ सेवनीयौ , (दुष्टोंको सर्वप्रकारमे दण्ड देना चाहिये) दुर्वृत्ता सर्वथा दण्डनीया , (दूसरेकी निन्दा नहीं करना) परनिन्दा न कर्त्तव्या , (सब स्त्रियोंको माताके तुल्य देखना) सर्वा स्त्रियो मातृवन् दर्शनीया , (शत्रुकेभी गुण कहना, और गुरुकेभी दोष कहना) "शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि" ।

-- "कन्याऽप्येव पालनीया शिक्षणीयाऽतियत्नत ।

देया वराय विदुषे धनरत्नसमन्विता ॥"

'अनुज्ञा'-अर्थमे—(प्रातः कालमे तुम्हे पाठशालाको जाना होगा) त्वया प्रातः पाठशाला गन्तव्या , (ब्राह्ममुहूर्त्तमे तुम्हे वेद पढ़ना

होगा) प्राज्ञे सुहृत्ते त्वया वदोऽध्ययनीय ।

भाववान्यमे—कृत्यप्रत्ययनिष्पन्न शब्द जत्र क्रियाके तुल्य व्यवहृत होता है, तब हीवलिङ्ग प्रथमाका एकवचन होता है; और कर्त्तामे तृतीया अथवा पष्ठी होती है, यथा—(हम स्नान करेंगे) अस्माभि अस्माक वा स्नातव्यम् ।

✕ कृत्यप्रत्ययनिष्पन्न शब्द जत्र विशेषण होता है, तत्र विशेष्यके लिङ्ग, विभक्ति, वचन प्राप्त होता है, यथा—गन्तव्यो ग्रामः,* गन्तव्य ग्रामम्, गन्तव्येन ग्रामेण इत्यादि, दृश्या नदीः, दृश्या नदीम्, दृश्यया नद्या इत्यादि, पानीय जलम् †, पानीयेन जलेन, पानीयस्य जलस्य इत्यादि ।

अनुवाद को—शोनेको धन देना चाहिये । भूलकारों मिथ्या नहीं बोलना । सर्वत्र गुणका आदर करना चाहिये । दुष्ट बालकका (कर्म) शासन करना चाहिये । तू तेरे गन्तव्य स्थानमें जाना । कल मेरे यहाँ भीजन करना ।

(Present participle)

(१) शतृ ।

५१६ । कर्त्तृवाच्यमे परस्मैपदो धातुके उत्तर वर्त्तमानकालमे 'शतृ' प्रत्यय होता है, 'श्' और 'ऋ' इत्, 'अत्' रहता है ।

५१७ । अभ्यन्त धातु भिन्न भ्वादि प्रभृति धातुके 'लट्'की 'अन्ति'-

* जो जाया जायेगा—ऐसा गाँव ।

† जो देखी जायेगी, अथवा देखनेके योग्य—ऐसी नदी ।

‡ जो पीया जा सकता—ऐसा जल ।

विभक्तिमें जो रूप होता है, उसमें 'न्' और 'इ' निकाल देनेसेही 'शन्'-प्रत्ययान्त शब्द बनता है; यथा—(घाच्) घावन्ति—घावत्, (दृश्) पश्यन्ति—पश्यन्, (मुञ्च्) मुञ्चन्ति—मुञ्चन्, (दिच्) दीव्यत्, (भग्) भक्षत्, (धृ) शृण्वत्, (हिन्म्) हिसत्, (कथि) कथयत्, (कारि) कारयत्, (चोरि) चोरयत् ।

६९८ । अभ्यस्त धातुके 'अन्ति'के रूपसे केवल 'इ' निकाल देनेसेही 'शन्'-प्रत्ययान्त शब्द होता है, यथा—(दा) ददति—ददत्, (भी) बिभ्यति—बिभ्यत्, (हा) जहति—जहत् ।

६९९ । अडादिगणीय विद्-धातुके उत्तर 'शन्'के स्थानमें विकल्पसे 'कृ' (वप्) होता है, यथा—विद्वस्, विद्वत् ।

(२) शानच् (शान) ।

६०० । कर्तृवाच्यमें आत्मनेपदी धातुके उत्तर वर्त्तमानकालमें 'शानच्'-प्रत्यय होता है, 'श' 'च्' इत्, 'शान' रहता है ।

६०१ । 'आन' परे रहनेसे, लट्के 'आते'-विभक्तिका समस्त कार्य होता है। भ्वादि, दिवादि और तुदादिगणीय धातुके उत्तर विहित 'आन'-के स्थानमें 'मान' होता है। यथा—(भ्वादि) सेव्—सेवमान, (वृत्) वर्त्तमान । (दिवादि) जन्—जायमान, विद्—विद्यमान । (तुदादि) मृ—म्रियमाण, धृ—ध्रियमाण । (अडादि) शी—शयान, अधि + इ—अधीयान । (तनादि) मन्—मन्वान । (हादि) मा—मिमान ।

६०२ । अडादिगणीय आस् धातुके परस्मिन् 'आन'—'इत्' होता है, यथा—(आस्) आसीत् ।

६०३ । कर्तृवाच्यमें उभयपदी धातुके उत्तर वर्त्तमानकालमें 'शन्'

और 'शानच्'—दोनो होते हैं । यथा—(भ्वादि) धि—धयन्, अय
माण, यन्—यन्त्, यजमान । (अदादि) स्तु—स्तुयन्, स्तुवान् ;
दुह्—दुहत्, दुहान् । (ङादि) दा—ददत्, ददान् ; नृ—विभ्रन्,
विभ्राण । (र्गादि) रन्—रन्वत्, रन्वान् । (तनादि) तन्—तन्वत्,
तन्वान्, कृ—कुर्वत्, कुर्वान् । (क्र्यादि) क्री—क्रीणत्, क्रीगान्, यह्—
गृह्णन्, गृह्णान् ।

६०४ । कर्मवाच्यमे धातुक उत्तर वर्त्तमानकालमे 'शानच्' होता है ।
'शानच्' परे रहनेसे, कर्मवाच्यपर लट्की 'अन्ते' विभक्ति का वाच्यत्व
कार्य होता है, और 'शानच्'के स्थानमें 'मान' होता है । यथा—(कृ)
क्रियमाण, (वच्) उच्यमाण, (दा) दीयमाण, (पा) पीयमाण,
(ग्रह्) गृह्यमाण, (सेव्) सेव्यमाण, (बह्) बध्यमाण, (दृश्)
दृश्यमाण, (कृष्) कृष्यमाण, (सृज्) सृज्यमाण, (ज्ञा) ज्ञायमाण ।

६०५ । उपलक्षण और हेत्वर्थमेभी 'शान्' 'शानच्' होते हैं, यथा—
म पशुना वध कृत्वास्मात् (वधक्रियया उपलक्षित इत्वर्थ), फलान्या-
हारन् वन पाति (फलाहरणादेतोरित्यर्थ) ।

(रु) शील (स्वभाव) और शक्ति अर्थमे परस्मैपदा धातुं उत्तर-
ना 'शानच्' होता है, यथा—हममान शिशु, करिणं निम्नान्—द्विषन्
अभिमवमान—मिह ।

✕ 'शान्' और 'शानच्' प्रत्यय-द्वारा जो शब्द निर्गत होता
है, वह विशेषण, इसलिये विशेष्यके लिङ्ग, विभक्ति, वचन प्राप्त होता
है । यथा—(कर्तृगान्य) पश्यन् पुरुष, * पश्यन्तं पुरुषम्, पश्यता

* जो देखता है, ऐसा पुरुष ।

पुरुषेण , गच्छन्ती स्त्री, गच्छन्ती स्त्रियम्, गच्छन्त्या स्त्रिया ; पतन् फलम्, पतता फलेन, पतत फत्स्य । (कर्मवान्य) दृश्यमान (जो देखा जाता है—ऐसा) पुरुष , क्रियमाणौ घटौ , द्विद्यमानानि फलानि , तीर्थ्यमाणा नदी ।

✽ 'करके' या 'करते करते' अथवा 'जो करता है, करता था, या करता रहेगा—ऐसा' इत्यादिरूप अर्थमे धातुके उत्तर 'शृ' वा 'शानच्' होता है ।

'जाते जाते गाता है', 'खाते खाते हमता है'—ऐसे वाक्श्रोके अनुवादमे—अर्थान् जहाँ एक समय दो क्रियाये चलती हैं, उसके अनुवादमे—पूर्व क्रिया 'शृ' वा 'शानच्'-प्रत्ययात्त होगी, यथा—(लडके जाते जाते गाते है) बालका गच्छन्तो गायन्ति , (पय देखते देखते जा) पन्थान पश्यन् व्रज , (वह खाते खाते बात करता था) स भुञ्जान आलपति स्म ।

विभिन्न कर्त्ता होनेसे, अनेक स्थलोमे 'खाते' 'जाते'—ऐसी क्रियाओंकी सस्कृत उक्त 'शृ' अथवा 'शानच्'-द्वारा की जाती है, यथा—(मैंने उसे खाते देखा है) अहमसु भक्षयन्तम् अपश्यम्, —यहाँ दर्शनका कर्त्ता—'मै', और भक्षणका कर्त्ता—'वह',

समाधिदा क्रियाके साथ प्रयोग करनेसे, उसके प्राधान्य-हेतु, तदनुसारही वर्तमानकालमेभी अतीत और भविष्यत्कालका अर्थ प्रकाश करता है, यथा—उद्यन्त चन्द्रम् अहमपश्यम् (उठता था जो चन्द्र, उमे मैंने देखा) ; उद्यन्त चन्द्रम् अह दृश्यामि (उठेगा जो चन्द्र, उसको मैं देखूंगा) ।

इमलिये विभिन्न कर्ता । †

‘सुनते सुनते कथा समाप्त हुई’—इस वाक्यका अर्थ ऐसा है, कि—हम सुनते हैं, कथाभी समाप्त होती है, इमलिये इसकी ससृष्टतमे पूर्व-क्रियाको कर्मवाच्यमे ‘शानच्’ प्रत्ययान्त करके ‘कथा’-का विशेषण कर लेना होगा, यथा—श्रुत्वा कथा समाप्तिं याति ।

अनुवाद करो—यहाँ लटक खेलेते खेलेते लड़ते थे । मैंने हस्त हस्त कहा था । पढ़ते पढ़ते चूड़ा हुआ हूँ । वह चिटिया उड़ते उड़ते पृथ्वीमे गिरी । टात्रलोक अध्ययन करते करते धातु फर रहे हैं । जयायु रागगो सोताहरण करते देखा ।

निष्ठा-प्रत्यय (Past participle) ।

(१) क्त ।

६०६ । अतीतकालमे धातुके उत्तर कर्मवाच्य और भाव-वाच्यमे ‘क्त’-प्रत्यय होता है ; ‘क्’ इत्, ‘त्’ रहता है ।

६०७ । निष्ठा प्रत्यय परे रहनेसे, ‘सेट्’-धातुके उत्तर ‘इट्’ होता है । तिङन्त प्रकरणमे जो धातु ‘अनिट्’ बोलके निर्दिष्ट हुए हैं, ‘क्त’-प्रत्यय परे रहनेसे, उन धातुओंके उत्तर ‘इट्’ नहीं होता ।

[तिङन्तप्रकरणमे जो मन्स्य स्वर (७) विहित साधारण सूत्र

† क्रियाका अविच्छेद (Continuation) मन्स्यमेसे, ‘शतृ’ वा ‘शानच्’के साथ ‘अस्’ अथवा ‘रया’ धातु व्यवहृत होता है, यथा—
“गोत्रसमापदवसर प्रनक्षमाणस्तथा” काद० (गीत मन्स्य होनेका अवसर देखना रहा) ।

हैं, मिष्टा प्रत्यय परेभी यथासम्भव उन सूत्रोक्त कार्यों होगा ।]

६०८ । अकर्मक धातुके उत्तर कर्तृवाच्य और भाववाच्यमे 'क्त' होता है ।

६०९ । गत्यर्थ और प्राप्त्यर्थ धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमेभी 'क्त' होता है, यथा—ग्राम गत, गृह प्रस्थित, गङ्गा प्राप्त, विद्यामधिगत ।

६१० । उपसर्गके योगसे सर्मक होनेपरभी शी (अधि + शी), स्था (अधि + स्था, उप + स्था), आस् (अधि + आम्, अनु + आस्, उप + आस्), वम् (अधि + वम्, उप + वस्), जन् (अनु + जन्), षिप् (आ + षिप्) और रद् (आ + रद्, अधि + रद्) धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमेभी 'क्त' होता है, यथा—शय्यामधिष्ठित, आसनमधिष्ठित, गुस्सुपस्थित, आश्रममध्यासित, पितरमन्वामित, शिवसुपासित, शिलातलमध्युपित, हरिवासरसुपोषित, अग्रजमनुजात, शिशुमाश्लिष्ट, तुरगमारूढ, योगमधिरूढ । (नम्) "वागीश्वर पितरमेव तमानतोऽस्मि" वाणभट्ट ।

६११ । पूजार्थ, इच्छार्थ, ज्ञानार्थ और जीन् (जि इत्) धातुके* उत्तर वर्त्तमानकालमेभी 'क्त' होता है, यथा—मम देव पूजित- (पूज्यते इत्यर्थ) ।

६१२ । निष्ठा प्रत्यय परे रहनेसे,—जिन धातुओंके उत्तर विजल्पसे 'इट्' होता है, उन धातुओंके उत्तर, और श्रि, उवर्णान्त, वृ, ऋदन्त

* जीत् धातु—(मिदार्थ) फल, भी, मिद्, शिवद्, स्वप्, त्वर्, तृष्, इन्ध् इत्यादि ।

तथा इंदिव (इंकार इव) धातुके उत्तर 'इट्' नहीं होता ।

६१३ । निष्ठा-प्रत्यय परे रहनेसे, दिव्—ष्ट्, सिव्—स्यू, टिव्—
प्यु, प्याप्—पी और प्या, स्पाप्—स्पी और स्पा, व्ये—वी, ह्ये—ह्य,
डा—ही, जन्—जा, सन्—सा, खन्—खा, शि—शू होता है ।

६१४ । 'नृ' भिन्न दान्त, रान्त और ओदिव † (ओकार-इव)
धातु, तथा ग्लै, न्लं, द्रा, स्त्यै धातुके परस्थित निष्ठा-प्रत्ययका 'त'-
'न' होता है ; 'न' परे रहनेसे, दान्त धातुके 'इ' के स्थानमें भी 'नृ'
होता है ।

६१५ । डी, प्रा, ये, लुट् और विन्ट् धातुके उत्तर निष्ठा-प्रत्ययका
'त' विकल्पसे 'न' होता है ।

६१६ । निष्ठा-प्रत्यय परे रहनेसे, लुष्ट्, वस् और लुम् धातुके
उत्तर 'इट्' होता है, किन्तु 'लिप्ता'-अर्थमें लुम्-धातुका 'इट्' नहीं
होता ; तथा—लुभित (विमोहित, आकुलीकृत), (लिप्तायै) लुग्य ।

६१७ । निष्ठा-प्रत्यय परे रहनेसे, जप्, वप्, ह्रिप्, हृप्, लृप्,
रप्, 'सम्'-पूर्वकं लृप्, 'वि' और 'आ'-पूर्वकं श्म् धातुके उत्तर विकल्पसे
'इट्' होता है ।

६१८ । निष्ठा-प्रत्यय परे रहनेसे, छादि और क्षारि के स्थानमें
विकल्पसे छट् और क्षत् होता है ; पदा—उत्र, छादित ; क्षत्, क्षत्त ।

† इंदिव धातु—हृव्, पृव्, जन्, ज्रस्, क्षिन्, पुप्, प्याप्, मद्
इत्यादि ।

‡ ओदिव धातु—डी, मज्ज्, ममज्ज्, रज्, विज्, भुज् (बुदादि),
भन्, लम्ज्, शि, हा इत्यादि ।

६१९ । निष्ठा प्रत्यय परे रहनेसे, दा धातुके स्थानमे 'दत्' होता है ।

(क) 'आ' और 'प्र' उपसर्ग पूर्वमे रहनेसे, 'दा' धातुके स्थानमे विहित 'दत्' के दकारका विकल्पसे लोप होता है, यथा—(आ + दा) आदत्, आत्त, (प्र + दा) प्रदत्त, प्रत्त ।

६२० । 'इट्'-युक्त निष्ठा-प्रत्यय परे रहनेसे, पू, शी, छप्, स्विद्, जागृ और (क्षमार्थं) मृप् धातुका गुण होता है, यथा—(पू) पवित, (शी) शयित, (छप्) धर्षित, (स्विद्) स्वेदित, (जागृ) जागरित, (मृप्) मर्षित ।

६२१ । क्षै, पच् और शुप् धातु—परस्थित निष्ठाप्रत्ययके तकारमे मिलकर, यथाक्रम—क्षाम, पक और शुष्क होते हैं ।

६२२ । 'इट्'-युक्त निष्ठा प्रत्यय परे रहनेसे, 'गिच्' का लोप होता है, यथा—(कथि) कथित, (कारि) कारित, (पालि) पालित, (स्थापि) स्थापित, (आवि) आवित ।

(उदाहरण)

'क्त'-निष्पन्न पद ।

अनिट्—(आकारान्त) ख्या—ख्यात, घ्रा—घ्राण, घ्रात, ज्ञा—ज्ञात, दा—दत्त, आ + दा—आदत्त, आत्त, प्र + दा—प्रदत्त, प्रत्त, द्रा—द्राण, धा—हित, पा—पीत, मा—मित, या—यात, स्था—स्थित, स्ना—स्नात, हा—हीन ।

(इकारान्त) क्षि—क्षीण, चि—चित्त, जि—जित, धि—धित, श्चि—श्चन ।

(ईकारान्त) क्री—क्रीत, क्षी—क्षीण, ही—हीन, दी—दीन ;

नी—नीत , प्री—प्रीत , भी—भीत , ली—लीन ; ह्री—ह्रीण, ह्रीत ।

(उकारान्त) व्यु—च्युत , दु—दून ; हु—हुन , तु—तुत , यु—युत , रु—रुत , ध्रु—ध्रुत , स्तु—स्तुत , हु—हुत ।

(जकारान्त) वू—वून , धू—धूत , पू—पूत , मू—उक्त , भू—भूत , लू—लून , सू—सूत ।

(ऋकारान्त) ऋ—ऋत , ए—एत , धृ—धृत , मृ—मृत , वृ—वृत ।

(ऋकारान्त) कृ—कीर्ण , गृ—गीर्ण , जृ—जीर्ण , तृ—तीर्ण ; दृ—दीर्ण , पू—पूतं , शृ—शीर्ण , स्तृ—स्तोर्ण ।

(एकारान्त) पे—उत , व्ये—वीत , ह्ये—हृत ।

(ऐकारान्त) कै—क्षाम , गै—गीत , ग्लै—ग्लान , त्रै—त्राण , श्रान ; ध्यै—ध्यात , म्लै—म्लान , द्यै—दयान (शुष्क) , शीन (द्रवावस्थाया कठिनीभूत , घनीभूत , यथा—शीन घृतम् , स्पर्शार्थं—शीत , यथा—शीत समीरण) , स्तै—स्तयान ।

(ओकारान्त) दौ—दित , शौ—शित , शात , सो—सित ।

(कान्त) शक्—शक्त ।

(चान्त) पच्—पक्त , पृच्—पृक्त , मुच्—मुक्त , रिच्—रिक्त , वच्—वक्त ; सिच्—सिक्त ।

(छान्त) प्रच्छ्—पृष्ट , मृच्छ्—मूर्त्त ।

(जान्त) त्यञ्—त्यक्त , भञ्—भक्त , भञ्च्—भक्त , भुञ्—भुक्त , * मञ्च्—मक्त , मृञ्—मृक्त । यञ्—इष्ट , युञ्—युक्त , रञ्—

* तुदादिगणाय कौटिल्यार्यक 'भुञ्'—भुक्त । कौटिल्यम्—वकीकरणम् (देहा करना) ।

रक्त , रज्—रग्ण , सन्ज्—सक्त , सृज्—सृष्ट ।

(णान्त) क्षण्—क्षत ।

(तान्त) वृत्—वृत्त ।

(दान्त) अद्—जग्ध (भक्षार्थे—अन्नम्) , क्तिद्—क्तिन्न , क्षुद्—क्षुण्ण , खिद्—खिन्न , कुद्—कुन्न , कुत्त , पद्—पन्न , भिद्—भिन्न (खण्डार्थे—भित्तम्) , मद्—मत्त , विन्द्—विन्न , वित्त (उपात्) , सद्—सन्न ।

(षान्त) कृष्—कृद्ध , वन्ष्—वद्ध , बुष्—बुद्ध , युष्—युद्ध , रष्—रद्ध , व्यष्—विद्ध , शुष्—शुद्ध , सिष्—सिद्ध ।

(नान्त) खन्—खात , जन्—जात , तन्—तत , मन्—मत , सन्—सात , हन्—हत ।

(षान्त) आप्—आप्त , क्षिप्—क्षिप्त , गुप्—गुप्त , तप्—तप्त , नृप्—नृप्त , दीप्—दीप्त , हृप्—हृप्त , लिप्—लिप्त , लुप्—लुप्त , वप्—उप्त , स्वप्—सप्त ।

(षान्त) रम्—रग्ध , लम्—लग्ध , लुम्—लुग्ध , स्तन्म्—स्तग्ध ।

(मान्त) कम्—कान्त , क्रम्—क्रान्त , कृम्—कृान्त , क्षम्—क्षान्त , गम्—गत , चम्—चान्त , तम्—तान्त , दम्—दान्त , नम्—नत , भ्रम्—भ्रान्त , यम्—यत , रम्—रत , शम्—शान्त , ध्रम्—ध्रान्त ।

(यान्त) प्याय्—पीन , प्यान , स्फाय्—स्फीत , स्फात ।

(रान्त) चूर्—चूर्ण , पूर्—पूर्ण ।

(वान्त) दिव्—द्वान् ; छिव्—छ्वान् , सिव्—स्युत् ।

(शान्त) कृन्—कृष्ट , दन्—दष्ट , दिन्—दिष्ट , दन्—दष्ट , नन्—नष्ट , अन्—अष्ट , विन्—विष्ट कृन्—कृष्ट ।

(पान्त) इप्—इष्ट (दिवादि—इषित) , कृप्—कृष्ट ; तुप्—तुष्ट ; दुप्—दुष्ट , पुप्—पुष्ट , वृप्—वृष्ट , शिप्—शिष्ट शुप्—शुक् ; सिप्—सिष्ट ।

(सान्त) अस्—भूत (दिवादि—अस्त) , यस्—यस्त ; प्रस्—प्रस्त ; ध्वन्स्—ध्वस्त , शन्स्—शस्त , शाम्—शिष्ट , सन्स्—सस्त ।

(हान्त) गाह्—गाड , गुह्—गूट , दह्—दग्ध , दिह्—दिग्ध ; नह्—नद , मुह्—मुग्ध , मूढ , रह्—रूढ , लिह्—लीड ; वह्—उद सह्—सोट , स्निह्—स्निग्ध ।

सेट्—(आम्) आमित , (ईश्) ईक्षित ; (क्षुप्) क्षुधित (प्रह्) गृहीत , (जागृ) जागरित ; (निन्द्) निन्दित ; (पट्) पठित , (पत्) पतित ; (मुद्) मुदित , (लभ्) लक्षित ; (लिष्) लिखित , दद्—उदित ; वम्—वपित , (शी) शयित , (सेव्) सेवित , (हम्) हयित ।

जेट्—(छिन्) छिष्ट , छिषित , सम् + धुप्—सद्भुष्ट , सद्भुषित (जप्) जत , जपित ; (मुप) मुष्ट , मुषित ; (रप्) रष्ट , रषित (वम्) वान्त , वमित , आ + षम्—आषस्त , आषसित , वि + षम्—विषस्त , विषसित , (टप्) टष्ट , टपित ।

✕ सङ्गर्भ-धातुके उत्तर कर्मवाच्यमे 'क्त' होता है ; इम-
लिये कर्मवाच्यमे 'क्त'-प्रत्यय-निष्पन्न शब्द कर्मका विरोधण, सुतए

कर्मके लिङ्ग, विभक्ति और वचन प्राप्त होता है, यथा—ईश्वरेण जगत् सृष्टम्, मया गुरव समुपान्ता, रामेण देवी आराधिता, मित्रेण पत्र्यौ लिखिते, मालिना पुष्पाणि चितानि ।

✽ 'किया गया, किया गया है, किया गया था'—इत्यादि सर्वप्रकार अतीत-कालकी क्रियाओंका अनुवाद 'क्त'-प्रत्ययान्त क्रिया-द्वारा निष्पन्न हो सकता है, यथा—(हमने अन्न खाया) अस्माभिरन्न मुक्तम्, (रावणसे सीता हरी गयी थी) रावणेन सीता हृता, (मैंने वेदान्तशास्त्र पढा है) मया वेदान्तशास्त्र पठितम्, (श्राद्धमे शास्त्रज्ञ ब्राह्मणोंको प्रचुर दक्षिणा दी गयी) श्राद्धे शास्त्रविद्भ्यो विप्रेभ्यः प्रभूता दक्षिणा दत्ता ।

✽ कर्तृवाच्यमे 'क्त'-प्रत्यय निष्पन्न शब्द कर्ताका विशेषण, यथा—स जागरित, सा भीता, जल शुष्कम्, शिशु शयित, वृद्धो मृत ।

✽ भाववाच्यमे 'क्त'-प्रत्यय निष्पन्न शब्द जब समापिका क्रियाके तुल्य व्यवहृत होता है, तब सदाही द्वीगलिङ्ग प्रथमाका एकवचन होता है, यथा—शिशुना हसितम्; कन्यकया रुदितम्, श्रोत्रभिरुपविष्टम्, ताभ्यामेकास्तने स्थितम् ।

और जब विशेष्यशब्दके तुल्य व्यवहृत होता है, तब उसके रूप द्वीगलिङ्ग शब्दके समान, यथा गतम्, गते, गतानि रुदितम्, रुदिते, रुदितानि ।

(२) क्वतु ।

६२३ । क्तृवाच्यमे धातुके उत्तर अतीत-कालमे 'क्वतु'-प्रत्यय होता है, 'क्' और 'उ' इत्, 'तवत्' रहता है ।

'क्त' प्रत्यय परे धातुका जैसा कार्य्य हुआ है, 'क्वतु' परेभी ठीक वसा कार्य्य होगा, यथा—(कृ) कृतवान्, (स्था) स्थितवान्, (भुञ्) भुक्तवान् इत्यादि ।

✽ 'क्वतु'-प्रत्यय-निष्पन्न शब्द कर्त्ताका विशेषण, इसलिये कर्त्ताके लिङ्ग, विभक्ति, वचन प्राप्त होता है, यथा—स पुस्तकं पठितवान्, तौ पुस्तकं पठितवन्तौ, ते पुस्तकं पठितवन्त, सा चन्द्रं दृष्टवती, ते चन्द्रं दृष्टवथौ, ताश्चन्द्रं दृष्टवत्य, वृक्षान् फलं पतितवन्, वृक्षान् फले पतितवती, वृक्षान् फलानि पतितवन्ति ।

✽ हिन्दीमे व्यवहृत 'हुआ, हुआ है, हुआ था' 'किया, किया है, किया था' इत्यादि समस्तप्रकार अतीतकालकी क्रियाका अनु-धाद संस्कृतमे 'क्वतु' प्रत्यय द्वारा किया जा सकता है; यथा—(श्याम घरसे गया) श्यामं गृहान् गतवान्, (हनुमान्ने लड्डा जलायी थी) हनुमान् लड्डा दग्धवान्, (अगस्त्यने समुद्रका पान किया) अगस्त्यं समुद्रं पीतवान्, (उसकी एक कन्या हुई थी) तस्यैका कन्या जातवती ।

✽ 'क्वतु' और 'क्त'-प्रत्यय-निष्पन्न शब्द सामानिका क्रियाके तुल्य प्रयुक्त न होकर, केवल विशेषण-स्वरूप व्यवहृत होनेसे, विशेष्यके लिङ्ग, विभक्ति, वचन प्राप्त होता है । यथा—अधीतवान्

छात्र *, अधीतवन्त छात्रम्, अधीतवता छात्रेण, अधीतवते छात्राय इत्यादि । भीत शिशु, भीत शिशुम्, भीतेन शिशुना इ यादि ।

✽ 'क'-प्रत्ययान्त क्रिया भविष्यन् और वर्तमान कागकी क्रियाके साथ युक्त होनेसे, भविष्यन् और वर्तमानका अर्थ प्रकाश करती है, यथा—(वेद पडा गया था) वेद पठित भवन्, (शत्रु आहत होगा) शत्रु आहत भविष्यति, (धन लब्ध होता है) धन लब्ध भवति ।

अनुवाद करो—गरमीमे सब जल सूख गया था । समस्त कल गिर गये । अभी वह खानेको गया । हमलोग नदीमे थे । तुम कहाँ थे ? क्या तू कल आया था ? कुम्भकर्णने सीताको नहीं देखा । लक्ष्मणने इन्द्रजित् को मारा था । युधिष्ठिरने भीष्मको बहुत प्रश्न पूछे ।

(Perfect participle)

(१) कसु ।

६२४ । कर्तृवाच्यमे परस्मैपदो धातुके उत्तर अतीतकालमे 'कसु'-प्रत्यय होता है, 'क्' और 'उ' इत्, 'यस्' रहता है ।

लिट्का 'उ' परे धातुका जो जो कार्य होता है, 'यस्' परेभी वही कार्य होगा, यथा—(भू) बभूवस्, (भु) भुभुवस्, (स्तु) वृष्टवस्, (विद्) विविद्वस् ।

६२६ । 'कष' परे, घस्, इण् और आकारान्त धातुके उत्तर 'इट्' होता है, यथा—(घस्) जशिवस्, (इण्) ईधियम्; (स्या) तस्थिवस्, (दा) ददिवस्, (पा) पपिवस् ।

* जिसने अध्ययन किया था—ऐसा छात्र ।

६२६ । अम्यस्त-कार्यके पश्चात् जो धातु एकम्बर-विशिष्ट रहने हैं, 'क्वस'-प्रत्यय परे, उन धातुओंके उत्तर 'इद्' होता है; यथा—(पच्) पंचिवम्, (पत्) पंचितिवम्, (वच्) ऊचिवम्, (वम्) उपिवम्, (यज्) ईजिवम्, (सद्) सेदिवम् ।

६२७ । 'क्वस'-प्रत्यय परे रहनेसे, गम्, हन्, विद्, दद् और सुदादि विद् (विन्दू) धातुके उत्तर विकल्पसे 'इद्' होता है; यथा—(गम्) जग्मिवम्,* जगन्वम्, (हन्) जग्मिवम्, जघन्वम्, (विद्) विविशिवम्, विविधम्, (दद्) ददशिवम्, ददधम्, (विन्दू) विविदिवम्, विविद्धम् ।

(२) कानच् (कान) ।

६२८ । अतीतकालमे आत्मनेपदी धातुके उत्तर 'कानच्'-प्रत्यय होता है, 'क्' इत्, 'आन' रहता है ।

लिट्की 'आते' विभक्तिमे जो जो कार्य्य होता है, 'आन' परेमे वही कार्य्य होगा; यथा—(युध्) युयुधान, (रच्) ररवान; (वन्दू) ववन्दान, (शिक्ष्) शिशिक्षान. (व्यध्) विव्ययान; (सद्) सेहान; (सेद्) सिदेवान; † (ह्) चक्रान, (वच्) ऊचान ।

✽ 'किया है जिसने—ऐसा'—इस अर्थमे धातुके उत्तर 'क्वसु' और 'कानच्' होते हैं ।

'क्वसु' और 'कानच्' प्रत्यय-द्वारा जो शब्द निष्पन्न होते हैं, वे विशेषण, सुतरा विशेष्यके लिङ्ग, विभक्ति, वचन प्राप्त होते हैं;

* तीर्थं जग्मिवारु वृद्ध — जो तीर्थमे गया था, ऐसा वृद्ध ।

† पितर सिदेवान पुत्र — पिछने पितरकी सेवा थी थी, ऐसा पुत्र ।

यथा—शुश्रुवान् (मुना है जिसने—ऐसा) पुरुष, शुश्रुवास पुरुषम्, शुश्रुवुषा पुरुषेण, विविदुषी कन्या, विविदुषी कन्याम्, विविदुष्या कन्यया, पेतिव पत्रम्, पेतुषा पत्रेण इत्यादि ।

✕ कर्मवाच्यमेभी 'कानच्'-प्रत्यय होता है, यथा—सिधेवाण (जिसकी सेवा की गयी थी—वह) ।

(Future participle)

(१) स्यत् ।

६२९ । कर्तृवाच्यमे परस्मैपदो धातुके उत्तर भविष्यत्कालमे 'स्यत्'-प्रत्यय होता है, 'ऋ' इत्, 'स्यत्' रहता है ।

'लृट्' परे धातुका जो जो कार्य्य होता है, 'स्यत्' प्रत्यय परेभी वही कार्य्य होगा, यथा—(भू) भविष्यत्, (गम्) गमिष्यत्, (श्रु) श्रोष्यत्, (जि) जेष्यत्, (कारि) कारिष्यत् ।

(२) स्यमान ।

६३० । कर्तृवाच्यमे आत्मनेपदो धातुके उत्तर भविष्यत्कालमे 'स्यमान' प्रत्यय होता है ।

'स्यमान' परेभी 'लृट्' विभक्तिका समुदाय कार्य्य होता है, यथा—(सेव्) सेविष्यमाण, (वृत्) वर्तिष्यमाण, (जन्) जनिष्यमाण, (पद्) पत्स्यमाण, (सह्) सहिष्यमाण ।

६३१ । कर्तृवाच्यमे उभयपदो धातुके उत्तर भविष्यत्कालमे 'स्यत्' और 'स्यमान'—दोनों होते हैं, यथा—(स्तु) स्तोष्यत्, स्तोष्यमाण, (दा) दास्यत्, दास्यमाण, (धा) धास्यत्, धास्यमाण, (ग्रह्) ग्रहीष्यत्, ग्रहीष्यमाण, (कृ) करिष्यत्, करिष्यमाण ।

६३२ । कर्मवाच्यमे घातुके उत्तर भविष्यन्-कालमे 'स्यमान' होता है; यथा—(ज्ञा) ज्ञास्यमान, ज्ञायिष्यमाण; (श्रु) श्रोष्यमाण, श्राविष्यमाण, (कृ) करिष्यमाण, कारिष्यमाण; (दृश्) द्रक्ष्यमाण, दर्शिष्यमाण, (दह्) धक्ष्यमाण, (वच्) वक्ष्यमाण ।

✳ 'करेगा जो—ऐसा'—इह अर्थ मनस्कान्तेमे, घातुके उत्तर 'स्यत्' और 'स्यमान' होते हैं । *

'स्यत्' और 'स्यमान' प्रत्यय-द्वारा जो शब्द निम्नत्र होते हैं, वे विशेषण, इसलिये विशेष्यके लिङ्ग, विभक्ति, वचन प्राप्त होते हैं । यथा—(कर्तृवाच्य) गमिष्यन् (जायेगा जो—ऐसा) पुरुष, गमिष्यन्तौ पुरुषौ, गमिष्यन्त पुरुषा, गमिष्यन्त पुरुषम्, गमिष्यता पुरुषेण, जनिष्यमाणा कन्या, जनिष्यमाणा कन्याम्, जनिष्यमाणा कन्यया, पतिष्यन् पत्रम्, पतिष्यता पत्रेण, पतिष्यत पत्रम्य इत्यादि । (कर्मवाच्य) करिष्यमाण कर्म, † करिष्यमाणे कर्मणि, करिष्यमाणानि कर्माणि, करिष्यमाणेन कर्मणा, करिष्यमाणान् कर्मण, करिष्यमाणे कर्मणि; वक्ष्यमाण (जो कहा जायेगा—

* उद्देश्य वा अभिप्राय समन्वयेभ्यो 'स्यत्' और 'स्यमान' होते हैं; यथा—“वन्दान् विनेष्यन्व द्रष्टव्यान् स दाव विचवार” २० १ ८, (द्रष्ट वन्द्यशुभ्रोक्षे वक्ष करनेके उद्देश्यसे); “करिष्यमाण सत्तरं शतवन्तम्” २० ३ ५० (घनुषुद्धी शरयुक्त करनेके अभिप्रायसे) ।

† जो किया जायेगा—ऐसा काम ।

'गम्'-घातुके उत्तर 'स्यमान' करनेसे 'गक्ष्यमान' होता है ('गमिष्यमाण' नहीं होता) ।

ऐसा) वचनम्, वक्ष्यमाणेन वचनेन, वक्ष्यमाणान् वचनान्, वक्ष्यमाणस्य वचनस्य, वक्ष्यमाणेषु वचनेषु इत्यादि ।

णमुल् (णम्) Gerund in अम् ।

६३३ । 'पौन पुन्य'-अर्थमे 'क्ता' के स्थानमे पूर्वकालिक-क्रियाबोधक धातुके उत्तर 'णमुल्' प्रत्यय होता है, 'ण्' और 'उल्' इत्, 'अम्' रहता है ।

'णमुल्' प्रत्ययान्त क्रिया भसमापिका और अव्यय ।

प्रयोगकालमे यह छिरुक्त होकर व्यवहृत होती है, यथा—
(स्मृ) स्मार स्मार * नमति (स्मृत्वा स्मृत्वा—पुन पुनः स्मृत्वा इत्यर्थ) ।

(पा) पायम्, (श्रु) श्रावम्, (स्तु) स्तायम्, (नम्) नामम्, (गृह्) ग्राहम्, (भुज्) भोजम्, (मिद्) भेदम्, (क्षिप्) क्षेपम्, (मृश्) मर्शम्, (स्पृश्) स्पशम्, (हस्) हासम्, (गाह्) गाहम् ।

(क) 'णमुल्' प्रत्यय परे रहनेसे, 'हन्' धातुके स्थानमे 'घात्' होता है, यथा—घातम् ।

६३४ । कथम्, इत्थम्, प्वम् और अन्यथा शब्दने परस्थित 'कृ'-धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है,—यदि इनप्रकार 'णमुल्'-प्रत्यय नि"पत्र पदोंका अर्थ उन शब्दोंकेही समान हो, यथा—कथङ्कारम् (कथमित्यर्थ — जैसे), "कथङ्कारमनालम्बा कीर्त्तिर्धामधिरोहति ?" भाष० २ ५२, इत्थङ्कारम् (इत्थमित्यर्थ — ऐसे), प्वङ्कारम् (प्वमित्यर्थ — ऐसे),

* 'णित्' कार्य होता है ।

अन्यथाकारम् (अन्यथा इत्यर्थं —अन्यप्रकारसे),—यहां 'ङ'-धातु निरर्थक है ।

६३६ । 'साकल्य' अर्थ सममानेसे, कर्मरदके परवर्ती हत् और विद् धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है, यथा—दृष्टिदत्तां ददाति (दृष्टि दृष्टि दृष्ट्वा—यं यं दृष्टि पश्यति, तं तं ददाति—सर्वान् दृष्टिान् इत्यर्थं), विप्रप्रेतं भोजयति (विप्र विप्र विदित्वा—यं यं विप्र वेत्ति विन्दति विचारयति वा, तं तं भोजयति—सर्वान् विप्रानित्यर्थं.) ।

६३६ । 'यावत्' शब्दक परवर्ती 'जोश्'-धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है, यथा—यावज्जीवम् अर्थात् (यावत् जीवति, नावत् इत्यर्थं) ।

६३७ । कर्मवाचक 'उदर' शब्दके परवर्ती 'पूरि'-धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है, यथा—उदरपूरं भुङ्क्ते (उदर पूरयित्वा इत्यर्थं —पेट भरके) ।

६३८ । 'त्वरा' समझानेसे, अपादानवाचक पदके परवर्ती धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है, यथा—शय्योत्थाय धारति (शय्याया शोषन् उत्थायेत्यर्थं) ।

६३९ । कर्मवाचक 'नाम'-शब्दके परवर्ती 'ग्रह्' धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है, यथा—नामग्राहन् आह्वयति (नाम गृहोत्वा इत्यर्थं) ।

६४० । तृतीयान्त और सप्तम्यन्त पदके परवर्ती 'उप'-पूर्वक 'पीङ्' और 'उप'-पूर्वक 'रङ्' धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है; यथा—पादवोप-पीङ् गेने (पार्श्वान्वां पाद्वेन पाद्वोर्वा उरसोऽप्य इत्यर्थं); "स्तनो-पपीङ् परिष्णुकामा " (स्तनयोरुपसोऽप्य इत्यर्थं) भा० ३. ६४; यज्ञोपरोधं गा स्थापयति (धनेन धने वा उपरोध इत्यर्थं) ।

६४१ । किसी अवयवका परिच्छेद अर्थात् सम्पूर्णरूपसे पीडा

ममज्ञानेते, उभ अवयववाचक द्वितीयान्त परके परवर्ती धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है, यथा—“स्तनपन्थायमुतो जगान च” (स्तनौ सन्वाष्य इत्यर्थ) कु० ४ २६, “उरोविदार प्रतिवष्को नत्ते ” (नत्वे उरो विदार्य्य हत इत्यर्थ) भाष० १ ४५ ।

६४२ । क्रियाविशेषणवाचक 'समूल' शब्दके परवर्ती 'कप्' (हिंसा-याम्) और 'हन्' धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है, यथा—समूलकापं कपति, समूलगतं हन्ति (समूल कपति, हन्ति इत्यर्थ) ।*

६४३ । 'जीव'-शब्दके परवर्ती 'प्रह्'-धातुका 'णमुल्' होता है, यथा—जीवप्रह गृह्णाति (जीव गृह्णाति—जीवन्त गृह्णातीत्यर्थ —जीव-तीति जीव, जीव् + क—जीता पकडता है) ।

६४४ । करणबोधक शब्दके परवर्ती 'हन्' और 'भिष्' धातुका 'णमुल्' होता है, यथा—सादधात भूमि हन्ति (पादेन हन्तीत्यर्थ), “सूत्रगतो दास्यनां वैरोधकपुं मरै पदानितोऽैर्लोष्टगत हन् ” मुद्रा० २, दपेप पित्रष्टि (उदकेन पितृष्टीत्यर्थ) ।

६४५ । हस्तवाचक करणपरके परवर्ती 'प्रह्' धातुका 'णमुल्' होता है, यथा—हस्तप्राह गृह्णाति (हस्तेन गृह्णातीत्यर्थ), पाणिप्राहम्, करप्राहम् ।

६४६ । कर्तृविशेषण 'ऊर्द्धुं'-शब्दके परवर्ती 'शुप्'-धातुके उत्तर 'णमुल्' होता है; यथा—ऊर्द्धुंगोप शुभ्रति तर (तर ऊर्द्धुं—उन्नत —

* इस सूत्रमे लेकर परवर्ती सूत्रोमे जिन धातुओंके उत्तर 'णमुल्' विहित होगा, उनका पुन प्रयोग करना होगा । इसलिये सब उदाहरणो-मेही उन धातुओंका पुन प्रयोग दृष्ट होगा ।

एव तिष्ठन् शुष्यतीत्यर्थ — खडा खडा सूख जाता है) ।

६४७ । उपमानवाचक कर्तृपद और कर्मपदके परवर्ती धातुके 'उत्तर षण्मुल' होता है । यथा—(कर्ता) विद्युत्प्रणाशं प्रनष्ट (विद्युदिव क्षणेनैव विनष्ट इत्यर्थ) , शलभनाशं नश्यति (शलभ इव अविमृश्यकारी पुरपो नश्यतीत्यर्थ) , पार्थसञ्चारं चरति (पार्थ इव सशौर्यं चरतीत्यर्थ) ; "विच्छिन्नाभ्रविलास वा विलीने नगमूर्द्धनि" (विच्छिन्नाभ्रमिव विलीये इत्यर्थ) भा० ११ ७९ । (कर्म) पितृभेदं वेत्ति गुरुम् (गुरुं पितरमिव जानातीत्यर्थ) , पुत्रदर्शं पश्यति शिष्यम् (शिष्यं पुत्रमिव सम्नेहं पश्यतीत्यर्थ) , स्नानिधाय निद्राति (स्नानमिव सपत्न निद्रातीत्यर्थ) ; हैकतभेदं भिनत्ति शैलम् (शैकतमिव अनायासेनैव भिनतीत्यर्थ) ; धनं धाय विनोति धर्मम् (धनमिव यत्नेन अवधानेन च विनोतीत्यर्थ) , "अहं येनेष्टिपशुमारं मारितं , सोऽनन स्वागतैनाभिनन्दते । " शकु० ६ ।

(अन्य उदाहरण)

चौरद्वारम् आक्षीदति (चौरं हृत्वा*—चौरोऽस्मीत्युक्त्वा इत्यर्थ ; 'म्'-भागम्) । स्वादुद्वारं सुष्टे, लवणद्वारं सुष्टे (स्वादु हृत्वा, लवणं हृत्वा इत्यर्थ) । पुण्ड्रं वज्रं पित्वा इत्यर्थ.) ।

'कृत्'-विषयक प्रश्नमाला ।

निम्नलिखित धातुओंके उत्तर दातृ वा शानच्, क्वस वा कान, स्वप् वा स्वमान, क्, क्तन्, तन्, अनीय, य, तुम्, र्त्वा और ल्यप् प्रत्यय करनेसे कौन कौन पद होगा, कहो—

अम्, आप्, आम्, इप्, ईष्, कथ, कृ, क्री, क्षिप्, गम्, घ्रा, चर्,

* क्येतिरथ भाषणम् ।

जन्, जागृ, जि, ज्ञा, त्यज्, दद्, दा, दृश्, नम्, नी, नृत्, पद्, पव्,
पा, प्रवृत्, म्, मुज्, भू, मृ, या, रभ्, रद्, रह्, लभ्, लिख्, वद्,
वस्, शक्, शी, श्रु, मद्, सृज्, सेद्, स्या, स्पृश्, स्मृ, हव्, हस्, ह ।



कारक-प्रकरण ।

हे मित्र, राजा कोशसे पुत्रके जन्मदिनमे दरिद्रोको स्वहस्तसे धन देता है—इस वाक्यमे,

कौन देता है ?—राजा ,

क्या देता है ?—धन ,

किससे देता है ?—स्वहस्तसे ,

किनको देता है ?—दरिद्रोको ,

कहाँसे देता है ?—कोशसे ,

किस दिनमे देता है ?—जन्मदिनमे ,—इस रीतिसे राजा, धन, स्वहस्त, दरिद्र, कोश और जन्मदिन, इन छ पदोका क्रियाके साथ अन्वय है । पर 'मित्र' और 'पुत्र'—इन दोनो पदोका क्रियाके साथ अन्वय नहीं है , क्योंकि 'हे मित्र देता है', अथवा 'पुत्रके देता है'—ऐसा वाक्य नहीं हो सकता । ('मित्र'—सम्बोधनपद, 'पुत्रके'—सम्बन्धपद) ।

६४८ । क्रियाके साथ जिसका अन्वय अर्थात् सम्बन्ध रहता है, उसको 'कारक' कहते हैं ।*

* क्रियोपयोगि क्रियान्वयि कारकम् ।

कारक छ -प्रकार—कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपा-
दान और अविकरण ।

कर्त्ता ।

६४२ । क्रियासम्पादन-विषयमे जो स्वतन्त्र (स्वाधीन),
अर्थात् प्रधानभावसे विप्रक्षित होता है, (जो अन्य किसी
कारकके अधीन न होकर स्वयं क्रिया-निष्पादन करता है),
वह 'कर्त्तृकारक' ।* यथा—सूद पचति—यहाँ पाकक्रियामे
सूपकारका व्यापार अन्यके व्यापारके अधीन नहीं । रामेण
स्थीयते ।

कर्म ।

६५० । कर्त्ताकी क्रिया-द्वारा जो आक्रान्त होता है, उसे
'कर्म-कारक' कहते हैं, † यथा—वाल. चन्द्र पश्यति, हरि
भजति साधु. ।

६५१ । 'अधि'-पूर्वक—शी, स्था, आस् धातु, और 'अधि' तथा
'आ' पूर्वक—व् धातुने अधिकरण कारककी कर्मसत्ता होती है । यथा—
(अधि + शी) शय्याया शेते = शय्याम् अधिशेते, 'भोग्मोऽधिशेते
किल वाणशय्याम्' । (अधि + स्था) गृदे तिष्ठति = गृहम् अधितिष्ठति ;
'अद्वांमन गोश्रभिदोऽधितथौ' २० ६. ७३ । (अधि + आस्) आसने
आस्ते = आसनम् आध्यास्ते, 'मग्वावन्मध्यास्ते चन्द्रो न वन वनम्' ।
(अधि + वस्) नगरे वसति = नगरम् अधिवसति, 'शुक्तिं मुक्ताऽधि-

* स्वतन्त्र कर्त्ता ।

† क्रियाव्याप्य कर्म ।

वपति' । (आ + वप्) गुणोत्तरे वपति = गुणोत्तरम् आवपति ।*

६९२ । दुग्, याच्, चि, प्रच्छ, नां, मन्य् प्रभृति † कई धातुओंके शो कर्म रहते हैं, एकका नाम 'मुख्य' वा 'प्रधान' (Direct object), सपरका नाम 'गौण' वा 'अप्रधान' (Indirect object) । क्रियाके साथ प्रधानभावसे त्रिसका अन्वय होता है, उसको 'प्रधान कर्म', और अप्रधानभावसे त्रिसका अन्वय होता है, उसको 'अप्रधान कर्म' कहते हैं । यथा—गोनो गा दुग्घ दोग्धि, दग्धो राजानं घनं याचते, भालाकारो वृक्षं पुष्प चिनोति, शिष्यो गुरुं धर्मं पृच्छति; पिता पुत्रं गृहं नयति, दवा जलजिम्लन ममन्थु,—यहां दुग्घ, घन, पुष्प, धर्म, पुत्र, अमृत 'प्रधान कर्म', और गो, राजा, वृक्ष, गुरु, गृह, जलधि 'अप्रधान कर्म' । इस अप्रधान कर्मकोही 'अकथित और अविवक्षित कर्म' कहते हैं, अर्थात् दोनो कर्मोंके बीचमें त्रिसमे अन्य कारककी प्रवृत्तिकी सम्भावना रहती है, पर वक्तारकी इच्छाके अभावमें उन सब कारकोंकी प्रवृत्ति न होकर कर्म-कारक प्रवृत्त होता है, उसेही 'अकथित, अविवक्षित और अप्रधान कर्म' कहते हैं । पूर्वोक्त उदाहरणोंमें 'गो'-प्रवृत्तिकी कर्म-मत्ता हुई है, पान्तु विवक्षा रहनेमें,—गोदुग्घं दोग्धि, राजो घनं याचते, वृक्षात् पुष्पं चिनोति, गुरोर्धर्मं पृच्छति; पुत्रं गृहे नयति; जलजिम्लन ममन्थु—इसप्रकार यथामन्भव अपादानादिकारक प्रवृत्त हो सकते ।

* उा मर उपसर्गोंके साथ वे सब धातु कृ-प्रत्यय-योगसे क्रियावाचक विशेष्य होनेपर, उनका अधिकरणकारक कर्म नहीं होता, यथा—शप्या—
याम् अपिचयनम् इ यादि ।

† २०८ सूत्र (क) टिप्पनी द्रष्टव्य ।

अवशिष्ट द्विकर्मक धातुके उदाहरण, यथा—

पुत्र नीतिं मूने, वदति वा, तण्डुलान् ओदनं पचति, राष्ट्रं राज्यं जयति;
दुष्टान् शतं दण्डयति राजा, बालं गृहं रगद्धि, साधून् धनं मुञ्चति
चोर, शिष्यं धर्मं शास्ति, ग्रामम् अजा कर्षति, हरति, वहति वा ।

करण ।

६५३ । कर्त्ताकी क्रियासिद्धिमें जो अत्यन्त उपकारक, उसे
'करण कारक' कहते हैं,* यथा—दात्रेण लुनाति, "सञ्चू-
र्णयामि गद्या न सुयोधनोरु?" वेणी० १ १५ ।

सम्प्रदान ।

६५४ । दानकर्मके उद्देश्यभूत जो कारक, अर्थात् कर्त्ता
जिसको उद्देश्य करके स्वत्वत्यागपूर्वक कोई वस्तु दान करता
है, उसे 'सम्प्रदान-कारक' कहते हैं,† यथा—विप्राय गां ददा-
ति, शिष्याय विद्यां ददाति ।

६५५ । जिमको उद्देश्य करके, अथवा जिमको प्रीति उत्पादनके लिये
किसी क्रियाका अनुष्ठान किया जाता है, उसकोभी सम्प्रदान स्त्रा होता
है । यथा—युद्धाय सन्नसने राजा (युद्धम् उद्दिश्य, अभिप्रेत्य इत्यर्थ) ;
पत्ये शोते (पतिम् उद्दिश्य इत्यर्थ) । पुत्राय क्रोडनम् आनयति (पुत्र
प्रीणयितुम् इत्यर्थ), गुरवे दक्षिणामाहरति ; 'दर्शयते दिसरे शशियि
म्बम्', 'शृपापोपहारं प्रजां प्रेरयन्ति' ।

* साधकतर्म करणम् ।

† दानकर्मणा यमभिप्रेति, स सम्प्रदानम् ।

“तत्तद्भूमिपति पत्न्यै दर्शयन् प्रियदर्शनम् ।

अपि लङ्घितमध्वानं बुभुधे न बुभुधेवम् ॥” २० १ ४७, । *

६५६ । स्वार्थक (रवि अर्थविशिष्ट) धातुका कर्ता जिसकी प्रीति उत्पादन करता है, उसकी सम्प्रदान-सज्ञा होती है, यथा—मोक्षक गिराने रोचते, साधने रोचते धर्म, ‘कदाचिद्यादुत्रचन सजनेभ्यो न रोचते’ ; ‘यत् प्रभविष्णवे रोचते’ शकु० २, इदं मद्यं स्वदते, सद्ये स्वदते तत्त्वम् ।

६५७ । ‘स्पृष्टि’-धातुके प्रयोगमें, कर्ताका जो ईप्सित अर्थात् अभिलषित विषय, उसकी सम्प्रदान सज्ञा होती है, यथा—धर्माय स्पृहयति, ‘परिक्षीणो यवानां प्रसृतये स्पृहयति’ भर्तृ० ।

६५८ । ‘धारि’ धातुके प्रयोगमें, जो उत्तमर्ण (धन स्वामी—जिसके पास ऋण लिया जाता है), उसकी सम्प्रदान सज्ञा होती है, यथा—स मयं शतं धारयति (वह मेरे पास सौ रुपये धारता है), ‘वृक्षसेचने द्वे धारयसि मे’ शकु० १ ।

* कोशलधिपतये पुरोधम प्राहिणोत्, “भोजेन दूतो रघवे विष्ट” २० ५ ३९, “रक्षस्तस्मै महोपलं प्रजिघाय” २० १५ २१, “राममिष्वसनदशनोत्सुकं मैथिलाय कथयाम्बभूद स” २० ११ ३७, “ते रामाय वधोपायमाचक्षुर्विबुधद्विष” २० १५ ५, “तस्मै शशसं प्रणिपरय नन्दी” कु० ३. ६०, “वर्णाश्रमाणां गुरवे प्रस्तुतमाचक्षे” २० ५ १९, “उपस्थितां होमवेलां गुरवे निवेदयामि” शकु० ४, “याज्ञवल्क्यो मुनिर्यस्मै ब्रह्मपारायणं जगौ” उत्तर० ४ ९, “यस्मै मुनिर्वेदं परं विवेदं” महावंश० २ ४२, —इत्यादिस्थलोंमेंही इसी सूत्रके अनुसार ‘उद्दिश्य वा अभिप्रेत्य’ अर्थमें सम्प्रदानत्व समझना ।

६६१ । क्रोधार्थक, द्रोहार्थक, ईर्ष्यार्थक और असूयार्थक* धातुके प्रयोगमें, क्रोधादिका जो उद्देश्य, अर्थात् जिसके प्रति क्रोध, द्रोह, ईर्ष्या-प्रवृत्ति होता है, उसकी सम्प्रदान-संज्ञा होती है, यथा—भृत्याय कृपाति सत्रञ्च दृष्टति ; प्रतिवेदिने ईर्ष्यति ; प्रतिद्वन्द्विने असूयति । †

६६० । 'प्रति'-पूर्वक 'ध्रु' और 'आ'-पूर्वक—'ध्रु' धातुके प्रयोगमें, जो याचना करता है, अथवा जिसके पास अङ्गीकार किया जाता है, उसकी सम्प्रदान-संज्ञा होती है, यथा—भिजुराय वस्त्रं प्रतिशृणोति, आशृणोति वा (वस्त्रं याचमानाय भिजुराय वस्त्रं दातुम् अङ्गीकरोतीत्यर्थं) ; "प्रतिशुश्राव काकुत्स्थस्तेभ्यो विद्मप्रतिक्रियाम्" २० १०. ४. ।

अपादान ।

६६२ । अपाय अर्थात् विच्छेद (विभाग, रियुक्त होना, अलग होना, दूर जाना) सम्भ्रान्तसे, जो ध्रुव (निश्चल), अर्थात् जिससे विच्छेद अथवा दूरगमन सम्पन्न होता है, ‡ उमें 'अपादान-कारक' कहते हैं ;* यथा—भिन्नमाण्डात् पय स्रवति ; विभीषणो लङ्काया. रामान्तिकं ययौ ।

* द्रोह—वनिश्चिन्ता, ईर्ष्या—असना (किसीकी मर्दाई न सह सकना), असूया—दुर्गमे दोषारोप ।

† ध्रुप् और दृढ् धातु परसंगुक्त होनेसे, सम्प्रदानकी कर्म-संज्ञा होती है, यथा—भृत्यमभिशृणोति, सत्रुमभिशृणोति ।

"मया पुनरेभ्य एकाभिर्द्रुमुनश्चैनायुपरिग्रह कृत" उतर० ६ ; "नभिदृष्टति भूभ्य" भागवतम् ।

‡ मनोऽपान ।

६६२ । भयार्थ और रक्षार्थ धातुके प्रयोगमे, भय हेतुकी अपादान-सज्ञा होता है । यथा—(भयार्थ) 'त्रिभेति दुर्जनात् साधु', पापात् त्रस्यति सज्जन, "तीक्ष्णादुद्विजते श्री" मुद्रा० ३ ०, (ऐमे—“लोकापवादाद्भयम्” भर्तृ० २, “तृणविन्दो परिशङ्कित” २० ८. ७९) । (रक्षार्थ) मल्लुकात् रक्षति, आतपात् त्रायते ।

६६३ । उत्पत्तिका जो कारण, † वह अपादान सज्ञक होता है, यथा—बीजात्क्लरो जायते, मृदो घटो जायते, स्वर्गात् कुण्डल जायते, दुग्धात् घृतमुत्पद्यते, पितु पुत्रो जायते, घमात् सुख भवति अधमात् दुःखमुज्ज्वति । १

* ध्रुवमपायेऽपादानम् । † यतो भी । यतश्चाणम् । ‡ यतो मू ।

§ “जनिकर्तु प्रकृति” [जनिरपति, तस्या कर्तु (य खलु उपयते, स एव उत्पत्ते कर्ता, तस्य) उत्पद्यमानस्य पदाथस्येत्यथ, प्रकृति अपादानम् अपादानसंज्ञिका भवति]—इत्यस्मिन् पाणिनिसूत्रे अपादानकारणवाचित्वेन प्रसिद्धस्य ‘प्रकृति’-शब्दस्य अपादानात् अपादानकारणस्यैव अपादानत्व व्यक्त प्रतिपाद्यते । अत एव हि शारीरकमीमांसाभाष्यकारेण (१ ४ २३ सूत्रे) ब्रह्मण अपादानकारणत्वे सूत्रमिदं प्रमणतया उपन्यस्तम्, यथा—“यत इतीय पञ्चमी ‘यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते’ इत्यत्र ‘जनिकर्तु प्रकृति’ इति विशेषस्मरणात् प्रकृतिलक्षण एवापादाने द्रष्टव्या” इति ।

काशिकावृत्तिकृता तु ‘प्रकृति कारण हेतु’ इत्येव व्याचक्षणेन कारणमात्रस्यैव अपादानत्वमभिप्रेयत इति प्रतिभाति । तत सङ्क्षिप्ततारटीकाया मोक्षचिन्त्रेणापि—“अत्र ‘प्रकृति’-ब्रह्मण सर्वकारणोपसङ्गद्वयार्थम्” इति स्फुटं मुहूर्त्तम् ।

६६४ । 'भू'-धातुके प्रयोगमे, आविर्भावभूमि अपात् आद्यप्रकारात् स्थानकी अपादान संज्ञा होती है ; यथा—हिमवतो गङ्गा प्रभवति (तत्र प्रथमत उपनम्यते, प्रकाशने इत्यर्थ) , "थलमीकायात् प्रभवति धनु-खण्डमासगडलस्य" (आविर्भवतीत्यर्थ) मेघ० १९ ।

६६५ । विरामार्थक धातुके प्रयोगमे, जियते विराम होता है,* उसकी अपादान-संज्ञा होती है, यथा—अव्ययनात् विरमति, कडहात् निवर्तते ; "वसैतस्माद् विरम" उत्तर० १, "प्रागाघाताच्चिद्वृत्ति" भर्तृ० २ ।

६६६ । जुगुप्सार्थक धातुके प्रयोगमे, जियते जुगुप्सा होती है,† उसकी अपादान संज्ञा होती है, यथा—नापात् जुगुप्सते ; नरकात् योमत्सते ।

६६७ । प्रमादार्थक धातुके प्रयोगमे, जिय विषयमे प्रमाद होता है, ‡ उसकी अपादान संज्ञा होती है, यथा—नादात् प्रमाद्यति, अव्ययनात् अनवधानम्, "स्वाधिकारात् प्रमत्त" मेघ० १, घमात् मुह्यति ।

६६८ । 'अन्तर्धान' (पोशीदगी) समज्ञानेसे, जियते अपनेको छिपाना चाहता है, § उसकी अपादान संज्ञा होती है ; यथा—गुणे अन्तर्धत्ते, पितु निर्लीयते, दस्यो रुक्मापने (गुर पित्रा दस्युर्वा मा मा द्राक्षीत् इति लज्जया भवेन वा तदसंनयमात् अपभ्रतीत्यर्थ) ।

* यतो विराम ।

† यतो जुगुप्सा । ("गर्हायाधित्तनिवृत्तिर्जुगुप्सा) ।

‡ यत् प्रमाद । (विद्वितायां निवृत्ति प्रमाद) ।

§ यतोऽन्तर्धि ।

६६९ । वारणार्थक-धातुके प्रयोगमें, निवारण्यमागका (जिप्तका निवारण किया जाता है, उसका) जो इत्पित (अभिलपित) पदार्थ, अर्थात् जिप्तसे निवारणकिया जाता है,* उसका अपादान मजा होती है, यथा—
मयन्थो गा वारयति, अन्नेभ्य काकं निषेवति, व्यसनात् पुत्र निवारयति ।

६७० । जिप्तके पास नियम-पूर्वक अध्ययन किया जाता है, जिसके पास धनर जाता है, और जिप्तसे लिया† अथवा पाया जाता है, उसकी अपादान मजा होती है, यथा—गुरो शास्त्रम् अधीते, पठति, कस्मात् श्रुत भवता †—मया श्रुतमिदं तातात्, प्रचाम्य करम् आरत्ते, गृह्णाति, गुरो ज्ञानं लभते, प्राप्नोति ।

अधिकरण ।

६७१ । कर्त्ता और कर्म-द्वारा तन्निष्ठ क्रियाका जो आधार, अर्थात् क्रियाश्रयभूत कर्त्ता और कर्म जिसमें श्रयस्थान करते हैं, उसे 'अधिकरण कारक' कहते हैं ।

आधार चतुर्विध—(१) आश्लेष (अर्थात् एवदेश सम्बन्ध), †
(२) विषय, (३) व्याप्ति (सर्वत्र सम्बन्ध) और (४) सामान्य बोधक । §
यथा—(१) वने व्याघ्रं प्रतिवपति (वनेकदेशे इत्यर्थ) , गृहे स्त्रपिति (गृहेकदेशे इत्यर्थ) , 'गृहे चेन्मनु विन्देत, किमर्थं पर्वतं वनेत् १' , नद्या स्नाति (नद्या एकदेशे इत्यर्थ) । (२) विद्याप्याम्

* यतो वारणम् । † यत आदानम् ।

‡ आश्लेषको 'अवच्छेद'-भी कहते हैं, यथा—त शिरसि अताडयत् ; स मां करे जग्राह ।

§ सामान्याश्लेषविषयैर्व्याप्याऽऽधारश्चतुर्विधः ।

अनुराग (विद्याविषये इत्यर्थ) , भोगे अभिलाष. (भोगविषये इत्यर्थ) ;
 'सदा धर्मे मतिं कुर्व्यात्' (धर्मविषये इत्यर्थ) । (३) तिलेषु तैल विद्यते
 (तिलस्य सर्वान् अवयवान् व्याप्य इत्यर्थ) , दुग्धे माधुर्यमस्ति
 (दुग्धस्य सर्वान् अवयवान् व्याप्येत्यर्थ) , वक्षी दाहिका शक्तिररित (वक्षे-
 सर्वानवयवान् व्याप्येत्यर्थ) , 'महता चेतसि दया, तरो रस इव स्थिरा' ।
 (४) गङ्गाया घोष * (गङ्गाया समाप इत्यर्थ) , 'आश्रम कपिलस्या
 सौन्दर्यगङ्गासागरसङ्गमे' (तत्समीप इत्यर्थ) ।

कालकीर्त्ती अधिकरण मञ्जा द्योती है, यथा—“आपाढरय प्रथमदि
 यते” मेघ० २ , “शैशवेऽभ्यस्तविद्याना, यौरने विपर्ययिणाम् । वादक
 मुनिवृक्षीना, योगेनान्ते तनुत्थजाम् ॥” २० १ ८ , ‘वर्षांल दर्दुरा एव
 स्थिति, न पु कोकिला’ ।

६७२ । जिव स्थलमे जिस कारकका विधान हुआ है, वक्तार्थ
 इच्छासे अनुसार उसका अन्यथाभाव लक्षित होता है, यथा—गृह
 गच्छति, गृह गच्छति, गृह प्रविशति, गृहे प्रविशति, पुापभ्य रपृह-
 यति, पुापणि रपृहयति, पुापेभ्य स्पृहा, पुापपु स्पृहा, “स्पृहावर्ती
 वस्तुषु केषु मागर्धी” २० ३ ६ , “तपोरनेषु रपृहयात्तुरेव” २० १४. ४९ ,
 अरय कुप्यति, अरौ कुप्यति, गा दुग्ध दोगिध, गोभ्यो दुग्ध दोगिध
 इत्वादि, शिष्याप त्रिषा वितरति, शिष्य त्रिषा वितरति, (“भगवान्
 मारीचस्ते दर्शनं वितरति” शकु० ७ , “विनरति गुर प्राज्ञे विद्यां यथैव,
 तथा जटे” उच्छर० २ ४) , हिमयतो गङ्गा प्रभवति, हिमवति गङ्गा

* “घोष आभीरपट्टे स्यात्” इत्यमरः ।

† विषयावशात् कारकाणि ।

प्रभवति, “न प्रमाद्यन्ति प्रमदात् विपश्चित” मनु० २ २६३, “मा प्रयच्छेधरे धनम्” हितो० १. १४ (Cf To carry coals to Newcastle) ।

६७३ । एक पदमे अनेक कारक होनेका सन्देह होनेसे, ‘अपादान, सम्प्रदान, करण, अधिकरण, कर्म, कर्त्ता’—इस प्रभेदे अनुसार परवर्ती कारक होता है, *यथा—दरिद्रोको बुलाकर धन दत्ता है—इस वाक्यमे ‘दरिद्र’ यह पद ‘बुलाकर’ क्रियावा कर्म, और ‘दत्ता है’ इस क्रियान्ता सम्प्रदान, अब उसमे कर्मकी विभक्ति, अथवा सम्प्रदानका विभक्ति होगी—ऐसा सन्देह उठता है, इनलिये उपरिलिखित प्रभेदे अनुसार सम्प्रदानके पश्चात् कर्म रहनेके कारण उसमे सम्प्रदान न होकर कर्मकारककी विभक्तिही होगी, यथा—दरिद्रम् आहूय धन ददाति । गन्ता गत्वा स्नाति (अधिकरण न होकर कर्म), गृह्य प्रविश्य नि सरति (अपादान न होकर कर्म) ।

विभक्ति-निर्णय (Case endings) ।

प्रथमा ।

६७४ । कर्त्तृकारकमे (अर्थात् उक्त-वर्त्तमे) प्रथमा-विभक्ति होती है, † यथा—‘सृजति पाति ह्रस्ते च परेश’ ।

* अपादान सम्प्रदान करणाधार-सर्मणाम् ।

कर्त्तृशान्द्योन्यसन्देहे परमेक प्रवृत्तने ॥

† कर्त्तृवाच्यकी क्रियाके कर्त्ताको ‘उक्त वर्त्ता’ कहते हैं । तिद्, कृत्, तद्धिग और समासमे जो वाच्य होता है (अर्थात् वे जिसको समझते ह),

६७५ । अभिधेयमात्रमे (अर्थात् जिस स्थलमे क्रियापद-प्रभृति नहीं रहने, केवल अभिधेय * समझानेके लिये शब्द-प्रयोग किया जाता है, उस स्थलमे उस शब्दके उत्तर) प्रथमा होती है, यथा—वृक्षः, लता, पुष्पम्, 'नमः क्षितिर्वारि समीर-वही' ।

६७६ । सम्बोधनमे (Vocative case or Case of Address) प्रथमा होती है, यथा—जगदीश ! विभो ! भव-पालयित ! ।

६७७ । 'इति'-प्रभृति अन्यय-शब्दके योगसे प्रथमा होती है । यथा—दशरथ इति † राजा वभूव ('दशरथ' इस नामसे),

उसकाभी 'उक्त कारक' कहने हैं । सगस्त उक्त-कारकमेही प्रथमा होती है । यथा—(तिद्) स गच्छति (उक्त कर्त्तरि प्रथमा), प्र नो गम्यते (उक्त-कर्मणि प्रथमा) । (कृत्) स गत , प्राप्नो गत , दृश्यते येन तत् दर्शनं चक्षु , सम्प्रदीयते यस्मै स सम्प्रदान विप्र , प्रभवति यस्मात् स प्रभव जनक , अस्थते यस्मिन् तन् आसनम् । (तद्धित) सभाया साधु सम्भो नर । (समास) कृता विद्या येन स कृतविद्य पुरुष ।

* जिस शब्दमे जो अर्थ समझा जाता है, वही उसका 'अभिधेय' ।

† इति=नामसे, इसरूपसे, इसलिये, बोलके। दरिद्र बोलके—दरिद्र इति।

‡ दशरथो नाम ('नाम'-शब्द अव्यय), अथवा—नाम्ना दशरथ' ('नामन्' शब्दके उत्तर क्रियाविशेषणमे सूतीया)—ऐसामी लिखा जाना है । 'नाम' और 'नामन्' शब्दके योगसे कारक-विभक्तिकी बाधा नहीं होती ; यथा—दशरथो नाम राजा आसीत्, दशरथ नाम राजानम् उवाच इत्यादि ;

मानवाश्चन्द्र सुधाकर इति वदन्ति, 'बलिर्दत्तेति विख्यात' ।
अपराधिनो दण्ड. साम्प्रतम् (उचित), पापात्मना सङ्ग-
परित्यक्तु साम्प्रतम् (पापियोका सङ्ग छोडना चाहिये),
"विपवृत्तोऽपि स्वधर्म्यं स्वयं छेत्तुमसाम्प्रतम्" (विपवृत्तकोभी
बढाकर स्वयं छेदन करना उचित नहीं) कु० २ ५५ ।

द्वितीया ।

६७८ । कर्मकारश्चमे (अर्थात् अनुक्त-कर्ममे) द्वितीया
विभक्ति होती है, यथा—'पुष्प मा च्छिन्धि मा च्छिन्धि, फल
चेद्भोक्ष्यसे शिशो !' ।

६७९ । 'व्याप्ति' अर्थमे* कालवाचक और अर्धवाचक
(पथके परिमाणवाचक—कोशादि) शब्दके उत्तर द्वितीया
होती है । यथा—(कालवाचक) मास व्याकरणमधीते (मासं
व्याप्य इत्यर्थ —महीनाभर), दिवसम् उपवसति (दिवस व्याप्य
इत्यर्थः—सारा दिन), क्षणमवतिष्ठस्व (Wait a moment),
"न धवर्षे वर्षाणि द्वादश दशशतात् " दशकु०, 'वने न्युपु
पाण्डवा द्वादशाब्दान्' । (अर्धवाचक) गिरिरय कोशं
स्थित (कोशं व्याप्य इत्यर्थ —कोसभर) ; योजन भृत्येन
अनुगत (योजन व्याप्य इत्यर्थ), "सभा वैश्रवणी राजन् !
शतयोजनमायता" महाभा०, 'बहून् कोशान् राजते विन्ध्यशैल' ।

नाम्ना दशरथो राजा आर्षत्, नाम्ना दशरथं राजानम् उवाच इत्यादि ।

* इसको 'अत्यन्तसयोग'-भी कहते हैं ।

६०० । समया, निरुपा,* धिक्, प्रति, अनु, अन्तरा,† अन्तरेण, यावत् (अग्रधि, पर्यन्त, तक), अभित,‡ परित, सर्वत, उभयत शब्दके योगसे द्वितीया होती है । यथा—परंत समया नदी वहति (पर्वतस्य समीपे इत्यर्थः), “समया सौधभित्तिम्” (सौधभित्ते समीपे इत्यर्थः) दशकु०, “शिखरीन्द्रं समया” भाष० ६ ७३ । ग्राम निरुपा वनम् (ग्रामस्य समीपे इत्यर्थः), “लङ्का निरुपा” भाष० १. ६८, ‘द्वारकां निरुपा सिन्धु’ । मूर्खं धिक्, ‘धिगस्तु रूपण जनम्’ । शीनं प्रति दया उचिता, ‘भक्ति त्रिधेहि सतत मानर पितर प्रति’ । रामम् अनु जातो लक्ष्मण (रामस्य पश्चात् इत्यर्थः), ‘मृतमनु धावति यमाधर्मम्’ । स त्वां मां च अन्तरा उपविष्ट (तव मम च मध्ये इत्यर्थः), ‘हिमालयं विन्ध्यगिरिञ्चान्तरा पुण्यभूमय’ । धर्ममन्तरेण न वै सुखम्, ‘न पूज्यते गौन्यमन्तरेण’ । वनं यावत् अनुसरति (वनपर्यन्तम् इत्यर्थः), “स्तन्यत्यागं चावत् पुत्रयोरवेक्षस्य” उत्तर० ७, ‘मृत्यु यावत् क्लेशमाप्नोति मूर्ख’ (मृत्युम् अभिन्याप्त इत्यर्थः) । “परिजनो राजानम् अभित स्थित” मालविज्ञा० १, “अपथ्याम् अभित” (विपथ्याया अभिमुपम—सन्मुपे, सामने—इत्यर्थः) भा० ६ १, ‘दिगमणिमभित कुतोऽन्तरार ?’ । ‘वृगिर्वी

* “समया निरुपा दार्शे सामेप्ये त्ववपे गतो” इत्युच ।

† “अन्तरा तु विनाये इत्यमन्तरेणैव इत्यर्थः” मेदिनी ।

‡ “समीपोभयत शंभ्र म इत्यभिमुपइभित” खपर ।

परित सिन्धु' (पृथिन्या चतुर्दिक्षु इत्यर्थ.) । महीं सर्वतः
जोवा वसन्ति (महा. समन्तात् इत्यर्थ.) , 'प्रदेशं सर्वतो
निन्दा कृपणस्य प्रजायते' । पन्यानम् उभयत महीरुडा राजन्ते
(पथ उभयो पार्श्वयो इत्यर्थ — मार्गकी दोनो तरफ) ;
'नर्दानुभयत स्थानं जनेन तटमुच्यते' ।

६८१ । क्रियाके विशेषणमे द्वितीया होती है, और वह
क्रीडलिङ्ग एवञ्चनान्त होता है, * यथा—स सुख निष्ठति, त्व
दु ख स्यास्यसि, अधिकं ध्ने, मृदु हसति, साधु भाषते, 'शब्दा-
यते शून्यपात्रमधिक, न तु पूरितम्', राम अत्यन्त सुशौल । ।

तृतीया ।

६८२ । कर्णकारक और अनुक्त-कर्त्तामे तृतीया विभक्ति
होती है, यथा— (करणे)

'गावो द्राणेन पश्यन्ति, वेदै पश्यन्ति पण्डिता ।

चारैः पश्यन्ति राजानश्चभुन्यामितरे जना ॥”

(अनुक्त-कर्त्तरि) 'प्रसार्यते जेन कर कृशानौ ” । †

* स्तोत्र, कृन्तु वाय आर कनिमय शब्दके उत्तर तृतीया वार पञ्चमी-
मी होनी है, यथा—स्तोत्रेण वा स्तोकम् (याडा थोडा करके) शीतम्
अनुभूयते ।

† ऐस स्थानमे 'भवति' वा 'स्यात्' क्रिया ऊध रहनी है, इमालय वह
उस क्रियाका विशेषण होता है, यथा—अस्यन्त यथा भवते वा यथा स्यात्
तथा सुशील ।

‡ यह कर्मवचनका प्रयोग है, इसलिये इसकी क्रिया कर्मकेही ममतानी

६८३ । सहार्थ-शब्दके योगसे तृतीया होती है; यथा—
'भुज्जै सह सवसेत्', केनापि साद्धं विरोधो न कर्त्तव्यः,
'ब्रूरेण साद्धं न विधेहि मैत्रीम्', 'केनापि साकं कलह न
कुर्ष्यात्', 'सन्ध्यात्रारिणा समम्' ।

'सह'-शब्दका प्रयोग न रहनेसे सहार्थमेभी तृतीया होती
है, यथा—व्यञ्जनेन अन्न भुङ्क्ते (व्यञ्जनेन सह इत्यर्थः), 'भूपो
मन्त्रयतेऽमात्यै' (अमान्यै सह इत्यर्थः) ।

६८४ । हीनार्थ, निषेधार्थ और प्रयोजनार्थ शब्दके योगसे
तृतीया होती है । यथा—(हीनार्थ) विद्यया हीन, 'ज्ञानेन
हीना पशुभि समाना', 'पकेन ऊना गणिता दशप्रहाः';
अहङ्कारेण शून्यः । (निषेधार्थ) अलं विवादेन : (विवाद् मा
कुरु, विवादो निष्प्रयोजन इत्यर्थः), 'संसारयात्रानिर्वाहेणालं
पापेन कर्मणा', कलहेन किम् ? (कलहो व्यर्थ इत्यर्थः), 'धनेन
किं, यो न ददाति नाश्रुते ?', कृत बहुजल्पनेन (बहुजल्पनं न
कार्यम् इत्यर्थः) । (प्रयोजनार्थ) न मे धनेन प्रयोजनम्;
कोऽर्थ * कलहेन ? , "किं तथा दृष्टया ?" शकु० २, तृणेन

है, कर्ताको नहीं, मुत्रा किया-द्वारा कर्म लक्ष, और कर्ता अनुक्त ।

कांडार्थ 'दिव्'-भातुके करण-कारकमे विकल्पसे द्वितीया होती है,
यथा—पाशकेन पाशक वा दीव्यति ।

* 'अर्थिन'-शब्दके योगसेभी तृतीया होती है; यथा—"तुपैरार्थिनः"
दशडु०, "छाययाऽर्था जनोऽयम्" वेणो० ६ २६, "को वधेन ममार्यं
स्यात् ?" महाभा० ।

कार्यं भवतीश्वराणाम्” पञ्च० १ १, “अप्राज्ञेन सानुरागेण भृत्येन को गुणः ?” मुद्रा० १ ।

६८५ । जो अङ्ग विकृत (Defective) होनेसे, अङ्गी अर्थात् शरीरका विकार (Defect) लक्षित होता है, उस विकृत अङ्गके वाचक शब्दके उत्तर तृतीया होती है, यथा—
चक्षुषा काण , श्रोत्रेण वधिर , पादेन खड्ग. , ‘पृष्ठेन कुञ्जो-
ऽयमधर्मकारी’ ।

६८६ । जिस लक्षण अर्थात् चिह्न द्वारा कोई व्यक्ति सूचित होता है, उस लक्षणके बोधक शब्दके उत्तर ‘विशिष्ट’-अर्थमे तृतीया होती है, * यथा—जटाभि. तापसम् अपश्चम् (जटाभि उपलक्षितम्—जटाविशिष्टम् इत्यर्थः) , भूपाभि शिशुम् अदर्शम्, छात्रेण उपाध्यायम् अद्राक्षम्, ‘मयैको बालको दृष्ट. सौन्दर्येण गुणेन च’, “जटाभि स्निग्धताम्राभिराविरासीद् वृषन्वज.”, “त्रिवर्णराजिभि कण्ठैरेते मञ्जुगिर शुका.” ।

६८७ । ‘अपवर्ग’ अर्थात् क्रियासमाप्ति और फलप्राप्ति समझानेसे, कालवाचक और अध्ववाचक शब्दके उत्तर तृतीया होती है । यथा—(कालवाचक) त्रिभिः अहोभिः कृतम्, ‘त्रिभिर्वर्षैः’ शब्दशास्त्र पपाठ । (अध्ववाचक) क्रोशेन अधीत

* इसको ‘उपलक्षणे’, ‘विशेषणे’ अथवा ‘इत्थन्मूललक्षणे’—तृतीया कहते हैं ।

‘अभेद’-अर्थमेभी तृतीया होती है, यथा—घान्येन धनवान् (घान्या-
भिन्नधनवान्—घान्यरूपधनवान् इत्यर्थ) , ईश्वरेण बभ्रुमान् ।

ग्रन्थाध्याय ।

माम व्याकरणम् अरोतम्, न तु ल्कुरति—यहां अव्ययनकी कप्रति न समप्रानेरे कारण 'मास' शब्दके उत्तर तृतीया नहीं हुई । (६७९ सू०) ।

६८८ । स्थलविशेषमे, क्रियाविशेषके तुल्य व्यवहृत 'प्रकृति'-प्रभृति शब्दके उत्तर तृतीया होती है, यथा—प्रकृत्या दर्शनीय, 'भूषामि किं सुन्दरो य प्रकृत्या?', स्वभावेन सरलः, आकृत्या सुन्दर, जात्या ब्राह्मण, गात्रेण शाश्विडस्य, नाज्ञा शिव, वयसा अधिर, प्रायेण दुःखिनः; वेगेन गच्छति, दरया धारति, यत्नेन लिखति, सुप्तेन स्वपिति; दुःपेन याति, हेशेन वदति, क्रमेण याति, विधिना पूजयति ।

६८९ । निम्नलिखित स्थानोमेभी तृतीया विभक्ति होती है, यथा—

(क) जित्म मूल्यमे कोरे यन्तु वय को लाती है; यथा—कियता मूल्येन कीत पुस्तकम् ? (कितने मूल्यमे पुस्तक मोल ली है ?)—रूप वप्रयेण ।

(ख) मत्पर्यन्त धातुके योगमे, वाहन (मवाते) वाहन शब्दके उत्तर, यथा—धूमशकटेन पुरुषोत्तमपुरीं प्रयाति, विष्णुपद विभागेन विगाहते ।

(ग) 'वद्' धातुके योगमे, जितमे धरस्य वाहन किय जाता है; यथा—“स खान स्वन्धेन वयाद्” हितो० ४ । “भर्तुराज्ञा मूर्ध्ना आदाय” (कु० ३. २२)—मेमे स्थानोमेभी तृतीया होती है ।

(घ) 'दाय' वाचक शब्दके योगमे, जितके नामने दाय किय जाता है, यथा—जीविनेदेव दायामि ते ।

(४) जिन दिशा वा मागमे जाया जाता है, यथा—“वतमेन दिग्बिभागेन गत स जालम १” दिग्मो० १ ।

चतुर्थी ।

६९० । सम्प्रदानकारकमे चतुर्थी विभक्ति होती है, यथा—
‘दोनेभ्यो दीयतामन्न, यदि धर्ममभीप्ससि’ ।

६९१ । ‘तादर्थ्य’ (निमित्तार्थ*) समझानेसे—अर्थात् जिसके निमित्त कोई वस्तु वा क्रिया अभिप्रेत होती है, उसके उत्तर—चतुर्थी होती है, यथा—यूपाय दारु (यूपनिमित्तम् इत्यर्थ), कुण्डलाय हिरण्यम्, अश्वाय घान (अश्वनिमित्तम् इत्यर्थ), रन्धनाय स्थाली (रन्धननिमित्तम् इत्यर्थ), स्नानाय नदीं याति (स्नाननिमित्तम् इत्यर्थ), पाकाय अग्निम् आहरति, ‘खलस्य विद्या चातुर्थ्यं नोपकाराय वस्यचित्’,

“विद्या विनादाय, धन मदाय, शक्ति परेषा परिषोडनाय ।

खलस्य, साप्रोर्विपरीतमेतज्, ज्ञानाय दानाय च रक्षदाय ॥”

६९२ । ‘निवृत्ति’ समझानेसे, निवर्त्तनीय अर्थात् जिसकी निवृत्ति की जाय, उसके उत्तर चतुर्थी होती है, यथा—मशकाय धूम. (मशकनिवृत्तये इत्यर्थ), आतपाय छत्रम् (आतपनिवृत्तये इत्यर्थ), पिपासायै जलम् (पिपासानिवृत्तये इत्यर्थ), तापाय स्नानम् (तापनिवृत्तये इत्यर्थ), ‘रोगायौषधमाहरेत्’ (रोगनिवृत्तये इत्यर्थ), पापाय प्राय-

* अर्थात् कारणसे ‘हेतु’, और भावि कारणको ‘निमित्त’ कहने हैं ।

श्चित्तम् आचरेत् (पापनिवृत्तये इत्यर्थ) ।

६९३ । 'तुम्' प्रत्ययान्त असमापिका क्रिया ऊह्य (Understood) रखनेसे, उसके कर्मकारकमे चतुर्थी होती है, यथा—
काष्ठाय याति (काष्ठम् आहर्त्तुम् इत्यर्थः), वनाय सज्जो
भवति (वन गन्तुम् इत्यर्थः) । (६५५ सूत्र द्रष्टव्य) ।

६९४ । क्लृप्त्यर्थं धातु (क्लृप् धातु और तदर्धरु 'सम्'-
पूर्वक पद्, भू, जन्-प्रभृति धातु)-के प्रयोगमे, सम्पद्यमान
अर्थात् जो फल उत्पन्न होता है, उसके उत्तर चतुर्थी होती है,
यथा—भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते (ज्ञानरूपेण परिणमति इत्यर्थ) ;
ज्ञानं सुखाय सम्पद्यते, धर्मः स्वर्गाय भवति, वन्द्याय जायते
राग ।

६९५ । नमस्, * स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, वषट् और हित
शब्दक योगसे चतुर्थी होती है, यथा—गुरवे नम, 'नम'

* 'नमस्'-शब्द 'कृ'-धातुके साथ युक्त होनेसे, उसके योगमे द्वितीया
और चतुर्थी—दोनो होती हैं, यथा—मुनित्रय नमस्कृत्य, नमस्कृत्यो
वृषिर्हाय ।

प्र + नि + पत्, प्र + नम् प्रमृति प्रणामार्थक धातुके योगसे द्वितीया
और चतुर्थी—दोनो होती हैं । यथा—“धातार प्रणिपत्य” कु० २ ३, “तस्मै
प्रणिपत्य नन्दी” कु० ३ ६० । “तां भक्तिप्रवणेन चेतसा प्रणनाम” काद०,
“तां कुलदेवताभ्य प्रणमप्य” कु० ७ २७, “प्रणम्य त्रिलोचनाय” काद० ।

“मूर्द्धा प्रणाम वृषभन्वजाय चकार” कु० ३ ६२, “तस्मै दण्डप्रणा-
मम् अकरवम्” दशकु०—यहाँ केवल चतुर्थी ।

श्रीपरमेशाय सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे, स्वस्ति भवते, 'स्वस्ति प्रजाभ्यो विद्धाति राजा', अग्नये स्वाहा; पितृभ्यः स्वधा (दान) ; इन्द्राय षषट्, सर्वस्मै हितम् ।

(क) समर्थार्थक-शब्दके योगसे चतुर्थी होती है, यथा— भोजनाय समर्थः । 'सदा शठः शठायालम्' (शठ शठेन सार्द्धं प्रतिद्वन्द्विता कर्त्तुं समर्थ इत्यर्थः), सैत्राय शक्तो मैत्रः ।

समर्थार्थक-क्रियाके योगसेभी चतुर्थी होती है, यथा—'महो महाय शश्यति', "नमस्तन् कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्य प्रभरति" शान्तिशतकम् ।

६१६ । 'अवज्ञा' समझानेसे, दिग्गदिगणीय मन्-धातुके अवज्ञा सूत्रक कर्ममे (गौणकर्ममे) विकल्पसे चतुर्थी होती है, यथा—अहं त्वां तृणाय (तृण वा) मन्ये (मै तुझे तृण जान करता हूँ), तृणाय मन्यने भोगान् (पक्षे—तृणम्), 'तृणाय विध्व कुपिनो न मन्यने', नाहं त्वा कुकुराय मन्ये ।

काकादि* कर्म होनेसे नहीं होती, यथा—काक मन्यने वाचकम्, स्वामह शृगाल मन्ये ।

६१७ । 'चेष्टा' (Physical motion) समझानेसे, गमनार्थक धातुके कर्ममे विकल्पसे चतुर्थी होती है, यथा—ग्रामाय गच्छति, व्रजाय व्रजति । पक्षे—द्वितीया । चेष्टा (यथार्थ गमन) न समझानेसे नहीं होती, यथा—मनसा मथुरा गच्छति । 'पथ' वाचक शब्द कर्म होनेसे नहीं होती, यथा—पन्थानं याति, अध्वानं गच्छति ।

* काक, शुक, शृगाल प्रभृति ।

पञ्चमी ।

६९२ । अपादानकारकमे पञ्चमी विभक्ति होती है, यथा—
'पापी स्वर्गात् पतत्यथ' ।

६९९ । जिससे उत्कर्ष वा अपकर्ष (आधिपत्य वा न्यूनता) निर्धारित होता है, उसके उत्तर 'अपेक्षा' अर्थमे पञ्चमी होती है । यथा—धनात् विद्या गरीयसी (धनापेक्षया इत्यर्थ. — धनकी अपेक्षा), 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी', "सत्यादप्यनृत श्रेय" वेणी० ३ ४८, भीमो दुःशासनात् परीयान्, 'दाग्निद्यान्मरणा वरम्', "मोहादभूत् कष्टतर. प्रबोध" २० १४ ५६, "चैत्ररथादनूने वृन्दाग्ने" २० ६. ५०, "अश्वमेधसहस्रेभ्य. सत्यमेवातिरिच्यते" हितो० ४; "आद्धस्य पूर्वाहादपराहो विशिष्यते" मनु० ३ २७८ । वैश्याः क्षत्रियेभ्य ईनवला, "कान्तोदन्त सुहृदुपनत. सहमात् किञ्चिदुन." मेघ० १०० ।

७०० । 'त्यप्'-प्रत्ययान्त असमापिका क्रिया ऊह्य रहनेसे (अर्थात् उसका प्रयोग न रहनेसे), उसके कर्म और अधिकरण कारकमे पञ्चमी होती है,* यथा—प्रासादात् प्रेक्षते (प्रासादम् आरहा इत्यर्थ), श्वशुरात् जिह्नेति (श्वशुरं वीक्ष्य इत्यर्थ), आसनात् अयलोक्यति (आसने उपविश्य इत्यर्थ), 'रथाद् य पश्यति वीरसिंह.' (रथे उपविश्य इत्यर्थ) ।

७०१ । आन्यार्थ शब्दके योगसे, पञ्चमी होती है, यथा—

* इसके 'त्यच्'लेपे पञ्चमी' कहते हैं ।

‘धर्मादन्य कोऽस्ति दुःखापहारी ?’, तस्मात् इदं भिन्नम्; षट् पटात् इतर, “अव्यतिरिक्त्यम् अस्मच्छरीरात्” काद०, “आत्मा देहाद्द्विलक्षण” अपरोक्षानुभूति ३८ ।

अन्यार्थ बोधक, क्रियाके योगसेभी पञ्चमी होती है, यथा—स्वर्ण रजतात् भिद्यते ।

(क) आरभ्यार्थ* शब्दके योगसे पञ्चमी होती है, यथा—“मालत्या प्रथमावलोकदिवसादारभ्य” मालती० ६-३, “दिग्विजयात् आरभ्य सर्वम् आचक्षते” काद०, जन्मन-प्रभृति सेव्यता हरिः, “अद्यभवति सर्वेषु आत्मसम्पत् अभिजनात् प्रभृति अन्यूनैव लक्ष्यते” दशकु० ।

(ख) ‘आरात्’† और ‘वहि’‡ शब्दके योगसे पञ्चमी होती है, यथा—ग्रामात् आरात् वनम् (ग्रामस्य समीपे, दूरे वा इत्यर्थ), ‘शिक्षेत शिक्षकादाराद्वाल्यात् प्रभृति सन्नयम्’ (शिक्षकस्य अन्तिके इत्यर्थः), ‘पुराद्बहिर्दुष्टजनान् विवासयेत्’ ।

(ग) दिग्वाचक, देशवाचक और कालवाचक शब्दके योगसे पञ्चमी होती है । यथा—(दिग्वाचक) ग्रामात् पूर्व-पर्वत, गृहात् उत्तर सरः । (देशवाचक) वसति चैत्रो मेघात्

* ‘आरभ्य’ और ‘प्रभृति’ शब्द अव्यय । ‘आरभ्य’ शब्द असमायिका क्रिया होनेसे उसके कर्ममे द्वितीया होती है ।

† “आराद्दूर-समीपयो” इत्यमरः ।

‡ कमदीश्वरने ‘वहि’-शब्दके योगसे पञ्चमी और षट्ठी—इन दोनों विभक्तियोंकेही विधान क्रिया है, यथा—“वहिर्बुद्ध्यात् षट्ठी-षट्ठम्यो” इति ।

पूर्वदेशे । (कालवाचक) माघात् पूर्व. पौषः, माघात् उत्तर
(पशो वा) फाल्गुनः; “वाल्यात् पर साऽथ वयं प्रपेदे” कु०
१ ३१, भोजनात् प्राक्, शयनात् पूर्वम्, “अस्मात् परम्”
शकु० ६ २५, उत्थानात् परतः, प्रस्थानात् अनन्तरम्, “ऊर्द्ध
त्रिये मुहूर्त्ताद्धि” भ० १८ ३६ ।*

(घ) ‘आ’ और ‘आदि’-प्रत्ययान्त शब्दके योगसे, पञ्चमी होती
है, यथा—उद्यानात् उत्तरा गृहम्, गृहात् उत्तरादि सर (उत्तरम्या
दिशि इत्यर्थ) , हिमालयात् दक्षिणा भारतवर्षम्, प्रयागात् दक्षिणादि
विन्ध्य (दक्षिणस्या दिशि इत्यर्थ) ।

७०२ । ‘ऋते’-शब्दके योगसे पञ्चमी और द्वितीया होती
हैं । यथा—“विप्रिकात् ऋते अन्यत् शरण नास्ति” विक्रमो०
२, ‘उपदेशादृते विद्या न कदाऽपि समुद्रयेत् । ‘ऋते सुपुंसि
विश्रामं लभते न मन क्वचित्’ ।

७०३ । ‘पृथक्’ (Without) और ‘विना’ शब्दके योगसे
पञ्चमी, द्वितीया और तृतीया होती हैं । यथा—विद्याया. पृथक्
(विद्यां, विद्यया वा पृथक्) सुख न स्यात् (विद्याऽपतिरेकेण
सुखन भवति—विद्यामात्रसाध्य सुखम् इति भावः) । ‘अस्माद्
विना को लभते निजेष्टम् ?’, ‘स्वाधीनता विना किञ्चिदन्यत्
सुखकर न हि’, ‘सहायेन विना नैव कार्य्यं किमपि सिध्यति’ ।

* कहीं कहीं ‘परम्’ अनन्तरम्’ इत्यादि शब्द उक्त रहता है, यथा—
“बहोर्दृष्टं कालादपरमिव मन्ये वनमिदम्” (बहो कालात् पर दृष्टम् इत्यर्थ—
Seen after a long time) उत्तर० २ २७ ।

७०४ । 'अभिविधि' (व्याप्ति The limit inceptive, from, ever since) और 'मर्यादा'* (सीमा The limit exclusive or conclusivc, till, until, up to, as far as) अर्थमे, 'आ' (आइ)—इस अव्ययशब्दके योगसे पञ्चमी होती है । यथा—(अभिविधि) "आ मूलात् धातुमिच्छामि" शकु० १ (मूलात् आरभ्य इत्यर्थ — आदिसे From the beginning), "आ जन्मनः" शकु० ५ २५. (जन्मन आरभ्य इत्यर्थ—जन्मसे लेकर Ever since (her) birth), 'आ बाल्याद्धार्मिको भवेत्', "आ मना " २० १ १७ (मनुम् आरभ्य इत्यर्थ) । (मर्यादा) "आ परितोषाद्विदुषाम्" शकु० १ २ (परितोष मर्यादीकृत्य ; यावत् परितोषो भवति इत्यर्थ —Till the learned are satisfied), "आ कैलासात्" मेघ० ११ (कैलासपर्यन्तम् इत्यर्थ — Up to or as far as Kailāsa),

"दद्यान्नाप्रसर कञ्चित् कामादीनां मनागपि ।

आ सुप्तेण मृने काल नयेद्द्वेदान्तचिन्तया ॥"

"आ विन्ध्यादा हिमाद्रौर्विरचितविजयः" (विन्ध्यात् आरभ्य हिमाद्रिपर्यन्तम् इत्यर्थ) ।

७०५ । 'हेतु' समझानेसे, हेतु बोधक शब्दके उत्तर पञ्चमी और तृतीया होती हैं, यथा—अज्ञानात् अज्ञानेन वा वन्व' , ज्ञानात् ज्ञानेन वा मुक्ति , अधर्मात्तुल्यते दुःख, धर्मेण सुखमश्नुते ।

* तेन विना मर्यादा, तत्सहितोऽभिविधि ।

“सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम् ।

अहार्यत्वादनर्घत्वाद्दत्तयत्वाच्च सर्वदा ॥” हितो० ।

पण्ठी ।

७०६ । जिसके साथ किसीका किसीप्रकार सम्बन्ध प्रतीत होता है, उसमे पण्ठी-विभक्ति होती है,* यथा—राज्ञो धनम् (स्व-स्वामि-भाव सम्बन्ध), मम हस्त (अवयवावयवि-भाव-सम्बन्ध), तस्य पुत्रः (जन्य-जनक-भाव सम्बन्ध); पृथिव्या गन्ध (गुण-गुणि भाव-सम्बन्ध), श्रुते अर्थः (वाच्य वाचक भाव-सम्बन्ध), नद्या उदकम् (आधारा-धेय-भाव-सम्बन्ध), ‘मूर्खाणां बहवो दोषा, विदुषां बहवो गुणा’ (विषय-विषयि भाव-सम्बन्ध) ।

७०७ । ‘कृत्’-प्रत्ययके प्रयोगमे, अनुक्त कर्ता और कर्ममे पण्ठी होती है । यथा—(कर्तामे) मम भोजनम् (मेरा भोजन अर्थात् मत्कर्तृक भोजन), शिशो शयनम्, अश्वस्य गतिः, तव पिपासा, तस्य बुभुक्षा, विशालदत्तस्य कृतिः (Work), “शृणुत जना अवधानात् क्रियामिमां कालिदासस्य” विक्रमो० १०, ‘नास्तिवस्य कुतो भक्तिर्नृशसस्य कुतो दया?’, ‘भर्तुः’

* ‘सम्बन्धे पण्ठी’ को ‘सोवे पण्ठी’ भी कहते हैं । अर्थात् जहाँ अन्य कोई विभक्ति होनेका मूल नहीं है, वहाँ पण्ठीही होगी, यथा—रजकस्य वस्त्रं ददाति, सर्वे वेदा ते प्रतिभाम्यन्ति इत्यादि ।

† अर्थात् भाववाच्यविहित ‘कृत्’ प्रत्ययान्त पदके (कृन्द विज्ञेय-पदके) कर्तामे और कर्ममे ।

प्रणाशात्” २० १४ १, सूदस्य पाक । (कर्ममे) पयस
पानम् (दुग्ध वा जल पान करना), अन्नस्य भोजनम्,
सुखस्य भोग , “शास्त्राणा परिचय.” काद० , धनस्य दाता ,
धर्मस्य प्रणेता , भूभृता भेत्ता , “आहर्ता कनूनाम्” काद० ,
वृत्तस्य लब्धेदक , ‘गुरु शिष्यस्योपकर्ता, सत्पथस्य च दर्शक ’ ,
‘आवृत्ति सर्वशास्त्राणां बोधादपि गरीयसी’ ।

७०८ । कर्ता और कर्म दोनोमे पद्योप्राप्तिकी सम्भावना रहनेसे,
केवल कर्ममे पृष्ठी होती है , यथा—गोपन मया दोह , शिशुना पत्रम्
पानम्, नृपय धनस्य दानम्, सूयेंग जलस्य शोषणम्, वीरेण अर्थस्य हरणम्,
छात्रेण धनस्य पाठ ।

(क) छालिङ्ग विहित ‘इत्’ प्रत्ययके प्रयोगमे, कर्तामे विकल्पसे
पृष्ठी होती है , यथा—कुलालस्य कुलालेन वा घटस्य कृति ।

(ख) छालिङ्ग-विहित ‘अ’ प्रत्ययके प्रयोगमे, कर्ता और कर्म
उभयत्र पृष्ठी होती है , यथा—ग्रामस्य शास्त्रस्य पिपठिया , राज्ञः ग्रामस्य
जिगमिषा , तन्तुवापस्य वस्त्रस्य चिकीर्षा , मम चन्द्रस्य दिदक्षा , गुरो
शिष्यस्य प्रसासा ।

७०९ । ‘कृत्य’-प्रत्ययके प्रयोगमे, कर्तामे विकल्पसे पृष्ठी होती है ,
पक्षे कृतोया , यथा—मम (मया वा) कर्तव्यम् , तव (त्वया वा)
गुरुरर्चनीय , तस्य (तेन वा) पुस्तक पाठ्यम् , ‘न आव्य सत्सतानान्तु
-रोदन मावृतातयो.’ ; “नास्ति असाध्य नाम मनोभुव ” काद० , “न वधम-
नुपाद्या प्रायो देवतानाम्” काद० , “न वञ्चनीया प्रमथोऽनुर्षाविभि”
भा० १ ४ , “राक्षसेन्द्रस्य संरक्ष्य मया लव्यमिदं वनम्” म० ८. १२९ ।

७१० । मात्रवाच्यविहित 'क'-प्रत्ययके प्रयोगमे, कर्त्ताने विकल्पमे पद्यो होती है ; यथा—जम (मया वा) आगतम् ; जम शयितम् ; जम जागरितम् ।

७११ । वर्त्तमानकालमे विहित 'क'-प्रत्ययके प्रयोगमे, कर्त्ताने क्तिय पद्यो होती है ; यथा—राज्ञां मत (राजनिर्मन्वने इत्यर्थ) ; सत्तां पूजित (मद्भि पूज्यते इत्यर्थ) , "अहमेव मतो महीपते" (मही पतिवा मन्दमान इत्यर्थ) २० ८ ८ , "विदित तप्यमानञ्च तेन मे मुदन्-अयम्" (मया ज्ञायते इत्यर्थ) २० १० ३१ ।

७१२ । शतृ, शानच्, छत्, कानच्, म्यत् और म्यमान प्रत्ययके प्रयोगमे, पद्यो नहीं होती । यथा—(शतृ) गृह गच्छन् ; ज्ञ रिदन् ।* (शानच्) अन्न भुञ्जान , व्याकरणदर्शान । (छत्) मोदन् पंचिवान् , ग्रान जग्मिवान् । (कानच्) गुर वन्दान , शास्त्रं शिक्षिषाम् । (म्यत्) गृह गमिष्यन् , वेद पठिष्यन् । (म्यमान) गुर तेविष्यमाण ; धन दाम्यमान ।

(क) तुमुन्, क्त्वा, लप् और णमुल् प्रत्ययके प्रयोगमे, पद्यो नहीं होती । यथा—(तुमुन्) गृह गन्तुम् , चट्ट द्रष्टुम् । (क्त्वा) उर्ल पत्त्वा ; फल् गृहीत्वा । (लप्) गृहम् आगत्य ; व्याकरणम् अधीत्य । (णमुल्) कृण स्मार् स्मारम् , दाम्य आध धावम् ।

(ल्) टकाणन्त 'ङ्' प्रत्ययके प्रयोगमे पद्यो नहीं होती ; यथा—ज्ज निराह , तिपुद जिप्यु , गिणां क्षिन्तु ; विन्ध निगादरिप्यु ; फर्ल

* 'द्विष्'-पत्रके 'शतृ'के योगे दिक्पद्ये, यथा—गुर द्विषन्, गुरम्य द्विषन् ।

गृहपालु ।

(ग) 'उक्' और शीलार्थ 'तृन्' प्रत्ययके प्रयोगमे, पद्यो नहीं होती । यथा—(उक्) गृह गामुक , जल वपुक् , शत्रुं घातुक * । (तृन्) परापत्राद् वक्ता एव , "पितरम् आराधयिता भव" विज्जमो० ६ , "सम्भावयिता बुधान् , न्यग्भावयिता रात्रून्" दशकु० ।

(घ) भक्षिष्यत् कालमे विहित 'णक्' और 'णिन्' प्रत्ययके प्रयोगमे, पद्यो नहीं होती , यथा—(णक्) भक्त भोजको व्रजति , (णिन्) गृह गामी ।

(ङ) खलर्थ-प्रत्ययके प्रयोगमे, † पद्यो नहीं होती । यथा—नेतत् सुकर भद्रता , नतत् दुष्कर तेन , सर्वम् ईषत्कर अधिया । मया दुर्मपण-शत्रु , त्वया दुःशासनो रिपु ।

(च) 'निष्ठा' प्रत्ययके प्रयोगमे, पद्यो नहीं होती । यथा—(ऋ) तेन व्याकरणम् अधीतम् , मया जल पीतम् , त्वया चन्द्रो दृष्ट । (ऋत्) स गृह गतवान् , त्वे चन्द्र दृष्टवान् , अह वेदम् अधीतवान् ।

७२३ । स्मरणार्थं धातु (स्मृ, अधि + इ—इक्), द्यु धातु और ईश् धातुके कर्ममे विकल्पसे पद्यो होती है । यथा—(स्मृ) माता पुत्रस्य स्मरति , "स्मत्तुं दिनान्ति न द्विष स्रसन्दरीभ्य " भा० ६ २८ , "कच्चिद्भक्तुं स्मरति रसिके । त्व हि तस्य प्रियेति ?" मेघ० ८६ , (अधि

* 'कामुक' शब्दके प्रयोगमे होतो है , यथा—विद्याया कामुक ।

† सु, दुर् और ईषत् शब्दके योगमे धातुके उत्तर जो 'अ' और 'अन' प्रत्यय होते हैं, उनको 'खलर्थ प्रत्यय' कहते हैं ।

+ इ) “अभ्येति तत्र लक्ष्मण ” भ० ८ ११९ (तत्र स्मरति इत्यर्थ) ।
 (दम्) दाता दरिद्रस्य दयने । (ईश्) पिता पुत्रस्य ईष्टे (यथेष्ट
 विनियुक्ते इत्यर्थ — यथेच्छ नियोग करता है) ।† पश्चे—द्वितीया ।

७१४ । ‘हिंसा’-अर्थ समझानेसे, जासि, विप्, और ‘नि’ तथा ‘प्र’
 पूर्वक हन् धातुके कर्ममे विकल्पसे पठ्यो होती है । यथा—(उत्+
 जामि) चौरस्य टञ्जासयति (चौर दिनस्ति इत्यर्थ) ; “निजौजपो-
 ज्जामयितु जगद्ब्रह्माम्” माघ० १ ३७ । (विप्) शत्रो पिनष्टि, “प्रवृत्त

* पठ्यो-रक्ष— उत्कण्ठापूर्वकस्मरणम् (Remembering with
 regret, to think of) एव अथ प्रतीयते । साधारण अधमे प्राय
 द्वितीयाहं हानी है, यथा—“स्मरास तान्यहानि, स्मरास गोदावरी वा ?”
 उत्तर० १ २६ ।

† अपि च—“श्वापदानुपरणमंम गात्राणाम् अनीशोऽस्मि संवृत”
 शकु० २ ।

‘प्र’ पूर्वक भू धातुके योगसेभो पठ्यो होती है, यथा—“ननु प्रभवत्यार्थ्ये
 शिष्यजनस्य” (Why, you honour has mastery over
 you pupil—क्यों, शिष्यके उपर आपका प्रभुत्व है) मालविका० १,
 “हा धिक्, हा धिक् । एकाकिनी प्रमुक्ता माम् उज्ज्वला कुत्र गतो नाथः ?
 भवतु तस्मै कोपिष्यामि, यदि त प्रेक्षमाणा आत्मन प्रभविष्यामि ।” उत्तर०
 १ । (‘प्र’-पूर्वक भू धातुके योगसे सप्तमीभी होती है, यथा—“तत् प्रभ
 वति अनुशासने देवी” धेणी० २ । ‘सामर्थ्य’ (सक्ता) अर्थमे प्र+भू धातु
 तुमन्त क्रियाके साथ प्रयुक्त होता है, यथा—“कोऽन्धो हुतवहात् दग्धु प्रभ-
 विष्यति ?” शकु० ४ १) ।

एव स्वयमुज्झितध्रम ऋमेग पेष्ट भुवनद्विपामसि” माघ० १ ४० । ‘नि’
और ‘प्र’ व्यस्त (पृथक्), समस्त (एकत्र) और विपर्यस्त (विपरीत)-
रूपसे विन्यस्त होनेपरभी होती है , यथा—निहन्ति प्रहन्ति निप्रहन्ति
प्रणिहन्ति वा चौरस्य , “नि”प्रहन्तुमनोरेशविद्विपाम्” माघ० १४. ८२. ।
पक्षे—द्वितीया ।

७१५ । वृत्त्यर्थं धातुक करणकारकमे विकल्परसे पष्ठी होती है ,
यथा—अन्नस्य (अन्नेन वा) वृत्त , “अपां हि वृत्ताय न वारिधारा
स्याद् सुगन्धि स्वदते तुपारा” नै० ३ ९३ ,

“नाग्निस्त्वृष्यति काष्ठाना, नापगाना महोदधि ।

नान्तक सर्वभूताना, न पुमा वामलोचना ॥” पञ्च०१ १४८. ।

७१६ । ‘इत्त्वसृच्’ और ‘सृच्’ प्रत्ययके प्रयोगमे, कालवाचक
शब्दके अधिकरणमे विकल्परसे पष्ठी होती है । यथा—(इत्त्वसृच्)
पञ्चहृत्सो दिवसस्य ईश्वरम् उपास्ते (दिनमे पांच वार ईश्वरकी उपासना
करता है) , सप्तहृत्सो दिनस्यागच्छति , “शनइत्त्वस्तवेकप्या स्मात्यहो
रघूत्तम ” म० ८ १२२ । (सृच्) द्विरहो भुङ्क्ते , त्रिर्वासरस्य स्वपिति ।
पक्षे—सप्तमी , यथा—द्विरद्वि भुङ्क्ते इत्यादि ।

७१७ । अस्तात्, असि, आति और अतए प्रत्ययके प्रयोगमे, पष्ठी
होती है । यथा—(अस्तात्) पुरस्तात् उद्यानस्य , उपरिष्टात् मञ्जन्य* ।
(असि) पुरो नगरस्य , अधो वृक्षस्य † । (आति) उत्तरात् समुद्रस्य ;

* ‘उपरि’-शब्दके योगमेभी पष्ठी होती है , यथा—हर्म्यस्थोपरि राष्ट्रपताका ।

† शिष्टप्रयोगमे ‘अघसृ’ शब्दके योगसे पञ्चमीभी होती है , यथा—
“कफोपि कूर्परादध ” अमर* ।

दक्षिणात् हिमालयस्य । (अतएव) उत्तरतो गृहस्य , दक्षिणतो ग्रामस्य ।

७१८ । 'एनप्'-प्रत्ययान्त शब्दके योगसे षष्ठी और द्वितीया होती हैं, यथा—दक्षिणेन पुष्पवाटिकाया सर, (अथवा) दक्षिणेन पुष्पवाटिकां सर, "तत्रागारं धनपतिगृहानुत्तरेणाम्मदीयम्" मेघ० ७५ ।

७१९ । तुल्यार्थ-शब्दके योगसे, षष्ठी और तृतीया होती हैं । यथा—मम तुल्य, मया तुल्य, "पितुरेव तुल्य" २० १८ ३८, 'नान्यो गुण स्याद्विनयेन तुल्य' । तत्र सम., त्वया सम., "गुणयुक्तो दरिद्रोऽपि नेवरेरगुणै सम" । तस्य सदृश, तेन सदृश, 'युधिष्ठिरस्य सदृशो न जातः सत्यभाषण', "श्रुतस्य किं तत् सदृश* कुलस्य?" २० १४ ६१ । †

* यहाँ 'सदृश' शब्दका अर्थ—योग्य, अनुरूप । इस अर्थमें प्रायः षष्ठीही होती है । ऐसे—"मखे पुण्डरीक । नैतत् अनुरूप भवत" काद० ।

† "तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्या तृतीयाऽन्यतरस्याम्" [अतुलोपमाभ्या तुला च उपमा च इत्येताभ्या शब्दाभ्या विना, एतौ शब्दौ वर्जयित्वा इत्यर्थ, तुल्यार्थे तुल्यशब्दस्य अर्थ इव अर्थो येषा तैस्तथाविधे शब्देर्योगे अन्यतरस्यार्थविकल्पेन इत्यर्थ, तृतीया भवति] —इत्यस्मिन् सूत्रे पाणिनिना तुलोपमाशब्दयोर्योगे तृतीया प्रतिदिध्यते । किन्तु नैतत् महाकविप्रयोगसंवादि, तत्र भूयसा व्यभिचारदर्शनात्, यथा—"तुलां यदारोहति दन्तवाससा" कु० ५ ३४, "नभस्या तुला समारोह" २० ८ १५; "स्फुटोपम भूति सितेन शम्भुना" माप० १ ४, "तन्वन्त कनकावलोमिहणमा मौदामनी-दामभि" माप० १७ ६९ इति ।

महिनायस्तु तत्र तत्र — 'सदृशायवाचिनोरेव तुलोपमाशब्दयोर्योगे

न दैवतं ह्यस्ति गुरो समानम्, “धर्मेषु हीना पशुभि समाना” ।

७२० । ‘आशीर्वाद’ समझानेसे, आयुष्य, भद्र, कुशल, सय, अर्थ, हित शब्द, और एतदर्थक शब्दके योगमे पृष्ठी और चतुर्थी होती है, यथा—पुत्रस्य पुत्राय वा आयुष्यम् (आयुरित्यर्थ), निरजीवनम्, मद्रम्, शुभम्, क्षेमम्, कुशलम्, महलम्, सखम्, शर्म, अर्थ, फलम्, हितम्, पथ्य वा मूयात्, अन्तु, जायताम्, सम्पद्यता वा ।

७२१ । दूरार्थ और अन्तिकार्थ शब्दके योगसे, पृष्ठी और पञ्चमी होती है । यथा—ग्रामस्य दूरम्, ग्रामात् दूरम् । नगरस्य अन्तिकम् ; नगरात् अन्तिकम् ।*

७२२ । ‘हेतु’-शब्दका प्रयोग रहनेसे, निमित्तरोधक शब्दके उत्तर पृष्ठी होती है, यथा—अन्नस्य हेतो वमति (अन्नके लिये), ‘पुत्रस्य तृतीयाप्रतिषेधे, न तु सादृश्यायवाचिनोरपि’ इत्येव पाणिनिसूत्रविरोध परिहर्तुम्

ऐद्दिष्ट । तत्स्वारस्य मुधीभिर्विचारणीयम् ।

तुल्यार्थक धातुके योगस तृतीया होती है, यथा—“अस्य मुखं सीतायां मुखचद्रेण सवदति” उत्तर० ४. । निम, सङ्काश, नीकाश, प्रतीकाश प्रसृति शब्द समासमे उत्तरपद होनेसेही तुल्यार्थ होते हैं, अत एव उनके योगमे तृतीया वा पृष्ठी नहीं होती, देवनिम —देव इव निम (उपमान कर्मधारय), देवान् —देव. उपमा यस्य स (बहुवाहि) ।

* साधारणत पृष्ठीकाही प्रयोग होता है, यथा—“तस्याभ्रमपदस्य नातिकूरे” काद०, “अन समीपे परिणेतुरिच्छते प्रियाऽप्रिया वा प्रमदा स्वबन्धुभिः” शकु० ५. १७, “प्रयामि तस्या सकाशम्” काद०, “न त्यजन्त ममान्तिकम्” हितो० १ ४७ ।

हेनोर्जननी सहते छेसमुत्कटम् ; “अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन् त्रिवार-
मूढ प्रतिभासि मे त्वम्” २० २ ४७ ।

(रु) ‘हेतु’ शब्दका प्रयोग रहनेसे, निमित्तबोधक सर्वनाम शब्दके
उत्तर पद्यों ओर तृतीया होती है, यथा—कस्य हेतो स आगत ? ,
केन हेतुना स आगत ? ।*

७२३ । शिष्टप्रयोगमे धातुभोक्तृ कर्मादि कारक रहनेपरन्तु, उनही
कर्मत्वादि विवक्षा न करनेसे, ‘सम्बन्ध विवक्षा’ मे पद्यों होती है, यथा—
स मम अन्वयन्, “अनुकरोति भगवतो नारायणस्य” काद०, “सा
लक्ष्मीर्यजुस्ते यथा परोषाम्” भा० ७ २८, “किमिव हि दुष्कामकरणा-
नाम् ?” काद०, “तत्र व्यसृजन् भरतस्य” उत्तर० ४, “जयसेनाया-
स्तावन् रूपेण गच्छ” मालविका० ४, “तावद्भयस्य भेत्तव्यम्”
हितो० १ ६८, “स्रोणा विधामो चैव कर्त्तव्य” हितो० १ । इत्यादि ।

७०४ । जब किसी घटनाके पश्चात् कोई समय व्यतीत होना कहा
जाता है, तब उस घटना-सूचक शब्दके उत्तर पद्यों होती है, यथा—“अद्य

* निमित्तार्थक शब्दके योगसे प्राय सभी विभक्तियाँ होती हैं, यथा—
किं निमित्तम्, केन निमित्तेन, कस्मिं निमित्तम्, कस्मात् निमित्तान्, कस्य
निमित्तस्य, कस्मिन् निमित्ते वा वसति ? ऐसे—किं कारणम्, किं प्रयोजनम्
इत्यादि ।

किन्तु सर्वनाम भिन्न अन्य स्थलेमे प्रथमा और द्वितीया नहीं होती
यथा—ज्ञानेन निमित्तेन इत्यादि ।

परस्पर विशेष्य-विशेषण-भावपश्च होनेके कारण निमित्तार्थ-शब्दमेभी
वही वही विभक्ति होती है ।

दशमो मास तावन्म्य उपरतन्म्य" (पिताजीकी मृत्यु हुई आज दश महीने हो गये) मुद्रा० ६, "कतिपये सवत्तरा तन्म्य तप तप्यमानन्म्य" उत्तर० ४ (उनके तप करते कई वर्ष हुए) ।

सप्तमी ।

७२५ । अधिकरण कारकमे सप्तमी विभक्ति होती है, यथा—आसने उपविशति, स्थाल्याम् शोदन पचति ।

७२६ । जिस कारककी (कर्त्ता वा कर्मकी) क्रियाके काल-द्वारा अन्य क्रियाका काल निरूपित होता है, (अर्थात् जिस क्रियाकी निष्पत्तिके साथ अन्य क्रिया उत्पन्न होती है), उसके उत्तर सप्तमी होती है, * यथा—विधौ उदिते स आगत (विधु-दयसमकालम् आगत इत्यर्थ —चन्द्रमा उठने-उठनेके साथ—वह आया)—यहाँ विधु (कर्त्ता) के उदयके काल-द्वारा उसका आगमनका काल निरूपित होनेसे 'विधु'-शब्दके उत्तर सप्तमी हुई, और 'उदिते' यह पद उसका विशेषण होनेके कारण सप्तम्यन्त हुआ, रजन्या प्रभातार्या प्रस्थित (रजनीप्रभात-समकालं प्रस्थित इत्यर्थ.), गोषु लुह्यमानासु गत (गाय—कर्म—के दोहनकालमे), तपो सुप्तयोः स जजागर, जनेषु जागरितेषु चौरा पलायिता, "वचस्यवसिते तस्मिन् सस्वर्जं गिरमात्मभू " कु० २ ५३, "क पौरवे वसुमतीं शासति अविनयमाचरति ?" शकु० १ २६, "क एव मयि स्थिते

* इसको 'भावे सप्तमी' कहते हैं (Locative absolute) ।

चन्द्रगुप्तम् अभिभवितुम् इच्छति ?” मुद्रा० १ ।*

७२७ । क्रिया-द्वारा 'अनादर' समझानेसे, अनादरके कर्ममे (अर्थात् जिसका अनादर किया जाता है, उसके उत्तर) सप्तमी और पष्ठी होती है, यथा—रदति वाले, रदतो वालस्य वा, बहिर्गता माता (रदन्त बालम् अनादृत्य इत्यर्थ) , पश्यत ते मरिष्यामि (पश्यन्तं त्वाम् अनादृत्य इत्यर्थ) , “नन्दा पश्य इव हता पश्यतो राक्षसस्य” (पश्यन्तं राक्षसम् अनादृत्य इत्यर्थ) मुद्रा० ३ २७ , “पश्यतो मे श्येनेनापहस शिशुः” पञ्च० १ कथा २१ ।

७२८ । जाति, गुण, क्रिया अथवा सहा-द्वारा समुदायसे (समग्र सजातीयसे) एकदेशके (एकके) पृथक् करनेका नाम 'निर्द्धारण' । जिससे निर्द्धारण किया जाता है, उसके उत्तर सप्तमी और पष्ठी होती है, † यथा—(जाति-द्वारा) मनुष्येषु

* 'भावे सप्तमी' समझानेके लिये, 'सत्' शब्दको उसका विशेषण करके उसके साथ प्रयोग किया जाता है ('सत्'—अस् + शतृ—शब्दका अर्थ 'होना') , यथा—विधं उदिते सति (चन्द्रके उठनेपर) , रजन्यां प्रभा-
तायां सत्याम् (रात्रिके प्रभात होनेपर) , गोषु दुग्गमानासु सर्षाषु (गायोंके दुही जाती रहनेपर) , तयोः मुप्तये सन्यो (उन दोनोंके मो जानेपर) , जनेषु जागरितेषु ससु (आदमियोंके जागनेपर) । “अग्नेषु ससु घावसु सोमो घावति” अपरोक्षानुभूति ८४ ; “सति सकलदशबाधे” स्वात्मनिरूपणम् २२ ।

† इसको 'अनादरे पष्ठी' कहते हैं (Genitive-absolute) ।

‡ इसको 'निर्द्दारे सप्तमी वा पष्ठी' कहते हैं ।

(मनुष्येषु मध्ये) क्षत्रिय शूर, (अगवा) मनुष्याणां (मनुष्याणां मध्ये) क्षत्रिय शूर (मनुष्योमे—मनुष्योके, वीचमे), (गुण-द्वारा) गोषु कृष्णा बहुक्षीरा, गवा कृष्णा बहुक्षीरा; (क्रिया-द्वारा) अश्वगेषु धावन्त शीघ्रगामिन, अश्वमाना धावन्त शीघ्रगामिन, (सत्त्वा द्वारा) कविषु कालिदास श्रेष्ठ, कवीना कालिदास श्रेष्ठ ।

“भूताना प्रागिन श्रेष्ठा प्रागिनां बुद्धिबीजिन ।

बुद्धिमत्स नरा श्रेष्ठा नेषु ब्राह्मणा मृतना ॥

साक्षरगेषु च विद्वानो विद्वत्स कृतबुद्धय ।

कृतबुद्धिषु कर्तार कर्तृषु ब्रह्मवदिन ॥” मनु० १. ९६-९७।*

७२९ । ‘प्ररांया’ ममज्ञानेमे, ‘साधु’ और ‘निपुण’ शब्दके योगमे सप्तमी होती है, यथा—व्याकरणे साधु, साहित्ये निपुण ।

७३० । ‘इनि’ प्रत्यय सहित ‘क्’ प्रत्ययके पर्यागमे, कर्ममे सप्तमी होती है, यथा—“अधीतो चतुर्षु ज्ञाम्ना षु” दशकुं (अधीतिन्—अधीतम् अनेन, अधीत + इनि Versed or proficient in), “गृहीतो षट्स अद्गेषु” दशकुं (गृहीतिन्—गृहीतम् अनेन, गृहीत + इनि Who has grasped, comprehended or mastered) ।

शिशुप्रयोगमे निन्दारे पञ्चमीमी होती है, यथा—“अज्ञात गृह-मूर्खेषो मृत्नाजालो मुनी वरम्” पञ्च० १, “यत् केशमियुनादेकनवर्षाः तत्रमोहितम्” रामा० ।

* “नराणा नाशिनो धूल, पक्षिणाश्चैव वायव ।

चतुर्भुजा भृगालस्तु, हांणा धूलो च मालिनी ॥” चाणक्य ।

७३१ । 'अन्तर' और 'अधीन' शब्दके योगसे मतनी होती है । यथा—उत्ते अन्त (जलके बीचमें), "निवमन्नन्तराणि लङ्गो बहिनं तु ज्वलित्" पञ्च० १ ३२ ।* "त्वयि अधीनम्" (तेरे अधीन) कु० ४. १० शैकायां महिनाथ ।

७३२ । 'प्रमिन' और 'उत्सुक' शब्दके योगसे मतनी और नृतीया होनी हैं, यथा—मन्काप्ये सत्काप्येण वा प्रमिन (खानक), विद्याया विषया वा उत्सुक ।

७३३ । दो क्रियाभेके मध्यवर्ती कालवाचक और अष्टवचक शब्दके उत्तर न्तमा और पञ्चमी होती हैं, यथा—(कालवाचक) अन् अथ भुक्त्वा अन्ने अन्नात् वा भोक्ता (आज खाकर यह तीन दिव पीजे खायेगा), (अष्टवचक) अयम् इह स्थित्वा अग्रे अगतात् वा लब्धं विध्येत् (यहाँ रहकर यह एक कोमर लप्य विद्ध बर मकता है) ।

७३४ । दूरार्थ और अन्तिकार्य शब्दके उत्तर मममी, और द्वितीया, नृतीया, पञ्चमी होती हैं; यथा—यामस्य दूरे, दूरम्, दूरेण, दूरात् वा: गृहस्य अन्तिने, अन्तिकम्, अन्तिकेन, अन्तिवात् वा । †

७३५ । नाक्षिन्, प्रतिम्, कुशल, स्वामिन्, ईश्वर, अधिपति, प्रसूत और आयुक्त शब्दके योगसे मतनी और षष्ठी होती हैं; यथा—विवादे

* 'अन्तर'-शब्दके योगसे षष्ठी भी होती है, यथा—"अन्त वञ्चुके वञ्चुक्ष्य" रत्ना० २ ३; "प्रतिबलजलेरन्तरावशमाने" वेणी० ३. ७, "बहिरन्तश्च भूतानाम्" गीता. १३. १५ ।

† दूरार्थ और अन्तिकार्य शब्द विशेषण होनेसे विशेषप्रधान होता है; यथा—दूर मम; दूर पन्था ।

विवादस्य वा साक्षी , व्यवहारे व्यवहारस्य वा प्रतिभू , सीमासाया
मासाया वा कुशल , गोपु गवा वा स्वामी , ब्राह्मण्या ब्राह्मण्या वा
प्रसूत , ग्रन्थरचने ग्रन्थरचनस्य वा आयुष (व्यापृत , तत्पर इत्यर्थ) ।

७३६ । निमित्तशोधक शब्द कर्मकारकमे समरेत (अर्थात् अवयव-
रूपमे सम्बद्ध) रहनेसे, उसमे सप्तमी होती है, यथा—“चर्मणि द्वीपिन
इन्ति, दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम् । केशेषु चर्मरि इन्ति, मानेषु हरिणो हतः ॥”
(चर्मणि—चर्मनिमित्तम् इत्यर्थ) ।

विधेय विशेषण ।

७३७ । जिसके विषयमे कुछ कहा जाता है, उसको 'उद्देश्य'
(Subject) कहते हैं , और जो कुछ कहा जाता है, उस
'विधेय' (Predicate) कहने है , यथा—सुशील बालक
आदरणीय होता है—इस वाक्यमे बालकके विषयमे कहा
जाता है, इसलिये 'बालक' उद्देश्य, 'सुशील' उद्देश्य विशेषण,
'आदरणीय' विधेय विशेषण, और 'होता है' क्रियाभी विधेय ।
विधेय-विशेषण विशेष्यके पश्चात् बैठता है , यथा—ईश्वरो
दयालु , सूर्य तेजोमय , पृथिवी सुनिस्तीर्णा , जल शीतलम् ,
फल मधुरम् , धर्म परमो बन्धु ।

(क) विशेष्यपद विधेय विशेषण होनेसे, तदनुवाही सर्वनाम और
क्रियापद बँधे है ; यथा—“शैत्य हि यत् , सा प्रवृत्तिर्जलम्य” २० ५ ५४
“दग्निद्वयं यत् मरणम् , सोऽस्य त्रिधाम ” , “मातुस्तु यौतकं यत् , स्यात्
कुमारीभाग एव स ” मनु० ९ १३१ , “सन्त तृतीया गति उक्ता” ।*

* विधेय विशेषण रूपसे व्यवहन पत्र, पद, आहारद, स्थान, भावन

(ख) उद्देश्य और विधेय पदका उल्लेख रहनेसे, विधेयके अनुसार क्रिया बैठती है, यथा—भवन्त प्रमाण भवति ।

(ग) प्रकृति और विकृतिका उल्लेख रहनेसे, प्रकृतिके अनुसारही क्रिया बैठती है, यथा—एको वृक्ष पत्र नौका भवति ।

अनुवाद करो—तू कौन ? लट्ट, तुम क्या करते हो ? वह अच्छा पढ़ता है । हमारे प्रति कृपा कीजिये । बिना परिश्रम कोई कार्य्य निरुद्ध नहीं होता । मने मारी रात जागी थी । अखरने उसकी अट्टुणी ठिन्न हो गयी । वह शोक हेतु क्रन्दन करता है । हमारे साथ तूभा आ । मूर्ख पुत्रमे क्या प्रयोजन ? बृथालापमे प्रयोजन नहीं । पिताके तुल्य कौन पूतनीय है ?

और प्रमाण शब्द सर्वदा क्लीबलिङ्ग एकवचनान्न हेतु है, (उद्देश्य अर्थात् कर्त्ताके लिङ्ग वचन चाहे जो हों), और क्रिया कर्त्ताके अनुसार होती है, विधेय-विशेष्यपदके अनुसार नहीं । यथा—“विविधमहमभू पात्रमालोकितानाम्” मालती० १ ३० । “अविवेक परमापदा पदम्” (स्थानम्, काण्णमित्यर्थ) भा० २. ३०, “सम्पद पदमापदाम्” द्विती० १ २२२; “त्रे वान स्यु परिभवपदं निष्पन्नारम्भयत्ना ?” मेघ० ५४. । “निर्द्वन्द्वता सर्वा पदामास्रदम्” मृगु० १ १४, “करिष्य काण्णशास्रदम्” भामिनी० १ १, “आस्रपद् स्वगति गर्वसम्पदाम्” भा० १३ ३५ । “गुणा पूनास्थान गुणियु, न च लिङ्ग, न च वय ” उत्तर० ४ ११ । “म श्रियो भाजन नर ” पञ्च० १ २६६, “कल्पणाना त्वर्मास महर्णा भाजन विद्वमूर्ते !” मालती० १ ५. । व्याकरणे पाणिनि प्रमाणम्, “धर्मं जिज्ञे समानाना प्रमाण परम शुभ ” मनु० २ १३, “आर्यमिध्रा प्रमाणम्” नालकि० १, ‘एतदाकर्ण्य देव प्रमाणम्’ (कार्य्याकार्य्यनिर्दिता द्रष्टि भाव) काद० ।

पिताजीको प्रणाम । हम अध्ययनके लिये विद्यालयमें आये हैं । घासे निकलो । मित्र बिना कौन दित कतर है ? आजते में पाठमें मनोयोगी हूँगा । नगरमें बाहर रहना अच्छा । चन्द्रकी अपेक्षा सूर्य बृहत्तर । तैर नियाम कहां ? पृथिवीके नीचे और सात लोक हैं । उसके ऊपर पुनः-पृथि गिरी । हमलोगोंमें कौन पुरस्कार पायेगा ? मेरा गरजनेरा (गर्जन्तु) मयूर नावने हैं । युद्धमें जानेको तैयार (सज्ज) होता है । पहाड़में चटकरी गाँव देखना है । पर्वतोंके बीचमें हिमालय दृश्यतम । प्रनालोग राजाके अधीन । वह वाके भीतर दीपक जलाकर पढ़ता है । इस गाँवको चारों ओर त्रिभिड वन । वे दरिद्र, इसलिये (दरिद्र इति) सभीके अवज्ञा-भाजन । भीमके पीठे अर्जुनका जन्म हुआ । तैरा पढ़नेरा में पढ़ाँगा । त्रिम विद्यासे धर्मज्ञान हो, वही श्रेष्ठ ।

शुद्ध करो—अरण्येऽधिवन्सु यतय इच्छन्ति । सन्न्यासी बहवो दिना-न्त्येकस्थाने नावसेत् । यद्रामादन्तरणापोष्या शून्या हृदयते, तन् कैफयी-ववनस्य परिणाम । अल्प गिरेरभितो बहवोऽश्मान मन्ति । अस्य वन्मन परित पलाशवृक्षा हृदयन्ते । हा रिद्धिमेऽन्नायावाग कुर्वते । स सकला रात्रिरय विचारयस्तस्यो । दुष्टपौवन पाण्डवात्तामिच्छत् । मम 'वचन स न विषमिति । सर्वेष्व पुत्रेष्वो गोगाल रितु प्रेष्ट । सर्वान्पयो नदीन्पयो भागोरथी प्राधिष्टा । स भोजनादनु बहिरगच्छत् । सपरमुखाति केवल दु स्तन्याममर्षीति साधोऽन्तरंग को जानाति ? इय नगरं त्रय श्लोशा आयता । धनिद्र द्रव्य यावित भिषुक्ते । अन्मोनिर्दिशुः स मन्त्रे देवे । तेषा मे च मत्पमन्ति । अय दित्तमन्त्रयस्त एव । ता वाऽप्रातय, आ वा तत्र नय । हे जगन्नाथ ! मे सर्वांगि पापानि क्षमस्व । क्रुद्ध पुष्ट

शिलायामप्यधिगेते । पथिक अत्यन्तं सति, तस्य सार्द्धमहमगच्छम् । ममा-
 गतेषु बालेषु, तान् फलानि दातुमारभस्व । दम्नश्च पैशुन्यञ्च सदा गहं-
 नीयौ । पिता च माता च वार्द्धक्ये परिपालनीय । अनास क्षेत्र नोयमाना-
 सु, सा शस्यमखादयत् । भार्याया आशोशन्त्या सा भर्ता प्रतिषिद्धा ।
 रूपवती भार्या सदा प्रीतिपात्रा भवति । यत् स एवम् उवाच, तत् तस्य
 दोष एव । यत् क्वाय्यमित्याचक्षते, तत् प्रहृतिरेव खलानाम् । त्वं मम
 प्राणानामपि प्रियतरा, अतस्त्वा सर्वं कथयामि । अह वा त्व नचदार ।
 राजाश्वराधिन शता रूपका दण्डगा । इन्द्र स्वयदा किन्नरमिथुनेगांपया
 मुस । प्रासादस्य परितोऽमात्य भिक्षुकान् स्थापयति राजा । क्षुधिनेन
 वत्सेन पय पायय, तमन्नं वा खादय । राज्ञी वनात् पुष्पाणि दासीरानाय-
 यत् । अह मम मित्र मा पारितोषिकमदापयम् । तस्या नाश्यां अवलोक्न-
 स्त्वं पात्रे ते नरा यभूज । अत्र विषये ईश्वरो न दोषाम्बुद । सा तपस्विनी
 मत्कृपापात्र जातम् । गोविन्दस्तस्य भार्या च स्तुत्यवरिते स्त । तत्रो
 दमो निस्पृहता च सर्वे अमी यत्पु प्रशस्त्या । क्रते राम जनक कमपि
 नृपे शिवधनुर्भञ्जयितु न दाशक । अथ परतोऽस्य ग्रामस्योत्तर । रामस्य
 पूर्वं गोविन्द आगच्छतु । त दिवममारभ्य मम मन पथ्यांकुल जातम् ।
 पुत्रविनाहस्यानन्तरं पिता ग्रामस्य बहिरात्रमपेऽध्युवाम । म शिष्येऽप-
 निपद् वेदयामास । स्वामिना मृत्येन धेनु पयो दोहने । भिक्षुः धेष्टिनं
 धन याचयति । स नर पदस्य स्वप्न, अयन्तु नयनस्य का । स जम्बू-
 द्वीप नावि गत, शक्ये च प्रत्यागत । यजदत्त कुण्डिनपुराय प्रेषित ;
 स मासद्वये प्रत्यागमिष्यति । गोविन्दो यूयश्चैतदकुस्ताम् । अह ते वीराश्च
 शत्रून् पराजयन्त । त्वमह गोपालसुखश्च तत् कृत्यं कुर्युः । अथं वदन्ते

ब्राह्मणा वा ग्राम गच्छतु । यूय वय वा नदीं गमिष्यथ । अतस्त्वा दूरादेऽ
 नम । यदि स त्वया पाठ नाध्यापयति, तर्हि मा तन्निवेदय । अय नर
 श्रौराणामतीव विभेति । मनागमनस्य प्रागेव स गत । अल त बहु ताड-
 यितुम् , सोऽत्यशक्त । अस्य पुस्तकस्य रामाय प्रयोजन नास्ति । ये यतयो-
 ऽरण्येऽधिवसन्ति, तेभ्यो नृपानुपहस्य क उपयोग ? भक्ति देवो रोचने ।
 अह देवदत्तस्य शता रूपका धारयामि । स मयि द्रुह्यति , नाह तस्मा
 अभिद्रुह्यामि । न किमपि त्वामधुना प्रतिशृणोमि । राज्यस्योपरि चण्डवर्मा
 शास्ति । रामो रावण हत्वा विभीषणो लङ्काराज्ये स्थापित । त्वया प्रात
 रेव गा पयो दोग्धव्यमिति तमादिशन् रामोऽत्रागतवान् । रामाय द्वौ पुत्रा-
 वास्ताम् । प्रभवति निजाय कन्यकाजनाय महाराज । वानुकि पाताल-
 तलम्येष्टे । मामपे किं तिष्ठसि ? अस्य परतम्य पूर्वं महाबापी वर्त्तते ।
 अस्मादुत्तरतस्तु रौद्र इमशात्म् । उपत्रनाहक्षिणेनात्तरव ध्रुत्वा दु खितान्
 शरण प्रत्यशृणोत् । अधुना सृष्टिर्भवति चेत् , सुभिन्न सर्वत्राजनिष्ट ।
 अह श्य पयि महान्त भुजग ददर्श । अत्र विषये तव सन्देहो मा भूत् । मा
 चौरानभेष्ट । भ्रातु सार्द्धं मा कल्हमकृथा । अशीतिदित्रमा यावत् स भृत्यो
 मामसेविष्ट । ते रथे कुसुमपुराय यातवन्त । यावद्धनमोक्षरेणास्मान् दीयते,
 तस्मिन् सन्तोष कार्य्य । अय मम विरन्तनो वयस्यो भवितव्य ।
 त्वय्यस्मान् शासति, कथमस्माभिरभिभूत भाव्यम् ? कुमन्त्रिणा नृपमभा
 न प्रवेष्टव्यम् । जितोऽसौ मया षोडशसहस्राणा रूपकाणाम् । त्व चेन्मम
 कार्य्यं करोपि, त्वामह मुद्रिकाशत दास्यामि । त्वामत्रावस्थानु कथमहमनु-
 नस्ये ? अहं त्वामेतत् कर्तुमिच्छामि । इम ग्रन्थ वाचयितु न शक्यते । इम-
 मात्र नृक्षमध पातयितु न साम्प्रतम् । विजयतु भवाद् , य एवं जनानामन्द्य ।

समास-प्रकरण (Compound) ।

पहले कहा गया, कि विभक्तियुक्त शब्द और धातुको 'पद' कहते हैं । इसलिये 'जगत पति'—इस स्थलमें 'जगत्'-शब्दको षष्ठीके एकवचनमें—'जगत', और 'पति' शब्दको प्रथमाके एकवचनमें—'पति' होनेसे, ये दो पद हैं । कभी कभी 'जगत्पति'—ऐसा प्रयोगभी किया जाता है । तब 'जगत्' शब्दमें विभक्ति नहीं है, केवल 'पति'-शब्दमेंही विभक्ति है, इसलिये 'जगत्पति' एक पद हुआ । इसप्रकार, 'कन्द मूल फलम्' इन तीन पदोंको लेकर 'कन्द मूल फलानि' एवा एकपद किया जाता है ।

७३८ । दो अथवा यह पदोंके एकपदीकरणको* 'समास' कहते हैं ।

समास छ प्रकार—(१) नत्पुरुष, (२) कर्मधारय, (३) द्विगु, (४) छन्द, (५) बहुव्रीहि और (६) अन्ययोमात्र ।

परस्पर अन्वय (अर्थात् अर्थसङ्गति वा आकाङ्क्षा) न रहनेसे किमो पदका मनाम नहीं होता ; यथा—राज छन्दस पुत्र—यहां 'राज' और 'पुत्र' इन दोनों पदोंके, अथवा 'छन्दस' और 'पुत्र' इन दोनों पदोंका परस्पर अन्वय है, इसलिये उन्हींका मनाम हो सकता, 'राज' और 'छन्दस' इन दोनों पदोंका परस्पर अन्वय न रहनेके कारण मनाम नहीं हो सकता (अर्थात् 'छन्दस राजपुत्र' वा 'राज छन्दसपुत्र' अथवा

* जो पूर्वमें एकपद नहीं थे उनके एकपद करना ।

† समसन संश्लेषणम् । परस्परविषयो पूर्वोत्पदयोरुच्यतेन न्यसनेन समासः ।

'छन्दर-राजपुत्र' हो सकता है, किन्तु 'राजछन्दर पुत्र'—ऐसा नहीं होगा)।*

नित्यसमास-भिन्न सब समासही विकल्पसे होता है । समासविच्छेदके वाक्यको 'व्यास वाक्य' अथवा 'विग्रह-वाक्य' कहते हैं † । जिन पदोंका समास किया जाता है, उनको 'समस्यमान पद' कहते हैं । समासनिपन्न पदको 'समस्त-पद' कहते हैं । समस्यमान पदोंके बीचमें सर्वप्रथम पदको 'पूर्वपद', और सर्वशेष पदको 'उत्तरपद' कहते हैं ।

७३९ । समासके अन्तर्गत पदोंकी विभक्तिका लोप होता है ।‡

* "श्रुतदेहाविसर्जनं पितु" २० ८ २५, "रतेष्टहीतानुनयेन" २० ६. २, "अप्रविष्टविषयस्य रक्षसाम्" २० ११ १८, "अवेदनाज्ञ कुलियक्षता-नाम्" कु० १ २०, "ज्ञातविशेषे पुंसाम्" कु० ३ ३, "मरुताम् आकृष्ट-लीलान् नरलोकापालान्" २० ६ १, "वाणेन भित्तहृदय" —ऐसे स्थलोंमें "सापेक्षत्वेऽपि गमकत्वात् समास" कहते हैं, अर्थात् कारक और सम्बन्धपदके साथ आकाङ्क्षा रहनेपरभी यदि अनायाम अर्थबोध हो, तो उनके पृथक् रक्षकर समास किया जा सकता है । विशेषणपद पृथक् नहीं रहता, यथा—धार्मिकब्राह्मणपुत्र — ऐसा समास होगा, धार्मिकस्य ब्राह्मणपुत्र — ऐसा नहीं होगा ।

† वृत्त्यर्थ (समासार्थ)-बोधक वाक्य विग्रह ।

‡ समास प्रवृत्ति-कारणसे (अर्थात् समास होनेसे, और प्रत्यय परे रहनेसे) जिन शब्दोंके उत्तर विभक्तिका लोप होता है, वेभी पदमें गिने जाते हैं, इसलिये वे पदान्तविहित कार्य प्राप्त होते हैं । (इसका तात्पर्य यह है, कि जिनके उत्तर विभक्तिका लोप होता है, वे वास्तवमें पद नहीं,

७४० । वृद्धन्त, तद्धितान्त और समन्त (ननासन्निपन्न) शब्द प्रातिपदिक होते हैं, इसलिए इनके उत्तर फिर नूतन विभक्ति होती है ।

(१) तत्पुरुष समास ।

(Determinative Compound)

७४१ । जिस समासमें उत्तरपदका अर्थ प्रधान होता है,

किन्तु पदके तुल्य कार्य प्राप्त होने हैं) । यथा—‘जात ईश्वर’—इन दोनों पदोंके समासमें ‘जात-ईश्वर’ होता है, समास-विधिके अनुसार ‘जगत्’-शब्दकी विभक्तिसे लोपसे दोनों मिलके एकपद होनेपरभी, ‘जगत्’-शब्द पदमें गण्य होनेके कारण पदान्तकार्य प्राप्त होगा, अर्थात् व्यञ्जन-सन्धिके नियमानुसार पदान्तस्थित ‘त्’ के स्थानमें ‘द्’ होगा, सुतरां ‘जात-ईश्वर’ यह पद सिद्ध होगा । इसप्रकार, ‘मृतो विचार’ इस वाक्यमें ‘मृद्’-शब्दके उत्तर ‘मदत्’ प्रत्यय करनेमें, ‘मृद्-मय’ होगा; और ‘मृद्’-शब्दके विभक्तिलोपसे वह पदमें गण्य होनेके कारण ‘द्’ के स्थानमें ‘त्’, तत्पदका ‘त्’ के स्थानमें ‘न्’ होगा, और पञ्चविधानानुसार ‘न्’ मूर्द्धन्य नहीं होगा, सुतरां ‘मृ-मय’ सिद्ध होगा ।

किन्तु तद्धितके ‘य’ और श्वरवर्ण परे रहनेमें, लुप्त-विभक्तिक शब्द पदमें गण्य नहीं होता; यथा—जात + इक (णिक) जातिक । अस्त्यर्थ-प्रत्यय परे रहनेमेंभी तकारान्त और मकारान्त शब्द पदमें गण्य नहीं होते, यथा—ताडित् + मनुष्य-नडित्वत्, रजम् + क्लृप्त-रजस्वत् । किन्तु भवदीय, अह्यु, ग्यु, शुभ्यु—इन स्थलोंमें पद होता है । चतुर्थ, पञ्च शब्दादि स्थलोंमें पद नहीं होता ।

उसे 'तत्पुरुष समास' कहने हैं ।*

(प्रथमा-तत्पुरुष)

७४२ । पष्ठ्यन्त एकदेशीके (अर्थात् अवयवीके) साथ प्रथमान्त एकदेशके (अर्थात् अवयवके) समासको 'प्रथमा तत्पुरुष' कहते हैं † ।

(क) एकवचनान्त अवयवीके साथ पूर्व, अपर, अधर, उत्तर—इनका समास होता है, यथा—(पूर्व कायम्य) पूर्वकाय , † अपरकाय , अधरकाय , उत्तरकाय । एकवचन न होनेसे नहीं होता, यथा—पूर्व छात्राणाम् आमन्त्रयस्व ।

(ख) काल्वाचक पदके साथ समस्त एकदेशवाचक पदका समास होता है । यथा—(पूर्वम् अहम्) पूर्वाहम् , (अपरम् अहम्) अपराहम् , (मध्यम् अहम्) मध्याहम् , (साय साय वा अहम्) सायाहम् § । (पूर्व रात्रे) पूर्वरात्र , (मध्य रात्रे) मध्यरात्र , (अपर रात्रे) अपररात्र । (८२९ सूत्र) ।

* तत्पुरुषममामनिधेय शब्द उत्तरपदके लिङ्ग और वचन प्राप्त होता है ।

† इसको 'एफ्देशि-समास' कहते हैं । इसमें पूर्वपद प्रथमान्त होता है, इसलिये यहाँ इसे 'प्रथमा-तत्पुरुष' कहा गया ।

‡ यहाँ 'पूर्वम्' और 'वापस्य' दन दोनो पदोंकी विभक्तिका लोप होनेसे 'पूर्वकाय' यह समस्त शब्द उत्पन्न होता है, पश्चत् उसके उत्तर यथासम्भव प्रथमादि विभक्ति होती है ।

§ 'सायम्' शब्दके मकारका लोप होता है ।

(ग) एकवचनान्त अव्ययोंके साथ क्वावलिङ्ग 'अर्द्ध'-शब्दका* समास होता है, (यथा—अर्द्धम् आसनस्य) अर्द्धासनम्, (अर्द्धं पिप्पल्या) अर्द्धपिप्पली, (अर्द्धं कोशातक्या) अर्द्धकोशातकी । एकवचन होनेसे नहीं होता, यथा—अर्द्धं पिप्पलीनाम् ।

(द्वितीया-तत्पुरुष)

७४३ । प्रथमान्त पदके साथ द्वितीयान्त पदके समासको 'द्वितीया-तत्पुरुष' कहते हैं ।

(क) 'ध्रित' प्रभृति शब्दा उत्तरपद होनेसेही द्वितीया-तत्पुरुष होता है, यथा—(वृक्ष ध्रित) वृक्षध्रितः, (दुःखम् ऋतीतः) दुःखातीतः, (गृह गत) गृहगतः, (सुख प्राप्त) सुखप्राप्तः, (कृप पतित) कृपपतितः, (मरणम् आपन्नः) मरणापन्नः, (ग्राम गामी) ग्रामगामी, (शुभम् इच्छुः) शुभेच्छुः, (धनम् ईप्सुः) धनेप्सुः, (अन्नं बुभुक्षुः) अन्न-बुभुक्षुः, (वेदं विद्वान्) वेदविद्वान् ।

* "मित्त शकल-खण्डे वा पुस्त्यर्थोऽर्धं समोऽशके" अमर । क्वावलिङ्ग 'अर्द्ध' शब्दका अर्थ—समान अश अर्थात् तुल्यार्द्ध (आधा टुकड़ा), और पुलिङ्ग 'अर्द्ध'-शब्दका अर्थ—खण्ड अर्थात् असमान अश (टुकड़ा) । पुलिङ्ग 'अर्द्ध' शब्दका षष्ठी तत्पुरुष समास होता है, यथा—(चन्द्रस्य अर्द्ध) चन्द्रार्द्धं, "कोशादे प्रकृतिपुर संरेण गत्वा [पुस्त्येण]" २-१३ ७९ (कोशादेशमित्यर्थ) ।

† ध्रितादि—ध्रितातीत-गत प्राप्त पतितापन्न-नामिनः †

'उ'-प्रत्ययान्तशब्दस्य विद्वांश्चिने ध्रितादयः ॥

७४४ । निन्दा समझानेमें, 'क्त' प्रत्ययान्त पदके साथ 'खद्वा'-शब्दका द्वितीया तत्पुरुष होता है, यथा—(खद्दाम् आरूढ) खद्दा-रूढ (उत्पद्यप्रस्थित इत्यर्थ) । “खद्दारूढोऽविनीत स्यात्” त्रिकाण्ड-शेष । नित्यसमासोऽयम् ।

७४५ । 'व्याप्ति' अर्थमें द्वितीया-विभक्त्यन्त कालवाचक पदका द्वितीया-तत्पुरुष होता है, यथा—(क्षण सप्तम्) क्षणसप्तम्, (मुहुर्त्तं दु सप्तम्) मुहुर्त्तं दु सप्तम्, (मासं गम्य) मासगम्य, (वर्षं भोग्य) वर्षभोग्य, —(क्षण, मुहुर्त्तं, मासं, वर्षं व्याप्य इत्यर्थ) ।

(तृतीया-तत्पुरुष)

७४६ । प्रथमान्त पदके साथ तृतीयान्त पदके समासको 'तृतीया-तत्पुरुष' कहते हैं ।

(क) कृतप्रत्ययनिष्पन्न पदके साथ कर्त्तारमें और करणमें विहित तृतीया-विभक्त्यन्त पदका तृतीया तत्पुरुष होता है । यथा—(कर्त्तारमें)—(व्याघ्रेण हत) व्याघ्रहत, (अहिना दष्ट) अहिदष्ट, (व्यासेन रचित) व्यासरचित, (पाणिनिना प्रणीतम्) पाणिनिप्रणीतम्, (नारदेन प्रोक्तम्) नारद-प्रोक्तम्, (राज्ञा पालितम्) राजपालितम्, (द्विजेन भक्ष्यम्) द्विजभक्ष्यम् । (करणमें)—(नखे भिन्न) नखभिन्न, (अस्तिना छिन्न) अस्तिच्छिन्न, (अग्निना दग्ध) अग्नि-दग्ध, (जलेन सिक्त) जलसिक्त, (अञ्जलिना पेयम्) अञ्जलिपेयम्, (शिरसा धार्यम्) शिरोधार्यम् ।*

* दात्रेण स्तनवान्, परशुना छिप्रवान्—इत्यादिस्थलोंमें समास नही होता ।

७४७ । ऊनार्थे पदके माय तृतीया-तत्पुरुष होता है ; यथा—(एकैव ऊन) एकैव , (विद्या हीन) विद्याहीन , (धनेन रहित) धन-रहित , (गर्वेण शून्य) गर्वशून्य ; (अग्नेन विरुद्ध) अद्भुतविरुद्ध ।

७४८ । 'पूर्व'-प्रभृति पदके माय तृतीया-तत्पुरुष होता है ; यथा—(नात्तेन पूर्व) मात्पूर्वं (वदेन अवर) वपांवर ; (मात्रा सदृश) मातृसदृश , (सिद्धा मन) सिद्धमन , (वाचा कडह) वाक्कडह ; (गुडेन मिश्र) गुटमिश्र , (आचारण श्लेष—नगोहर इत्यर्थ) आचारश्लेष , (धनेन अर्थ) धनार्थ ।

(चतुर्थी-तत्पुरुष)

७४९ । प्रथमान्त पदके साय चतुर्थ्यन्त पदके समासकी 'चतुर्थी-तत्पुरुष' कहते हैं, यथा—(विप्राय दत्तम्) विप्रदत्तम् ।

७५० । बलि, हित और सख मन्त्रके माय चतुर्थी-तत्पुरुष होता है, यथा—(भूताय बलि) भूतबलि ; (पुत्राय हितम्) पुत्रहितम् , (आत्रे सुखम्) आतृसुखम् ।

७५१ । प्रकृति विकृति-भाव मनवानेसे, तादर्थ्यमे विहित चतुर्थी-विभक्त्यन्त पदका चतुर्थी तत्पुरुष होता है ; यथा—(कुण्डलाय हिरण्यम्) कुण्डलहिरण्यम् , (यूराय दार) यूरदार ;—यहाँ 'हिरण्य' और 'दार'—प्रकृति, 'कुण्डल' और 'यूर'—विकृति । प्रकृति विकार-भिन्न अन्य स्थलमे चतुर्थी तत्पुरुष नहीं होता ; यथा—रन्धनाय स्याली—यहाँ समास नहीं होगा ।*

* स्वतः सिद्धे वस्तु प्रकृति, रूपान्तरितं विकृति ।

† 'रन्धनस्याली'—यहाँ पठ-तत्पुरुष समास होगा ।

(पञ्चमी-तत्पुरुष)

७५२ । प्रथमान्त पदके साथ पञ्चम्यन्त पदके समासको 'पञ्चमी-तत्पुरुष' कहते हैं ।

(क) 'भय'-प्रभृति पदके साथ पञ्चमी तत्पुरुष होता है, यथा—(व्याघ्रात् भयम्) व्याघ्रभयम्, (व्याघ्रात् भीत) व्याघ्रभीतः, (व्याघ्रात् भी) व्याघ्रभी, (व्याघ्रात् भीति) व्याघ्रभीति, (गृहात् निर्गत*) गृहनिर्गतः, (अधर्मात् विरत) अधर्मविरत, (स्वाध्यायात् प्रमत्त) स्वाध्यायप्रमत्त, (सुखात् अपेत) सुखापेत, (बन्धनात् मुक्त) बन्धनमुक्त, (रथात् पतित) रथपतितः, (तरङ्गात् अपत्रस्त) तरङ्गापत्रस्त*, (विदेशात् आगत) विदेशागत*, (सितात् इतर) सितेतरः ।

(पष्ठी तत्पुरुष)

७५३ । प्रथमान्त पदके साथ पष्ठ्यन्त पदके समासको 'पष्ठी तत्पुरुष' कहते हैं, यथा—(गङ्गाया जलम्) गङ्गाजलम्, (तरो ह्याया) तरुच्छाया, (अग्ने शिखा) अग्निशिखा, (वायो वेग) वायुवेग, (जलस्य प्रवाह) जलप्रवाह*, (सुखस्य भोग*) सुखभोग, (पयस पानम्) पयपानम्, (कन्यायाः दानम्) कन्यादानम्, (गवां दोह) गोदोह, (आज्ञाया भङ्ग) आज्ञामङ्ग, (दशाया अन्त) दशान्त, (सूर्यस्य उदय*) सूर्योदयः; (वृष्टे पात*) वृष्टिपातः, (शिरस छेद*) शिरश्छेदः, (गवां वध*) गो

वधः (पितुः गृहम्) पितृगृहम् , (राज्ञः भवनम्) राजभ-
वनम् , (मनो. वचनम्) मनुवचनम् ; (अर्थस्य नाशः)
अर्थनाशः , (कूपस्य उदकम्) कूपोदकम् ।

७५४ । 'निर्द्धारण'-अथमे विहित पद्यो त्रिमक्त्यन्त पदका समास नहीं होता , यथा—धर्मभृता वर , क्षत्रियो नराणा शूरतम , ब्राह्मणो वर्णाना पूज्यतम ।

(क) पूरणार्थं पदक साथ षष्ठ्यन्त पदका समास नहीं होता ; यथा—राज्ञां प्रथम , पुत्रयोः द्वितीय , भ्रातृणा वृत्तोय , शिष्याणां चतुर्थ , छात्राणां पञ्चम ।

(ख) गुणवाचक पदके साथ षष्ठ्यन्त पदका समास नहीं होता , यथा—पठ्य शौक्यम् , कोरुनदम्य लौहित्यम् , आकाशम्य नीलिमा ; द्राक्षाया माधुर्यम् ।

किम्बो किम्बो स्थलमे होता है ; यथा—(अर्थस्य गौरवम्) अर्थगौरवम् , (बुद्धे मान्यम्) बुद्धिमान्यम् , (अर्थस्य काश्यम्) अर्थकाश्यम् , अङ्गमार्दवम् , वचनकौशलम् ।

(ग) तुप्त्यर्थं पदके साथ षष्ठ्यन्त पदका समास नहीं होता , यथा—अथा वृष , फलानां सुहित ।

(घ) कर्त्तामे विहित 'वृच्' और 'णक्' (अक) प्रत्ययके योगसे निष्पन्न पदके साथ कर्ममे विहित षष्ठ्यन्त पदका समास नहीं होता । यथा—(वृच्) जगत खटा , सुतस्य दाता , दुःखस्य हर्त्ता । (अक) प्रजानां पालक , वृक्षाणां ऐदक , शत्रूणां घातक ।

याजकादि शब्दके साथ समास होता है ; यथा—(शूद्राणां याजक)

शूद्रयाजक , इवपूजक ; राजतरिचार्क , अन्नतरिवेचक , जलतरिवेचक ;
वेदाध्यापक , अनर्थोत्पादक , पुराणवाचक , मुक्तिप्रयोक्तक , भुवनमर्त्तक ;
हविर्होता , गुणप्रहीता ; गुणग्राहक ।

(सप्तमी-तत्पुरुष)

७५५ । प्रथमान्त पदके साय सप्तम्यन्त पदके समासको
'सप्तमी-तत्पुरुष' कहते हैं ।

(क) 'शौण्ड'-प्रभृति शब्द उत्तरपद होनेसेही सप्तमी-
तत्पुरुष होता है , यथा—(दाने शौण्ड —विख्यात इत्यर्थ)
दानशौण्ड , (शास्त्रे प्रवीण .) शास्त्रप्रवीण , (कर्मसु
निपुण) कर्मनिपुणः , (रणे परिदत्त) रणपरिदत्त , (क्रोडायां
कुशल) क्राडाकुशल . , (कार्य्ये दत्त) कार्य्यदत्त . , (विचारे
पटु .) विचारपटु , (व्याख्यानं चतुर) व्याख्यानचतुरः ,
(विषये चपल .) विषयचपल , (आतपे शुष्क) आतपशुष्क ,
(स्थाल्यां पक्व) स्थालीपक्व , (वने अन्त) वनान्त ,
(ईश्वरे अधीनः) ईश्वराधीन , (मन्त्रे सिद्ध) मन्त्रसिद्ध ।

७५६ । 'ऋण' मनज्ञानेने, कृत्यप्रत्ययनिष्पन्न पदके साय सप्तमी-
तत्पुरुष होता है ; यथा—(मासे इयम्) मासदयम् [ऋणम्] , (वर्षे
परिशोषयम्) वर्षपरिशोषयम् [ऋणम्] । ('यन्' प्रत्ययेनेव इत्यने) ।

७५७ । 'क्त' प्रत्ययनिष्पन्न पदके साय दिवस और रात्रिके अवयव-
वाचक पदका सप्तमी-तत्पुरुष होता है , यथा—(पूर्वाह्ने कृतम्) पूर्वाह्न-
कृतम् , (अरात्रे कृतम्) अरात्रकृतम् , (पूर्वात्रे कृतम्) पूर्वात्र-
कृतम् , (अरात्रात्रे कृतम्) अरात्रात्रकृतम् ।

७५८ । 'निन्दा' समझानेसे, 'काक' वाचक पदके साथ क्तनो-
तत्पुरुष होता है, यथा—(तार्थे काक इव) तीर्थकाक ; तीर्थरायन ;
तीर्थध्वाङ्गु. ;—(लोलुप इत्यर्थ) ।

(नञ्-तत्पुरुष)

७५९ । प्रथमान्त पदके साथ 'नञ्'—इस अन्ययने
समासको 'नञ् तत्पुरुष' कहते हैं, यथा—(न ब्राह्मण) अब्रा-
ह्मण ; (न मोघ) अमोघ (न प्रिय) अप्रिय, (न वि-
कृत) अविकृत, (न सिद्ध) असिद्ध, (न सुखम्)
असुखम्, (न दर्शनम्) अदर्शनम्, (न उपलम्भ) अनु-
पलम्भ ।

* 'नञ्' क अथ छ-प्रकार—(१) सादृश्य, यथा—अत्र द्रव
(ब्राह्मणसदृश इत्यर्थ), (२) अभाव, यथा—अभोजनम् (भोजना-
भाव इत्यर्थ), अवापम् (पावभाव इत्यर्थ); (३) अन्वय, यथा—
असुखम् (सुखात् अन्वय, दुःखमित्यर्थ), अघट पट- (पटो घटमिन्न
इत्यर्थ); (४) अल्पता, यथा—अलुदरी कन्या (अल्पोदरी, कृशोदरा,
तनुमध्यमा इत्यर्थ); अकेशी (अल्पकेशी इत्यर्थ); (५) अप्रसस्तता ;
यथा—अकाल (अप्रसस्तकाल इत्यर्थ), अकार्प्यम् (अप्रसस्तकार्प्यम्
इत्यर्थ), (६) विरोध, यथा—असुर (सुरविरोधी इत्यर्थ); अनैति-
(नीतिविरोधिनी इत्यर्थ), अक्षित (सितविपरीत, कृष्ण इत्यर्थ);
अधर्म परापकार (परापकार धर्मविरोधी इत्यर्थ) ।

“लघुदन्त्यमभावश्च तदन्त्यत्वं तदल्पता ।

अप्राप्तस्य विरोधश्च नमयो पट् प्रदीक्षिता ॥”

(२) कर्मधारय समास ।

(Appositional Compound)

७६० । जिस समासमे समस्यमान पद समानाधिकरण*
(अर्थात् विशेष्य-विशेषणा-भावापन्न, अथवा अभेदसम्बन्धमे

* अभेदेन भन्वितार्थक शब्द समानाधिकरण । एकविभक्त यन्तत्वम्
एकार्थनिष्ठत्व सामानाधिकरण्यम् ।

† किसी पद द्वारा जिस पदको विशेष किया जाता है, अर्थात् अनेक प्रकारोंसे पृथक् करके एकही प्रकारमे स्थापन किया जाता है, वह 'विशेष्य', और जिस पद द्वारा विशेष किया जाता है, वह 'विशेषण', यथा— नील पद्म,—यहाँ, पद्म नाना प्रकारके हैं (नील, श्वेत, लोहित इत्यादि), किन्तु 'नील' यह पद उसको उन प्रकारोंसे पृथक् करके एकही प्रकारमे अर्थात् नीलमे स्थापन करता है, इसलिये 'पद्म'—विशेष्य, और 'नील'—विशेषण ।

(विशिष्येने नियम्यते व्यावर्त्तयते व्यवच्छिद्यते भेद्यते येन तत् विशेषणम्, भेदकम् इति यावत् । अनेकप्रकार वस्तु प्रकारान्तरेभ्यो व्यवच्छिद्य एकस्मिन् रूपात्त प्रकारे यत् व्यवस्थापयति, तत् व्यवस्थापक भेदक विशेषणम्, यत् व्यवस्थाप्यमानम्, तत् भेद्य विशेष्यम् ।)

फिर, 'गाढ नील' कहनेसे, उक्तरीतिसे 'गाढ' विशेषण, और 'नील' विशेष्य होता है । 'पद्म पुष्प' कहनेसे, 'पद्म' विशेषण, और 'पुष्प' विशेष्य होगा ।

जो शब्द द्रव्य (अर्थात् वस्तु, व्यक्ति, देश, काल इत्यादि), गुण, ज्ञानि और क्रियाका नाम समझाते हैं, वेही प्राय विशेष्य होने हैं; यथा—

एकार्थप्रतिपादक) होते हैं, उसको 'कर्मधारय समास' कहने हैं ।

(क) विशेष्य-पदके साथ विशेषण-पदका कर्मधारय समास होता है । कर्मधारय-समासमें उत्तर-पदका अर्थ प्रधान होता है । यथा—(नवः पल्लव , अथवा नवश्चासौ पल्लवश्च) नवपल्लवः , (नवौ पल्लवौ , अथवा नवौ च तौ पल्लवौ च) नव-पल्लवौ ; (नवा० पल्लवा अथवा नवाश्च ते पल्लवाश्च) नवप-ल्लवा । (शोभना लता , अथवा शोभना चासौ लता च) शोभनलता , (शोभने लते , अथवा शोभने च ते लते च) शोभनलते , (शोभनाः लता , अथवा शोभनाश्च ताः लताश्च) शोभनलता । (नीलम् उत्पलम् , अथवा नील च तत् उत्पल च) नीलोत्पलम् . (नीले उत्पले , अथवा नीले च ते उत्पले च) नीलोत्पले . (नीलाणि उत्पलानि , अथवा नीलानि च तानि उत्पलानि च) नीलोत्पलानि । (शीतं पवन) शीतपवनं , (उत्पाम् उदकम्) उत्पानोदकम् , (मधुरं पवनम् मधुरपवनम् ;

पुष्प, मन्दर्ष्य, वृद्धग, गमन । और जो शब्द गुण, जाने और क्रियाके समझाकर द्रव्यके भी समझाते हैं, वेही प्राय विशेषण होते हैं, यथा—मुन्दर (पुष्प) ब्राह्मण (वणिष्ठ), गन (दिन) ।

प्रयोगविशेषमेंही विशेष्य पद विशेषण, और विशेषण पद विस्तार होता है, जैसे 'नील पत्र' यहाँ 'पत्र'—द्रव्यवाचक विशेष्य, 'पत्र पुष्प' यहाँ 'पत्र'—द्रव्यवाचक विशेषण, 'नील वस्त्र' यहाँ 'नील'—गुणवाचक विशेषण, 'गात्र नील', यहाँ 'नील'—गुणवाचक विशेष्य, 'सुग्रीव वृद्धग' यहाँ 'वृद्धग'—जातिवाचक विशेष्य, 'वृद्धग पण्डित' यहाँ 'ब्राह्मण'—जातिवाचक विशेषण ।

(नवम् अन्नम्) नवान्नम् ; (सर्वे लोका) सर्वलोका. ;
 (विश्वे देवा.) विश्वदेवा , (दृढो बन्ध) दृढबन्ध ; (सुरभि
 चन्द्रनम्) सुरभिचन्द्रनम् ; (नव जलधर) नवजलधर ;
 (सन् पुरुष) सत्पुरुष , (महान् देव) महादेव ,
 (महान् वीर.) महावीर. , (परम पुरुष) परमपुरुष. ;
 (केवल वैयाकरण) केवलवैयाकरण , (जरन् नैयायिक)
 जरनैयायिक , (सप्त ऋषय) सप्तर्षय * ।

(ख) यदि अनेक विशेषण एकही विशेष्यके हों, तो विशेष-
 णके साथ विशेषणकाभी कर्मधारय होता है, यथा—(नील-
 उज्ज्वलश्च—जो नील, वही उज्ज्वल) नीलोज्ज्वल । [आका-
 श], (पीनः उन्नतश्च) पीनोन्नत [काय], (कुञ्ज-
 कुण्डश्च) कुञ्जकुण्ड [पुरुष] ।

७६१ । 'नन्'-विशिष्ट 'क' प्रत्ययान्त पदके साथ 'नन्' शून्य 'क'-
 प्रत्ययान्त पदका कर्मधारय-समास होता है, यथा—(हनञ्च तन् अहञ्च)
 हनाहनम्, (भुक्तञ्च तन् अभुक्तञ्च) भुक्ताभुक्तम्, (पीनञ्च तन् अपीनञ्च)
 पीतापीनम्, (क्लिष्टञ्च तन् अक्लिष्टञ्च) क्लिष्टाक्लिष्टम्, (एकञ्च तन्

* सप्त. समस्त नेमेही सङ्ख्यावाचक विशेषण-पदका कर्मधारय होता है ;
 यथा—सप्तर्षय —यह 'सप्तर्षिपण्डल' के समस्त ता है । किन्तु सामान्यत
 'सप्तसङ्ख्याक ऋषि' समस्तनेसे कर्मधारय समास नहीं होगा—द्विगु समास
 होगा । 'एक'-शब्दका कर्मधारय समास होता है, यथा—(एक वीर)
 एकवीर ।

† यहाँ 'उज्ज्वल' पदकी विशेष्यत्व-विवक्षा हुई है ।

अपञ्च) पञ्चापञ्चम् । समान प्रकृति स्थलमेही होता है ; निदञ्च
अमुत्तञ्च—यहाँ समास नहीं होगा ।

७६२ । वर्गवाचक पदने साथ वर्गवाचक पदका कर्मधारय-समास
होता है ; यथा—(नीलश्यामी लोहितश्च) नीललोहित । (लोहितश्यामी
घवलश्च) लोहितघवल , (पीतश्यामी शदलश्च) पीतशदल ।

७६३ । पूर्वकाल और उत्तरकाल मनज्ञानेसे, 'क्त'-प्रत्ययान्त पदके
साथ 'क्त'-प्रत्ययान्त पदका कर्मधारय-समास होता है , यथा—(पूरंन्—
अयवा आदौ—स्नात , पश्चात् अनुलित) स्नातानुलित ; यातायात ;
शयितोत्थित , लूतप्रलूत , इत्तापहतम् , पञ्चमुक्तम् ; भुक्तोद्गीर्णम् ।

(उपमान-कर्मधारय)

७६४ । उपमान और उपमेयके * साधारणगुण-वाचक
पदके साथ उपमान पदके समानको 'उपमान-कर्मधारय' कहते
हैं ; यथा—(घन इव श्याम) घनश्याम ; † (अर्णव इव गभीर)
अर्णवगभीर ; (शैल इव उन्नत) शैलोन्नत ; (अनल इव उज्ज्व-
ल) अनलोज्ज्वल , (नवनीतम् इव कोमलम्) नवनीत-
कोमलम् ; (कुसुममिव सुकुमारम्) कुसुमसुकुमारम् ।

* जिसके साथ किसीकी तुलना की जाती है, उसे 'उपमान' कहते
हैं ; और जिसकी तुलना की जाय, उसको 'उपमेय' कहते हैं ।

† जिस गुण वा धर्मको अवलम्बन करके दोनोकी तुलना होती है,
उसका नाम 'साधारणगुण' वा 'समानधर्म' । यहाँ 'श्यामत्व'-की
अवलम्बन करके तुलना हुई है, इसलिये 'श्याम'—यह साधारणगुणवाचक
वा समानधर्मबोधक पद ।

(उपमित-कर्मधारय)

७६५ । उपमान-पदके साथ उपमेय पदके समासको 'उपमित-कर्मधारय' कहते हैं । यथा—(नर व्याघ्र इव) नरव्याघ्र , (पुरुष सिंह इव) पुरुषसिंह , तपस्विशार्दूल , मुनिपुङ्गव , द्विजवर्षभ* , कविकुञ्जर* ।* (मुख कमलम् इव) मुखकमलम् , (चरणम् अरविन्दम् इव) चरणारविन्दम् , (राजा चन्द्र इव) राजचन्द्र* , (वदन सुधाकर इव) वदनसुधाकरः , (कर किसलयमिव) करकिसलयम् , (अधर पल्लव इव) अधरपल्लव* , (कन्या रत्नम् इव) कन्यारत्नम् ।

उपमान और उपमेयके साधारणगुणवाचक पदका प्रयोग रहनेसे समास नहीं होता , यथा—नरो व्याघ्र इव शूर , सुखं कमलमिव हृन्दरम् ।

(रूपक-कर्मधारय)

७६६ । उपमान और उपमेय अभिन्नरूपसे कल्पित होनेसे, उपमान-पदके साथ उपमेय-पदके समासको 'रूपक-कर्मधारय' कहते हैं , यथा—(दुःखम् एव सागरः) दुःखसागर , (मानसमेव विहङ्ग) मानसविहङ्ग , (देह एव पिञ्जरम्) देहपिञ्जरम् , (अविद्या एव निगड*) अविद्यानिगड* , (ज्ञान-

* व्याघ्र, पुङ्गव, वर्षभ, कुञ्जर, सिंह, शार्दूल, नाग प्रभृति शब्द उत्तरपद होनेसे श्रेष्ठार्थवाचक होते हैं, और पुलिङ्गमेही प्रयुक्त होते हैं ।—

“स्युत्तरपदे व्याघ्र-पुङ्गवर्षभ-कुञ्जरा ।

सिंह शार्दूल नागाद्या पुलि श्रेष्ठार्थवाचका ॥” अमर ।

मेव अग्नि) ज्ञानाग्नि ।

(मध्यपदलोपी कर्मधारय)

७६७ । जिस कर्मधारय-समासमे मध्यपदका लोप होता है, उसे 'मध्यपदलोपी कर्मधारय' कहते हैं* ; यथा—(शाकप्रिय-पार्थिवः) शाकपार्थिव , (मेरुनामा पर्वत) मेरुपर्वत , (छायाप्रधान तरु) छायातरु , (अर्द्धावशिष्ट दग्ध) अर्द्ध-दग्ध , (मुखसहिता नासिका) मुखनासिका ; (ब्राह्मण-बहुलो ग्रामः) ब्राह्मणग्राम , (विम्बाकार-अधर) विम्बाधर , (वज्रतुल्य हृदयम्) वज्रहृदयम् , (पलमिश्रम् अन्नम्) पलाञ्चम् , (द्वाघधिकाः दश) द्वादश ; इत्यादि ।

७६८ । 'कृत' प्रभृति पदके साथ 'श्रेणि'-प्रभृति पदका 'अभूततद्भाव' (अर्थात् पूर्वमे जैसा नहीं था, वैसा होना) अर्थमे कर्मधारय होता है । यथा—(अधेगय श्रेगय कृता) श्रेणिकृता , (भपूना पूगा कृता) पूगकृता , (अरागय रागय कृता) रागिकृता । (अधेगय श्रेगय भृता) श्रेणिभृता , (अनिपुगा निपुगा भृता) निपुगभृताः ; (अकुशल कुशल भूत) कुशलभूत , (अपण्डित पण्डितो भूत) पण्डितभूत ।†

७६९ । प्रशंसार्थ मतलिका, सखाविका, प्रकाण्ड, उद्ध और तल्लव पदके साथ जातिवाचक पदका कर्मधारय होता है , यथा—(प्रगन्ता गौ

* इसको 'शाकपार्थिवादि-समास' भी कहते हैं ।

† 'द्वि' प्रत्यय होनेसे तन्निष्पन्न कर्षभो होता है , यथा—श्रेणीकृत , पूगकृत , रागीकृत , श्रेणीभूत , निपुणीभूत , कुशलभूत , पण्डितभूत ।

गोमतल्लिका, गोमर्बविका, गोप्रसाण्डम्, गवोद्ध, गोतल्लज ।

(३) द्विगु समास ।

(Numeral Compound)

७७० । समाहार-प्रभृति अर्थमे,* विशेष्य-पदके साथ सङ्ख्या-वाचक विशेषण पदके समासको 'द्विगु समास' कहते हैं † । द्विगु-समासमे उत्तरपदका अर्थ प्रधान होता है, और समाहार होनेसे समस्त-पद क्लीबलिङ्ग एक्यचनान्त होता है, यथा— (त्रयाणां भुवनानां समाहार) त्रिभुवनम्, (चतुर्णां युगानां समाहार) चतुर्युगम्, (पञ्चानां पात्राणां समाहार) पञ्चपात्रम्, (चतसृणां दिशां समाहार) चतुर्दिक् ।

(फ) समाहार-द्विगु होनेसे, पात्रादिभिन्न अकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग ('ईप्'—'डीप्'—प्रत्ययान्त) होता है, यथा—

* समाहारका अर्थ—उपनिष्ट ।

† तद्धितार्थमे, और उत्तरपद परेभी द्विगुसमास होता है । यथा— (तद्धितायमे)—(द्वयो मात्रो अण्यम्) द्वैमात्रम्, (पञ्चभि गोभि कीर्त) पञ्चगु । (उत्तरपद परे)—(त्रयाणां लोकानां नाथ) त्रिलोकनाथ —यहाँ 'नाथ' यह उत्तरपद परे 'त्रिलोक'—इसमे द्विगु समास हुआ, (सप्तभि सामभि उपगीतम्) सप्तसामोपगीतम्—र० १० २१, (पञ्च गाव धन यस्य स) पञ्चगवधन ।

‡ पात्र, भुवन, युग, मुख, गुण, पथ, गव, राज (मतान्तरमे 'रात्र'-शब्द पु०), अह इत्यादि ।

(त्रयाणां लोकानां समाहार) त्रिलोकी , (चतुर्णां पदानां समाहार) चतुष्पदी , (पञ्चानां वदानां समाहार) पञ्चवटी , (सप्तानां शतानां समाहार) सप्तशती ।*

कर्मधारय और द्विगु समासमे उत्तरपदका अर्थ प्रधान होनेके कारण, वेभी तत्पुरुषमे गण्य होते हैं ।

नित्य-समास ।

७७१ । 'कुत्सित'-अर्थ समझानेसे, स्वन्त पदके साथ 'कु' इस अव्ययका नित्य-समास होता है, † यथा—(कुत्सित जन) कुजन , कुपुरष , कुमाहण , कुसन्कार ।

७७२ । स्वन्त पदके साथ प्रादि उपसर्गका नित्य समास होता है ‡ । यथा—(प्रकृष्ट पुरुष) प्रपुरष , (शोभनो जन) उजन । (दुष्टो जन) दुजन , (दुष्टा नीति) दुनीति , दुष्कुलम् , दुष्करितम् , (अपकृष्ट , अपभ्रष्टो वा, शब्द) अपशब्द* । (विप्रकृष्ट , विभिन्नो वा, देश) विदेश । (अधिको राजा) अधिराज । (गौणी—असाक्षात् माता) उपमाता । (अतिशयितं नव) अभिनव , (अतिशयितं शीतम्) अति

* 'आप्'-प्रत्ययान्त और 'अन्'-भागान्त शब्द विकल्पसे स्त्रीलिङ्ग (ईप् प्रत्ययान्त) होता है, यथा—(त्रयाणां लतानां समाहार) त्रिलती, त्रिलतम्, (पञ्च कर्मम्) पञ्चकर्मो, पञ्चकर्मम् ('अन्' भागान्त शब्दके उत्तर 'अ'-प्रत्यय होता है, और 'अन्'-भागका लोप होता है) ।

† नित्यसमासमे स्वपद द्वारा व्यासवाक्य नहीं होता, पदान्तर द्वारा करना होता है ।

‡ इसको 'प्रादि समास' कहते हैं ।

शीतम् । (ईषन् पिबन्) आपिबन् , आपाप्यु , आलीहित ।

कई प्रादिममास-निष्पन्न पद बहुव्रीहिके तुल्य अन्यपदार्थग्रहण होते हैं*—

(क) 'क्रान्त'-प्रभृति अर्थमे, द्वितीयान्त पदके साथ 'प्रति'-प्रभृति-का नित्य समास होता है । यथा—(अतिक्रान्त मायाम्—मायावीत इत्यर्थ) अतिनाय [शिव] , (अतिक्रान्त मध्यांशाम्) अतिमध्यांश [व्यवहार] , (अतिक्रान्तम् इन्द्रियम्—इन्द्रियातीनम् इत्यर्थ) अतीन्द्रियम् [ज्ञानम्] , (अतिक्रान्तम् आदित्यम्—आदिन्यात् अधिकम् इत्यर्थ) अत्यादित्य [तेज] । (अधिगतं ज्याम्) अधिज्यम् [धनु] । (अभिगत मुञ्चम्) अभिमुञ्च [जन] । (उत्क्रान्त , उद्गतो वा, वेलाम्) उद्गेल [सागर] ।

(ख) 'क्रान्त'-प्रभृति अर्थमे, पञ्चम्यन्त पदके साथ 'निष्' प्रभृति-का नित्य समास होता है, यथा—(निष्क्रान्त वनात्) निर्वण [व्याघ्र] , (निर्गत इन्द्रात्) निर्द्वन्द्व [साधु] , (निर्गत नद्या) निर्नदि [कुर्म] ।

७७३ । धातुके साथ उपपदका नित्य समास होता है † । यथा—

* सुतरा अन्य-पदार्थकेही लिङ्ग वचन प्राप्त होते हैं ।

† जो जो सुबन्त-पद-प्रभृति पूर्वमे रहनेसे, धातुके उत्तर 'कृत्'-प्रत्यय-का विधान है, उनको 'उपपद' कहते हैं । 'कुम्भकार'—इस स्थलमे, द्वितीयान्त पद पूर्वमे रहनेसे धातुके उत्तर 'षण्'-प्रत्ययका विधान होनेके कारण, 'कुम्भम्' इस उपपदके साथ 'कृ' धातुका समास होकर 'कुम्भकृ' ऐसा होनेसे, 'षण्' होता है ।

‡ इसको 'उपपद-समास' कहते हैं ।

(कुम्भं करोति इति—कुम्भ कृ) कुम्भकार । (प्रभां करोति इति—
 प्रभा-कृ + ट) प्रभाकर , (जटे चरति इति—जल-चर् + ट) जलचर ।
 (शास्त्रं जनाति इति—शास्त्र-ज्ञा + क) शास्त्रज्ञ । (पट्टात् ज्ञायते इति
 —पट्ट-जन् + ङ) पट्टजम् , (अश्वानं गच्छति इति—अश्व-गम् + ङ)
 अश्वग । (शिलाया गते इति—शिला-शी + अच्) शिलादाय । (दुर्गं
 भजते इति—दु ख भज् + जिन्) दु खभाक् । (वने वसति इति—वन
 वस् + णिन्) वनवासी । (आत्मानं विभक्ति इति—आत्मन्-भृ + क्ति)
 आत्मभरि । (वाच यच्छति इति—वाच् यम् + खच्) वाच्यम् ।
 इत्यादि ।

(क) धातुके साध उपसर्गोका नित्य-समास होता है , यथा—(सन्
 + कृ) सस्करोति, सम्कार , सम्कृत्य , (वि + जि) विजयते, विजय ,
 विजित्य ; (अभि + मिच्) अभिपिच्छति, अभिपेक्ष , अभिपिच्य ;
 (आ + रम्) आरभते, आरम्भ , आरम्भ्य ।

(ख) धातुके साध 'उरी'-प्रभृति शब्दोका*, और 'िक्' तथा 'शब्'-
 प्रत्ययान्तोका नित्य समास होता है । यथा—(उरी) उरीकरोति, उरी-
 करणम् , उरीकृत्य , (आदिम्) आदिष्करोति, आदिष्कृत्या, आदिष्कृत्य ;
 (प्रादुस्) प्रादुर्भवति, प्रादुर्भाव , प्रादुर्भूय । (चि) स्वोक्करोति,
 स्वोकार , स्वोक्कृत्य , भस्मीभवति, भस्मीभाव , भस्मीभूय । (शब्)

* उरी (उरी), उररी (उररी), आदिष्, प्रादुष्, स्वधा, स्वादा,
 वपट्, वीपट् इत्यादि । ('उरी'-प्रभृति चार शब्दोका अर्थ—स्वोकार) ।
 'धत्' शब्दभी इस गणमे लिया जाता है; यथा—(धत् धा) धत्धाति,
 धदा, धदाय ।

समयाकरोति, समयाकरणम्, समयाहृत्य, दुःखाकरोति, दुःखाक्रिया, दुःखाहृत्य ।

(ग) धातुके साथ अनुकरणार्थक शब्दका नित्य समास होता है ; यथा—इत्यत्करोति, इत्यत्कारः, इत्यत्कृत्य, खात् (इ) करोति, खात्करणम्, खात्कृत्य । 'इति'-शब्द परे रहनेसे नहीं होता, यथा—खात् इति कृत्वा निष्ठीयति ।

(घ) धातुके साथ, 'आदर'-अर्थमें 'सत्', और 'अनादर' अर्थमें 'असत्' शब्दका नित्य-समास होता है, यथा—सत्करोति, सत्कार, सत्कृत्य, असत्करोति, असत्क्रिया, असत्कृत्य ।

(ङ) 'भूषण'-अर्थ समझानेसे, धातुके साथ 'अलम्' शब्दका नित्य-समास होता है ; यथा—अलङ्करोति, अलङ्करणम्, अलङ्कृत्य ।

(च) धातुके साथ 'अन्तर्'-शब्दका नित्य समास होना है, यथा—अन्तर्भवति, अन्तर्भाव, अन्तर्भूय ।

(छ) धातुके साथ 'पुरस्' इस अव्ययका नित्य समास होता है ; यथा—पुरस्करोति, पुरस्कार, पुरस्कृत्य ।

(ज) धातुके साथ 'अस्तम्' इस अव्ययका नित्य समास होता है, यथा—अस्तद्भ्रूयति, अस्तद्भ्रूय, अस्तद्भ्रूयति ।

(झ) 'आकाङ्क्षानिवृत्ति' समझानेसे, धातुके साथ 'कणे' और 'मनस्' शब्दका नित्य समास होता है, यथा—कणेइत्यप्यपिबति, मनोइत्यप्यपिबति, —(तावत् पिबति, यावत् अस्य अभिलाषो न निवर्त्तते इत्यर्थ —आदा मियाकर पीता है Drinks to his heart's content or till he is satisfied) ।

(ज) 'अन्तर्धान' (व्यवधान) मनज्ञानेते, धातुके साथ 'तिरन्' इस अव्ययका नित्य-समास होता है ; यथा—तिरोभवति, तिरोभाव, तिरोभूय । किन्तु 'कृ'-धातुके साथ विकल्पने समास होता है, यथा—तिरिष्कृत्य, तिरि कृत्वा (तिरिष्कृत्वा) ।

(ट) 'कृ' धातुके साथ 'साक्षात्' प्रभृति शब्दका विकल्पने समास होता है, यथा—साक्षात्कृत्य, साक्षात् कृत्वा, नमस्कृत्य, नम कृत्वा (नमस्कृत्वा), वगैरुक्त्य, वगे कृत्वा ; मिथ्याकृत्य, मिथ्या कृत्वा ।

(ठ) 'कृ'-धातुके साथ 'उरसि' और 'मनसि'—इन दोनों सप्तम्यन्त पदोंका विकल्पने समास होता है, यथा—उरसिकृत्य, उरसि कृत्वा (स्वीकृत्य इत्यर्थ), मनसिकृत्य, मनसि कृत्वा (निश्चित्य इत्यर्थ) ।

(ड) 'विवाह'-अर्थ समझानेसे, 'कृ'-धातुके साथ 'इन्ते' और 'पाणौ'—इन दोनों सप्तम्यन्त पदोंका नित्य समास होता है, यथा—इस्तेकृत्य, 'पाणौकृत्य (दारकर्म कृत्वा इत्यर्थ) ।

७७४ । 'अर्थ'-शब्दके साथ चतुर्थ्यन्त पदका नित्य समास होता है, और यह अन्यपदार्थप्रधान होता है ।* विग्रहवाक्यमें 'अर्थ'-शब्दका उल्लेख न करके 'इदम्' शब्दका उल्लेख किया जाता है । यथा—(भोजनाय अपम्) भोजनार्थ [स्य], (गुरवे इयम्) गुरवार्थ [दक्षिणा], (पानाय इदम्) पानार्थ [जलम्] ।

७७५ । (मयूरश्चासौ व्यसक — धूर्त्त — च) मयूरव्यसक ; (अन्य अर्थ) अर्थान्तरम्, (अन्य देश) देशान्तरम् ; (अवयवं कर्त्तव्यम्) अवयवकर्त्तव्यम् ; (उदक् च अवाक् च) उद्यावचम् (कैकेदेदम्—अनेक-

* भुवरो अन्यपदार्थके लिङ्ग वचन प्राप्त होता है ।

प्रकारम् इत्यर्थ) , (तत् एव) तन्मात्रम् * , (नास्ति कुतो मय यस्य स) अकुतोभय , (नास्ति किञ्चन यस्य स) अकिञ्चन ,—इत्यादि-स्थलोमेभौ नित्य समास होता है ।

कृष्णसर्प , लोहितशालि —इत्यादि-स्थलोमेभौ नित्य समास ।

उक्त नियमसमूहके अतिरिक्त स्थलमेभौ कभी कभी नित्य समास होता है † , यथा—(पूर्वं भूत) भूतपूर्व , (पित्रा तुल्य) पितृभूत , (ब्रह्मैव) ब्रह्मभूत , (नितान्त दीर्घ) नितान्तदीर्घ , (अयं लोक) इहलोक , (यथा तथा) यथातथा , (यथाविधि हुता) यथाविधि-हुता.—२०१.६ , (न एकधा) नैकधा , इत्यादि ।

(४) द्वन्द्व समास ।

(Copulative Compound)

७७६ । जिस समासमे प्रत्येक पदका अर्थही प्रधान होता है, उसे 'द्वन्द्व-समास' कहते हैं ।

(इतरेतर-द्वन्द्व)

७७७ । किसी एक पदके साथ प्रत्येक पदकाही पृथग्भावसे समान अन्वय रहनेसे, उनके समासको 'इतरेतर-द्वन्द्व' कहते हैं । इतरेतर-द्वन्द्वमे समस्तपद उत्तरपदका लिङ्ग और

* यहाँ 'मात्र'-शब्द प्रत्यय नहीं, इसका अर्थ—अवधारण ।

† इसको 'सुप् सुपेति' (सुबन्त-पदके साथ सुबन्त-पदका) समास कहते हैं ।

प्रत्येक पदका वचन प्राप्त होता है, यथा—(रामश्च लक्ष्मणश्च*)
 रामलक्ष्मणौ [गच्छत],—यहाँ 'गच्छत' इस पदके साथ
 'राम' और 'लक्ष्मण' इन दोनों पदोंके प्रत्येकका पृथक् रूपसे
 समान अन्वय है, (भीमश्च अर्जुनश्च) भीमार्जुनौ [युध्येते],
 (हरिश्च हरश्च) हरिहरौ [पूजयति], (वृक्षश्च शाखा च)
 वृक्षशाखे [छिनत्ति], (वराहश्च महिषश्च शशकश्च) वराह-
 महिषशशका [धावन्ति], (कन्दश्च मूलञ्च फलञ्च) कन्द-
 मूलफलानि [भुङ्क्ते], (तिकाञ्च अम्लञ्च मधुरञ्च) तिका
 म्लमधुराणि [फलानि], (शब्दश्च स्पर्शश्च रूपञ्च रसश्च
 गन्धश्च) शब्दस्पर्शरूपरसगन्धा. [विषया भवन्ति]।†

(समाहार-द्वन्द्व)

७७८ । किसी एक पदके साथ प्रत्येक पदका अपृथग्भाज
 से समान अन्वय रहनेसे, उनके समासको 'समाहार-द्वन्द्व'
 कहते हैं । समाहार-द्वन्द्वमे समस्तपद क्लीबलिङ्ग एकवचनान्त
 होता है, यथा—(फलानि च मूलानि च, तेषां समाहार.)
 फलमूलम् [भुक्तम्], (दिशश्च देशाश्च, तेषां समाहार)
 दिग्देशम् ।

७७९ । प्राणीके अङ्ग, वाद्यके अङ्ग और सेनाके अङ्ग—इनका नित्य
 समाहार-द्वन्द्व होता है । यथा—(प्राणीके अङ्ग)—(पाणिश्च पादश्च)

* प्रत्येक पदका प्राधान्य समझानेके लिये प्रत्येक पदके पश्चात्ही 'च'
 बैठाना होता है ।

† परस्परपेक्षया एकक्रियासम्बन्ध इतरैतरयोग ।

पाणिनादम्, (करश्च चरणश्च) करचरणम्, दन्तश्च ओष्ठश्च (दन्तौष्ठम्),
 (कर्णश्च नासिका च) कर्णनासिकम्, (पृष्ठञ्च उदरञ्च) पृष्ठोदरम् ।
 (वाद्यके अङ्ग)—(पणवश्च मृदङ्गश्च) पणवमृदङ्गम्, (शङ्खश्च दुन्दुभिश्च)
 शङ्खदुन्दुभि, (भेरी च पट्टश्च) भेरीपट्टम्, (ऋषभश्च मान्धारश्च)
 ऋषभगान्धारम्, (भैवतश्च पञ्चमश्च) भैवतपञ्चमम्, (पट्टश्च मध्यमश्च)
 पट्टममध्यमम् । (सेनाके अङ्ग)—(रथिकाश्च अधारोहाश्च) रथिकाधा-
 रोहम्, (परदावश्च करवालाश्च) परशुकरवालम्, (धनूपि च शराश्च)
 धनु शरम्, (शराश्च तूर्गीराश्च) शरतूर्गीरम्, (हस्तिनश्च अश्वश्च रथाश्च
 पादाताश्च) हस्त्यश्वरथपादातम् * ।

७८० । त्रिक्रम भेद रहनेसे, नदीवाचक और दशवाचक पदोंका
 समाहार-द्वन्द्व होता है । यथा—(नदी)—(गङ्गा च शोणश्च) गङ्गारोणम् ;
 (नक्षत्रुप्रश्च चन्द्रभागा च) नक्षत्रुप्रचन्द्रभागम् । (देश)—(काशी च नव
 द्वारश्च) काशीनवद्वीपम्, (मथुरा च पाटलिपुत्रञ्च) मथुरापाटलिपुत्रम् ।
 ग्रामवाचक पदका समाहार नहीं होता ।

७८१ । जो जन्तु परस्पर नित्यविरोधी, तद्वाचक पदोंका समाहार-
 द्वन्द्व होता है, यथा—(अहयश्च नकुलाश्च) अहिनकुलम्, (काकाश्च
 उलूकाश्च) काकोलूकम्, (मानांराश्च मूषिकाश्च) मानारामूषिकम् ।

७८२ । बहुवचनान्त क्षुद्रजन्तुवाचक और फलवाचक पदोंका
 समाहार द्वन्द्व होता है । यथा—(क्षुद्रजन्तु)—(दशाश्च मसकाश्च) दश-

* सेनाह्ववाचक पदका केवल बहुवचनमे समाहार होता है, अन्यवचन
 मे नहीं होता, यथा—(शरश्च तूर्गीरश्च) शरतूर्गीरौ, (हस्ती च अश्वश्च)
 हस्त्यर्था, (शक्तिश्च परशुश्च करवालाश्च) शक्तिपरशुकरवाला ।

मशकम्, (यूकाश्च मक्षिकाश्च) यूकमक्षिकम् । (फल)—बदराणि च
आमलकानि च) बदरामलकम्, (खजूरानि च नारिकेलानि च) खजूर-
नारिकेलम् ।

७८३ । शूद्रवाचक पदोंका समाहार द्वन्द्व होता है ; यथा—(गोपात्र
नापिताश्च) गोपनापितम्, (कर्माराश्च कुम्भकाराश्च) कर्मार-
कुम्भकारम्, (ताम्बूलिकाश्च तन्नुवायाश्च) ताम्बूलिकतन्नुवायम् ।
अम्पृश्य शूद्रोंका नहीं होता, यथा—(शौनिकाश्च चण्डालाश्च) शौनिक-
चण्डाला ।

७८४ । 'गवाश्च'-प्रभृतियोंका समाहार द्वन्द्व होता है ; यथा—
(गावश्च अश्वश्च) गवाश्वम्, (अजाश्च भविकाश्च) अजाविकम् ;
(पुत्राश्च पौत्राश्च) पुत्रपौत्रम् । एवम्—छोङ्गुमारम्, खचण्डालम्,
बुध्नवामनम्, उट्टवम्, दामोदासम्, मूत्रपुरीषम्, मासतोजितम्,
तृगोलपम्, दर्भतारम् इत्यादि ।

७८५ । बहुवचनान्त वृक्षवाचक, तृगवाचक, शम्पवाचक, पशुवाचक
और पक्षिवाचक पदोंका विकल्पसे समाहार-द्वन्द्व होता है । यथा—
(वृक्ष)—(अश्वत्थाश्च न्यप्रोधाश्च) अश्वत्थन्यप्रोधम्, अश्वत्थन्यप्रोधा ;
(चूताश्च अशोकश्च) चूताशोकम्, चूताशोका । (तृग)—(कुशाश्च
काशाश्च) कुशाकाशम्, कुशाकाशा । (शम्प)—(शीहवश्च यशाश्च)
शीहिवम्, शीहिववा, (मुद्राश्च मापाश्च) मुद्रमापम्, मुद्रमापा ।
(पशु)—(गावश्च महिषाश्च) गोमहिषम्, गोमहिषा ; (वृद्धाश्च
कुरङ्गाश्च) वृककुरङ्गम्, वृककुरङ्गा ; (गोमापवश्च गर्दभाश्च) गोमापु-
गर्दभम्, गोमापुगर्दभा । (पक्षी)—(हसाश्च सारमाश्च) हसारमम्,

हसमारसा , (कोकिलाश्च मयूराश्च) कोकिलमयूरा , कोकिलमयूरा ।

७८६ । परस्परविरुद्ध पदार्थोंका विकल्पसे समाहार द्वन्द्व होता है , यथा—(शीतञ्च उष्णञ्च) शीतोष्णम् , शीतोष्णे , (दुःखञ्च सुखञ्च) सुखदुःखम् , सुखदुःखे ; (धर्मञ्च अधर्मञ्च) धर्माधर्मम् , धर्माधर्मे , (आलोकश्च अन्धकारश्च) आलोकान्धकारम् , आलोकान्धकारौ ।

(एकशेष-द्वन्द्व)

७८७ । जिस समासमें केवल एकपद शेष अर्थान् अग्रशिष्ट रहता है, उसे 'एकशेष-द्वन्द्व' कहते हैं ।

(क) समानाकार पदोंका एकशेष होता है, यथा—(इवश्च देवश्च) देवौ , (इवश्च इवश्च देवश्च) देवा , (फलश्च फलश्च) फले , (फलश्च फलश्च) फलानि ।

(ख) पृथ्वी शब्दसे उत्पन्न पुलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग पदोंके समासमें पुलिङ्ग पद शेष रहता है, यथा—(माक्षणाश्च माक्षणी च) माक्षणी , (कुकुरश्च कुकुरी च) कुकुरी ।

(ग) स्त्रीलिङ्ग पदके साथ पृथ्वी शब्दसे उत्पन्न अन्यलिङ्ग पदके समासमें स्त्रीलिङ्ग पद शेष रहता है, और वह विकल्पसे एकवचनान्त होता है, यथा—(मधुरश्च मधुरा च मधुरञ्च) मधुराणि, मधुर वा ।

(घ) मातृ और पितृ, पुत्र और दूहितृ, भ्रातृ और स्वसृ, श्वश्रू और श्वशुर—इन पदोंके समासमें पुलिङ्ग-पद शेष रहता है; यथा—(माता च पिता च) पितरौ , (पुत्रश्च दूहिता च) पुत्रौ , (भ्राता च स्वसा च) भ्रातरौ ; (श्वश्रूश्च श्वशुरश्च) श्वशुरौ । (पत्ने—मातापितरौ और श्वश्रूश्वशुरौ, अर्थात् इन दोनों स्थलोंमें विकल्पसे ।)

(५) बहुव्रीहि समास ।

(Relative Compound)

७८८ । जिस समासमें अन्यपदका अर्थ प्रधान होता है, अर्थात् अनेक (एकाधिक) समस्यमान-पद निज अर्थका वाचक न होकर अन्यपदार्थका वाचक होता है, उसे 'बहुव्रीहि-समास' कहते हैं ।* यथा—(आरूढः धानरः यं

* सुतरा बहुव्रीहि-समास-निष्पन्न शब्द विशेषण होता है (अर्थात् अन्यपदार्थके लिङ्ग वचन प्राप्त होता है), यथा—दीर्घनेत्र [पुरुष]—यहाँ 'दीर्घ'-शब्दका अर्थ 'लम्बा', और 'नेत्र'-शब्दका अर्थ 'बभ्रु'; किन्तु 'दीर्घनेत्र' यह पद लम्बे बभ्रुओं न समझाकर दीर्घनेत्र-विशेष्य ओ पुरुष उसको समझता है, इसलिये यहाँ बहुव्रीहि समास हुआ, और 'दीर्घनेत्र' यह पद 'पुरुष' इस पदका विशेषण ।

बहुव्रीहि द्विविध—समानाधिकरण और व्यधिकरण † । परस्पर विशेष्य-विशेष्य भावापन्न पदोंके समासको 'समानाधिकरण बहुव्रीहि' कहते हैं; यथा—(लम्बा कर्णो यस्य स) लम्बकर्ण [शशक] । और अन्यविध पदोंके समासको 'व्यधिकरण बहुव्रीहि' कहते हैं; यथा—(शूठ पाणी यस्य स) शूलपाणि (शिव); (पद्भ्यां जाम यस्य तत्) पद्भ्रजन्म (पद्मम्) ।

उक्त द्विविध बहुव्रीहिका प्रत्येक किर दो-प्रकार—उद्गुणसंवेदान और सतद्गुणसंवेदान । सम्स्तपद जिस पदार्थको समझता है, और उसका

† भिन्नविभक्त्यन्तश्च भिन्नार्थेन्द्रेण्य वैशधिकरणम् ।

सः*) आरूढवानर [वृक्ष-], (प्रातः नर य स) प्रातनरः
 [ग्रामः] । (लब्धं धनं येन सः) लब्धयनः [दृष्टिः] ; (कृतं
 कर्म येन स) कृतकर्मा [पुत्रः] ; (दृष्ट कृष्णं येन सः दृष्टकृष्ण)
 [भक्तः] , (निजितः कामं येन सः) निजितकाम [शिवः] ;
 (अधीतं शास्त्रं याभ्यां तौ) अधीनशास्त्री [शिष्यौ] , (निरस्ता-
 शत्रुः येन सः) निरस्तशत्रु [राजा] । (दत्त धनं
 यस्मै स) दत्तयत [विप्रः] , (दत्त उपदेश यस्मै सः)
 दत्तोपदेश [शिष्यः] ; (उपनीतं भोजन यस्मै स) उपनीत-

जो गुग प्रकाश करता है, उस पदार्थके देखनेसेही यदि वह गुग सम्पृक्त
 जाना जाय, (अर्थात् समासान्तगत प्रधान पदार्थ यदि अन्य पदार्थमें
 विद्यमान रहे), तो 'तद्गुगप्रविज्ञान' होता है, अन्यथा 'अनद्गुगप्रवि-
 ज्ञान' । 'लब्धकर्म' 'शूलनागि' इत्यादि-स्थलेमें 'तद्गुगप्रविज्ञान', और
 'प्रियपुत्र' 'दृष्टप्राणर' इत्यादि स्थलेमें 'अनद्गुगप्रविज्ञान' ।

* बहुव्रीहि-निष्पन्न शब्द जिनको समासाद्येगा, व्यसवाक्यमें उसके
 लिङ्ग, वचन और सम्बन्ध समझनेके लिये द्वितीयादिवेककयत्त 'यद्'-
 शब्दका प्रयोग करना होता है, ('यद्'-शब्दके स्थलेमें 'इदम्'-शब्दभी
 कहीं कहीं प्रयुक्त होता है), पश्चात् समस्त शब्दको जिन लिङ्ग, विभक्ति
 और वचनमें लेना होगा, उसकी सूचनाके लिये 'तद्'-शब्द प्रयुक्त होता है ;
 उस 'तद्'-शब्दमें जो लिङ्ग, जो विभक्ति और जो वचन, समस्त-शब्दकोभी
 उसी लिङ्ग, उसी विभक्ति और उसी वचनमें लेना होगा ॥ द्वितीयात्त 'यद्'-
 शब्दादिका प्रयोग करनेमें, उसको 'द्वितीयात्तयन्वयार्थं बहुव्रीहि' कहने हैं ;
 ऐसे—'तु' यान्यपदार्थ' इत्यादि ।

भोजनः [अतिथि] । (निर्गत जलं यस्मात् तत्) निर्गत-
जल [सर] ; (उद्धृतम् उदकं यस्मात् सः) उद्धृतोदक-
[कूप] , (श्रुत- वृत्ता-त यस्मात् स) श्रुतवृत्तान्त [द्रुत] ,
(लब्ध धन यस्या सा) लब्धधना [राज्ञी] । (दीर्घो वाह
यस्य स.) दीर्घवाहुः [पुष्प] , (सन् आशय यस्य स.)
सदाशय [साधु] , (पीतम् अम्यर यस्य स) पीताम्यर
[हरि] , (चत्वार भुजा यस्य स.) चतुर्भुज- [कृष्ण] ;
(निर्मलं जल यस्या सा) निर्मलजला [नदी] । (सुता-
मीना यस्मिन् स) सुसमीन [हृद] , (बहव नरा
यस्मिन् स) बहुनर [ग्राम] , (बहव मृगाः यस्मिन् तत्)
बहुमृगं [वनम्] , (प्रफुल्लानि कमलानि यस्मिन् तत्) प्रफुल्ल
कमल [सर] । (बहुपद)—(नीलम् उज्ज्वलञ्च वपुर्यस्य
स) नीलोज्ज्वलवपु [कृष्ण] ।

पूर्वपद अव्यय होनेसेभा, बहुव्रीहि समास होता है, यथा—(उच्चै
शिर यस्य स) उच्चै शिरा , (अथ मुख यस्य स) अथोमुख ,
(उपरि दृष्टि यस्य स) उपरिदृष्टि ।

(मध्यपदलोपी बहुव्रीहि)

७८९ । जिस बहुव्रीहि-समासमे मध्यपदका लोप होता है, उसको 'मध्यपदलोपी बहुव्रीहि' कहते हैं । यथा—
(अविद्यमान कारण यस्य स) अकारण ; (अविद्यमान
पुत्रो यस्य स) अपुत्र ; (अविद्यमान क्रोधो यस्य सः)
अक्रोध । (वृषस्य स्कन्ध इव स्कन्धो यस्य स) वृषस्कन्ध ,

(चन्द्रस्य प्रभा इव प्रभा यस्य तत्) चन्द्रप्रभम् [आतपत्रम्] ,
 (व्याघ्रस्य मुखम् इव मुख यस्य स) व्याघ्रमुख । (तामरस-
 सदृशम् आनन यस्य स) तामरसानन । (प्रपतितानि पर्णानि
 यस्मात् स) प्रपर्ण , (अपगत शोक यस्य स) अपशोक ,
 (निर्गत मल यस्मात् स) निर्मल , (विगत अर्थ यस्मात्
 स) व्यर्थ , (उद्भूत मद यस्य स) उन्मद् , (उत्कण्ठित,
 उद्भ्रान्तं वा, मन यस्य स) उन्मना , (प्रकृष्ट धल यस्य स)
 प्रथल ।

(तुल्ययोगे बहुव्रीहि)

७९० । तृतीयान्त पदके साथ 'सह'-शब्दका बहुव्रीहि
 होता है, यथा—(पुत्रेण सह वर्त्तमान) सपुत्र , (अनुजेन
 सह वर्त्तमानः) सानुज , (वान्धवेन सह वर्त्तमान) सवा-
 न्धव ; (भृत्येन सह वर्त्तमान) सभृत्य , (विनयेन सह
 वर्त्तमान यथा स्यात् तथा) सविनयम् [उवाच] ।

(व्यतिहारे बहुव्रीहि)

७९१ । व्यतिहार अर्थात् परस्पर एकजार्तीय कार्य्य करना समझानेसे,
 बहुव्रीहि होता है, यथा—(कशेषु केषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तम्)
 केशाकेशि , “केशाकेशमभवत्सुद्धं रक्षसा धामरै सह” महाभा० , (दण्डैश्च
 दण्डैश्च प्रहृत्य इदं युद्धं प्रवृत्तम्) दण्डादण्डि । ये शब्द अव्यय ।

(६) अव्ययीभाव समास ।

(Indeclinable Compound)

७२२ । सुवन्त-पदके साथ सामीप्यादि-अर्थ बोधक अव्यय-

यके समासको 'अव्ययीभाव' कहते हैं । अव्ययीभाव समासमें पूर्वपदका अर्थ प्रदान होता है * । यथा—(समीप)—(गृहस्य समीपम्) उपगृहम्, (कुलस्य समीपम्) उपकूलम्, (गङ्गायाः समीपम्) उपगङ्गम् । (अभाव)—(विघ्नस्य अभाव) निर्विघ्नम्, (मत्तिकाणाम् अभाव) निर्मत्तिकम्, (मित्रायाः अभाव.) दुर्मित्रम् । (अत्यय)—(हिमस्य अत्यय.—नाश) अतिहिमम्, (शीतस्य अत्यय) अतिशीतम्, (बाधायाः अत्यय) अतिबाधम् । (असम्प्रति)—(निद्रा सम्प्रति न युज्यते) अतिनिद्रम्, (शोक सम्प्रति न युज्यते) अतिशोकम् । (पश्चात्)—(रथस्य पश्चात्) अनुरथम्, (गृहस्य पश्चात्) अनुगृहम्, (पदस्य पश्चात्) अनुपदम् । (योग्य)—(रूपस्य योग्यम्) अनुरूपम्, (कुलस्य योग्यम्) अनुकुलम् । (चोप्ता)—(दिन दिनम्) अनुदिनम्, * यथा प्रतिदिनम्, (गृह गृह प्रति) प्रतिगृहम्, (क्षणे क्षणे) अनुक्षणम् । (अनतिक्रम)—(शक्तिम् अनतिक्रम्य) यथाशक्ति, (विधिम्

* अव्ययीभावसमास निष्पन्न शब्द क्वालिङ्ग हाना है, और उसके उत्तर सब विभक्तियोंके स्थानमेंहो 'अम्' (द्वितीयाका एकवचन) होता है, किन्तु अकारान्त शब्दके उत्तर तृतीया और सप्तमीके स्थानमें विकल्पमें 'अम्' होता है, पद्योंके स्थानमें नहीं होता, यथा—उपकूलं वृक्ष, उपकूलं वृक्षी, उपकूलम् उपकूलेन वा वृक्षेण, उपकूलं वृक्षाय, उपकूलम् वृक्षात्, उपकूलं वृक्षस्य, उपकूलम् उपकूले वा वृक्षे, अधिहारे कथा कथाम् कथया इत्यादि ।

अनतिक्रम्य) यथाविधि , (ज्ञानम् अनतिक्रम्य) यथाज्ञानम् ,
 (ये ये घृष्टा) यथावृद्धम् , (ये ये तथाभूता) यथातथम् ।
 (आनुपूर्व्य)—(ज्येष्ठस्य आनुपूर्व्येण, अथवा ज्येष्ठ ज्येष्ठम्
 अनुक्रम्य) अनुज्येष्ठम् , (वर्णानाम् आनुपूर्व्येण) अनुवर्णम् ।
 (समृद्धि)—(भिक्षाया. समृद्धि) सुभिक्षम् । (सादृश्य)—
 (चन्द्रस्य सदृशम्) सचन्द्रम् * , (हरे सदृशम्) सहरि ।
 (यौगपद्य)—(चक्रेण युगपत्) सचक्रम् । (साकट्य)—
 (तृणमपि अपरित्यज्य, अथवा तृणेन सह सकलम्)
 सतृणम् । (विभक्त्यर्थ)—(कुले) उपकुलम्, वा अधि-
 कुलम्, (हरौ) अधिहरि, (गृहे) अधिगृहम्, (आ-
 त्मनि, अथवा आत्मानम् अधिकृत्य) अध्यात्मम् । (व्यतीहार)
 (कर्णे कर्णे) कर्णाकर्णि ।

७९३ । 'अवधारण' समझानेसे, सवन्तके साथ 'यावत्' इस शब्द
 का अव्ययीभाव-समास होता है, यथा—यावदमत्रे ब्राह्मणान् आमन्त्र-
 यस्व (यावन्ति अमत्राणि—भाजनानि—सन्ति, पञ्च पट् वा, तावत्
 आमन्त्रयस्व इत्यर्थ) ; (यावन्त वृद्धा) यावद्वृद्धम् ।

७९४ । 'मर्यादा' और 'अभिविधि' समझानेसे, सवन्त पदके साथ
 'आङ्' इस अव्ययका विकल्पसे अव्ययीभाव समास होता है । यथा—
 (मर्यादा) आपाटल्लिपुत्रम्, आ पाटल्लिपुत्रात्, वृष्टो देव , आपामम्,
 वा प्रामात्, वनम् । (अभिविधि) आकुमारम्, आ कुमारेभ्य, यश
 कालदासस्य ; आबाल्यम्, आ बाल्यात्, विद्याया यत्र कार्यम् ।

* 'सह'-शब्दके स्थानमे 'स' होता है ।

आमरणम्, "आमेवञ्म्" कु०१. १ ; 'आगोपाल ननृतु' का० ।

७९५ । पठ्प्रत्ययान्त पदके साथ 'तद्धिम्' प्रभृति * शब्दोंका विकल्पसे अव्ययीभाव-समास होता है, यथा—वहियामम्, ग्रामात् वहि, प्रागु-पवनम्, उपवनात् प्राक् ।

७९६ । 'आभिमुख्य' समझानेसे, लक्ष्यवाचक सुबन्त पदके साथ 'अभि' और 'प्रति'—इन दोनों अव्ययोंका विकल्पसे अव्ययीभाव समास होता है, यथा—अभ्यगिरि, अग्निम् अभि, शम्भा पतन्ति, प्रत्यग्नि, अग्नि प्रति,—(अग्नि लक्ष्योक्त्य अभिमुख्य पतन्तीत्यर्थ) ।

७९७ । षष्ठ्यन्त पदके साथ 'पारे', 'मध्ये' और 'अन्तर्' शब्दका विकल्पसे अव्ययीभाव समास होता है । यथा—(गङ्गाया पारे) पारे-गङ्गम् । (समुद्रस्य मध्ये) मध्येषमुद्रम्—भा०३ ३३, (नगरस्य मध्ये) मध्येनगरम्, (रणस्य मध्ये) मध्येरणम्—भामिनी०१ १२६ । (जङ्गलस्य मध्ये) मध्येजङ्गम्—भामिनी०१ ६०, (वृष्टस्य मध्ये) मध्येवृष्टम्, (समाया मध्ये) मध्येसमम्—नै०६ ७६, (नद्या मध्ये) मध्येनदि । निशतनमे प्रकारागम होता है । (चूनाम् अन्त) अन्तर्वपु, (जलस्य अन्त) अन्तर्जलम्, "अन्तर्गिरि"—भा०१ ३४ । पक्षे षष्ठी-तत्पुरुष समास, यथा—गङ्गापारे, समुद्रमध्ये, जङ्गलान्त ।

७९८ । 'तिष्ठद्' प्रभृति पद निशतनमे विद्ग होने हैं, यथा—(तिष्ठन्ति गाव यस्मिन् काले दोहाय स) तिष्ठद्ग (रात्रे प्रथम-नाटिका इत्यर्थ—शामके बाद एक या डेढ़ घण्टा), (आयन्ति यस्मिन् काले गाव गौष्टे स) आयनीगवम् (अद्वांन्तमितमात्का काल

* वहिम्, प्राक्, अवाक्, प्रत्यक्, अग, पारे इत्यादि ।

इत्यर्थ) , (प्रगतो दक्षिणम्) प्रदक्षिणम् , इत्यादि ।

७६९'। 'पृषोदरादि'-पद निपातनसे सिद्ध होते हैं, यथा—
(पृषन्ति—विन्द्रव —उदरे अस्य) पृषोदर [पवन] , (वाणि वाहक)
बलाहक (मेघ इत्यर्थ) , (शत्राना शयनम्) शमज्ञानम् , (पिशिनम्
अश्नाति) पिशाच , (मद्यां रौति) मयूर , ('का दिश यामि' इत्याह)
कान्दिशोक (भयद्रुत —भीत्या पलायित इत्यर्थ , "मृगजन
कान्दिशोक सवृत्त " पञ्च० १) , (जीवनस्य उदकस्य मून पटवन्ध)
जीमूत (जलधर इत्यर्थ) ।

(सङ्गता आप अन) समीपम् , (अनुगता आपोऽत्र) अतूपम्
(जलबहुल स्थानम् इत्यर्थ) , (अन्तर्गता आपोऽत्र) अन्तहीनम् ;
(द्विर्गता आपोऽत्र) द्वीप , (जाया च पतिश्च) दम्पती वा जम्पती
(अथवा जायापती) , (कुशश्च खवश्च) कुशीलवौ , (द्यौश्च भूमिश्च)
द्यावाभूमौ , (द्यौश्च पृथिवी च) द्यावापृथिव्यौ वा दिवस्पृथिव्यौ ,
(सूर्यश्च चन्द्रमाश्च) सूर्याचन्द्रमसौ , (अग्निश्च सोमश्च) अग्नीसोमौ ,
(इन्द्रश्च वरुणश्च) इन्द्रावरुणौ , (मित्रश्च वरुणश्च) मित्रावरुणौ ।

अलुक्-समास ।

८०० । किसी किसी स्थलमे पूर्वपदस्य विभक्तिका लोप नहीं होता,
उसको 'अलुक् समास' कहते हैं । यथा—तमसावृत , जनुपान्ध । परस्मै-
पदम् , परस्मै भाषा , आत्मने-पदम् , आत्मने भाषा । वाचो-युक्ति ,
पश्यतो हर , वाचस्पति , वचसा-पति (अथवा वाक्पति) , दिव-
स्पति , चान्तोष्पति , भ्रातृष्पुत्र , मातु प्वसा (वा मातु प्वसा) ;
पितु प्वसा (वा पितु प्वसा) , देवानां प्रिय. (मूर्खे इत्यर्थ) , "तेऽपि

अतात्पर्य्यंजा देवानां-प्रिया ” काव्यप्रकाश) ; दास्या-पुत्र (निन्दार्थं, मालिप्रदाने ; “महत्वेव प्रत्यूपे दास्या पुत्रे शकुनिलुब्धकैर्वनप्रहर्गदोलाहतेन प्रतिबोधितोऽस्मि” शकु० २) । युधिष्ठिर ; अन्ने वासो ; विडे शय ; पद्मे-रहम्, कण्ठे काल ; उरसि लोमा ; मध्ये-ष्टा ; स्तम्भे-नम (हस्ती) ; कर्णे-जय (सूचक, कर्णे लगित्वा परापवादं वदति यो जन इत्यर्थं), पात्रे-समित (भोजनकाले पात्रे एव सङ्गत, न तु द्वार्य्य-काले इत्यर्थं), गेहे-शूर (गेहे एव शूर, न तु अन्यत्र इत्यर्थं A carpet-knight), गेहे-नर्दी (गेहे एव नर्दति, न युद्धे इत्यर्थं A dunghill-cceck), मातरि पुरष ('पुरष'-शब्द इह शूरवचन ; तेन मातरि एव पुरष—मातरं तर्जयित्वा अन्यस्मात् सर्वस्मात् विने-तीति, भीर इत्यर्थं), हृदि स्पृक् ; हृदि-स्य, दिवि-ज ; शरदि-ज ; मनसिज (वा मनोज), मरमिजम् (वा सरोजम्) ; वने-चा (वा वनचर) ; से चर (वा खचर), इत्यादि ।

पूर्वनिपात वा प्राग्भाव ।

८०१ । तत्पुरुष-समासमे—प्रथमादिविमणन्त पदोका प्राग्भाव होता है ; यथा—(उत्तर कायस्य) उत्तरकाय ; (तत्त्वं शुमुत्त) तत्त्वशुमुत्त ; (पशुना समान) पशुसमान ; (देवाय बलि) देवबलि ; (चोरात् भयम्) चोरभयम्, इत्यादि ।

(क) 'राजदन्तादि'-पदोमे 'दन्त' प्रवृत्ति पदोका परनिपात हाता है ; यथा—(दन्तानां राजा) राजदन्त (ऊर्ध्वपङ्क्तिस्थ मध्यवर्त्ति-दन्त-द्वयम् इत्यर्थं), (हसानां राजा) राजहंस ; “राजविद्या राजगुणम्” गीता ९. २ ; (वनस्य भठे) भठेवगम्, इत्यादि ।

८०२ । कर्मधारय-समासमे—विशेषण, और उपमान, उपमित-प्रभृति जिनके समासका विधान किया गया है, उनका प्राग्भाव होता है, यथा—(विशेषण)—(शुभ सन्देश) शुभसन्देश, (उपमान)—(चन्द्रिका इव धवलम्) चन्द्रिकाधवलम्, (उपमित)—(नयन सरोजम् इव) नयनसरोजम्, (पद पहलवम् इव) पदपहलवम् ।

८०३ । द्विगु-समाससे—सङ्ख्यावाचक शब्दका प्राग्भाव होता है; यथा—(त्रयाणां गुणानां ममाहार) त्रिगुणम् (अष्टानां सदृशाणां समाहार) अष्टमदृशी ।

८०४ । द्वन्द्व समासमे—दो पदोंमें द्वन्द्व होनेसे, अल्पस्वर विशिष्ट पदका प्राग्भाव होता है; यथा—तालतमालौ, यथाधत्थौ, गजबुरङ्गौ; गोमहिष्यौ, हसपारस्यौ; काककोकिशौ, शिवकेसवौ, भ्रातृभगिन्यौ, अम्लमधुरौ, तिक्तकषायौ ।

(क) स्वरसाम्यप्यलमे (अर्थात् दोनो पदोंमें समानस्वरविशिष्ट होनेसे), स्वरान्त (अर्थात् स्वरवर्ण आदिमें जिनके ऐसे) अकारान्त पदका प्राग्भाव होता है, यथा—अधगजौ, अम्लतिकौ, अनलपवनौ, अल्पुतमोक्षौ, अचलममुदौ, इन्द्रवज्री, ईशकृष्णौ, उद्दृष्टौ, ऊर्ध्वनिम्ने ।

(ख) स्वरसाम्यप्यलमे, इकारान्त और उकारान्त पदका प्राग्भाव होता है । यथा—हरिहरौ, रवित्रुषौ । पट्टशुक्रौ, मृदुहृदौ ।

(ग) लघुवर्णविशिष्ट पदका प्राग्भाव होता है, यथा—सृगञ्जाकौ, मलनोलौ; कुशकाशम्, बलयकेयूरौ ।

(घ) अधिकतर पूजनीय पदका प्राग्भाव होता है; यथा—माता-पितरौ (“पितुर्माता सदृशेण गौरवेणातिरिच्यते”); तापसयाचकौ ।

(ङ) ज्येष्ठमात्रवाचक पदका प्राग्भाव होता है ; यथा—युधिष्ठि-
राञ्जुनी , धतराष्ट्रपाण्डू ; दलदेवकृष्णौ ।

(च) ऋतुवाचक और नक्षत्रवाचक पदोंके अनुसूत्र अर्थात् क्रमके
अनुसार पूर्ववर्तीका प्राग्भाव होता है । यथा—(ऋतु) हेमन्तशिशिरौ ;
शिशिरवसन्तौ ; वसन्तनिद्रार्थौ । (नक्षत्र) अश्विनीमरणौ ; कृत्तिका-
रोहिण्यौ । वर्गसाम्यस्थलनेही यह नियम ।

(छ) ब्राह्मणादिवर्गवाचक पदोंका अनुसूत्रानुसार पौर्वापर्यनियम ;
यथा—ब्राह्मणक्षत्रियवर्षदशगूदा , ब्राह्मणवैश्वरी ।

८०६ । बहुव्रीहि-समान्यमे—समन्वन्त और विशेषण पदका
प्राग्भाव होता है । यथा—(सन्वन्त)—(कण्ठे काल यस्य स)
कण्ठेकाल , (उरसि लोमानि यस्य स) उरसिलोमा ; (नूर्द्धि
शिखा यस्य स) नूर्द्धिशिखर ; (तत्त्वे दृष्टि यस्य स) तत्त्वेदृष्टि ।
(विशेषण)—(विप्र वस्त्र यस्य स) विप्रवस्त्र ; (नीलम् अम्बरं
यस्य स) नीलम्बर ; (मधुरं वचनं यस्य स) मधुरवचन ।

(क) 'प्रिय'-शब्दका विकल्पने प्राग्भाव होता है ; यथा—गुड-
प्रिय ; प्रियगुड ।

(ख) 'इन्दु'-प्रभृतिपदके योगमे, समन्वन्त पदका परानिवात होता
है ; यथा—(इन्दुः मौलौ यस्य स) इन्दुमौलि ; चन्द्रशेखर ; (परं
नाभौ यस्य स) परनाभ ; परदहन्त ; (कुत पाणी यस्य स)
कुतपाणि , इत्यादि ।

(ग) 'प्रहरण'(शस्त्र)-वाचक पदके योगमे, समन्वन्त पदका पर-
निवात होता है ; यथा—(शस्त्रं पाणी यस्य स) शस्त्रपाणि ; इन्द्र

वाणौ यस्य स) दण्डवाणि , चक्राणि , शूलाणि , (खट्वा करे यस्य स) खट्वाकर , (धनु हस्ते यस्य स) धनुर्हस्त ।

(घ) 'क्त'-प्रत्ययान्त पदका प्राग्भाव होता है , यथा—(कृता विद्या येन स) कृतविद्या , (कृत कर्म येन स) कृतकर्मा , कृतकृत्य , (अधीतं व्याकरण येन स) अधीतव्याकरण , (भक्षितम् भोदन येन स) भक्षितोदन , (घृतम् आयुध येन स) घृतायुध , (ङदृत दण्ड येन स) ङदृतदण्ड , (भ्रम मनोरथ यस्य स) भ्रममनोरथ , (पक्क केश यस्य स) पक्ककेश ।

(ङ) 'आहिताग्नि' प्रभृति पदोमे 'क्त'-प्रत्ययान्त पदका विकल्पते प्राग्भाव होता है , यथा—(आहिन अग्नि येन स) आहिताग्नि , अन्याहित , उद्यताग्नि , अस्युद्यत , सुखोद्यत , उचिनस्य , जात सुख , सुखजात , जातपुत्र , पुत्रजात , जातदन्त , दन्तजात , जात इमधु , इमधुजात , पीततैल , तैलपीत , पीतपूत , घृतपीत , पीतधरा , धरापीत , ऊडभाट्य , भाट्यौड , गतार्थ , अर्थगत , प्राप्तकाल , कालप्राप्त , इत्यादि ।

८०६ । सप्त समासोमे—अव्ययपदका प्राग्भाव होता है , यथा—(न ब्राह्मण) अजाह्नग , (टीकया सह वर्तमान) सटीक , (भिक्षाया अभाव) दुर्भिक्षम् , (आदित्यम् अतिक्रान्तम्) अत्पादित्यम् ।

समास-कार्य ।

(पूर्वपदमे)

८०७ । [अन्य]—'आग्निम्' प्रभृति शब्द परे रहनेसे, 'अन्य'-

शब्दके स्थानमे 'अन्यत्' होता है, यथा—(अन्या आशी) अन्य दाशी, (अन्यस्मिन् आना) अन्यदाना; (अन्यस्मिन् आस्या) अन्यदास्या, (अन्यम् आस्थित) अन्यदास्थित; (अन्यस्मिन् उत्क्षक) अन्यदुत्क्षक, (अन्यस्मिन् राग) अन्यदाग; (अन्य कारक) अन्यत्कारक । *

(क) वृत्तीपान्त और पद्यन्त 'अन्य' शब्दका नहीं होता; यथा—(अन्येन आशी) अन्याशी, (अन्यस्य आशी) अन्याशी ।

(ख) 'अर्थ' शब्द परे रहनेसे, विकल्पसे होता है, यथा—(अन्यस्य अर्थ) अन्यदर्थ, अन्यार्थ ।

८०८ । [अवश्यम्]—'कृत्य' प्रत्यय परे रहनेसे, 'अवश्यम्'-शब्दके मकारका लोप होता है, यथा—(अवश्य देयम्) अवश्यदेयम्, (अवश्यम् मज्जम्) अवश्यमज्जम्, (अवश्यं कर्त्तव्यम्) अवश्यकर्त्तव्यम् ।

८०९ । [उदक]—'वास', 'पेयम्' प्रभृति शब्द परे रहनेसे, 'उदक'-शब्दके स्थानमे 'उद' होता है, यथा—(उदके वास) उदवास; "सहस्यराश्रीरदवासतत्परा [निनाय]" कु० ६ २६, उदपेय पिनष्टि, उदधि ।

(क) कुम्भ, पात्र, बिन्दु प्रभृति शब्द परे रहनेसे, विकल्पसे होता है, यथा—(उदकस्य कुम्भ) उदकुम्भ, उदककुम्भ; उदपात्रम्, उदक पात्रम्; उदबिन्दु, उदकबिन्दु । †

८१० । [उभ]—पूर्वस्थित 'उभ'-शब्दके स्थानमे 'उभय' होता

* 'इय'-प्रत्ययमेभी होता है, यथा—अन्यदीय ।

† क्षीरोद, स्वर्णोद —इत्यादि-स्वल्पेमे उत्तरपदमेभी होता है ।

है , यथा—(उभौ पक्षौ) उभयपक्षौ ।

८११ । [ऋकारान्त]—द्वन्द्व-समासमे—एक गोत्र समझा-नेसे, 'पुत्र'-शब्द और ऋकारान्त शब्द उत्तरपद होनेसे, ऋकारान्त पूर्वपदके 'ऋ' के स्थानमे 'आ' होता है । यथा—(पिता च पुत्रश्च) पितापुत्रौ ; (माता च पुत्रश्च) मातापुत्री । (माता च पिता च) मातापितरौ * , (याता च ननान्दा च) याताननान्दरी । गोत्रसम्बन्ध न रहनेसे नहीं होता , यथा—(दाता च भोक्ता च) दातृभोक्तारौ ।

८१२ । [कु]—स्वावर्ग और 'रथ' तथा 'वद' शब्द परे रहनेसे, 'कु' शब्दके स्थानमे 'कट्' होता है । यथा—(कुत्सित मथ) कट्थ , (कुत्सित अर्थ) कट्थ , (कुत्सितम् अक्षाम्) कट्क्षरम् , (कुत्सितम् अन्नम्) कट्न्नम् , (कुत्सित आचार) कटाचार , (कुत्सित उद्) कटुद् , (कुत्सितम् उदकम्) कटुदकम् । (कुत्सित रथ) कट्थ , (कुत्सित वदति) कट्वद , "प्रियापाये कट्वद हंसको-किलम्" म० ६ ७९. ।

(क) 'पथिन्' और 'अक्ष' शब्द परे रहनेसे, 'कु' के स्थानमे 'का' होता है , यथा—(कुत्सित पन्था) कापथम् †, (कुत्सितम् अक्षम्)

* 'मातरपितरौ' पदभौ होता है ।

'मातृपितृसुहृद्'—इस स्थलमे 'पितृ' शब्द उत्तरपद नहीं (६५५ पृष्ठ ७ पङ्क्ति द्रष्टव्य), इसलिये 'मातृ' के स्थानमे 'माता' नहा हुआ । किन्तु पहले 'मातापितरौ' पद सिद्ध करके वेत्ति 'सुहृद्' शब्दके साथ समास करनेसे 'मातापितृसुहृद्' हो सकता है ।

† नोपदेवमते तु—“पथि पुरथे वा” इति सूत्रेण विभाषया को कादेश ,

काक्षम् (कुट्टितिरित्यर्थं Frown, look of displeasure, malicious look), 'अक्ष'-शब्दस्य सामान्यत इन्द्रियवाचिन्वेऽपि, प्रयोगात् जयमयी बोध्यः ; "काक्षेगानादेरेक्षित" म० १. २४ । 'अक्षि'-शब्दके साथ बहुव्रीहि समासमेवां होता है, यथा—(कुत्सिनम् अक्षि यस्य स) काक्ष [पुरुष] ।

(ख) 'ईपत्' अर्थ समझानेसे, 'कु' के स्थानमे 'क' होता है ; यथा—(ईपत् मधुरम्) कामधुरम् ; (ईपत् लवणम्) कालवणम् ; (ईपत् अम्लम्) काम्लम् ।

(ग) 'पुरष' शब्द परे रहनेसे, विकल्पसे 'का' होता है ; यथा—(कुत्सित पुरुष) कापुरष, कुपुरष ।

(घ) 'उष्ण' शब्द पर रहनेसे, 'कु' के स्थानमे—का, कत् और कर्त् होने हैं, यथा—(ईपत् उष्णम्) कोष्णम्, कदुष्णम्, कर्कोष्णम् ।

८१३ । [तुमुन्]—'काम' और 'मनस्' शब्द परे रहनेसे, 'उमुन्'-प्रत्ययके मकारका लोप होता है, यथा—(गन्तु काम यस्य स) गन्तु काम, (प्रहोतुम् मन यस्य स) प्रहोतुमना ।

८१४ । [नञ्]—स्वरवर्ग परे रहनेसे, 'नञ्' के स्थानमे 'अन्' होता है ; और व्यञ्जनवर्ग परे रहनेसे 'अ' होता है ; यथा—(न उचित) अनुचित, (न भाव) अभाव । *

८१५ । [महत्]—विशेष्य पद परे रहनेसे, विशेषण 'महत्'-शब्दके स्थानमे 'महा' होता है । यथा—(कर्मधारय)—(महान् देव)

तेन कुतश्चम् इत्यादि विध्यति ।

* 'नातिदू'-प्रमृति श्यलोमे 'न' शब्दके साथ 'तुन्' सुंति समास' ।

महादेव , (महान् पुरुष) महापुरुष , (महान् जनः) महाजन ।*
(बहुमीहि)—(महान् काय यस्य स) महाकाय [हस्ती] , (महत्
बल यस्य स) महाबल , (महत् यश यस्य स) महायश ।

'महत्'-शब्द विशेष्य होनेसे नहीं होता , यथा—(महताम् वाश्रय)
महदाश्रय , (महता सेवा) महत्सेवा , (महता वाक्यम्) महद्वाक्यम् ।

८१६ । [युस्मद्, अस्मद्]—एकवचनान्त 'युस्मद्'-शब्दके
स्थानमे—'त्वत्', और 'अस्मद्' शब्दके स्थानमे—'मत्' होता है ;
यथा—(तव पुस्तकम्) त्वत्पुस्तकम् , (मम गृहम्) मद्गृहम् । †

८१७ । [समान]—'गोत्र' प्रभृति शब्द परे रहनेसे , 'समान'-
शब्दके स्थानमे 'स' होता है ; यथा—(समान गोत्र—कुल—यस्य स)
सगोत्र , अथवा (समान गोत्रम्) सगोत्रम् (समानं रूपं यस्य स)

* शङ्ख' प्रभृति शब्दके पूर्वमे 'महत्' शब्द योग करनेसे 'निन्दा' अर्थ
होता है , यथा—महाशङ्ख (शकपल, मालुपासिय, मृल्लाटासिय) ,
महातैलम् (चर्बी) ; महामांसम् (नरमांस) , महाबंध (निन्दित अर्थात्
अज्ञ वा अनिपुण चिह्नितक) , महाज्योतिषिक (अनाभिज्ञ ज्योतिषी) ,
'महाद्विज , महाब्रह्मण (नीच ब्रह्मण) , महायात्रा (मरनेको जाना) ,
महापथ (मृत्युपथ) , महानिद्रा (मृत्यु) ।

' शङ्ख' तैले तथा माने बंधे ज्योतिषिके द्विजे ।

यात्राया पथि निद्राया महच्छब्दो न दीयते ॥”

† प्रत्यय परे रहनेसेभी होता है , यथा—(तव इदम्) त्वदीयम् ;
(मम इदम्) मदीयम् । द्विवचनान्त और बहुवचनान्त—युप्तपुस्तकम् ,
युप्तदं इम् ; अम्पुस्तकम् , अम्दीयम् ।

मरूप , (समान वर्ण यस्य स) सर्वम् ; (समान पक्ष यस्य स) मरक्ष , अथवा (समान पक्ष) सरक्ष , (समान नामि — गोत्रं , मूलपुरुषो वा—यस्य स) सनामि ; (समान पिण्ड — दह , मूलपुरुष , निवापो वा—यस्य स) सपिण्ड ; (समान नान यस्य स) सनामा ; (समान वय यस्य स) सवया ; (समान तीर्थं — गुरु—यस्य स) सतीर्थ , (समाने तीर्थे वसति) सतीर्थ्य ; (समान ब्रह्मचारी) सप्रब्रह्मचारी* , (समान धर्मं यस्य स) सधर्मा , (समान जातीय) सजातीय , सम्स्थान , सवचन , इत्यादि । †

(क) 'उद्वर्ष्य'-शब्द परे रहनेसे, विकल्परसे होता है ; यथा— (समाने उदरे शयित) सोद्वर्ष्य , समानोद्वर्ष्य ।

८१८ । [सह]—बहुव्रीहि समासमे—'सह' शब्दके स्थानने विकल्परसे 'स' होता है , यथा—(धनेन सह वर्त्तमान) सधन , सहधन , (अनुजेन सह वर्त्तमान) सानुज , सहानुज ।

* सतीर्थ्य , सप्रब्रह्मचारी—प्रहाष्याय इयं Fellow-student ("दु सप्रब्रह्मचारिणी तरलिक्ता क गता" । काद० , "मद व्यसनप्रब्रह्मचारिन् । यदि न गुणम् , तत ध्रेत्रुमिच्छामि" सुदा० ६ ; सप्रब्रह्मचारिन्—सहानुभूतिशालिन्) । ब्रह्म वेद , तद्व्ययनार्थं यद्ब्रह्म तदपि ब्रह्म , तद् चरति इति ब्रह्मचारी ।

† "नाम गोत्र-रूप-स्थान वर्ण-वयो-वचन जानीये वा इति चान्द्रा " अर्थात् 'चन्द्र'-भने, नाम प्रभृति आठ शब्द परे रहनेसे विकल्परसे 'स' होता है ; यथा—सनामा , समाननामा ; सगोत्रः , समानगोत्र इत्यादि । कोई कोई 'धर्म' शब्दकोभी लेते हैं ; यथा—सधर्मा , समानधर्मा ।

पदकार्थ ।

८१९ । पद होनेसे, सब व्यञ्जनान्त शब्दकी आकृति मत्रमीके बहुवचनके तुल्य होती है यथा—वाक् ईश, = वाक् + ईश = वागीश , सहद् ममागम = सहत्समागम , राजन वर = राजवर , अहन्-मुखम् = अहः + मुखम् = अहर्मुखम् ; दिप्-लोक = द्युलोक , विद्स् वर = विद्स् + वर = विद्वस्वः ; पुम्-लिङ्ग = पुलिङ्ग ।

पुंवद्भाव ।

८२० । स्त्रीलिङ्ग विशेष्य पद परे रहनेसे, विशेष्य उक्तपुष्क (भा-पितपुष्क) स्त्रीलिङ्ग शब्दका पुंवद्भाव अर्थात् पुलिङ्गके तुल्य आकार होता है * । यथा—(कर्मधारय)—(सुन्दरी बालिका) सुन्दरबालिका , (कृष्ण चतुर्दशी) कृष्णचतुर्दशी , (परबिकर स्त्री) परबक्री , (पञ्चमी कन्या) पञ्चमकन्या , (मइती नवमी) महानवमी , (मुकेती भाष्यां) सुवेशभाष्यां ; (ब्राह्मणी भाष्यां) ब्राह्मणभाष्यां । (बहुव्रीहि)—(स्थिता बुद्धि यस्य स) स्थितबुद्धि , (मइती मति यस्य स) महामति , (चित्रा गति यस्य स) चित्रगति , (हठा भक्ति यस्य स) हठ-भक्ति —१० १० १९ , (प्रिया भाष्यां यस्य स) प्रियभाष्यां , (काली तनु यस्य स) कालतनु । †

* जो शब्द पुलिङ्ग और स्त्रीलिङ्गमें एकही आकारमें एकही अर्थ समझाता है, उसको 'उक्तपुष्क' वा 'भापितपुष्क' स्त्रीलिङ्ग शब्द कहते हैं ।

† 'ऊप्'-प्रत्ययान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दका पुंवद्भाव नहीं होता, यथा—(कर्मधारय)—(वामोहः भाष्यां) वामोहभाष्यां , (बहुव्रीहि)—(वामोहः

८२१ । उत्तरपद परे रहनेसे, खोलिह सर्वनाम शब्दका पुंवद्भाव होता है, यथा—(सर्वस्या धनम्) सर्वधनम् ; (भवत्या प्रसादः भवत्प्रसाद ।

८२२ । 'अण्ड'-प्रकृति शब्द परे रहनेसे, 'कुङ्कुलो'-प्रकृति शब्दका

माय्यां यस्य स) वामोऽस्माय्यः ।

(क) बहुव्रीहि समासमे—जिस खोलिह शब्दकी उपधामे तद्धितका अथवा अक'-प्रादबद्धा 'क' रहता है, उसका पुंवद्भाव नहीं होता ; यथा—(तद्धित)—(रसिका माय्यां यस्य स) रसिकामाय्य , ('अक'-प्रत्यय)—(पाचिका माय्यां यस्य स) पाचिकामाय्य ।

(ख) पूरणवाचक खोलिह शब्दका पुंवद्भाव नहीं होता, यथा—(द्वितीया माय्यां यस्य स) द्वितीयामाय्य ; (पञ्चमी माय्यां यस्य स) पञ्चमीमाय्य ।

(ग) जातिवाचक और स्वाङ्गवाचक खोलिह-शब्दका पुंवद्भाव नहीं होता । यथा—(जातिवाचक)—(ब्राह्मणी माय्यां यस्य स) ब्राह्मणीमाय्य , (क्षत्रिया माय्यां यस्य स) क्षत्रियामाय्य ; (स्वाङ्गवाचक)—(सुवेशी माय्यां यस्य स) सुवेशीमाय्य , (कृशाङ्गी माय्यां यस्य स) कृशाङ्गीमाय्य ।

(घ) प्रिया, कान्ता, तनया, दुहिता—इत्यादि शब्द परे रहनेसे, पूर्ववर्ती खोलिह शब्दका पुंवद्भाव नहीं होता, यथा—(शोभना प्रिया यस्य स) शोभनाप्रिय , (मुलोचना कान्ता यस्य स) मुलोचनाकान्त ; (सुन्दरी तनया यस्य स) सुन्दरीतनय , (गुणवती दुहिता यस्य स) गुणवतीदुहितृ ।

पुंवद्भाव होता है, यथा—(कुक्ष्या अण्डम्) कुक्ष्याण्डम्, (हृद्या-
अण्डम्) हृद्याण्डम्, (काक्या शावक) काकशावक, (मृग्या-
शाव) मृगशाव, (छाग्या दुग्धम्) छागदुग्धम्, (महिष्या-
क्षीरम्) महिषक्षीरम्, (मृग्या पदम्) मृगपदम् ।

समास-कार्य्य ।

(उत्तरपदमे)

८२३ । [अ आ इ ई]—समास प्रत्ययका स्वरवर्ण परे रहनेसे, सवर्ण और इवर्णका लोप होता है, यथा—अल्पमेधा अस्—अल्पमेधस्, विशालाक्षि अ—विशालाक्ष ।

८२४ । [उ ऊ न]—समास प्रत्ययका स्वरवर्ण परे रहनेसे, उवर्णके स्थानमे 'ओ' होता है, और सकारका लोप होता है, यथा—बाहु
बाहु-इ (इच्)—बाहुवाहवि, महाराजन्-अ (ट)—महाराज ।

८२५ । [दीर्घस्वर]—क्रीदलिङ्गका विशेषण होनेसे, दीर्घस्वर ह्रस्व होता है, यथा—(विध पाति इति) विधप [प्रक्ष], उधि, धधु; (नावम् अतिमान्तम्) अतिनु [जलम्] ।

८२६ । [आप् ईप्]—अन्व पदना विशेषण होनेसे, 'आप्' और 'ईप्' प्रत्ययका ह्रस्व होता है, यथा—(त्यक्ता लज्जा येन स) त्यक्तलज्ज [पुमान्], (अतिमान्त प्रेयसीम्) अतिप्रेयसि [कृष्ण]* ।

* बहुव्रीहि-समासमे 'इयसु'-प्रत्ययके परवर्ती 'ईप्'-प्रत्ययका ह्रस्व नहीं होता, यथा—(बहव्य प्रेयस्य यस्य स) बहुप्रेयसी [कृष्णः] ।

(क) बहुव्रीहि-समासमे 'क' (कप्) प्रत्यय होनेसे, 'आप्'-प्रत्ययका

८२७ । [गो]—अन्य पदका विशेषण होनेसे, 'गो' शब्दके स्थानमे 'गु' होता है, यथा—(उष्णा गौ—किञ्च—यस्य स) उष्णगु (सूर्यं इत्यर्थं) ; (शीता गौ यस्य स) शीतगु (वन्द इत्यर्थं) ।

८२८ । [पाद्]—बहुव्रीहि-समासमे—उपमानवाचक पदके परवर्ती 'पाद्'-शब्दके स्थानमे 'पाद्' होता है, यथा—(यथाग्रन्थ इव पादौ यस्य स) व्याघ्रपाद् । 'हस्तिन्'-प्रभृतिके परवर्ती होनेसे नहीं होता ; यथा—(हस्तिन इव पादौ यस्य स) हस्तिपाद् , कुम्भपाद् इत्यादि ।

(क) 'छ'-शब्द और सङ्ख्यावाचक शब्द पूर्वमे रहनेसे, 'पाद्'-शब्दके स्थानमे 'पाद्' होता है । यथा—(शोभनी पादौ यस्य स) सुपाद् । (द्वौ पादौ यस्य स) द्विपाद्, (त्रय पादा यस्य स) त्रिपाद् ; चतुष्पाद्—(स्त्री०) चतुष्पदी ।

समास प्रत्यय ।

८२९ । [तत्पुरुष, कर्मधारय और द्विगु समासमे] एकदेशवाचक शब्दके परवर्ती 'रात्रि'-शब्दके उत्तर 'अ' (अच्) होता है ; यथा—(अद्वै रात्रे) अद्वैरात्र ; (७४२ (स) सूत्र) ।

(क) एकदेशवाचक शब्दके परवर्ती 'अहन्'-शब्दके उत्तर 'अ'

विकरणमे ह्रस्व होता है ; यथा—(बहुष विद्या यस्य स) बहुविद्याक , बहुविद्यक ।

(ख) पठितत्पुरुष समासमे, बहुवचनान् पद पूर्वमे रहनेसे, 'छाया'-शब्द झीवलिङ्ग होता है, यथा—(वृक्षाणां छाया) वृक्षच्छायम्, (इक्ष्वाणां छाया) इक्षुच्छायम्, (शराणां छाया) शरच्छायम् । पूर्वपद एकवचन होनेसे विहल्यसे, यथा—(वृक्षस्य छाया) वृक्षच्छाया, वृक्षच्छायन् ।

(टच्) होता है, और 'अहन्'-शब्दके स्थानमे 'अह्' आदेश होता है ; यथा—मध्याह्न (७४२ (ख) सूत्र) ।

(ख) । 'सर्वे' शब्द, 'पुण्य' शब्द, सह्यावाचक शब्द और अव्यय शब्दके परवर्ती 'रात्रि' शब्दके उत्तर 'अ' (अच्) होता है । यथा—
(सर्वा रात्रि) सर्वरात्र । (पुण्या रात्रि) पुण्यरात्र । (द्वयो रात्र्यो-
समाहार) द्विरात्रम्, (तिष्ठणा रात्रीणां समाहार) त्रिरात्रम्, पञ्चरा-
त्रम्, दशरात्रम् । (रात्रिम् अतिक्रान्त) अतिरात्र ।

(ग) 'सर्वे'-शब्द, 'पुण्य' शब्द, सह्यावाचक शब्द और अव्यय शब्दके परवर्ती 'अहन्' शब्दके उत्तर 'अ' (टच्) होता है, और 'अहन्'-शब्दके स्थानमे 'अह्' होता है ।* यथा—(सर्वम् अह) सर्वाह् ।
(द्वयो अहो भव) द्वयह्न (तद्वितार्थे द्विगु), (पञ्च अह भव) पञ्चाह्न । (निर्गत अह्न) निरह्न, निरह्ना बेला ।

(घ) सह्यावाचक और अव्यय शब्दके परवर्ती 'अहुलि' शब्दके उत्तर 'अ' (अच्) होता है । यथा—(द्वे अहुलो प्रमाणम् अस्य) द्वयहुलम्, त्रयहुलम् । (निर्गतम् अहुलिभ्य) निरहुलम्, (प्रहृष्टा-
अहुलय) प्रहुला ।

* 'पुण्य'-शब्द और 'एक'-शब्दके परवर्ती 'अहन्' के स्थानमे 'अह्' नहीं होता, यथा—पुण्याहम् (ट), एकाह (ट) ।

(क) समाहार द्विगु समासमे, 'अहन्' के स्थानमे 'अह्' नहीं होता ; यथा—(द्वयो अहो समाहार) अह. (ट), अह, दशाह ।

। 'रात्र' और 'अह' शब्द पुलिङ्ग, किन्तु सह्यापूर्व 'रात्र' शब्द स्त्रीव-
लिङ्ग । 'अह'-शब्द पुलिङ्ग, किन्तु 'पुण्याह' शब्द स्त्रीवलिङ्ग ।

(ङ) राजन्, अहन् और सखि शब्दके उत्तर 'ट' (टच्) होता है; 'ट्' इत्, 'अ' रहता है; यथा—(अज्ञाना राजा) अज्ञराज, (महान् राजा) महाराज —(स्त्री०) महाराज्ञी । (पूर्वम् अह) पूर्वाह; (परमम् अह) परमाह, (उत्तमम् अह) उत्तमाह । (राज्ञ सखा) राजसख; (प्रिय' सखा) प्रियसख —(स्त्री०) प्रियसखी ।

(च) 'गो'-शब्दके उत्तर 'ट' होता है, यथा—(राज् गौ) राजगव —(स्त्री०) राजगवी, (परमो गौ) परमगव; (दत्त गव घनम् अस्य) दत्तगवघन; (पञ्चानां गवां सनाहार) पञ्चगवम् । तद्धिता 'मे नहीं होता; यथा—(पञ्चमि गोभि क्रीत) पञ्चगु ।*

(छ) 'कु' और 'महत्'-शब्दके परवर्ती 'ब्रह्मन्'-शब्दके उत्तर विकल्पसे 'ट' होता है; यथा—(कुत्सित ब्रह्मा—ब्राह्मण इत्यर्थ) कुम्ब्रह्म, कुम्ब्रह्मा, महाब्रह्म, महाब्रह्मा ।

८३० । [कर्मधारय-समासमे] वृद्, महत् और जात शब्दके परवर्ती 'उक्षन्'-शब्दके उत्तर 'अ' (अच्) होता है; यथा—(वृद् उक्षा) वृदोक्ष, (महान् उक्षा) महोक्ष; (जात उक्षा) जातोक्ष ।

८३१ । [द्विगु-समासमे] 'द्वि' और 'त्रि'-शब्दके परवर्ती 'अञ्जलि'-शब्दके उत्तर विकल्पसे 'ट' (टच्) होता है; यथा—(द्वयो अञ्जलयो सनाहार) द्व्यञ्जलम्, द्व्यञ्जलि; त्र्यञ्जलम्, त्र्यञ्जलि ।

* ऐसे—(पुरुषस्य आयु) पुरुषयुवम्; (निश्चित श्रेय) निश्चयसम्, (शीमन श्रेय) श्व श्रेयसम्; (ब्रह्मणो बर्च) ब्रह्मबर्चसम्, (गोः आक्षि इव) गवक्ष; (अन्धस्य तनु नमस्य) अन्धतमसम्; इत्यादि । (अन्धयति इति अन्धम्—गवक्षच्) ।

८३२ । [द्वन्द्व-समासमे] 'स्रोपुमौ'-प्रभृति शब्द निपातन-सिद्ध, यथा—(स्रो च पुमाश्च) स्रोपुमौ, (वाक् च मनश्च) वाङ्-मनसे ; (नक्तञ्च दिवा च) नक्तन्दिवम्, (रात्रौ च दिवा च) रात्रि-न्दिवम्, (अहनि च दिवा च) अहर्दिवम् (अहनि अहनि इत्यर्थं — रोज्ञ बरोज या रोजमर्हद्), (अहश्च रात्रिश्च) अहोरात्र ; इत्यादि ।

८३३ । [बहुव्रीहि-समासमे] 'अक्षि' और 'सक्यि'-शब्दके उत्तर 'प' (पच्) होता है ; 'प्' इत्, 'अ' रहता है । यथा—(दीर्घे अक्षिर्गो यस्मिन् तत्) दीर्घाक्षं [वदनम्] ; [विशाले अक्षिर्गो यस्याः सा) विशालाक्षी [देवी] । (दीर्घे सक्यिनी यस्य स) दीर्घसक्य [पुराण] ; (वृत्ते सक्यिनी यस्या सा) वृत्तपक्यी [नारी] ।*

(क) 'द्वि' और 'त्रि'-शब्दके परवर्ती 'मूर्द्धन्'-शब्दके उत्तर 'प' होता है, यथा—(द्वौ मूर्द्धानौ यस्य स) द्विमूर्द्धं, (त्रय मूर्द्धान-यस्य स) त्रिमूर्द्धं । अन्यत्र नहीं होता, यथा—(पञ्च मूर्द्धानो यस्य स) पञ्चमूर्द्धां ।

(ख) सङ्घा समझानेसे, 'नामि'-शब्दके उत्तर विकल्पसे 'अ' (अच्) होता है, यथा—पद्यनाम, पद्यनामि, (अरविन्दं नामौ यस्य स) अरविन्दनाम, अरविन्दनामि —“प्रजा इवाङ्गादरविन्दनामे” भाष० ३. ६०, (ऊर्गो ह्येव तन्तु. नामौ यस्य स) ऊर्गनाम, † ऊर्ग-

* प्राणीका अङ्ग न समझानेसे नहीं होता, यथा—स्यूलाक्षि इक्षु-दण्ड ; दीपसर्विष शकटम् ।

† सङ्घा समझानेसे, पूर्वपदस्य 'आप्' और 'ईप्'-प्रत्ययका बहुल ह्रस्व होता है, यथा—(काल्या दास) कालिदास (कविविशेष) ; (प्रम-

नाभि — “प्रवृत्तिर्ना विना कार्थ्यंमूर्गनाभेत्सोप्यने” महर्वात्तिङ्म् ।

(ग) सङ्ख्यावाचक शब्दके परवर्ती सङ्ख्यावाचक शब्दके उत्तर ‘ङ’ होता है ; ‘इ’ इत् ; ‘अ’ रहता है ; यथा—(द्वौ वा त्रयो वा) द्विषा ; (पञ्च वा षट् वा) पञ्चया * ।

(घ) ‘धर्म’-शब्दके उत्तर ‘अन्’ (अनिच्) होता है ; यथा—(विदित. धर्म येन स) विदितधर्मा ; त्यक्तधर्मा, (मार्गं धर्मं यन्म्य स) मरणधर्मा, (जननमरणे धर्मो यन्म्य स) जननमरणधर्मा ; (साक्षात्कृत धर्मं येन स) साक्षात्कृतधर्मा—“साक्षात्कृतधर्मानो महर्षेद” उत्तर० * ।

(ङ) ‘धनुम्’ शब्दके उत्तर ‘अन्’ (अनच्) होता है ; और सकारका लोप होता है, यथा—(गृहीत धनु येन स) गृहीतधन्वा ; (अधिज्य धनु यन्म्य स) अधिज्यधन्वा † ।

(च) नञ्, टुर् और छ शब्दके परवर्ती ‘प्रजा’-शब्दके उत्तर ‘अम्’ (अनिच्) होता है ; यथा—(अविद्यमाना प्रजा यन्म्य स) अप्रजा (अप्रजम्), (दुष्टा प्रजा यन्म्य स) दुष्टप्रजा, (दोनता प्रजा यन्म्य स) छप्रजा ।

(छ) नञ्, टुर्, लु, मन्द् और अल्प शब्दके परवर्ती ‘मेधा’-

दाना वनम्) प्रमदवनम्, प्रमदावनम् ; (वैदेह्या. बभु) वैदेहबभु — र० १४. २३ ; इत्यादि ।

* द्विन्तु (त्रयो वा चत्वारो वा) त्रिचतुष्टय ।

† सप्त छमक्षानेषे, विकल्पेषे होता है, यथा—(पुत्र्यं धनुर्दस्य ङ) पुत्र्यधन्वा, पुत्र्यधनु (धन्दर्प इत्ययं)—माध० १. ४१. १

शब्दके उत्तर 'अस्' होता है, यथा—अमेघा, दुर्मेघा, सुमेघा ;
(मन्दा मेघा यस्य स) मन्दमेघा, अल्पमेघा ।

(ज) सु, उच्च, पूति और सुरभि शब्दके परवर्ती गुणवाचक 'गन्ध'-
शब्दके उत्तर 'इ' होता है, यथा—(शोभन गन्ध यस्य स)
सुगन्धि, (उन्नत गन्ध यस्य स) उन्नन्धि, (पूति—दुष्ट—
गन्ध यस्य स) पूतिगन्धि, (सुरभि—मनोहर—गन्धो यस्य स)
सुरभिगन्धि ।

स्वाभाविक गन्ध न होनेसे नहीं होता, यथा—सुगन्ध पवन ;
"आघ्रायि वान् गन्धग्रह सुगन्धस्तेनारविन्दव्यतिपङ्कवाश्च" (वान् वहन्
वायुराघ्रात इत्यर्थ) म० २. १० । *

(झ) उपमानवाचक पदके परवर्ती 'गन्ध'-शब्दके उत्तर 'इ'
होता है †, यथा—(पद्मस्य इव गन्धो यस्य तत्) पद्मगन्धि [सुखम्] ।

(ञ) 'जाया'-शब्दके उत्तर 'इ' होता है, और 'जाया' के स्थानमे -
'जान्' होता है, यथा—(सीता जाया तस्य स) सीताजानि ;
(युवति जाया यस्य स) युवजानि, (प्रिया जाया यस्य स)
प्रियजानि, (सुन्दरी जाया यस्य स) सुन्दरजानि ।

(ट) 'उरस्'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'कप्' होता है, 'प्' इत्, 'क'-
रहता है, यथा—(वृद्धम्—विपुलम्—उर यस्य स) वृद्धोरस्क ;
(पीत सर्पि येन स) पीतसर्पिष्क, (उपानद्या सह वर्तमान)

* "गन्धाद्वा इति चान्द्रा" ।

† शाकटायन-मते विकल्पसे, यथा—पद्मगन्धि, पद्मगन्धम् ।—

"वोपमानात्" ।

सोपानम् ; (भाषित पुमान् देव स) भाषितपुम्कः [शब्द] ; (प्रचुरं पय यस्या सा) प्रचुरपयम्का [धेनु] ; (प्राप्ता लक्ष्मीं देव स) प्राप्तलक्ष्मीकः ; (आहत भवु येव स) आहतभवुकः ; (विकाशनाशं दधियया सा) विक्रीयनाशदधिका [गोरी] ; (न विद्यते अयं यस्मिन् तत्) निरयंकम्, अनयंकम् ।

(ठ) स्त्रीलिङ्गमे, 'इन्'-भगान्त शब्दके उत्तर 'क्' होता है ; यथा—(वहव घनिन यस्या सा) बहुघनिना [नगरी] ; (बहुव वाग्मिनः यस्यां सा) बहुवाग्मिका [समा] ।

(ड) ङकारान्त शब्द और स्त्रीलिङ्ग ईकारान्त तथा ऊकारान्त शब्दके उत्तर 'क्' होता है । यथा—(नास्ति पित्रा यस्य स) निष्पितृकः ; (माया सह वर्त्तमान) समानृकः ; (मृत भर्ता यस्या सा) मृतभर्तृका । (स्त्रिया सह वर्त्तमान) मखोकः ; (मृता पत्नी यस्य स) मृतपत्नीकः, (बह्व्य कुनाय्यं यस्य स) बहुकुमारोकः ; (मपुरा खागो यस्य स) मपुराखागोकः । (प्रौढा बधू यस्य स) प्रौढबधूकः ।*

(घाँ)-शब्द-भिन्न) जिनके स्थानमे 'इय्' 'ठव्' होते हैं, ऐसे ईकारान्त और ऊकारान्त शब्दके उत्तर नहीं होता ; यथा—(शोमना श्री यस्य स) शूमयी ; (शोमना भू यस्य स) शूमू ।

(द) पूर्वोक्त-भिन्न अन्यविध शब्दके उत्तर विकल्पसे 'क्' होता है ; यथा—(लब्धं यरा देव स) लब्धयशस्क, लब्धयशा ; (प्रायं तैत्र येव स) प्रायनेत्रस्क, प्रायनेत्रा ; (मुग्धितं शिर यस्य स) मुग्धितशिर-

* प्रथमा धमस्तानेसे, 'भ्रातृ'-शब्दके उत्तर 'क्' नहीं होता ; यथा—शुभ्राता ; पण्डितभ्राता ; उधुभ्राता । अन्यत्र—मूर्धभ्रातृक ; बहुभ्रातृक ।

स्कं, मुण्डितशिरा* ; (एतं धनु येन स) घृतधनुष्क, घृतधनु, (अजितं घनं येन स*) अजितधनक, अजितधन, (अन्यस्मिन् मन यस्य सः) अन्यमनस्क*, अन्यमनाः ।

(ण) व्यतीहार-अर्थमे 'इच्' होता है, 'च्' इच्, 'इ' रहता है, यथा—केशाकेशि, मुर्धासुष्टि, बाहूबाहवि ।*

८३४ । [अच्ययीभाष-समासमे] 'शाद्'-प्रवृत्ति † शब्दके उत्तर 'अ' (टच्) होता है, यथा—(शादि शरदि) प्रतिशरम् ; (दिशि दिशि) प्रतिदिशम्, (हिमवत्पर्यन्तम्) आहिमवत्तम्, अनुदशम् ।

(क) 'जरा'-शब्दके उत्तर 'अ' होता है, 'अ' होनेसे, 'जरा'-के स्थानमे 'जरस्' होता है, यथा—(जरायां समीपे) उपजरासम् ।

(ख) सम्, अनु, प्रति और पर शब्दके परवर्ती 'अक्षि'-शब्दके उत्तर 'अ' होता है; यथा—(अक्ष्य समीपे) समक्षम्, अन्वक्षम् ; (अक्षि प्रति) प्रत्यक्षम्, (अक्ष्य परम्) परोक्षम् ‡ ।

(ग) 'अन्'-भागान्त शब्दके उत्तर 'अ' होता है, यथा—(राजनि) अधिराजम् ; अध्यात्मम् ; प्रत्यन्वम् । §

* पूर्वपदका अन्त्यस्वर दीर्घ होता है । शाकटायन-मते—पूर्वपदके अन्त्य-स्वरके स्थानमे 'वा' होता है; यथा—मुशमुष्टे, बहाबाहवि ।—“आदि-अन्ते” । स्वरवर्गं परे रहनेसे नहीं होता ; यथा—अस्यासि ।

† शरद्, अनष्ट, मनस्, वेजस्, उगानह, अनडुह्, दिक्, हिमवत्, दिश्, दम् इत्यादि ।

‡ 'अक्षि'-शब्द परे रहनेसे, 'पर' के स्थानमे 'परस्' होता ।

§ ह्रींवल्लिङ्ग शब्दके उत्तर विकल्पसे होता है ; यथा—उपचर्मम्, चपचर्म ।

(घ) गिरि, नदी, पौर्णमासी और आप्रहायणी शब्दके उर विकल्पसे 'अ' होता है; यथा—(गिरे समासम्) उपगिरम्, उरगिरि; उपनदम्, उपनदि; उपपौर्णमासम्, उपपौर्णमासि; उपाप्रहायणम्, उपाप्रहायणि ।

(ङ) पञ्चम-भित्त स्पर्शवर्गान्त शब्दके (अर्थात् वर्गके प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ वर्गके) उत्तर विकल्पसे 'अ' होता है; यथा—उरददादम्, उपददात्; अनुमनिधम्, अनुममि ।

(च) 'प्रति'-शब्दके परवर्ती सतन्वयसंभे वर्तमान 'उरलू'-शब्दके उत्तर 'अ' (अच्) होता है, यथा—(टासि) प्रत्युरसम् ।

८३६ । [सर्वसमासमे] 'पयिन्'-शब्दके उत्तर 'अ' होता है । यथा—(राज्ञां पन्या) राजपय; (दृष्टे पन्या) दृष्टिपय; (जङ्गे पन्या) जङ्गपय, (दक्षिणा—दक्षिणम्यां दिशि—पन्या) दक्षिणापय । (सन् पन्या) सत्पय । (कुत्सित पन्या) कापय । (त्रयाणां पर्या समाहार) त्रिपयम्, (चतुर्णां पर्या समाहार) चतुष्पयम् । (क्षेत्रज्ञ पन्याश्च) क्षेत्रपयौ । (रम्य पन्या यस्मिन् तत्) रम्यपय [नगरम्] । (पन्यान् प्रति) प्रतिपयम् ।

अव्यय-शब्दके परवर्ती होनेसे श्लोत्रलिङ्ग होता है; यथा—(विरद पन्या) विरपयम्; (गार्हित पन्या) उत्पयम्; (अपकृष्ट पन्या) अपपयम् ।

(ङ) 'अप्'-शब्दके उत्तर 'अ' होता है; यथा—(विमला आप यस्मिन् तत्) विमलापं [सर], (ददृता आप यस्मात् स) ददृताप- [कृत्] ।

(ख) पुर, घूर् और ऋच् शब्दके उत्तर 'अ' होता है । यथा—
 (राज पृ) राजपुरम् । (राज्यस्य घृ) राज्यघुरा , (महती घृ)
 महाघुरा , (विश्वस्य घृ) विश्वघुरा , (रणस्य घृ) रणघुरा—“ताते
 चापद्रिताये वहति रणघुराम्*” वेगी० ३ * , “कार्यघुरा वहन्ति”
 मुद्रा० १ १४ , “न गर्दभा वाजिघूरं वहन्ति” मृच्छ० ४ १७ , (एता
 घू येन स) एतघुर । † (अर्द्धम् ऋच) अर्द्धचं , अर्द्धचम् ‡ , (अधि-
 गता ऋक् येन स) अधिगतर्चं ।

समासप्रत्यय-निषेध ।

८३६ । पूजार्थं (प्रशसावाचो) 'सु' और 'अति'-शब्द पूर्वमे
 रहनेसे, समास प्रत्यय नहीं होता , यथा—(शोभनो राजा) सुराजा ,
 (शोभनो राजा यस्मिन् स) सुराजा [देश] , (अतिशयेन राजा)
 अतिराजा , सुपक्षा , अतिसखा , सुगौ , अतिगौ , सुपन्था ।

(क) निन्दार्थं 'किम्' शब्द पूर्वमे रहनेसे, समासप्रत्यय नहीं होता ,
 यथा—(कुटिलो राजा) किराजा , (कुटिलत सन्वा) क्रिमखा ,
 (कुटिलत पन्था यस्मिन् स) किम्पन्था [देश] ।

(ख) तत्पुरुष-समासमे, 'नञ्' शब्द पूर्वमे रहनेसे, समास-प्रत्यय
 नहीं होता , यथा—(न राजा) अराजा , असखा , अगौ ।

* 'रणघुरम्' इति च पाठ । † 'कार्यघुरम्' इति च पाठ ।

† 'अक्ष' शब्दका सम्बन्ध रहनेसे नहीं होता , यथा—(अक्षस्य घू)
 अक्षघू , (दृढा घू यस्य स) दृढघू [अक्ष] ।

‡ 'अर्द्धवादि'-शब्द पुलिङ्ग और क्लीबलिङ्ग (अर्द्धचं, गोमय, कार्यापण,
 अज, नखर, चरण, मधु, मूल, तण्डुल इत्यादि) ।

‘पयिन्-शब्दके उपर विकल्पते । मनासान्त-पदमे ह्योवच्छिद्य होता है ; यथा—अपयन्, अपन्या ।

समास-विच्छेद ।

✽ समास विच्छेद करनेके समय, उसका विग्रहवाच्य कहना होता है । किन्तु किसी वाक्यके अन्तर्गत समस्तपदका समास-विच्छेद करनेके समय, पुनरुक्ति-प्रभृति दोष-परिहार तथा अन्यान्य पदके साथ अन्वय-रक्षा करनेके लिये कुछ कुछ परिवर्द्धन, परिवर्द्धन और परिवर्तनभी करना होता है । यथा—

दधिभाण्डम् = दध्ना भाण्डम् ।

मस्तकस्थितान् = मस्तके यन् स्थित तस्मान् * ।

यूयं मन्ध्यासमये
महारवं करिष्यथ } = { यूयं सन्ध्यायाः समये
महान्तं रवं करिष्यथ ।

त्रिभुवने भवाद्या कोऽपि नास्ति = त्रिषु भवनेषु भवाद्या
कोऽपि नास्ति ।

दानमानाभ्यां तं पूजयामास = दानेन मानेन च तं पूजयामास ।

निरपराधो हसस्तेन व्यापादित = यस्यापराधो नासीत् स
हसस्तेन व्यापादित ।

स प्रतिदिनं विद्याभ्यामे मग्नं प्रवर्तते = स दिने दिने विद्याया
अभ्यामे यत्नेन सद् प्रवर्तते ।

समास होनेके पश्चान्—मिह, व्याज-प्रभृति शब्द ‘श्रेष्ठ’-अर्थ

* समस्तपद द्वितीयादिविभक्तियुक्त रहनेसे, समासविच्छेद का विग्रह-वाक्यमे, अन्तमे इसप्रकार ‘तद्’ शब्दका वही-विभक्तियुक्त पद कहना होता है ।

समन्नाते हैं, और निभ, सङ्काश प्रभृति शब्द* 'तुल्य'-अर्थ समन्नाते हैं, इसलिये समासविच्छेदमे उनके स्थानमे श्रेष्ठार्थ और तुल्यार्थ पद बैठाना चाहिये, यथा—पुरुषसिंह = पुरुषाणा श्रेष्ठ ; देवसङ्काश = देवस्य सटश ।

समास-प्रश्नमाला ।

समास विच्छेद करो—वृद्धशृगाल । सर्वस्वामिगुणोपेत । सामर्थ्य-हीन । मन्मरणम् । मत्स्यकण्टकाकीर्णम् । कम्बुप्रोवनामा । स्वकापोत्कर्षम् । अरण्यवासिषु । क्षुत्क्षाम । चन्द्राक्षचूडामणिः । मासाहारदानन । तत्पृतरावम् । लघुडहस्तः । हृष्टपुष्टाङ्ग । अस्मत्सौख्यम् । सभोपम् । विश्वम्भालापैः । नारजः । व्याघ्रभीत । रक्षविलिसमुखपाद । पाद्यगतात् । भरनाश । इत्यहम् । अज्ञातकुलशीलेन । शतार्द्धी । स कूर्मकोपाविष्टो विस्मृतपूर्ववचन प्रोवाच । ततस्तेन सिंहव्याघ्रादीन् उत्तमपरिजनान् प्राप्य स्वजातीया सर्वे दूरीकृता । नास्ति क्षुद्रजन्तूनामपि निमज्जनस्थानम् । ततस्तत्तीरावस्थिता गजपादाइतिभिश्चूर्णिता क्षुद्रशशका । ततस्तेन नहुलेन बालकसमीपमागच्छन् वृष्णसर्पो हृष्टा व्यापादित । आसीत् सकलराजलक्षणोपेत शूद्रको नाम राजा । एकदाऽसौ अमात्यगणपरिवृत परिपदमास्थित । तदैको राजपुत्र पुत्रभाव्यांसमेतो देशान्तराद्राजगाम ।
समास करो, और कौन समास कबो—गुरोर्वचन श्युपात् । शीतल

* निभ, सङ्काश, नीकाश, प्रतीकाश प्रभृति शब्द उत्तरपद हीनेसेही 'सदश' वाचो होते हैं ।—

“स्युत्तरपदे त्वमी ।

निभ् सङ्काश-नीकाश प्रतीकाशोपमादय ॥” (तुल्यार्थो इति शेष) ।

जल निज । कुशलेण डिब्रो वृक्ष । नद्यां मग्ना नौका । स अम्पार्कं गृह्ण
 आगमिष्यति । नया कृतं कार्प्यम् । त्रिषु लोकेषु गीयते ते यद्य । दशह
 दिक्षु विख्यातम् । चतुर्षु पुत्रेषु सन्धय्य आदर । तत्र कुशलं मन प्रीत्यै
 तूर्णम् आवेदय । तस्योपरि पुण्यागां वृष्टिं परात । निष्ठाया निष्ठाया
 उत्सवो भवति । अन्नं व्यञ्जनञ्च भक्षय । फलानि पुण्यानि च मगर ।
 शस्त्रं शस्त्रैश्च युज्यते । गुरु छात्राश्च गच्छन्ति । ह्यौ न्यूतौ च मान
 तरे चगन्ति । महान् वृक्ष अयम् । धार्मिकाणां वसे राम विदुः सन्धय्य
 पालनार्थं भ्रात्रा अनुयात पत्न्या सह वनं जगाम ।

कृत्-परिशिष्ट ।

अ ।

८२७ । अ—प्रत्ययान्त धातुके उत्तर भाववाच्यमे 'अ'-प्रत्यय होता
 है । 'अ' प्रत्ययान्त शब्द खोलिङ्ग । यथा—(मन्त) जिज्ञासा,
 पिपासा ; चिकीर्षां , जिगीषा ; जिगमिषा , लिप्सा ; जिज्ञासा ; विक्रि-
 त्सा ; मीमामा , जुगुप्सा । (यदन्त) भटाट्या । (नामधातु) तन्व्या ;
 चरित्त्या , अतनाया , पुत्रकाम्या ; कण्डूया ।

(क) निष्ठाप्रत्ययमे जिन धातुभोक्ते उत्तर 'इट्' होता है, ऐसे
 आदिमे गुणस्वरविशिष्ट व्यञ्जनान्त धातुके उत्तर भाववाच्यमे 'अ' होता
 है, यथा—(ईट्) ईडा , (ऐट्) ऐटा ; (निष्) निष्ठा ; (सेव्)
 सेवा , (निन्द्) निन्दा , (शङ्) शङ्का , (अच्) अचां , (काह्व्)
 आकाह्वा , (ईष्) परीक्षा , (कम्प्) अनुकम्पा , (दान्म्) आदाना ,

प्रशंसा, (क्रीड्) क्रीडा, (बाष्) बाधा, (वाञ्छ्) वाञ्छा ।

८३८ । अङ्—धातुपाठमे षकार-इत् (पित्) धातुके उत्तर भाव-वाच्यमे 'अङ्' प्रत्यय होता है, 'ङ्' इत्, 'अ' रहता है । 'अङ्'-प्रत्ययान्त शब्द खीलिङ् । यथा—(जृप्) जरा, (क्षमृप्) क्षमा ; (त्रपृप्) मया, (व्यप्) व्यथा, * (त्वर्) त्वरा ।

(क) 'भिङ्' प्रभृति धातुके उत्तर भाववाच्यमे 'अङ्' होता है ; यथा—(भिङ्) भिदा, (छिङ्) छिदा, (पीङ्) पीडा, (मृज्) मृता, (दप्) दया, (तोलि) तुला ।

(ख) चिन्ति, पूजि, कथि और चर्चि धातुके उत्तरभी भाववाच्यमे 'अङ्' होता है, यथा—चिन्ता, पूजा, कथा, चर्चा ।

(ग) उपमार्ग, 'श्रत्'-शब्द और 'अन्तर्' शब्द पूर्वमे रहनेसे, आकारान्त धातुके उत्तर भाववाच्यमे 'अङ्' होता है । यथा—(मा) अभा, प्रभा, विभा, प्रतिभा, (मा) प्रमा, उपमा, प्रतिमा, (धा) विधा, व्यवसा, अभिधा, उपधा, (ज्ञा) अभिज्ञा, प्रज्ञा, अनुज्ञा, सज्ञा, भवज्ञा, प्रतिज्ञा, उपज्ञा, आज्ञा, (ह्या) आख्या, संह्या, व्यमिख्या, (स्या) संख्या, अवस्था, आस्था, निष्ठा, प्रतिष्ठा । (धा) श्रद्धा, अन्तर्द्धा ।

८३९ । अच्—'पच्' प्रभृति धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'अच्'-प्रत्यय होता है, 'च्' इत्, 'अ' रहता है, यथा—(पचनीति) पच ; (दीव्यतीति) दव, (क्षमते इति) क्षम, (धरतीति) धर, (हरतीति) हर ।

* घटादि धातुभी 'पित्' ।

(चरतीति) चर वा चराचर ; (चलतीति) चल वा चलाचल ;
(पततीति) पत वा पतापत ; (वदतीति) वद वा वदावद ।

(क) कर्मवाचक पदके परवर्ती 'हृ'-धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे
'अच्' होता है, यथा—(अश हरति इति) अंशहरः (दायाद) ,
(भागं हरति) भागहर ; रोगहर ; शोकहर , दुःखहर ; हंसहर ।*

(ख) कर्मवाचक पदके परवर्ती 'अर्हं'-धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे
'अच्' होता है, यथा—(पूजाम् अर्हति इति) पूजाहं ; (त्व
अर्हति) तदहं ; (सत्कारम् अर्हति) सत्काराहं ; (निन्दाम्
अर्हति) निन्दाहं ।

(ग) अधिकरणवाचक पदके परवर्ती 'शी'-धातुके उत्तर कर्तृ
वाच्यमे 'अच्' होता है, यथा—(शिलायां शेते इति) शिलाशय ;
(भूमौ शेते) भूमिशय ; (शय्यायां शेते) शय्याशय , (विले शेते)
विलेशय (सर्प) ।

(घ) 'पार्श्व'-प्रभृति शब्दके परवर्ती 'शी'-धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे
'अच्' होता है, यथा—(पार्श्वेन शेते इति) पार्श्वशय ; (शृष्टेन
शेते) शृष्टशय ; (उदरेण शेते) उदरशय , (उत्तान शेते) उत्तान-
शय ; (अवमूर्द्धां †—अधोमुख—शेते) अवमूर्द्धशय ।

८४० । धञ्—भाववाच्यमे और कर्तृभिन्न-कारकवाच्यमे धातुके
उत्तर 'धञ्'-प्रत्यय होता है, 'ध्' और 'ञ्' इव, 'अ' रहता

* 'भारवहन'-अर्थमे नहीं होता ; यथा—(भारं हरति) भारहार —
यहाँ 'अण्' हुआ ।

† अवनत मूर्द्धा यस्य स —अवमूर्द्धा ।

है । * 'अच्'-प्रत्ययान्त शब्द पुलिङ्ग । यथा—(भाववाच्ये)—(पच्) पाकः ; (त्यज्) त्यागः , (नश्) नाशः ; (पट्) पाठः , (छु) छात्रः , (र—उपमार्गपूर्व) आराव , विराव , सराव , (शुच्) शोकः । (कर्मवाच्ये)—(भुज्यते इति) भोग (भोग्यवन्तु) , (प्राप्यते—क्षिप्यते—इति) प्रास (कुन्त) । (करणवाच्ये)—(रज्यते अनेन इति) राग † (लाक्षादि) । (अपादानवाच्ये)—(आहरन्ति रसम् सम्प्ताप् इति) आहार (मन्थयन्तु) । (अधिकरणवाच्ये)—(रज्यति अस्मिन् इति) रङ्गः (नाट्यशाला) ।

(रम्) आरम्भ , (लम्) आलम्भ ।

८४१ । अच्—इवर्गान्त धातुके उत्तर भाववाच्यमे और कर्तृभिन्न-कारकवाच्यमे अच्-प्रत्यय होता है ; 'च्' इत्, 'अ' रहता है । 'अच्'-प्रत्ययान्त शब्द पुलिङ्ग । यथा—(जि) जय , (क्षि) क्षय , (श्रि) श्रय ; (ली) लय ; (नी) नय , (भी) मयम् (क्लीबलिङ्ग) ।

८४२ । अप्—ऋवर्गान्त और उवर्गान्त धातुके उत्तर भाववाच्यमे और कर्तृभिन्न-कारकवाच्यमे 'अप्' प्रत्यय होता है ; 'प्' इत्, 'अ' रहता है । 'अप्'-प्रत्ययान्त शब्द पुलिङ्ग । यथा—(कृ) का , (शृ) शर ; (गृ) गर ; (स्तृ) स्तवः , (रु) रव (मृ) मय ।

[(वि + धृच्) काय (दह) , (नि + वि + धृच्) निःकाय

* ४५५ (५) (७) सूत्रानुसार 'इत्'-कार्य होगा ।

† करणवाच्य और भाववाच्यमे 'रज्ज्' धातुके नकारका लोप होता है ।

‡ व्याकरणतरमे 'अच्' और 'अप्' इन दोनों प्रत्ययोंके स्थानमे एक 'अच्'-प्रत्ययका विधान परिशिष्ट होता है ।

(गृहम् , राशि , सहस्र) ; (अन्यत्र) चय (अच्) । (वि + स्तृ + घञ्) विस्तार , (अप्) विस्तर (वाक्त्रप्य) , विष्टर (आननम्) । (प्र + मद् + अप्) प्रमद (हर्षं) , (घञ्) प्रमाद (अनवधानता) ।]

८४३ । क—जिन धातुओंकी उपगमे ह, उ अथवा ऋ रहता है, उन धातुओंके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'क'-प्रत्यय होता है, 'कू' इत्, 'म' रहता है, यथा—(वेत्ति इति) विद , (दुष्यते इति) दुष , (रोहति इति) रुह , (नृत्) नृत् ।

(क) कृ, गृ, ज्ञा और प्री धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'क' होता है । 'कू' के स्थानमे 'इर्', और 'इ' के स्थानमे 'इय्' होता है । यथा—(किरति इति) किर , (गिरति इति) गिर ; (जानाति इति) ज्ञ , (प्रीणाति इति) प्रिय ।

(ख) ढगर्ग पूर्वक आकारान्त धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'क' होता है, यथा—(प्र + ज्ञा) प्रज्ञ , (वि + ज्ञा) विज्ञ , (अभि + ज्ञा) अभिज्ञ , (प्र + दा) प्रद , (प्र + मा) प्रम , (नि + मा) निम , (वि + आ + प्रा) व्याप्रा ।

(ग) कर्मवाचक शब्दके परवर्ती उपगमहीन आकारान्त धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'क' होना है, और धातुके आकारका लोप होता है, यथा—(अन्नं ददाति इति) अन्नद , (भूमिं ददाति) भूमिद ; (धनं ददाति) धनद , (वारिं ददाति) वारिद ; (ज्ञानं ददाति) ज्ञानद , (शिरं प्रायते) शिरस्त्रम् * ; (तनुं प्रायते) तनुत्रम् ;

* प्रा (प्र) धातुके असादानके उत्तरमे होता है ; यथा—(आत्

(धर्मं जानाति) धर्मंजः ; (रथं जानाति) रथज ; (नृन् पाति) नृप ;
(सुवं पाति) मृग* , (सूर्नि पाति) सूर्निर , (मत्तु विवति) मत्तुप ।

(घ) छवन्त-पद और उपसर्गके परवर्ती 'स्या'-घातुके उत्तर कर्तृ-
वाच्यमे 'क' होता है ; और घातुके आकारका लोप होता है । यथा—
(गृहे तिष्ठति इति) गृहस्थ्य ; (वने तिष्ठति) वनस्थ्य , (मय्ये तिष्ठति)
मय्यस्थ्य- ; (प्रवृत्तौ तिष्ठति) प्रवृत्तिस्थ्य । छस्थ्य ; दुस्थ्य ; संस्थ्य ;
(वर + स्या) वरस्थ , (नि + स्या) निष्ठ ।

(ङ) छवन्त-पदके परवर्ती दुद् घातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'क'
होता है ; 'दुद्' के 'ङ्' के स्थानमे 'च्' होता है , यथा—(कामं शोषिष
इति) कामदुषा [घेत्तु] ।

गौर्गोः कामदुषा कन्यक्प्रयुक्ता स्तस्येति दुषे ।

दुष्प्रयुक्ता पुनर्गोत्वं प्रयोक्तुं सैव शक्यति ॥

८१४ । खच्—'प्रिय'-प्रभृति शब्दके परवर्ती 'वद्'-प्रभृति
घातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'खच्'-प्रत्यय होता है ; 'ख्' और 'च्' इत्,
'अ' रहता है ; 'चित्'-कार्य होता है (४९९ (४) सू०) । यथा—
(प्रियं वदति इति) प्रियंवद् , (वस वदति) वसंवद् (आयत्त.) ।
(प्रियं कथेति) प्रियङ्कः ; धेनङ्कः , मथङ्कः । (वार्त्तं यच्छति)
वार्त्तयन् . (मौनव्रता) । (मर्वे कथति) मर्वट्टप . (सर्वहित) ; कृत्
दुषः [नद] । (परान्—शत्रून्—दानयति) परन्तर* । (वरान्
दानयति दानयति वा) वरिन्दन* । (पुर दारयति—दृ + णिच्) पुरन्दार ।

पाद ब्रान्ते) वानवन्तम् ।

* 'खच्'-प्रत्यय परे रहनेसे, पित्रन्त यदुक्ते टनवा इत्त्व होती है ।

(धुरं धारयति) धुरन्धरा ; (वसूनि धारयति) वसुन्धरा । (रतिं वृणोति) रतिन्धरा [कन्दिका] । (विश्वं विनर्ति) विश्वन्धर (विष्णु) ; विश्वन्धरा (पृथिवी) । (सर्वं महते) सर्वन्धरा (धर्मो) । (धनं जयति) धनजय । (मुनेन—कौटिल्येन, मुजं—वक्रं वा गच्छति) मुजङ्घन * , (प्लवेन—रुन्धेन—गच्छति) प्लवङ्घन ; (सुरेण—वेणेन—गच्छति) सुरङ्घन । (विहायमा गच्छति) विहङ्घन (विहायमा 'विह' इति पाठ्यम्) , (हृदयं गच्छति) हृदयङ्घन ।

८४५ । खल्—ख, दुर् और ईपत् शब्दके परवर्ती धातुके उत्तर कर्मवाच्य और भाववाच्यमे 'खल्'-प्रत्यय होता है; 'ख्' और 'त्' इत्, 'अ' रहता है । यथा—(सद्येन क्रियते) खट्वा † ; (दुस्तेन क्रियते) दुष्कर ; (सुवेन क्रियते) ईपत्कर । (गम्) छगन ; दुर्गम । (बह्) खबह ; दुर्बह । (त्यज्) छन्यज , दुस्त्यज ; (लन्) खलन ; दुर्लभ ।

८४६ । खग्—'असूर्यम्'-प्रभृति कर्मवाचक पदके परवर्ती 'खग्'-प्रभृति धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'खग्'-प्रत्यय होता है; † 'ख्' और 'ग्' इत्, 'अ' रहता है । यथा—(सूर्यम् अपि न पश्यति इति) असूर्यम्-भ्रमरपा [कुलवधू] ; (जनम् पश्यति) जननेजय ; (स्तनं ध्रजति) स्तनजय (गिष्ठा), स्तनजयशो (कन्या) ; नाशो—वैश्वानरो—ध्रजति

* ड—मुजग ; डख्—मुजह । ऐसे—हवा, लवङ्ग ; सुरङ्ग, सुरङ्ग ; विहग , विहङ्ग ।

† 'खित्'-प्रत्ययान्त परे रहनेसे, अन्वय उत्तरपदके उत्तर 'म्' नहीं होता ।

‡ 'खग्'-प्रत्यय परे, धातुका बहुलकारके दुन्द्य कार्य होता है ।

—धमा धातु) नाडिन्धम * (स्वर्णकार इत्यर्थ) , (अञ्ज लेटि) अञ्जलिह [प्रासाद]—'ख' परे, ङिह् धातुका गुण नहीं होता । (विधुं तुदति) विधुन्तुद (राहु) , (मरुपि तुदति) मरुन्तुद (मर्म-पीडक , दुःखद इत्यर्थ)—'अरस्'-शब्दके सकारका लोप होता है । (आत्मान पण्डित मन्यते) पण्डितम्मन्य , (आत्मान धन्य मन्यते) धन्यम्मन्य , कृतार्थम्मन्य , सुभगम्मन्य † । (कुलम् उद्भुजति विभनक्ति—उत् + रुज् धातु) कूलमुद्भुज [महोक्ष*] , (कूलम् उद्ब-हति) कूलमुद्बहा [सरित्] ।

८४७ । ट—'दिवा'-प्रभृति कर्मवाचक पदके परवर्ती 'कृ'-धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'ट'-प्रत्यय होता है , 'ट्' इत् , 'अ' रहता है , यथा—(दिवा—दिन—करोति इति) दिवाकर , (विभां करोति) विभाकर , प्रभाकर , निभाकर , (भास् करोति) भास्कर , अहस्कर ; अस्न-कर ; किङ्कर , लिपिकार , चित्रकर ; (कर्म करोति मूल्येन) कर्मकर (भृत्य इत्यर्थ †—मज्जदूर) ।

(क) 'हेतु' और 'अनुकूल' अर्थ समझानेसे, कर्मवाचक पदके परवर्ती धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'ट' होता है । यथा—('हेतु'-अर्थमे) शोक-कर बन्धुनाश (बन्धुनाश शोकका हेतु) , अर्थकर यशस्कर विद्या-लाभ (विद्यालाभ अर्थ और यशका हेतु) । ('अनुकूल' अर्थमे) पितृ

* 'खित्'-प्रत्ययान्त परे रहनेसे, उपपदका अन्त्य स्वर हृद्य होता है ।

† इसप्रकार अर्थमे 'णिन्' भी होता है ; यथा—पण्डितमानी , धन्य-मानी , कृतार्थमानी , सुभगमानी ।

‡ अन्यत्र 'अण्' होता है , यथा—कर्मकार (लोहार) ।

आज्ञाकर वचनकर पुत्र (पुत्र पिताकी आज्ञा और वचनके अनुकूल) ।

(छ) पुर , अग्र, अग्रे, अग्रत — इन शब्दोंके परवर्ती 'खृ'-धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'ट' होता है, यथा—पुर सर , अग्रसर , अग्रेसर ; अग्रत सर ।

(ग) अधिकरणवाचक पदके परवर्ती 'चर' धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'ट' होता है, यथा—(जले चरति इति) जलचर , (वारिणि चरति) वारिचर , (स्थले चरति) स्थलचर , (भुवि चरति) भूचर , (बने चरति) वनचर , (निशायां चरति) निशाचर , (पार्श्वे चरति) पार्श्वचर ; (से चरति) खर ।

'रात्रि'-शब्द विकल्पसे द्वितीयाके एकवचनान्तवत् होता है, यथा—(रात्रौ चरति) रात्रिचर , रात्रिञ्चर ।*

८४८ । टक्—कर्मवाचक पदके परवर्ती 'गा' (गौ) धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'टक्' प्रत्यय होता है, 'ट्' और 'व्' इत्, 'अ' रहता है; यथा—(साम गायति इति) सामग ।

(क) कर्मवाचक पदके परवर्ती 'हन्'-धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'टक्' होता है, और 'हन्' के स्थानमे 'घ्न' होता है, यथा—(पापं हन्ति इति) पापघ्न , (पित्त हन्ति) पित्तघ्न ; (वातं हन्ति) वातघ्न , (त्रिदोषं हन्ति) त्रिदोषघ्न ; (शत्रुं हन्ति) शत्रुघ्न ; (मित्रं हन्ति) मित्रघ्न , (शत्रु हन्ति) शत्रुघ्न , (पशुं हन्ति) पशुघ्न ।

(ख) उपमानवाचक तद्, यद्, एतद्, किम्, भवद्, अस्मद्, पुष्पद्, अद्म्, इद्म्, अन्य और समान शब्दके परवर्ती हन्'-धातुके

* कर्मा कर्मी अधिकरणवाचक पद विभाक्तियुक्त रहता है; यथा—खर , बनेवर ।

उत्तर कर्त्तृवाच्यमे 'टक्' होता है ।*

'टक्' प्रत्ययान्त 'टङ्'-घातु परे रहनेसे, तद्, यद्, एतद्, अस्मद् और युष्मद् शब्दके 'ङ्' का लोप, और तत्पूर्ववर्ती 'अ' के स्थानमे 'आ' होता है; यथा—(स इव दृश्यते इति) तादृश , यादृश , एतादृश ; अस्मादृश , युष्मादृश । †

'टक्' प्रत्ययान्त 'टङ्'-घातु परे रहनेसे, 'अद्म्' शब्दके स्थानमे—'अन्', 'इद्म्'-शब्दके स्थानमे—'ई', 'किन्' शब्दके स्थानमे—'की', 'भवत्' शब्दके स्थानमे—'भवा', 'समान' शब्दके स्थानमे—'स', और 'अन्य'-शब्दके स्थानमे—'अन्या' होता है; यथा—(असौ इव दृश्यते इति) अमूदृश ; (अयम् इव दृश्यते) ईदृश ; (क इव दृश्यते) कीदृश ; (भवान् इव दृश्यते) भवादृश ; (समान इव दृश्यते) मदृश , ‡ (अन्य इव दृश्यते) अन्यादृश । †

८४९ । ङ—सुबन्त पदके पर्यन्ती 'गम्' घातुके उत्तर कर्त्तृवाच्यमे 'ङ'-प्रत्यय होता है; 'ङ्' इत्, 'अ' रहता है, § यथा—(अन्तं गच्छति इति) अन्तग , (अश्वान गच्छति) अश्वग , (दूरं गच्छति) दूरग ; (पारं गच्छति) पारग , (सर्वं गच्छति) सर्वग , (सर्वत्र

* पाणिनि मते—कृत् ।

† 'अस्मद्' और 'युष्मद्'-शब्दके स्थानमे एकवचनमे 'मद्' और 'त्वद्' होनेसेभी होता है; यथा—मादृश , त्वादृश ।

‡ इन सब स्थलोंमे 'किप्' (किन्) और 'सक्' (क्) प्रत्ययभी होते हैं; यथा—तादृक्, तादृक्ष ; सदृक्, सदृक्ष इत्यादि ।

§ 'दिन्'-कार्य होता है (४५५(९) ए०) ।

गच्छति) सर्वप्रग , (गृह गच्छति) गृहग ; (ग्राम गच्छति) ग्राम-
ग , (तल्प गच्छति) तल्पग , (खे गच्छति) खग ।

(क) क्लेश, शोक और तमस् शब्दके परवर्ती 'अण'-पूर्वक 'हन्'-
धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'ड' होता है, यथा—(क्लेशम् अपहन्ति
इति) क्लेशापह , (शोकम् अपहन्ति) शोकापह , (तम अपहन्ति)
तमोऽपह ।

(ख) अधिकरणवाचक 'गिरि'-शब्दके परवर्ती 'शी' धातुके उत्तर
'ड' होता है, यथा—“गिरिनिमुपचचार प्रत्यह सा सुकेरी” कु० १-६० ।

(ग) उपमर्गे वा सुबन्त-पदके परवर्ती 'जन्'-धातुके उत्तर कर्तृ-
वाच्यमे 'ड' होता है । यथा—(सरसि जायते इति) सरोजम् , (मन-
सि जायते) मनोज ,* (अप्सु जायते) अजम् , (जडे जायते)
जलजम् , (अग्ने जायते) अग्रज । (पृष्ठात् जायते) पृष्ठजम् , (अङ्गात्
जायते) अङ्गज , (आत्मन जायते) आत्मज ; (स्वदात् जायते)
स्येदज , (अग्दात् जायते) अण्डज , (जरायो जायते) जरायुज ।
(अनु जायते) अनुज , (प्र जायते) प्रजा । †

८६० । अणु—कर्मवाचक पदके परवर्ती धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे
'अण्' प्रत्यय होता है, 'ण्' इत्, 'अ' रहता है ; ‡ यथा—(कुम्भं कतेति
इति) कुम्भकार , (तन्तुं वपति) तन्तुवाप ; (तन्त्रं वपति)

* कभा कमी पूर्वपद विभक्त्यन्त रहता है, यथा—सरसिजम् ; मनसिजम् ।

† अन्यधर्मी 'ड' होता है । यथा—(द्वि जायते इति) द्विज ;
(सह जायते) सहज । (आशु गच्छति) आशुग । इत्यादि ।

‡ 'गित्'-वाच्यं होता है (४५५(१०) सू०) ।

तन्त्रवाय , (शास्त्राणि करोति) शास्त्रकार , सूत्रकार , भाष्यकार
मालाकार , चाटुकार , कर्मकार , (सूत्र धारयति) सूत्रधार , (वा
वहति) वारिवाह ।

अक ।

८६१ । एक (एकुल्ल)—धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'णक' प्रत्य
होता है , 'ण' इत् , 'अक' रहता है , * यथा—(ना) नायक , (ध्रु) ध्रावक
(पू) पावक , (कृ) कारक , (स्मृ) स्मारक , (तृ) तारक
(नद्) नाशक , (पच्) पाचक , (पठ्) पाठक , (रिच्)
रेचक ; (रमच्) रमचक ; (मुच्) मोचक , (रध्) रोधक , (दा
दापक † , (गा—गै) गायक , (ह्व्) घातक ('ह्व' के स्थानमे
'घाव' होता है) ; (दृश्) दर्शक , (जनि) जनक , (पालि)
पालक , (योजि) योजक , (स्थापि) स्थापक ।

(क) 'निमित्त'-अर्थ समझानेसे , भविष्यत्कालमे धातुके उत्तर
'णक' होता है ; यथा—अन्न भोजक व्रजति (अन्न भोजन करनेके लिये
जाता है) , भोदनें पाचक प्रयाति (पक्वम् इत्यर्थ) ; देवं दर्शक प्रति
धते (देव व्रष्टुम् इत्यर्थ) ।

८६२ । पक (प्कुन्)—शिल्पो (क्रियाकौशलविशिष्ट) सम-
झानेसे, वृत् , सन् और रन्च् धातुके उत्तर 'पक' होता है , 'प्' इत् ,
'अक' रहता है । 'पक' परे, उपधा लघुस्वरका गुण, और उपधा नकारका
श्लेष होता है । यथा—(वृत्) वर्तक , (सन्) सतक , (रन्च्) रत्नक ।

* 'णित्'-कार्य होता है (४५५ (१०) सू०) ।

† णक और णिन् परे, आकारान्त धातुके उत्तर 'य' होता है ।

वृच् ।

८६३ । धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'वृच्'-प्रत्यय होता है, * 'च्' इत्, 'वृ' रहता है । 'लुट्' विभक्तिमे जिसप्रकार कार्थ्य हुआ है, 'वृच्'-प्रत्ययमेभी उसीप्रकार कार्थ्य होगा । † यथा—(दा) दाता, (धा) धाता, (पा) पाता, (जि) जेता, (नी) नेता, (श्रु) श्रोता, (कृ) कर्त्ता, (हृ) हर्त्ता, (क्षिप्) क्षेप्ता, (सिच्) सेक्ता, (विद्) वेक्ता, (भुञ्) भोक्ता, (बुष्) बोद्धा, (युष्) योद्धा, (रुष्) रौद्धा, (गम्) गन्ता, (हन्) हन्ता, (दृश्) द्रष्टा, (प्रह्) ग्रहोता, (भू) भविता, (सृ) सविता, सोता, (कारि) कारयिता ।

अन ।

८६४ । अन (ल्यु)—'नन्दि' प्रभृति ‡ धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'अन' प्रत्यय होता है, यथा—(नन्दयति इति) नन्दन ; (मदयति इति) मदन ; (दूषयति इति) दूषण, (साधयति इति) साधन, (वर्द्धयति इति) वर्द्धन, (शोभयति इति) शोभन, (सूदयति

* शीलार्थमे 'वृन्' होता है (शील—स्वभाव), यथा—धर्मं वदित्वा वाधु, परान् उद्वेजयित्वा विशुन ।

† 'वृच्'-प्रत्ययान्त शब्दके रूप पुलिङ्गमे 'दावृ' शब्दके तुल्य, और स्त्रीलिङ्गमे 'नदा' शब्दके तुल्य ।

‡ नन्दि, मदि, दृषि, साधि, वार्द्धि, शोभि, सूदि, भीदि, नाशि, रमि, सद्, तप्, दम्, चक्ष्, अदि, रोचि, वाचि, जल्प्, कृन्द्, कृष्, इप्, छ ।

इति) सुदन , (भोषयते इति) भोषण , (नाशयति इति) नाशन ,
 (रमयति इति) रमण , (सहते इति) सहन , (तपति इति)
 तपन , (दाम्भयति इति) दमन , (विभेपेण चष्टे) विचक्षण ।

(क) विद् (ज्ञानार्थ) , वन्द् , आस् और गिजन्त धातुके
 उत्तर भावजाच्यमे 'अन' (युच्) होता है । एतत्प्रत्ययान्त शब्द
 स्त्रीलिङ्ग । * यथा—(विद्) वेदना , (वन्द्) वन्दना , (आस्)
 आपना । (गिजन्त धातु)—(अर्चि) अर्चना , (कल्पि) कल्पना ,
 (गणि) गणना , (घटि) घटना , (तारि) प्रतारणा , (धारि)
 धारणा , (पारि) पारणा , (पाठि) पाठना , (मानि) विमानना ,
 (यन्त्रि) यन्त्रणा , (याति) यातना , (वानि) वामना ।

(ख) भूषार्थ, कोषार्थ, चलनार्थ और शब्दार्थ धातुके उत्तर कृत
 वाच्यमे शीलार्थमे 'अन' (युच्) होता है । यथा—(भूषि) भूषण
 (भूषार्थाल इत्यर्थ) , (मण्डि) मण्डन , (अलङ्कु) अलङ्करण ।
 (कुप्) कोपन , (क्रुध्) क्रोधन , (रुप्) रोपण , (असृप्)
 असृपण । (चञ्) चलन , (कम्प्) कम्पन । (शब्दि—शब्दयति)
 शब्दन , (रु) रवण ।

(ग) छ, ह्र् और ईषत् शब्दके परात्ती ह्र्, छप्, सृप्, शास्
 और युष् धातुके उत्तर कर्मवाच्यमे विकल्पसे 'अन' (युच्) होता
 है, यज्ञे—खट्, इसको 'खल्यं अन' कहते हैं । यथा—(ह्र्)—

* कहीं कहीं गिजन्त धातुके उत्तर 'अनट्'-प्रत्यय होता है ; यथा—
 (प्रेरि) प्रेरणम् ; (प्रीणि) प्रीणनम् , (तर्पि) तर्पणम् , (शोधि)
 शोधनम् , (साधि) साधनम् , (गोपि) गोपनम् इत्यादि ।

(हस्तेन हृदयते इति) हृदयान्, (पञ्चे) हृदयं (हृद्) ; दुर्दंशन्, दुर्दंशं । (हृप्) दुर्दंशंग, दुर्दंशं ; (नृप्) दुर्दंशंग, दुर्दंशं ; (शाम्) दुःशासन, दुःशाम । (युष्) सुयोधन, सुयोध : दुयोधन, दुयोध ।

८६० । अनट् (ल्युट्)—भाववाच्यमे और कर्तृभिन्न-कारक-वाच्यमे धातुके उत्तर 'अनट्'-प्रत्यय होता है, 'ट्' हृत्, 'अन' रहता है । 'अनट्'-प्रत्ययान्त शब्द क्लीबलिङ्ग । रथा—(भाववाच्ये)—(गन्) गमनम् ; (वम्) वननम्, (मा + हृद्) मातोद्गमन् (ईष्) ईक्षणम् ; (पृ) पठनम्, (अपि + इ) अप्यपनम् ; (दा) दानम् ; (गा—नै) गानम् ; (चि) चयनम्, (धि) धयगम् ; (ध्रु) ध्रवगम् ; (हृ) करगम्, (मृ) स्मरणम्, (स्पृन्) स्पर्शनम् ; (सिष्) सेवनम् ; (नृ) नर्तनम् ; (र्द्) रोदनम् । (कर्नवाच्ये)—(भुज्यते इति) भोजनम् (भक्ष्यवन्तु) । (करगवाच्ये)—(हृदयते अनेन इति) द्रव्यम् (उष्णु) ; (ध्रुयते अनेन इति) ध्रवगम् (श्रोत्रम्) ; (साध्यते अनेन इति) माषनम्, (क्रियते अनेन इति) कर्तव्यम् ; (नृप्यते अनेन इति) नृपगम् । (सम्प्रदानवाच्ये)—(सम्प्रदीयते अस्मै इति) सम्प्रदानम् । (अपादानवाच्ये)—(अगदीयते अस्मात् इति) अगदानम् । (अधिकरणवाच्ये)—(शप्यते अस्मिन् इति) शपनम् ; (स्पर्यते अत्र इति) स्पर्शनम् ।

(षष्ठं वक्ति इति) षष्ठ्यचनम्—यहां कर्तृवाच्यमे 'अनट्' हुआ ।

(षिष्) षीवनम्, षेवनम् ; (सिष्) सीवनम्, सेवनम्, (लिष्) लिखनम्, लेखनम् ।

कर्तृभिन्न-कारक-वाच्यमे विहित 'अनट्'-प्रत्ययान्त शब्द वहाँ कहीं

वाच्यलिङ्ग (विशेषण) होता है; यथा—(राजभि भुञ्जन्ते इति) राजभोजना [शालय], (उद्यते अनेन इति) उद्येन [परशु.] ।

संज्ञा समझानेसे, दहन, चरण इत्यादि पुलिङ्ग, और बन्धनो, साधना, दोहनी, उपक्रमगी, अवतरणी, विज्ञापनो, अधिरोहणो इत्यादि स्त्रीलिङ्ग होते हैं ।

इ * ।

८९६ । कि—उपसर्ग और अन्तर्-शब्दके परवर्ती 'धा'-धातुके उत्तर भाववाच्यमे, 'कि'-प्रत्यय होता है; 'क्' इत्, 'इ' रहता है । 'कि' परो, 'धा'-धातुके आकारका लोप होता है । 'कि'-प्रत्ययान्त शब्द पुलिङ्ग । यथा—विधि, निधि, सन्धि, आधि, उपाधि, अन्तर्धि,

(क) कर्मवाचक पदके परवर्ती 'धा'-धातुके उत्तर अधिकरणवाच्यमे 'कि' होता है, यथा—(जलानि घोंयन्ते अस्मिन् इति) जलधि, वारिधि, पयोधि, जलनिधि, वारिनिधि, पयोनिधि ।

८९७ । खि (इन्)—आत्मन्, उदर और कुक्षि शब्दके परवर्ती 'श्रृ'-धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'खि' होता है, 'ख्' इत्, 'इ' रहता है, यथा—(आत्मानं विभर्ति इति) आत्मन्भरि (नान्त शब्दके नकारका लोप होता है), उदरम्भरि, कुक्षिम्भरि ।

* 'धातु' अर्थमे (धातुनिर्देशमे), 'इ' (इक्) प्रत्यय होता है, यथा—गमे (गम् धातु), पचि (पच् धातु) । 'ति' (तिप्) प्रत्ययभी होता है; यथा—गच्छति (गम् धातु); पचति (पच् धातु)—५० ।

इन् ।

८५८ । गिन् (गिति)—धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'गिन्' प्रत्यय होता है; 'ण्' इत्, 'इन्' रहता है, * यथा—(मन्त्रजने इति—मन्त्र्) मन्त्री; (वद्) वादी, प्रतिवादी, परिव्रादी; (वस्) वासी, प्रवासी, अधिवासी, (राष्) अपराधी, (च्) व्यविचारी, सञ्चारी, (स्था) स्थायी, (ख्) संवारी, (द्विप्) द्वेषी, विद्वेषी, (र्थ्) रोधी, विरोधी, प्रतिरोधी, (द्रुह्) द्रोही, विद्रोही; (दिव्) परिदेवी, (कृ) अधिकारी, (लप्) अभिलापी ।

(क) उपमर्ग और सुबन्त-पदके परवर्ती धातुके उत्तर 'शील्' और 'व्रत' अर्थमे 'गिन्' होता है । यथा—('शील्'-अर्थमे)—(मांसं भोक्तुं शीलम् अस्य इति) मांसभोजी, (वने वस्नुं शीलमस्य) वनवासी; (साधु करोति) साधुकारी, (सत्रं वदति) सन्धवादी; (प्रिय वदति) प्रियवादी, (मन हरति) मनोहारी, (हृदयं गृह्णाति) हृदयग्राही । (अनु याति) अनुयायी, (अनु जीवति) अनुजीवी, (यनु गच्छति) अनुगामी । ('व्रत'-अर्थमे)—(स्पृगिद्विडे शैते) स्पृगिद्विशापी, शीरपायी, शिर स्नापी, अध्यात्मभोजी ।

(ख) कर्तृवाचक उपमान पदके परवर्ती धातुके उत्तर 'गिन्' होता है, यथा—(सिंह इव विक्रमते) सिंहविक्रमो, (उषा इव स्पन्दते) उषास्पन्दो ।

(ग) करणवाचक पदके परवर्ती 'यज्ञ्' धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे अर्थात्कारमे 'गिन्' होता है, यथा—(सोमेन इष्टवान्) सोमयात्री;

* 'गिन्' कार्यमे होता है ।

अग्निष्टोमयाजी ।

(घ) कर्मवाचक पदके परवर्त्ता 'इन्' धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे अती-
तकालमे 'गिन्' होता है । 'इन्'-धातुके 'ह' क स्थानमे 'घ', और 'न्'
के स्थानमे 'व' होता है, यथा—(पितर जघान) पितृधाती, (पितृ-
व्य जघान) पितृव्यधाती, पुत्रघाती, मित्रघाती ।

(ङ) भविष्यत्काल समझानेके, भू, या, स्था, गम्, बुध्, युध् और
रुध् धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'गिन्' होता है, यथा—(भविष्यति
इति) भावी, (या) यायी, (स्था) स्थायी, प्रस्थायी; (गम्)
गामी, (बुन्) प्रतिबोधी; (युध्) प्रतियोधी, (रुध्) प्रतितोधी ।

८६९ । घिनुण्—युञ्, त्यञ्, भञ्, भुञ्, रञ्, रुञ्, 'सम्'-पूर्वक
ञ्, 'वि'-पूर्वक विच् और 'सम्'-पूर्वक पृच् धातुके उत्तर 'शील'-
अर्थमे कर्तृवाच्यमे 'विनुण्'-प्रत्यय होता है, 'घ', 'उ' और 'ण्' इत्,
'इन्' रहता है, * यथा—(युञ्) योगी, वियोगी, प्रतिबोगी;
(त्यञ्) त्यागी, परित्यागी, (भञ्) भागी, विभागी; (भुञ्)
भोगी, सम्भोगी; (रञ्) रागी, विरागी, अनुरागी ('रञ्'-
धातुके नकारका लोप होता है), (रुञ्) रोगी, (सम् + ञ्)
संपर्गी, (वि + विच्) विवेकी; (सम् + पृच्) सम्पर्की ।

उ ।

८६० । सनन्त धातु, भिष् धातु और 'आ'-पूर्वक शन् धातुके
उत्तर कर्तृवाच्यमे 'डा'-प्रत्यय होता है; यथा—जिज्ञासु, पिपासु;
इमुसु; विकीर्णु; विव्यु; जिघृषु, जिघासु, तितोषु, ईप्सु, .

* 'वित्'-कार्य्य होता है (४५५(५) सू०) ।

दित्त् ; लिप्त् ; त्रिगीप् ; त्रिगमिप् । भिक्षु ; आशंसि ।

इप् (इच्छार्थं)—इच्छु (निगतने) ।

ति ।

८६१ । कि (क्तिन्)—धातुके उत्तर भाववाच्यमे और् इत्तुनिद्र-
वारक-वाच्यमे 'क्ति'-प्रत्यय होता है, 'क्' इत्, 'ति' रहता है। 'क्ति'-
प्रत्ययान्त शब्द खोलिङ्ग । 'क्ति' पर रहनेसे, धातुके उत्तर 'इत्' नहीं
होता । यथा—(रया) रुदाति, (वि) विति, (नी) नीति ;
(प्री) प्रीति, (कृ) कृति, (स्मृ) स्मृति, (शक्) शक्ति ; (मुच्) मुक्ति ;
(भू, वच्) उचि, (नञ्) नक्ति, (सृज्) सृष्टि ; (भिद्) भित्ति ;
(बुध्) बुद्धि, (क्षग्) क्षति ; (तन्) तति ; (मन्) मति ; (प्र + आप्)
प्राप्ति ; (स्वप्) क्षति, (उप + लम्) उपलम्पि ; (क्म्) क्कान्ति ;
(क्षम्) क्षान्ति, (गम्) गति * ; (नम्) नति ; (अन्) आन्ति ; (रन्)
रति ; (शन्) शान्ति ; (दृग्) दृष्टि ; (तुप्) तुष्टि ; (शात्) शान्ति ;
(वृप्) वृष्टि ; (रद्) रुद्धि ।

ना और् स्या धातुका आकार इकार होता है ; यथा—(ना)
निति ; (स्या) स्थिति । 'नी'—'गी' होता है ; यथा—गीति ।

(धृपते अनया इति) धृति ; (स्मृपते अनया) स्मृति ; (इग्पते
अनया) इष्टि ।

(क) दीर्घं ऋकारान्त धातु और् 'क्त'-प्रमति धातुके उत्तर विहित

* कर्मवाच्ये—गन्दते इति गति (गन्दस्थानम् इत्यर्थं) । करण-
वाच्ये—गन्तते प्रप्यते अनया इति गति, (उवाच इत्यर्थं) ; यथा—
“अ गति ?” ।

'क्ति' के 'त्' के स्थानमे 'न' होता है, यथा—(कृ) कीर्त्ति ; (लृ) लृ-
नि । (किन्तु ए—पूर्ति) ।

(ख) दा-दत्ति, (धा) दिति, (हा) हानि, (ग्लै) ग्लानि,
(म्लै) म्लानि, (अद्) अग्धि, (अर्द्) अर्त्ति, (आ + क्) आर्त्ति ।

(ग) 'क्ति' परे, प्रह्-प्रभृति धातुके उत्तर 'इद्' होता है, यथा—
(प्रह्) निगृहीति ; (पठ्) पठिति, (भण्) भणिति इत्यादि ।

वन् ।

८६२ । वनिप् (ङ्गनिप्)—अतीतकालमे 'ह्' (स्वादि) और
'यञ्' धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे वनिप्-प्रत्यय होता है, 'इ' और 'प्' इत्,
'वन्' रहता है, यथा—(सुनोति स्म—अभिपव यज्ञाङ्गस्नान कृत्-
वान् इति) एत्या, * (विधिना दृष्टवान्) यज्या ।

८६३ । कनिप्—अतीतकालमे कर्मवाचक पदके परवर्ती 'दृश्' धातुके
उत्तर कर्तृवाच्यमे 'कनिप्' होता है, 'क्', 'इ' और 'प्' इत्, 'वन्' रहता
है, यथा—(पारं दृष्टवान्) पारदृष्टा ।

(क) 'सह' शब्दके परवर्ती, 'ह्' और 'युष्' धातुके उत्तरभो 'कनिप्'
प्रत्यय होता है, यथा—(सह कृतवान्) सहकृत्वा (सहकारी इत्यर्थ),
(सह युद्धवान्) सहयुद्ध्वा । †

क्रिप् ।

८६४ । ह्यन्तपद वा उपसर्गके परवर्ती धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे

* 'वित्' कार्य होता है (४५५ (११) सू) ।

† 'वनिप्' और 'कनिप्' प्रत्ययान्त शब्दके रूप 'धातवन्' शब्दके तुल्य ।

'क्विप्'-प्रत्यय होता है, 'क्विप्'का सत्र 'इत्', कुटुम्बो नहीं रहता, यथा—
 (सद्)—(सभायां सोदति इति) समासद् ; (सृ)—
 (पुत्रं सूते) पुत्रस्, वीरस् ; रत्नस्, कामस् ; प्रस्, (द्विप्)—(धर्मं द्वेष्टि) धर्मद्विद्, मित्रद्विद्, विद्विद् ; (द्रुद्)—(पक्षं द्रुहति) यज्ञध्रुद्, मित्रध्रुद्, (द्रुद्)—(कामं दोग्धि) कामध्रुद्, गोधुक्, (विद्)—(शाखं वेत्ति) शाखविद्, धर्मविद्, ब्रह्मविद् ; (भिद्)—(गोत्रं—पर्वत—भिनत्ति) गोत्रभिद्, मर्मभिद् ; (छिद्)—(पक्ष छिनत्ति) पक्षच्छिद्, मर्मच्छिद्, (जि)—(राष्ट्रं जयति) राष्ट्रजित्, इन्द्रजित्, रणजित्, (नी)—(सेनां नयति) सेनानी ; अप्रणी, धामणी ; (राज्)—(स्वेन एव राजते) स्वराद्, देवराद्, (विनेपेण राजते) विराद्, (सन्धक् राजते) सन्धाद् । (स्पृत्)—(जय स्पृशति) जलस्पृक्, धृतस्पृक्, मर्मस्पृक् * ।

(त्यज्) "तनुव्यनाम्" १० १. ८ ; (जुप्) "परलोकजुषां स्वकर्मभिर्गतयो मित्रपया हि देहिनाम्" १० ८. ८६ ; (भृ) प्राग्भृत्, शूलभृत्, भृभृत्, महीभृत् ।

'क्विप्' पदे, 'दिन्'—'घ्' होता है, यथा—(अक्षे व्रीह्यति) अक्षघ् । 'शाम्'-धातुके स्थानमे 'शी' होता है ; यथा—(मित्रं शाश्वि) मित्रशी ।

भाववाच्य और कर्मादिकारकवाच्यमेर्मा 'क्विप्' होता है ; यथा—(माने)—(आ + शाम्) आशी ; (कर्मवाच्यमे)—(उक्थते इति) वाक् ; (वागवाच्यमे)—(ध्यायति मनया इति) धी ;

* पाणिनि मते—क्विप् । किन्तु 'उदक'-शब्दके परवर्ती 'स्पृन्' धातुके उत्तर 'क्विप्' नहीं होता ।

(अधिकरणवाच्ये)—(रुसीदन्ति अस्याम्) संसत् , (परित मीद-
न्ति अस्याम्) परिपत् , (उपनिषण पर श्रेय अस्याम्) उपनिषत् ।

(क) छ, कर्मन्, पाप, पुण्य और मन्त्र शब्दके परवर्ती 'कृ'-धातु-
के उत्तर कर्तृवाच्यमे अतीतकालमे 'किप्' होता है ; यथा—(छ कृतवा-
न्) छट् , (कर्म कृतवान्) कर्मकृत् , पापकृत् , पुण्यकृत् , मन्त्रकृत् ।

(ख) भ्रूग, ब्रह्म और वृत्र शब्दके परवर्ती 'हन्' धातुके उत्तर
कर्तृवाच्यमे अतीतकालमे 'किप्' होता है , यथा—(भ्रूण जघान) भ्रूण-
हा , ब्रह्महा , वृत्रहा ।

(ग) प्र + अनच्—प्राङ् , (सम् + अनच्) सम्यङ् , (सह +
अनच्) सध्यङ् , (तिरस् + अनच्) तिर्य्यङ् ।

विण् (णिव) ।

८६५ । सुबन्त पदके परवर्ती 'भज्'-धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे 'विण्'-
प्रत्यय होता है , 'विण्' का समस्त 'इत्', कुठमी नहीं रहता , यथा—
(अशं भजते इति) अशभाक् , (दु खं भजते) दु खभाक् ।

घ ।

८६६ । क्यप्—यज् और वज् धातुके उत्तर भाववाच्यमे, और
संज्ञा समझानेसे नि + पत् , नि + सद् , शी, विद् और भृ धातुके उत्तर
करणवाच्य और अधिकरणवाच्यमे 'क्यप्'-प्रत्यय होता है , 'क्' और
'प्' इत् , 'य' रहता है । 'क्यप्' करनेसे ये शब्द खीलिक्र होते हैं । यथा—
(यज्) इज्या , (वज्) वज्या , परित्रज्या , प्रमज्या । (अधिकरणवा-
च्ये)—(नि + पत्—निपतन्ति अस्याम् इति) निपत्या (पिच्छित्वा
भूमिरित्यर्थ) , (नि + सद्—निपीदन्ति अस्याम्) निपद्या (आपण-

इत्पर्यं) , (शी—घेते अन्याम्) शय्या । (कागवाच्ये)—(विद्—
विदन्ति अनया) विद्या , (मृ—भ्रियन्ते कर्मकरा अनया) मृत्पा
(देतनम् इत्पर्यं) ।

(क) 'ह' धातुके उत्तर खोलिङ्गमे भाववाच्यमे 'क्यप्' और 'श'
प्रत्यय * होने हैं ; 'श्' इत् , 'अ' रहता है ; यथा—(क्यप्) कृत्या ;
(श) क्रिया ।

* * * *

८६७ । (क) अथु (अथुच्)—'ट्ट'-मसृष्ट धातुके उत्तर भाव-
वाच्यमे , यथा—(डुवेप्) वेद्यु , (डुम्) वनयु , (डुधि) शय-
यु ; (डुञ्च) क्षययु , (डुङ्) दव्यु , (डुञ्जाञ्) आजयु ।

(ख) अग्नि—(च्) सरग्नि ; (ङ्) अरग्नि ; (छ) धरग्नि ;
(अत्) अवग्नि ; (अश्) अशग्नि इत्यादि ।

(ग) अस् (अस्तुन्)—(मरति इति) सर , (चेतति इति—
चित् मज्जाने, म्वादि) चेत । (पांपते इति—पीष् , दिवादि) पय ;

* श—श, प्ना, हस् , घेष् धातु, और उपसर्गविहीन लिम्प्, विन्द्,
पारि धातु तथा 'उत्'-पूर्वक एञि (णिञन्त एञ्) धातुके उत्तर कर्तृवाच्यमे
'श' होना है ; 'श्' इत् , 'अ' रहता है । यथा—(विचति इति) विच . ;
(घमति इति) घम , (पश्यति इति) पश्य ; (धयति इति) धय । (लि-
मति इति) लिम्प ; (विन्दति इति) विन्द ; (शरयति इति) शारय ;
(उदेजयति—उत्कम्पयति इति) उदेजय ;—“आर्चाद्द्विजातान् परमार्थवि-
न्दान्, उदेजयान् भूतगणान् स्वपेर्धात्” भ० १. १५. । “घटानिवापश्यदलं
उरम्यत पटानि घूमस्य घयानधोमुञ्चान्” जै० १. ८२. ।

(उच्यते इति) अच । (मन्यते अनेन इति) मन , (रज्यते अनेन—रज्ज्) रज ('न' लोप) ; (ताम्यति अनेन) तम ; इत्यादि ।*

(घ) आलु (आलुच्)—शीलार्थे—(इप्) दयालु (दयाशील इत्यर्थः) , (नि + प्रा) निद्रालु ; (तन्द्रा) तन्द्रालु ; (अद्रा) (अद्रालु) ; (शी) शयालु † , (गृहि) गृहपालु ; (स्पृहि) स्पृहपालु ; (पति) पतयालु ।

(ङ) इत्नु (इत्नुच्)—(स्तनि—स्तनयति इति) स्तनयित्नु (मेघ इत्यर्थः) इत्यादि ।

(च) इद्ग—(कान्वाच्ये)—(ल्यपते अनेन इति) लवित्रम् (दात्रम् इत्यर्थ—दांती) ; (खन्यते अनेन) खनित्रम् , (धूपते अनेन) धवित्रम् (सृगधर्मव्यजनम् इत्यर्थ) , (धूपते अनेन) पवित्रम् (इक्षम् इत्यर्थः) , (चर्) चरित्रम् , (ऋ) अरित्रम् ।

(छ) इष्णु (इष्णुच्)—शीलार्थे—(सद्) सहिष्णु (सहन-शील इत्यर्थ) ; (ल्व्) रोषिष्णु , (वृष्) वर्दिष्णु ; (मलङ्क)

* इस् (इसि)—(सर्पति इति) सर्पि ; (छाद्यति इति , छाद्यते अनेन इति वा) छदि (छी० ह्री०) ; (ह्वयते इति) ह्वि , (अच्यते इति) अर्चि , (रोचते अनेन) रोचि ; (शुच्यति—पूतीभवति—अनेन) शोचि (शोसि) ।

वस् (उसि)—(चष्टे—पश्यति—अनेन) चष्टु ; (घनति इति—घन शब्दे) घनु ; (वप्यन्ते देहान्तरभोगसाधनबीजाभूतानि कर्माणि मत्र) वपु ।

† “इन्ति नोपशयस्पोऽपि अयालुमृगयुर्मृगान्” भाष० २. ८०. 1

अलट्टिप्पु ; (निता + ङ) निताकरिप्पु ; (प्र + ङ्) प्रजतिप्पु ;
 (उत् + प्) उत्पतिप्पु ; ; (डव + म्) डवदिप्पु ; (क् + प्र)
 अयप्रपिप्पु (लज्जाशील इत्यर्थ) ; (वृन्) वृतिप्पु ; (व्)
 वरिप्पु ; (प्र + म्) प्रमविप्पु ।

(ज) उ(ङ्) — (प्रभवति इति) प्रभुः ; विभुः ; (शं एषं भवति—
 भावयति—इति) शम्भु ।

(झ) उक(उङ्) — शीलार्थे — (ज्ञानयने इति) ज्ञानुक ; (गन्)
 गामुक (गमनशील इत्यर्थ) ; (प्) पापुक ; (म्या) म्यापुक ; (नृ)
 भावुक ; (लप्) लापुक , (वृष्) वर्षुक ; (ह्) घातुक ('हन्'—'घात'
 होता है) ।

(ञ) ठर(कुरच्) — शीलार्थे — (विद्) विदुर (पण्डित , ज्ञानोत्पथः) ;
 (भिद्) भिदुर , (छिद्) छिदुर । (घृच्) — (भास्) भासुर ; (मिद्)
 स्नेहने, स्निग्धीभावे—भ्वा० दा० मेदुर ; (मन्ज) म्दुर (कर्मकर्त्तरि) ।

(ट) ऊक—शीलार्थे — (जागृ) जागरूक (जागरणशील इत्यर्थ) ।
 यदन्त—(यज्) यायजूक (सर्वदा यजकारक) ; (ज्) जज्जूक (पुन-
 पुन जयकारी) ; (वद्) वावजूक (वाचाल ; बहुवक्त्रा) ; (दन्श्) दन्दरूक
 (सर्प इत्यर्थ) । (यद्का लोर होता है) ।

(ठ) प्र (घृन्) — (कृणवाच्ये) — (दा छेदने—दाति अनेन इति) दा-
 प्रम् ; (नयति अनेन) नेप्रम् ; (शम् हिमायाम्—शमति अनेन) शप्रम् ,
 (स्तौति अनेन) स्तोप्रम् ; (पठति गच्छति स्नेन) पत्प्रम् (वाहनम्
 इत्यर्थ) ; (ददाति अनया) दद्दा ।

(ड) प्रिम (त्किमप्) — 'ड' संघट घातुक उत्तर 'तत्रिवृत्त'-अर्थमे ;

मया—(हुह—विदया निवृत्तम् विदयम्) कृत्रिनम्, (हुहच्—पात्रेन निवृत्तम्) पत्रिकम्, (हुदा—दानेन निवृत्तम्) दत्त्रिनम् ('दा' के स्थानमे 'द्व' होता है) ।

(ङ) न (नङ्)—(भाववाच्ये)—(यञ्) यज्ञ- , (यञ्) यज्ञ ; (स्व-प) स्वप्न- , (प्रञ्) प्रज्ञ ; (याञ्) याज्ञा ।

(ण) नु (णु)—शौलार्थे—(षन्) षन्तु (श्रावणशौक इत्यर्थ) ; (गृष्) गृष्ण (लम्ब) , (ष्) षष्णु ; (शिन्) शिन्तु ।

(त) त्र (कभ्रच्)—शौलार्थे—(षन्) षन्त (बडाशौ, भोजन-प्रिय इत्यर्थ)—'दावानलो षन्त' भाषिणी ० १ ३३ , (अन्) अन्त ;

(च) चन्त ।

(थ) र—शौलार्थे—(नन्) नन्त ; (रिन्) रिन्त ; (स्मि) स्मेन्त , (कन्प्) कन्त , (दीन्) दीन्त ।

(ङ) वर (वरच्)—शौलार्थे—(स्या) स्याव (स्थानशौक इत्यर्थ) ; (ईम्) ईषा ; (भाम्) भास्वा । (ङाप्, ङवाप्)—शौलार्थे—(नम्) नन्त ; (इन्) इन्त ; (जि) जित्वा , (ष्) षित्वा ; (गन्) गन्त ('गम्' धातुके 'म्' के स्थानमे 'व' होता है) ।

(ष) स्तु (ग्स्तु, स्तुकृ)—शौलार्थे—(णि) णिन्तु ; (न्) न्त्तु ; (स्या) स्यात्तु ; (ग्ला—ग्लै) ग्लात्तु ।

स्त्रीप्रत्यय-प्रकरण ।

स्त्रीलिङ्गमे किसी किसी शब्दके उत्तर 'आप्', किसी किसी शब्दके उत्तर 'ईप्', और किसी किसी शब्दके उत्तर 'ऊप्' होता है, उनको 'स्त्रीप्रत्यय' कहते हैं ।

आप् ।

८६८ । अकारान्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमे 'आप्' (टाप्) होता है । 'प्' इत्, 'आ' रहता है ; यथा—(शुभ) शुभा ; (दीन) दीना , (सरल) सरला , (निपुण) निपुणा ; (दक्षिण) दक्षिणा , (उत्तर) उत्तरा ; (पूर्व) पूर्वा ; (पश्चिम) पश्चिमा ; (सर्व) सर्वा , (एक) एका ; (प्रथम) प्रथमा , (द्वितीय) द्वितीया , (तृतीय) तृतीया ; (कर्त्तव्य) कर्त्तव्या ; (पठित) पठिता ; (अनुकूल) अनुकूला , (मनोहर) मनोहरा ।

८६९ । 'आप्' होनेसे, अष्टकादि-भित्त* 'अकारान्त शब्दके प्रत्ययान्त-कारकके पूर्ववर्ती अकारके स्थानमे इकार होता है ; यथा—(सायक) सायिका ; (पाठक) पाठिका ; (कारक) कारिका ; (नायक) नायिका ; (नाटक) नाटिका ; (बाणक) बाणिका ।

८७० । ईं उपसर्गान्त नित्यस्त्रीलिङ्ग शब्दके उत्तर विद्वत्प्रत्यये 'आप्' होता है ; यथा—(वाच्) वाचा, वाच् ; (गिर्) गिता, गिर् ;

* अष्टकादि—अष्टका, इष्टका, कन्यका, करका, चटका, टारका, अमित्यका, उपत्यका ॥ बहुवचि-समासमेभी नहीं होता ; यथा—बहुरिप्रत्ययका नगरी । किन्तु समासान्त 'क' प्रथमके स्थानमे होता है ; यथा—तदात्मिका ।

(दिग्) दिशा, दिग् , (आपद्) आपदा, आपद् , (रज्) रजा,
रज् ; (क्षुप्) क्षुधा, क्षुप् ।

ईप् ।

८७१ । ऋकारान्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमे 'ईप्' (डीप्)
होता है, 'प्' इव, 'ई' रहता है, यथा—(दावृ) दात्री, (घावृ)
घात्री ; (कर्तृ) कर्त्री, (जनयितृ) जनयित्रो ; (प्रसवितृ) प्रसवित्री ।*

८७२ । नकारान्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमे 'ईप्' (डीप्)
होता है, यथा—(मानिन्) मानिनी, (मायाविन्) मायावि-
नी ; (तपस्विन्) तपस्विनी, (विलातिन्) विलासिनी,
(अनुरागिन्) अनुरागिणी ; (प्रियवादिन्) प्रियवादिनी ;
(मनोहारिन्) मनोहारिणी । †

* ऋधरान्तके बीचमे, 'स्वसृ' प्रभृति शब्दके उत्तर 'ईप्' नहीं होता ।

स्वसा तिल्लक्ष्मण ननान्दा दुहितुः तथा ।

यथा मातेति सप्तैते स्वसादम वदाहताः ॥

† नकारान्तके बीचमे,—सङ्ख्यावाचक शब्दके उत्तर 'ईप्' नहीं होता,
यथा—पञ्च, सप्त, अष्ट, नव, दश ।

(क) 'अन्'-भागान्त शब्दके उत्तर विकल्पमे 'आप्' होता है, 'ईप्'
नहीं होता ; 'ङ्' और 'प्' इव, 'आ' रहता है, यथा—(सीमन्) सीमे,
सीमानौ, (पामन्) पामे, पामानौ ; (दामन्) दामे, दामानौ ।

(ख) बहुव्रीहि समास होनेसे, 'अन्'-भागान्त शब्दके उत्तर 'ईप्'
नहीं होता ; यथा—(बहुनि पर्वणाणि सन्ति यस्यां सा) बहुपर्वणा [वेणुपाटि] ।

(ग) बहुव्रीहि-समास होनेसे, 'अन्'-भागान्त प्रातिपदिकके उत्तर

(क) 'ईप्' होनेसे, 'अन्'-मागान्त शब्दके टण्धा अकारका लोप होता है; यथा—(राजन्) राजी । *

उपधा अकार 'मा'-संयुक्त अथवा 'वा'-संयुक्त वर्णमें मिलित रहनेसे नहीं होता ।

(ख) 'युवति' प्रभृति शब्द निपाठन सिद्ध; यथा—(युवन्) युवति, युवती, यूनी, (धन्) धुनी, (मयवन्) मयवती, मयवती ।

८७३ । उकार-इत् (उदित्) और ऋकार-इत् (ऋदित्) प्रत्ययके योगसे निष्पन्न शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमें 'ईप्' (डीप्) होता है । यथा—उदित्—(भवत्—डवतु) भवती; (यतुप्)—(इयत्) इयती, (कियत्) कियती; (मतुप्)—(श्रीमत्) श्रीमती, (बुद्धिमत्) बुद्धिमती, (पुत्रवत्) पुत्रवती, (लज्जावत्) लज्जावती, (यलवत्) यलवती, (प्रमावत्) प्रमावती; (ऋवतु)—(कृतवत्) कृतवती; (ईयस्)—(प्रेयस्) प्रेयसी, (ध्रेयस्) ध्रेयसी, (गरीयस्) गरीयसी, (लघीयस्) लघीयसी, (कनीयस्) कनीयसी, (क्त्सु)—(विद्वम्) विदु-

विकल्पसे 'टाप्' होता है; यथा—बहुपर्वा, बहुपर्वे, बहुपर्वा; (पक्षे) बहुपर्वा, बहुपर्वाणी, बहुपर्वाण्य ।

* त्रिन 'अन्'-मागान्त शब्दके टण्धा अकारका लोप हो सकता है, बहुव्रीहि-समास होनेसे, उनके उत्तर विकल्पसे 'टाप्' और 'ईप्' होते हैं; यथा—(बहव राजान सन्ति अत्र) बहुराजा, बहुराजे, बहुराजा; बहु-राज्ञी, बहुराज्ञी, बहुराज्य, (पक्षे) बहुराजा, बहुराजानी, बहुराजान । (मुनामन्) मुनामा, मुनाम्नी ।

पो*। ऋदित्—(शत्)—(सत्) सती, (रुदत्) रुदती,
(द्विपत्) द्विपती, (शण्वत्) शण्वती, (कुर्वत्) कुर्वती,
(विभ्रत्) विभ्रती, (गृह्वत्) गृह्वती, (जानत्) जानती ।

(क) 'ईप्' होनेसे, म्वादि और दिवादिगणोय धातुके उत्तर विहित
'शन्'-प्रत्ययके स्थानमे 'नुम्' होता है, 'व' और 'म्' इन् ,
'न्' रहता है ; 'न्' अन्त्यस्वराके परवर्ती होकर तकारमे मिलता है ।
यथा—(म्वादिगणोय)—(भवत्) भवन्ती, (धावत्) धावन्ती,
(गच्छत्) गच्छन्ती, (पतत्) पतन्ती, (तिष्ठत्) तिष्ठन्ती ; (चल-
त्) चलन्ती, (पश्यत्) पश्यन्ती ; (कारयत्) कारयन्ती, (स्मार-
यत्) स्मारयन्ती, (स्थापयत्) स्थापयन्ती, (पालयत्) पालयन्ती ।
(दिवादिगणोय)—(दीव्यत्) दीव्यन्ती ; (नश्यत्) नश्यन्ती, (नृ-
स्यत्) नृत्यन्ती ; (जीर्ण्यत्) जीर्ण्यन्ती, (मुद्यत्) मुद्यन्ती ।

(ख) तुदादिगणोयके उत्तर विकल्पसे, यथा—(तुदत्) तुदन्ती,
तुदती, (इच्छत्) इच्छन्ती, इच्छती, (पृच्छत्) पृच्छन्ती, पृच्छती,
(स्पृशत्) स्पृशन्ती, स्पृशती, (सिञ्चत्) सिञ्चन्ती, सिञ्चती ।

(ग) अदादिगणोय भाकारान्तके उत्तर विकल्पसे, यथा—(यात्)
यान्ती, याती, (मात्) मान्ती, माती, (स्नात्) स्नान्ती, स्नाती ।

(घ) 'ईप्' होनेसे, 'स्यन्'-प्रत्ययके स्थानमे विकल्पसे 'नुम्' होता
है, यथा—(भविष्यत्) भविष्यन्ती, भविष्यती, (करिष्यत्) करि-
ष्यन्ती, करिष्यती, (दास्यत्) दास्यन्ती, दास्यती, (यास्यत्) यास्य-

* 'ईप्' होनेसे, कप् (क्स्)-प्रत्ययान्त शब्दकी आकृति लोकोक्ति
प्रथमाके द्विवचनान्तके तुच्य होती है ।

न्ती, यास्यती ।*

८७४ । टकार-इत् (टित्) और पकार-इत् (पित्) प्रत्ययके योगसे निष्पन्न शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमे 'ईप्' † होता है । यथा—टित्-प्रत्यय—(ट)—(कर्मकर) कर्मकरी ‡, (अर्थकर) अर्थकरी, (यशस्कर) यशस्करी, (भयङ्कर) भयङ्करी, (निशाचर) निशाचरी, (घट्)—(चतुर्थ) चतुर्थी, (पष्ठ) पष्ठी, (मट्)—(पञ्चम) पञ्चमी, (सतम) सतमी, (अष्टम) अष्टमी, (नवम) नवमी, (दशम) दशमी ; (डट्)—(एकादश) एकादशी, (द्वादश) द्वादशी, (त्रयोदश) त्रयोदशी, (चतुर्दश) चतुर्दशी, (षोडश) षोडशी ; (अयट्)—(द्वय) द्वयी, (त्रय) त्रयी, (तयट्)—(चतुष्टय) चतुष्टयी ; (मयट्)—(दयामय) दयामयी, (स्वर्णमय) स्वर्णमयी, (मृन्मय) मृन्मयी, (हिरण्यमय) हिरण्यमयी, (टक्)—(ईदृश) ईदृशी, (तादृश) तादृशी, (यादृश) यादृशी, (कीदृश) कीदृशी, (सदृश) सदृशी, (पतादृश) पतादृशी, (अन्यादृश) अन्यादृशी । पित् प्रत्यय—(पक्)—(नर्त्तक) नर्त्तकी, (रजक) रजकी, (षण्)—(मानव) मानवी, (वैष्णव) वैष्णवी, (द्रौपद्) द्रौपदी, (पाञ्चाल) पाञ्चाली, (मागध) मागधी, (मैथिल) मैथिली, (पौत्र) पौत्री, (दौहित्र)

* इन चार सूत्रोंमे उक्त कार्य हीवलिङ्ग प्रथमाके द्विवचनमेभी होता है ।

† पाणिनि मने—'टित्' प्रत्ययान्तके उत्तर 'ईप्', और 'पित्' प्रत्ययान्तके उत्तर 'ईप्' होता है ।

‡ 'ईप्' होनेसे, शब्दके अन्तस्थित अर्धका छेप होता है ।

द्वौहित्री, (ष्येय)—(भागिनेय) भागिनेयी, (क्ष्वरप्)—
(गत्वर) गत्वरी, (नश्वर) नश्वरी—“गत्वर्व्यो यौवनश्रिय ”
भा० ११ १२. ।

८७२ । 'प्राच्'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'ईप्' (ङीप्) होता है, यथा—
(प्राच्) प्राची, (अशच्) अशाची ।

(क) 'प्रतीची'-प्रभृति शब्द निपातन सिद्ध, यथा—(प्रत्यच्)
प्रतीची, (उदच्) उदोची, (तिर्यच्) तिर्यो ।

८७६ । 'कनिप्'-प्रत्ययान्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमे 'ईप्' (ङीप्)
होनेसे, शब्दके अन्तस्थित 'न्' के स्थानमे 'र्' होता है; यथा—(पार-
दृषन्) पारदृषरी, (सदृहृत्पन्) सदृहृत्परी—नै० १-१२ ।

८७७ । बहुव्रीहि समास होनेसे, सङ्ख्यावाचक शब्दके परवर्ती दामन्
और हायन शब्दके उत्तर 'ईप्' (ङीप्) होता है । यथा—(द्वे दाम्नी
यस्या. सा) द्विदाम्नी [रज्जु], (त्रीणि दामानि यस्याः सा)
त्रिदाम्नी । (द्वौ हायनौ यस्या सा) द्विहायनी [वत्सा], त्रिहायनी,
चतुर्हायनी [गौ] ।

'हायन'-शब्द वयोवाचक न होनेसे 'ईप्' और णत्व नहीं होते,
यथा—द्विहायनी, त्रिहायनी, चतुर्हायनी [शाला] ।

८७८ । 'पाद्'-भासान्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमे विकल्पसे 'ईप्'
(ङीप्) होता है; 'ईप्' होनेसे, 'पाद्' के स्थानमे 'पद्' होता है,
यथा—चतुष्पाद्, चतुष्पदी ।

८७९ । 'पति' शब्दके स्त्रीलिङ्गमे—पत्नी । 'सपत्नी' प्रभृति शब्द
निपातन सिद्ध, यथा—(स्नान पतिगम्या.) सपत्नी; (एक पतिर-

स्या) पृथ्वती (साध्वी), (वीर पतिरस्या) वीरपत्नी ; (वृद्ध पतिरस्या.) वृद्धपत्नी ; (पञ्च पतय अस्य) पञ्चपत्नी [द्रौपदी] ; (पतिरस्ति यस्या. सा) पतिवती (जीवन्नर्तुका इत्यर्थ) ; (अन्त अस्ति अस्य गर्भं) अन्तर्वन्ती (गर्भिणी इत्यर्थ) ।

८८० । 'गौर'-प्रभृति * अकारान्त शब्दके उत्तर खोलिङ्गमे 'ईप्' (डीप्) होता है ; यथा—(गौर) गौरी , (कुमार) कुमारी ; (किन्तोर) किन्तोरी , (तरुण) तरुणी , (सुन्दर) सुन्दरी ; (नद) नदी ; (वृहत्) वृहती इत्यादि ।

८८१ । जातिवाचक अकारान्त शब्दके उत्तर खोलिङ्गमे 'ईप्' (डीप्) होता है , यथा—(सिंह) सिंही , (व्याघ्र) व्याघ्री , (भल्लक) भल्लकी ; (मृग) मृगी ; (हरिण) हरिणी ; (कुरङ्ग) कुरङ्गी ; (गर्दभ) गर्दभी ; (शुकर) शुकरी ; (कुकुर) कुकुरी ; (जम्बुक) जम्बुकी , (शृगाल) शृगाली , (बिडाल) बिडाली ; (घोटक) घोटकी ; (महिष) महिषी , (हंस) हंसी ; (सारस) सारसी , (चक्रवाक) चक्रवाकी , (मानुष) मानुषी , (ब्राह्मण) ब्राह्मणी , (गोप) गोपी , (चण्डाल) चण्डाली ; (पिशाच) पिशाची ; (राजस) राजसी । (गार्ग्य) गार्गी , (वात्स्य) वात्सी ।

(क) नित्य खोलिङ्ग होनेसे नहीं होता , यथा—मक्षिका, बलाका ।

* गौर, कुमार, किन्तोर, सुन्दर, पुत्र, पितामह, नातामह, देव, नद, तट, नट, पट, कदल, हय, नाग, मण्डल, काल, महत्, वृहत्, वदर, आमलक, दण, सूच इत्यादि ।

(ख) जातिवाचकके* बीचमें, 'अज' प्रभृति शब्दके उत्तर 'ईप्' नहीं होता, यथा—(अज) अजा, (अश्व) अशा, (बाल) बाला, (चटरु) चटका, (कोकिल) कोकिला, (मूषिक) मूषिका; (शूद्र) शूद्रा (किन्तु 'मइत्'-शब्द पूर्वमें रहनेसे होता है, यथा—महाशूद्रा) ।

(ग) जिन जातिवाचक शब्दोंका उपधामे 'य' रहता है, उनके उत्तर 'ईप्' नहीं होता; यथा—क्षत्रिया, वैश्या ।

किन्तु हय, गवय, मत्स्य और मनुष्य शब्दके उत्तर होता है,† यथा—हयी, गवयी इत्यादि ।

८८२ । 'पत्नी' अर्थमें, जातिवाचक अकारान्त शब्दके उत्तर 'ईप्' (लीप्) होता है, यथा—(ब्राह्मणस्य पत्नी) ब्राह्मणी, (क्षत्रियस्य पत्नी) क्षत्रिया; (वैश्यस्य पत्नी) वैश्या, (शूद्रस्य पत्नी) शूद्रा; (गोपस्य पत्नी) गोपी; (गणकस्य पत्नी) गणकी, (नापितस्य पत्नी) नापिता, (निपादस्य पत्नी) निपादी ।

किन्तु पालकान्त शब्दके उत्तर नहीं होता; यथा—(गोपालकस्य पत्नी) गोपालिका ।

* समानैकाकृतियुता जातिमन्तस्तु कीर्तिता ।

विप्रसन्नादिवर्णा ये, जातवस्तेऽपि सम्मताः ॥

पौत्राद्यपत्यवर्षेण गोत्रं, तज्जातिरीरिता-।

जातिवाचिन आत्थातास्तद्विशेषस्य वाचकाः ॥

† 'ईप्' होनेसे, 'मत्स्य'-शब्दके यकारका लोप होता है; यथा—मत्सी । और व्यञ्जनवर्गके परस्थित तद्धितप्रथमके यकारका लोप होता है; यथा—मनुष्य + ईप् = मनुषी ।

(क) सूर्यस्य पत्नी—सुरी (मानुषी—इन्ती), सूर्यां (दे-
वी—सज्ञा और छाया) । (अग्ने पत्नी) अप्रायी । (मनो पत्नी)
मनायी, मनावी ।

८८३ । बहुव्रीहि वा प्रादिसमासमे अन्य पदार्थो समशानेसे,
स्वाङ्ग-वाचक अकारान्त शब्दके उच्चर छालिङ्गमे विकल्पसे 'ईप्' (ङीप्)
होता है । यथा—इकेशा, इकेशा, चन्द्रमुखी, चन्द्रमुखा, ताम्रनक्षी,
ताम्रनखा । (केशान् अतिश्रान्ता) अतिवेशा [माला] ।

प्राणीके अङ्गकोही 'स्वाङ्ग' कहते हैं, इसलिये 'पूर्वमुखा—यहां
'ईप्' नहीं होगा ।

प्राणिस्य होनेसेभी—द्रव पदार्थ 'स्वाङ्ग' नहीं; यथा—बहुकपा
[कन्या] । जिसकी मूर्ति नहीं, वह 'स्वाङ्ग' नहीं; यथा—छजाना
[रमणी] । विकारजनित पदार्थ 'स्वाङ्ग' नहीं, यथा—[बहुशोया]
(जरती) । प्राणिस्य न होनेपर भी जो पहले प्राणीमे दृष्ट होता है, वह-
भी 'स्वाङ्ग'; यथा—दीर्घकेशी दीर्घकेशा ख्या । प्राणीका जो अङ्ग जिस-
प्रकार प्राणीमे रहता है, वह अङ्ग उसीप्रकार अप्राणीमे दृष्ट होनेसे,
उसको भी 'स्वाङ्ग' कहा जाता है; यथा—सुमुखी सुमुखा प्रतिमा । *

(क) जिन अङ्ग (अवयव)-वाचक शब्दको उपधामे संयुक्तवर्ण रहे, उनके
उच्चर 'ईप्' (ङीप्) नहीं होता, यथा—मृगनेत्रा, चन्द्रवक्त्रा, लोलजिह्वा ।

* अद्वं, मूर्तिमत् 'स्वाङ्गं,' प्राणिस्यमविकारजम् ।

अप्राणिस्य तत्र दृष्टं, तेन तुल्ये तथा स्थितम् ॥

तेनेति । प्राणिनि तथा स्थित स्वाङ्गम्, तथैव प्राणितुल्ये वस्तुनि यत्
स्थितम्, तदपि स्वाङ्गमित्यर्थः ।

किन्तु 'अद्' प्रभृति शब्दके उत्तर होता है, यथा—कृशाङ्गी, कृशाङ्गा ; मृदुगात्री, मृदुगात्रा, विम्बोष्ठी, विम्बोष्ठा, कुन्ददन्ती, कुन्ददन्ता ; चारुकर्णी, चारुकर्णा, दीर्घजङ्गी, दीर्घजङ्गा, कोकिलकण्ठी, कोकिलकण्ठा, सत्पुच्छी, सत्पुच्छा, तीक्ष्णशङ्गी, तीक्ष्णशङ्गा ।

(ख) क्रोड, खुर, शरु, गल, कर, भुज, घोणा, शिवा प्रभृतिके उत्तर 'ईप्' (ङीप्) नहीं होता, यथा—सक्रोडा, तीक्ष्णखुरा, दीर्घशफा, आयतभुजा ; उन्नतघोणा, चारुशिला ।

(ग) दोसे अधिक स्वरविशिष्ट अङ्गवाचक शब्दके उत्तर 'ईप्' (ङीप्) नहीं होता, यथा—सलोचना, चारुदरना, पृथुजघना ।

किन्तु 'नासिका' और 'उदर' शब्दके उत्तर होता है, यथा—तुङ्गनासिका, तुङ्गनासिका, कृशोदरी, कृशोदरा ।

(घ) 'सह', 'नञ्' और 'विद्यमान' शब्द पूर्वमे रहनेसे, अङ्गवाचक शब्दके उत्तर 'ईप्' (ङीप्) नहीं होता, यथा—सकेशा, अकेशा, विद्यमानकेशा ।

(ङ) सजा समझानेसे, 'नख' और 'मुख' शब्दके उत्तर 'ईप्' (ङीप्) नहीं होता, यथा—शूर्पणखा, गौरमुखा । (अन्यत्र—शूर्पणखा, शूर्पणखी, गौरमुखा, गौरमुखी) ।

८८४ । बहुव्रीहि-समास होनेसे, 'ऊधस्' शब्दके उत्तर 'ईप्' (ङीप्) होता है, और 'टि' के स्थानमे 'न्' होता है, यथा—(पीनम् ऊध. यस्या सा) पीनोष्नी ; (धत्तव् ऊध यस्या सा) धत्तोष्नी ; कुण्डोष्नी ।

८८५ । इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दके उत्तर विकल्पसे 'ईप्' (ङीप्) होता है, यथा—श्रेणि, श्रेणी, राजि, राजी, आलि, आली, कटि, कटी, रात्रि, रात्री ; रजनिः, रजनी, अत्रनिः,

अवनी ; शारि, शारी, यष्टिः, यष्टी ; भूमिः, भूमी* ।

'क्ति'-प्रत्ययान्त शब्दके उत्तर नहीं होता ; यथा—गतिः, स्थिति, कृति, मतिः, भक्ति, मुक्ति, युक्ति, वृद्धिः । किन्तु 'पद्धति'-शब्दके उत्तर होता है ; यथा—पद्धति, पद्धती ।

८८६ । उकारान्त गुणवाचक* विशेषणके उत्तर खोलिङ्गमे विकल्पसे 'ईप्' (डीप्) होता है, यथा—साधु, साध्वी ; मृदु, मृद्वी, पटु, पट्वी ; गुरुः, गुर्वी, लघु, लघ्वी ; अणुः, अण्वी ; तनु, तन्वी, स्वादु, स्वाद्वी, बहुः, बह्वी । †

आनीप् ।

८८७ । ब्रह्मन्, इन्द्र, वरुण, भव, शर्व, रुद्र और मृड शब्दके उत्तर 'पत्नी'-अर्थमे 'आन्' (आनुक्) और 'ईप्' (डीप्)—अर्थात् 'आनीप्'—होता है, यथा—(ब्रह्मण पत्नी) ब्रह्माणी ‡ ; (इन्द्रस्य पत्नी) इन्द्राणी ; वरुणानी ; भवानी ; शर्वाणी ; रुद्राणी, मृडानी ।

'मातुला'-शब्दके उत्तर विकल्पसे होता है, यथा—मातुलानी, मातुली ।

'दशाध्याय'-प्रमृति शब्दके उत्तर अर्थविशेषमे होता है । यथा—

* विद्वरुण वस्तुधर्मां जातिभिन्ना गुणा मता ।

गुणवाचन आख्यातास्तद्विशिष्टस्य वाचका ॥

† उपधामे युक्तक्षरविशिष्ट शब्दके उत्तर नहीं होता ; यथा—पाण्डु* ।

‡ 'आनीप्' होनेसे, 'ब्रह्मन्'-शब्दके नकारका स्त्रोव होता है ।

अधिपती शिष्टिना हीना, सखी सहवरी मता ।

उपाध्याय—(‘पत्नी’-अर्थमे) उपाध्यायानी, उपाध्यायी, (स्वयम् अध्या-
पिका) उपाध्यायी, उपाध्याया । आचार्य्य—(‘पत्नी’-अर्थमे) आचा-
र्यानी*, (स्वयं व्याख्यात्री) आचार्या । क्षत्रिय—(‘पत्नी’-अर्थमे)
क्षत्रियो, (स्वयम्) क्षत्रियाणी, क्षत्रिया । अर्य्य (वंश्य)—(‘पत्नी’-अर्थमे)
अर्या ; (स्वयम्) अर्याणी, अर्या । हिम—हिमानी (हिममहति, महत्
हिम) । अरण्य—अरण्यानी (महारण्य) । यत्र—यवानी (दुष्ट यव) ।
यवन—यवानी (यवनोक्ता लिपिविशेष) ।

ऊप् ।

८८८ । प्राणि भिन्न उकारान्त शब्दके उत्तर स्त्रीलिङ्गमे ‘ऊप्’ (ऊङ्)
होता है ; ‘प्’ इत्, ‘ऊ’ रहता है, यथा—(जम्बु) जम्बू, (अलाबु)
अलाबू ; (कर्कण्डु) कर्कण्डू । †

८८९ । ‘तनु’-प्रभृति शब्दके उत्तर विकल्पसे ‘ऊप्’ होता है, यथा—
तनु, तनू, चञ्चु, चञ्चू ।

८९० । उपमानपदके परवर्ती ‘ऊरु’ शब्दके उत्तर स्त्रीलि-
ङ्गमे ‘ऊप्’ (ऊङ्) होता है, यथा—(रम्भे इव ऊरु यस्या-
सा) रम्भोरुः, (करभौ † इव ऊरु यस्या सा) करभोरुः,
(करभ उपमा ययो तौ ऊरु यस्या सा) करभोपमोरुः—
१० ६. ८३, (करिकरौ इव ऊरु यस्या सा) करिकरोरुः ।

* ‘आचार्याणी’ शब्दका ‘नी’ मूर्द्धन्य नहीं होता ।

† मनुष्यजाति समशानेसेभी होता है, यथा—कुङ्, वृद्धवन्धू ।
‘रञ्जु’ और ‘हनु’ शब्दके उत्तर नहीं होता ।

‡ “भणिवन्धादाकनिष्ठ करस्य करभो बहि” इत्यमर ।

(क) 'वामा'-शब्दके परत्वर्त्ती 'ऊह'-शब्दके उत्तर 'ऊप्' होता है, यथा—(वामौ—सुन्दरौ—ऊरू यस्या सा) वामोरू ।

प्रश्न ।

सोलिङ्ग को—देव, सखि, पति, धातु, प्राच्, प्रत्यच्, तिथ्यच्, उदच्, पापहृत्, सार, धीमत्, महत्, बृहत्, त्यजत्, कुर्वत्, मज्जत्, ददत्, भव्, करिष्यत्, महामहिमन्, महात्मन्, खन्, युगन्, धनिन्, तादृग्, पतिद्विप्, उन्मनम्, विद्वम्, महायम्, दीर्घायुम्, सर्व, पूर्वं, अन्य, एक, प्रथम, सप्तम, पञ्चाशत्, पञ्चाश (इट्), शततम (तमट्), गौर, भृग, अथ, उगात्र, वरुण ।



तद्धित-प्रकरण ।

८९१ । शब्द वा प्रातिपदिकके उत्तर 'मनुषू'-प्रभृति कई प्रत्यय करनेसे शब्द उत्पन्न होता है, ७ हों 'तद्धित-प्रत्यय' कहते हैं ।

तद्धित-कार्य्य ।

८९२ । तद्धित प्रत्ययका मूर्द्धन्य 'ण' हत् होनेसे, शब्दके आदिस्वरकी वृद्धि होती है, यथा—तर्क + णिङ्क = तार्किङ्क ।

कहाँ कहीं 'णिन्'-कार्य्य नहीं भी होता ।

(क) कई समन्तपदोंके उत्तरपदके आदिस्वरकी वृद्धि होती है । यथा—गुरण्यु + ण्ग = गुरण्यण्वम्, विवृषितामह + ण्ग = विवृषितामहम् (विवृषितामहानाम् इदम्), (वातचित्तस्य संयोगो निमित्तम्—वातचित्त +

(षष्ठीक) वातपैत्तिकम् , वातश्लेष्मिकम् । (पूर्वं वर्षागाम्—पूर्ववर्षम् , तस्मिन् भवम्—पूर्ववर्ष + षष्ठीक) पूर्ववर्षिकम् । (द्वौ सवत्सरो व्याप्य भूत भावि वा) द्विसावत्सरिकम् । सह्या-पूर्वं 'वर्ष' शब्दके उत्तर भविष्यद्भिन्न कालमे प्रत्यय होनेसे—(द्वे वर्षे व्याप्य भूत भवत् वा) द्विवर्षिकम् ।

(ष) कई समस्तपदोंके पूर्वपदके आदिस्वरकी वृद्धि होती है । यथा—(पूर्वास वर्षास भवम्) पूर्ववर्षिकम् । (द्वौ मासौ व्याप्य भूत भवत् वा) द्वैमासिकम् , त्रैमासिकम् । (द्वे वर्षे व्याप्य भावि) द्वैवर्षिकम् । (छहद शव) सौहृदम् (ण्ण), सौहृद्यम् (ण्य), दौहृदम् , दौहृद्यम् । (मित्रावणयो अपत्यम्) मैत्रावरणि (णि) ।

(ग) कई समस्तपदोंके उभयपदकेही आदिस्वरकी वृद्धि होती है । यथा—(इहलोके भव—इहलोक + षष्ठीक) ऐहलौकिक , (परलोक) पारलौकिक ; (सर्वलोके विदित) सार्वलौकिक , (अधिदेव) आधिदैविक , (अधिभूत) आधिभौतिक , (सर्वभूमि) सार्वभौम (ण्ण) ; (चतस्र विद्या—चतुर्विद्या + ण्ण) चातुर्वेद्यम् , (पश्चिमा अपत्यम्—पश्चो + ण्येय) पारश्चिणेय (जारज इत्यर्थ) । (छहद सहृदयस्य वा भाव) सहृद् , सहृदय + ण्ण) सौहार्दम् , सौहार्द्यम् (ण्य) , (छमस्य भाव) भीमास्यम् (ण्य) , दौर्मास्यम् ।

(ख) कई नञ्त्पुटपसमासनिष्पन्न पदोंके, उत्तरपद वा उभयपदके आदिस्वरकी वृद्धि होती है, यथा—अशौचम् , आशौचम् , अनैघर्यम् , आनैघर्यम् , अकौशलम् , आकौशलम् , अनैपुणम् , आनैपुणम् , अयत् यातप्यम् आयायातप्यम् ।

८९३ । 'णिव्' तद्धितप्रत्यय परे रहनेसे, सनम्नपदके आदिस्वरके स्थानमे जात 'य्' के स्थानमे 'ण्य्' और 'व्' के स्थानमे 'औ' हाता है; यथा—(वि + आम् = व्यास + णिक) वैयासिक ; (वि + अ + ऋण = व्याकरण + ण) वैयाकरण , (सु + अध = स्वध + णिक) सौधिक ।

'व्यवहार', 'स्वागत' प्रभृति शब्दोंका नहीं होता; यथा—(व्यवहारम् अहंति—व्यवहार + णिक) व्यावहारिक , व्यवहारिक इत्यादि ।

द्वार, स्वर, स्वस्ति, शम् प्रभृति शब्दोंकाभी होता है; यथा—(द्वारे नियुक्त—द्वार + णिक) शौवारिक ; (स्वर + ण) शौवर ; (स्वस्तिकरणे कुशल—स्वस्ति + णिक) शौवस्तिक , (शम् परदिने भव—शम् + णिक) शौवस्तिक , इत्यादि ।

'धापद्' और 'न्यङ्' शब्दका विकल्पसे होता है; यथा—(धापद् + ण) शौधापद् —“कश्चित् कान्तारमात्रा भवति परिभव कोऽपि तावद्गो वा ? ” अनर्थे ० १ २९ , (न्यङ्) न्यङ्गव ।

८९४ । तद्धितप्रत्ययके 'य' और स्वरवर्ग परे रहनेसे, शब्दके अन्त्यित अवर्ण और इवर्णका लोप होता है; यथा—पर्वत + ण्य = पर्वत्य ; माया + णिक = मायिक , विधि + ण = वीध ।

८९५ । तद्धितप्रत्ययके 'य' और स्वरवर्ग परे रहनेसे, शब्द अन्त्यित उवर्णका गुण होता है; यथा—पाण्डु + ण = पाण्डव , गाडु + णि = बाहवि । *

* 'ण्येय' परे, उवर्णका लोप होता है; यथा—कमण्डल + ण्येय = कमण्डलेय । किन्तु 'कट्ट' और 'पाण्डु' शब्दका नहीं होता; यथा—'कवेय' ; (चिन्दिय ।

८१६ । ऋकारान्त, ओकारान्त और औंकारान्त शब्दके परस्मित तद्धितप्रत्ययका 'य' स्वरकार्य्यं निर्वाह करता है, अर्थात् 'य' परे रहनेसे, 'ऋ' के स्थानमे 'रू', 'ओ' के स्थानमे 'अव्', और 'औं' के स्थानमे 'आव्' होता है; यथा—पितृ + ष्य = पित्र्यम्, वैश्यम्, गो + य = गव्यम् ।

८१७ । तद्धितप्रत्यय परे रहनेसे, नकारान्त शब्दके नकारका लोप होता है, यथा—(राज्ञा समूह — राजन् + कण्—कुन्) राजकम्; (पत्या गच्छति—पथिन् + कण्—च्छन्) पथिक ।

८१८ । तद्धितका 'य' परे रहनेसे, 'अन्'-भागान्त शब्दके 'न'कारका लोप नहीता, यथा—(ब्रह्मणि साधु — ब्रह्मन् + ष्य) ब्रह्मण्य ।
निभाव और कर्म अर्थमे नकारका लोप होता है, यथा—(राज्ञा भाव वा—राजन् + ष्य) राज्यम् ।

८१९ 'ष्ण'-प्रत्यय परे रहनेसे, 'अन्'-भागान्त शब्दके नकारका लोप नाता, यथा—(यूत भाव) यूतन्, (पर्वणि भव) पार्वण ।
विकारार्थमे 'ष्ण' होनेसे, 'ह्रस्व'-शब्दके नकारका लोप होता है; यद्यन् विकार-) ह्रस्व ।

९ 'ष्ण'-प्रत्यय परे, 'इन्'-भागान्त शब्दके नकारका लोप नहीं होता—(हस्तिन इदम्) हास्तिनम् ।

'श्विन्'-अर्थमे होता है, यथा—(मेघाविन अपत्यम्) मैघाव ।
'इन्' सं मिलित होनेसे नहीं होता, यथा—(तपस्विन अपत्यम्) तप ।

१० 'ति' भिन्न अर्थमे 'ब्रह्मन्'-शब्दके नकारका लोप होता है; यथा—वता अस्य—ब्रह्मन् + ष्य) ब्राह्मन् [अखम्], ब्राह्मं

हविः ; (ब्रह्म श्वाप्ते) ब्राह्म , (ब्रह्मण इयन्) ब्राह्मी [तनु] । 'जाति'-
अर्थमें नहीं होता , यथा—(ब्रह्मण अपत्यम्) ब्राह्मण (जातिविशेष) ।

१०२ । 'शीन'-प्रत्यय होनेसे, 'अध्वन्' और 'आत्मन्' शब्दके
नकारका लोप नहीं होता ; यथा—(अध्वनि मातु) अध्वीन ;
(आत्मने हितम्) आत्मनोऽनम् ।

१०३ । तद्धितके 'य' और स्वरवर्ग परे रहनेसे, आरात् और शब्द
भिन्न , अव्ययशब्दके 'टि' का लोप होता है , यथा—(वदि-त्तम्—
वदिस्+नेप्य) वाद्यम् ; (अरम्भात् भवम्—अरम्भात्+गक)
आरुस्मिऊम् । (आरात् भव—आरात्+ईय—उ) आरुनीय ;
(शश्वत् भव) शश्वतिक ।

१०४ । 'तरा'-प्रभृति* तद्धितप्रत्यय परे रहनेसे, भाषितपुञ्ज
पत्र) खोलिङ्ग शब्दका पुब्रह्मण होता है ; यथा—शुभ्रा + तम्
तरा , (साध्या भाव) साधुता ।

तद्धित-प्रत्यय—प्रथमान्तसे ।

वक्ष्यमाण तद्धित प्रत्यय प्रथमान्तसे होते हैं—

अस्त्यर्थे ।

१०५ । मनुप्—'तत् अस्य अस्ति', 'तत् अस्मिन् अस्ति'—
इन दोनों अर्थोंमें शब्दके उत्तर 'मनुप्'-प्रत्यय होता है ; 'उभौ
'प्' इत्, 'मत्' रहता है । यथा—(मति अस्य अस्ति उ)
मतिमान् ; (बुद्धिरस्यास्ति) बुद्धिमान् ; (घी अस्यास्ति)

* तर, तम, इष्ट, ईदु, रूप, पाठ, कल, देव, देहीय, जात च-
रत्, त्व, तल्, इमन् इत्यादि ।

विहित 'मनुप्' के 'म' के स्थानमें 'च' होता है, यथा—(लक्ष्मीः अस्यास्ति) लक्ष्मीवान्, (शमी अस्मिन् अस्ति) शमीवान् ।

(८) 'यव' प्रभृति शब्दके उत्तर विहित 'मनुप्' के 'म' के स्थानमें 'ञ' नहीं होता, यथा—यवमान्, ऊर्मिमान्, भूमिमान्, कृत्तिमान्, सामान्, गरत्मान्, हरत्तिमान्, ककुचान् ।

(९) 'च' निपातने—(उदकम् अस्मिन् सस्ति) उदन्वान् । (समुद्र मित्त ३३) (अन्यत्र) उदकवान्, (शोभनो राजा अस्मिन् अस्ति) बहिस् + ने + श]—राजन्वती प्रजा, (अन्यत्र) राजवान् । (नतिरा आस्मिन् अस्ति) अष्टोवान् । (जानूह्यन्धिस्थिर्ध.), (शश्वत् भव) शश्वत् ।

१०४ । 'तर' प्र-सौहित्यमास-द्वारा अर्थबोध होता है, वहाँ कथाप-पत्र) सौलिक शब्दके उत्तर अन्त्यर्थ-प्रत्यय नहीं होता, यथा—(गोमता तरा, (साध्या. भाव)—यहाँ (गोमता बुद्धि) ह्युद्धि, सा तद्विज्ञान नहीं होगा ।

वक्ष्यमाण तद्विसे स्थलविशेषमें 'बाहुल्य'-प्रभृति* अर्थात् गोमता
 १—बाहुल्य) घनवान्, गोमान् ; (१०५)

१०५ । मनुप्—'तत् अर्थ') , (प्रसमा) वाग्मी, इत्तु ;
 इन दोनों अर्थोंमें शब्दके उत्तरत्वशील्युत इत्यर्थ) ; (अतिशय न—
 'प्' इत्, 'मत्' रहता है । यदश्वतो इत्यर्थ) ; (समर्ग) दग्दी । गो ।
 मतिमान् ; (बुद्धिरस्यास्ति) नेत्ययोगेऽतिशयने । १०६

* तर, तम, इष्ट, ईदमु, रूप, पाशा मनुवादय ॥ १०६

रट्, त्व, वल्, इमन् इत्यादि ।

१ भूमादिषु विषयषु भवन्ति । सं ।

हिरण्यार्थी ; गुरुदक्षिणार्थी ।

९०९ । ल (लच्)—‘मांस’-प्रभृति शब्दके उत्तर ‘ल’-प्रत्यय होता है, यथा—(मांसम् अस्यास्ति) मांसल, (धी अस्यास्ति) धील, पद्म अस्यास्ति) पद्मल * , (शीतं गुण अस्यास्ति) शीतल, (इयामः वर्णं अस्यास्ति) इयामल, (पिङ्ग वर्णं अस्यास्ति) पिङ्गल ; पित्तल (चतुष्क, पित्तवर्द्धकश्चेत्यर्थ), श्लेष्मल, ; पृथुल, मृदुल ; ग्रन्थि-[†] इमधुल ।

इनमेंसे * उत्तर ‘मनुष्य’ भी होता है, यथा—श्रीमान्, ग्रन्थिमान् ।

(क) ‘स्नेहवान्’ और ‘बलवान्’ अर्थमें ‘वत्स’ और ‘अंस’-शब्दके उत्तर ‘ल’ होता है, यथा—वत्सल (स्नेहवान् इत्यर्थ), असल. (बलवान् इत्यर्थ) ।

(ख) ‘फेन’-शब्दके उत्तर विकल्पसे ‘ल’ और ‘इल’ (हल्च्) होते हैं ; यथा—(फेन अस्मिन् अस्ति) फेनल, फेनिल ; (पक्षे) फेनवान् । “फेनिलमम्बुराशिम्” २०१३ २. ।

९१० । श—‘लोमन्’-प्रभृति शब्दके उत्तर ‘श’-प्रत्यय होता है ; यथा—(लोमानि अस्य सन्ति) लोमश ; रोमश ; (गिरि आध्रयत्वेन

* “पद्मलाक्ष्या” शकु० ३ २२. (पद्म—आक्षिप्तोम, पद्मले मनोहर-पद्मसमन्विते आक्षिणी यस्याः सा पद्मलाक्षी) ; “मृदितपद्मलरत्नकाङ्ग- [वायु] ” माघ० ४ ६१ (पद्मल—लोमश) ।

† “परस्त्रीस्पर्शाशुल” शकु० ५.२९ (पाशु —दोष, पापम्, तद्गुण-—शशुल) । ‘पांशुलो’ऽपि ।

अस्यस्ति) गिरिदा ।

९११ । इल (इलच्)—'पिच्छा' और 'पङ्क' शब्दके उत्तर 'इल'-प्रत्यय होता है, यथा—(पिच्छा—भक्तसन्मृतमण्डम्—अस्यास्ति) पिच्छिन् * , (पङ्क अस्मिन् अस्ति) पङ्किल † ।

(क) 'वृद्धि' समझानेसे, अङ्गवाचक शब्दके उत्तर 'इल' होता है ; यथा—(विवृद्ध तुन्दम्—उदरम्—अस्यास्ति) तुन्दिल ‡ ; विचण्डिल ।

९१२ । उर (उरच्)—'दन्त' शब्दके उत्तर 'उर'-प्रत्यय होता है—'उन्नत'-अर्थमें, यथा—(उन्नता दन्ता सन्ति अस्य) दन्तुर § ।

९१३ । र—'ऊप'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'र' प्रत्यय होता है ; यथा—(ऊप—क्षारमृत्तिका—अस्मिन् अस्ति) ऊपर ॥ (क्षारभूमिरित्यर्थ) ; (शुषि—छिद्रम्—अस्यास्ति) शुषिर , (मधु—माधुर्यम्—अस्यास्ति) मधुर । (निन्दित सुखम् ¶ अस्यास्ति) सुखर (वाचाल इत्यर्थ) ;

* "पिच्छिलानि च दधीनि" छन्दोमञ्जरी ; "पिच्छल पन्था " शाहित्य-दर्पणम् १० ।

† "मांसमज्जास्थिपाद्विला महो" महाभा० (पाण्डुल—व्याप्त) ।

‡ "मकरन्दतुन्दिलानामरविन्दानामथं महामान्य." भामिनी० १.५.

(तुन्दिल—पूणे) ।

§ "अखर्वगर्वस्मितदन्तुरेण" विक्रमाद्देवचरितम् १ ५० (दन्तुर—व्याप्त) ॥

"शूकरे निहते चैव दन्तुरे जायते नर " ।

॥ "यमांधी यत्र न स्याती, शुभ्रूषा वाऽपि तद्विधा ।

विद्या तत्र न वक्ष्या, शुभ्र बीजमिवोपरे ॥" मनु० २ ११२. ।

¶ "सुख"-शब्दोऽत्र लक्षणया 'वचन'-पर । "सुखरमधीर त्यज मञ्जी-

डुलप्, घल्, आलु, अस्त्यर्थं तद्धित—प्रथमान्तसे । ७६३
 [किन्, आमिन्]

(अतिशयित कुञ्ज—इनु—अस्यास्ति) कुञ्जर ; (नगा इव प्रासादादय अस्मिन् सन्ति) नगाम् ।

९२४ । डुलप् (डुलच्)—‘नडा’ और ‘शाद्’ शब्दके उत्तर ‘डुलप्’-प्रत्यय होता है, ‘ड्’ और ‘प्’ इत्, ‘वल्’ रहता है, यथा—(नडा अस्मिन् सन्ति) नडुड ; (शादा—बालवृगानि—अस्मिन् सन्ति) शाडल * (शल्पव्यामन्त इत्यर्थ) ।

९२५ । वल् (वलच्)—‘कृपि’ प्रभृति शब्दके उत्तर ‘वल’-प्रत्यय होता है । ‘वल्’-प्रत्यय होनेसे अस्त्यस्वर दीर्घ होता है । यथा—(कृपि अस्यास्ति) कृपीवल , रजस्वला , ऊर्जस्वला (बलवान् इत्यर्थ) । दन्तावट (हस्ती इत्यर्थ) , शिलावल (मयूर इत्यर्थ) ।

९२६ । आलु—‘अमहन’ अर्थमे, ‘शीत’ और ‘उष्ण’ शब्दके उत्तर ‘आलु’-प्रत्यय होता है, यथा—(शीत न सहते) शीतालु , (उष्ण न सहते) उष्णालु ।

(क) ‘कृपा’ और ‘हृदय’ शब्दके उत्तर ‘आलु’ होता है; यथा—(कृपा अस्यास्ति) कृपालु , हृदयालु ।

९२७ । किन्—‘रोग’ समझानेसे, ‘वात’ और ‘अतिमार’ शब्दके उत्तर ‘किन्’-प्रत्यय होता है, यथा—(वात अस्यास्ति) वातकी ; (अतिमार अस्यास्ति) अतिमारकी ।

९२८ । आमिन्—‘ऐश्वर्य’ समझानेसे, ‘स्वा’-शब्दके उत्तर ‘आमिन्’-प्रत्यय होता है; यथा—(स्वम्—ऐश्वर्यम्—अस्यास्ति) स्वामी ।

रम् गीतगो० २.११. (मुखर—शब्दापमान) ।

* “शय्या शद्वल्” शान्तिशतकम् ।

७६४ व्याकरण-मञ्जरी । [भ, यु, अच्, षण्, ष्य, षिण्क, कन्

११९ । भ—'बलि', प्रभृति शब्दके उत्तर 'भ' प्रत्यय होता है ;
यथा—(बलि—त्वक्सङ्कोच—अस्मिन् अस्ति) बलिभम् (उदम्) ।

१२० । यु (युम्)—'अहम्', 'शुभम्' और 'शम्' शब्दके उत्तर
'यु' प्रत्यय होता है, यथा—(अहम्—अहङ्कार—अस्यास्ति) अह्यु
(अहङ्कारवान् इत्यर्थ) , (शुभम् अस्यास्ति) शुभ्यु , शयु (शुभा-
न्वित इत्यर्थ.) ।

१२१ । अच्—'अर्शस्' प्रभृति शब्दके उत्तर 'अच्' प्रत्यय होता
है, यथा—(अर्शोति अस्य सन्ति) अर्शास , (पलितम् अस्यास्ति)
पलित , (लवण रस अस्यास्ति) लवण ।

१२२ । 'ज्योत्स्ना'-प्रभृति शब्द निपातन सिद्ध, यथा—(ज्यो-
ति अस्यास्ति) ज्योत्स्ना , (तमोऽस्या अस्ति) तमिस्रा , (मलम्
अस्यास्ति) मलिन , मलामम , (अर्णोति—जलानि—अस्मिन् सन्ति)
अर्णम (समुद्र इत्यर्थ) , (आमय अस्यास्ति) आमयायी (रोगी
इत्यर्थ) । (प्रशस्ता वाच अस्य सन्ति) वाचमी (मिन्—मिमिनि) ;
(यं वृत्तित बहु भाषते स) वाचाल (आल—आलच्), वाचाट
(आट—आटच्) ।

स्वार्थे ।

१२३ । षण् (षण्), ष्य, षिण्क (ठक्), कन्—शब्दके
उत्तर स्वार्थमे 'ण', 'ष्य', 'षिण्क' और 'कन्' प्रत्यय होने हैं । 'ण' का
'ष्' और 'ण्' इत्, 'भ' रहता है, 'ष्य' का 'ष्' और 'ण्' इत्, 'य'
रहता है, 'षिण्क' का 'ष्' और 'ण्' इत्, 'हक' रहता है, 'कन्' का 'न्'
इत्, 'क' रहता है । प्रत्यय होनेसे शब्दके अर्थका वैलक्षण्य नहीं होता,

पूर्वं अर्थही अत्रिहृत रहता है । यथा— (एण्)—(बन्धुः एव)
 बान्धव , (शत्रुरेव) शात्रव ; (चोर एव) चौर , (चण्डाल एव)
 चाण्डाल , (मन एव) मानसम् , (देवता एव) दैवतम् , (प्रज्ञ
 एव) प्राज्ञ , (कुतुकम् एव) कौतुकम् , (कुतूहलम् एव) कौतूहलम् ,
 (मरु एव) मारुत , (रक्ष एव) राक्षस । (एण्य)—(भेषजम्
 एव) भेषज्यम् (ज्य) , (इतिइ* एव) ऐतिह्यम् (ज्य) ,
 (त्रिलोकी एव) त्रैलोक्यम् † , (करुणा एव) कारुण्यम् , (द्वि-
 गुणौ एव) द्वैगुण्यम् , (त्रिगुणा एव) त्रैगुण्यम् , (षड्गुणा एव)
 षड्गुण्यम् ; (चत्वार वणां एव) चातुर्वर्ण्यम् , (सेना एव)
 सैन्यम् , (सन्निधिरेव) सान्निध्यम् ; (समीपम् एव) सामीप्यम् ;
 (उपमा एव) औपम्यम् , (सुखम् एव) सौख्यम् , (समानम् एव)
 सामान्यम् , (सोदर एव) सोदर्यं (य) , (मर्त्य एव) मर्त्यं (य-
 च्) ; (नवम् एव) नव्यम् , नवीनम् (णिन—ष) । (धिष्णक्)—
 वाक् एव) वाचिकम् (सन्देशवचनम् इत्यर्थं) । (कन्)—(याव
 एव) यावक , (बाल एव) बालक , (नौ एव) नौका ।

(क) एणीक (ईकक्)—‘द्वितीय’ और ‘तृतीय’ शब्दों उत्तर
 स्वार्थमे ‘एणीक’-प्रत्यय होता है , ‘ए’ और ‘ण्’ इत् , ‘ईक’ रहता है ;
 यथा—(द्वितीय, एव) द्वैतीयक —“द्वैतीयकतया मितोऽवमगमत् सर्ग ”
 नै० २ ११० ; (तृतीय एव) तार्क्षीयक —“तार्क्षीयकं पुरारोम्तद्भवतु
 मदनप्लोषण लोचन व ” मालती० ४ ।

* इतिह—उपदेशपरम्परा इत्यय —अव्यय ।

† ‘त्रैलोक्यम्’ से ‘सामान्यम्’ तक पाणिनि-मते ‘ध्वन्’ ।

(ख) तल्—'देव' शब्दके उत्तर स्वार्थमे 'तल्' प्रत्यय होता है ; 'ल्' इत्, 'त' रहता है । 'तल्' प्रत्ययान्त शब्द खोलिङ्ग । यथा—(देव एव) देवता ।

(ग) धेय—'भाग', 'रूप' और 'नामन्' शब्दके उत्तर स्वार्थमे 'धेय'-प्रत्यय होता है, यथा—(भाग* एव) भागधेयन् (भाग्यम् इत्यर्थं) ; (नाम एव) नामधेयम् ।

(घ) तिकन्—'मृद्'-शब्दके उत्तर स्वार्थमे 'तिकन्' प्रत्यय होता है, 'न्' इत्, 'तिक' रहता है, यथा—(मृद् एव) मृत्तिका ।

(ङ) स, स्त—'प्रशन्ता' समप्रानेमे, 'मृद्' शब्दके उत्तर स्वार्थमे 'स' और 'स्त' प्रत्यय होते हैं, यथा—(प्रशन्ता मृत्) मृत्सा, मृत्स्था ।

(च) निरातने—(नवम् एव) नूतनम्, नूतनम्, (उपाय एव) औपयिकम् (टङ्—इन्वञ्च)—“शिवमौण्डिकम्” भा० २ ३५ ।

१२४ । कन्—ह्रस्व, अल्प, कुत्सित, अज्ञात, अनुकम्पा और संज्ञा (नाम) अर्थ समप्रानेमे, शब्दके उत्तर 'कन्'-प्रत्यय होता है । यथा—(ह्रस्व वृक्ष) वृक्षक † । (अल्प तैलम्) तैलकम् । (कुत्सित अश्व) अश्वक । (कम्प्यं तिमिति अनुज्ञात अश्व) अश्वक । (अनु-कुम्पित पुत्रः) पुत्रक । (सना) रोहितक, शूद्रक ; आप्यक ।

१२५ । खोलिङ्ग शब्दके उत्तर 'कन्' होनेसे, अन्त्यम्बर ह्रस्व होता

* “भागधेययोर्भाग” रत्न ।

† “भागधेयं नमं भाग्ये, भाग-प्रत्याययो पुमान्” मेदिनी । (प्रत्या-य —कर इ-वर्ध —T&X मङ्गुल) ।

‡ “अतन्द्रिता सा स्वयमेव वृक्षकन् घटस्तनप्रसवौर्न्यवर्द्धयत्” कु० ५ १४.

है । यथा—(कन्या एव) कन्यका । (चण्डी) चण्डिका ; (कुमारी) कुमारिका ; (मृगाली) मृगालिका , (यूथी) यूथिका , (बदरी) बदरिका , (दूर्ता) दूर्तिका , (काली) कालिका , (शारी) शारिका , (सूची) सूचिका ।

ह्रस्वार्थे ।

१२६ । र—'ह्रस्व'-अर्थमे, 'कुटी', 'शमी' और 'शुग्डा' शब्दके उत्तर 'र'-प्रत्यय होता है, यथा—(ह्रस्वा कुटी) कुटीर , (ह्रस्वा शमी) शमीर , (ह्रस्वा शुग्डा *) शुग्डार † ।

अल्पार्थे ।

१२७ । तरट् (ट्तरच्)—'अल्प' अर्थमे, अक्ष, वत्स, उक्षन् और अक्षम शब्दके उत्तर 'तरट्'-प्रत्यय होता है ; 'ट्' इच्, 'तर' रहता है ; यथा—(कल्प अक्ष †) अक्षतर (गर्दभेन अक्षायाम् उत्पन्न अक्ष-विशेष इत्यर्थ —इक्षर), (कल्पो वत्स §) वत्सतर (मुक्तबाल्य प्राप्तयौवने दमनयोग्य. वत्स इत्यर्थ) , (अल्प उक्षा ||) उक्षतर ¶

* "शुग्डा करिकरे मेघे" वैजयन्ती ।

† "शुग्डार. कलमेन यद्वदचले वत्सेन दोर्दण्डकस्तस्मिनाहित एव"

महावीर • १. ५३. ।

‡ अक्षेन अक्षायाम् उत्पन्न अक्ष ; तस्य अल्पत्वम् अन्वयितृचना ।

§ प्रथमवयस्य वत्स , तस्य अल्पत्व द्वितीयवयस्य प्राप्ति ।

|| तस्या उक्षा , तस्य अल्पत्व तृतीयवयस्य प्राप्ति ।

¶ "महोक्ष स्यादुक्षतर." हेमचन्द्र । "महोक्षता वत्सतर स्पृशतिव"

र • ३ ३२. ।

(त्यक्त्यौवन प्राप्तृतीवधया वृष इत्यर्थं), (अलर रूपम *)
 रूपभतर (भारवहनाशक्तो वृषम इत्यर्थं) ।

ईपदूनार्थे ।

९२८ । कल्प (कल्पण्), देश्य, देशीय (देशीयर्)—‘ईपत् न्यून
 (कम)’ यह अर्थ समझानेसे, शब्द और तिङन्त पदके उत्तर
 ‘कल्प’, ‘देश्य’ और ‘देशीय’ प्रत्यय होते हैं । यथा—(ईपदूनः
 चिद्धान्) चिद्धकल्प , चिद्धदेश्य , चिद्धदेशीय ।†(ईपदून पठति)
 पठतिकल्पम् , पठतिदेश्यम् , पठतिदेशीयम् ।

प्रशसार्थे ।

९२९ । रूप (रूपण्)—‘प्रशसा’ समझानेसे, शब्द और तिङन्त-
 पदके उत्तर ‘रूप’ प्रत्यय होता है, यथा—(प्रशस्तो वैयाकरणः) वैया-
 करणरूप , वैयायिकरूप , आलङ्कारिकरूप , मीमांसकरूप । (प्रशस्तं
 पठति) पठतिरूपम् ।

* भारत्य बोटा रूपम , तस्य अलरत्व भारोद्वहने मन्दशक्ति ।

† ‘कल्प’ means ‘almost like’, ‘nearly equal to’—
 प्राय समान (denoting similarity with a degree of
 inferiority) । “कुमारकल्प सुषुप्ते कुमारम्” (कात्तिकेयवुल्यम् इत्यर्थं)
 २०५ ३६ , “वपपन्नमेतदस्मिन् श्रापिकरुपे राजानि” शकु० २ , “प्रभातकल्पा
 शशिनेव शर्वरी” (ईपदसमाप्तप्रभाता, —प्रभातात् ईपदूना इत्यर्थं) २० ,
 ऐसे—मृतकलर । “अष्टादशवर्षदेशीयां कन्यां ददर्श” काद० (girl
 about 18 years old—whose age bordered on 18.) ।

निन्दार्थे ।

९३० । पाश (पाशप्)—'कुत्सित'-अर्थ समझानेसे, शब्दके उत्तर 'पाश'-प्रत्यय होता है, यथा—(कुत्सितो वैयाकरण) वैयाकरणपाश , मामामकपाश , भिषक्पाश , छात्रपाश , लेखकपाश ; पाचकपाश ।

भूतपूर्वार्थे ।

९३१ । चरद्—'पूर्वं भूत —भूतपूर्व' (पहले था, अथवा हुआ था, अब नहीं) इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'चरद्'-प्रत्यय होता है, 'द्' इत्, 'चर' रहता है, यथा—भूतपूर्व-आढय (Who was formerly rich) आढयचर —आढयचरी ; (भूतपूर्व अध्यापक) अध्यापकचर (Late teacher) ; (पूर्वं दृष्ट) दृष्टचरः ; (पूर्वं श्रुतम्) श्रुतचरम् , (पूर्वम् अर्पितम्) अर्पितचरम् ; (पूर्वम् अधीत.) अधीतचरः ।

प्रकारार्थे ।

९३२ । जातीय (जातीयर्)—'स प्रकार अस्यास्ति' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'जातीय'-प्रत्यय होता है, यथा—(पटु प्रकार अस्यास्ति) पटुजातीय ; मृदुजातीय ; (स प्रकार अस्यास्ति) तजातीय , (बन्धु प्रकार अस्यास्ति) उक्तुष्टजातीय [वक्षम्] ।

असहायार्थे ।

९३३ । आकिन् (आकिनिच्)—'असहाय' अर्थमें ('सहाय-शून्य' समझानेसे) 'एक'-शब्दके उत्तर 'आकिन्' प्रत्यय होता है, *

* इस अर्थमें 'कन्'-प्रत्ययभी होता है, यथा—एकक (असहाय इत्यर्थ) ।

यथा—एकाकी * (सहायरहित इत्यर्थ) ।

अनिशयार्थे ।

९३४ । तर (तरप्), ईयसु (ईयसुन्) †—दोनोंके बीचमे एकका आतिशय्य (आधिक्य) समझानेसे, शब्दके उत्तर 'तर' और 'ईयसु' प्रत्यय होते हैं, 'ईयसु' का 'उ' इत्, 'ईयस्' रहता है, यथा—(इमौ पटु, अयम् अनयोः अतिशयेन पटु) पटुतर, पटोयान्, ‡ (इमौ लघु, अयमनयोरतिशयेन लघु.) लघुतर, लघोयान् । विन्ध्यात् हिमालय उच्चतर. (विन्ध्यसे—विन्ध्यकी अपेक्षा—हिमालय उच्च), 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' ।

९३५ । तम (तमप्), इष्ट (इष्टन्) §—बहुतोंके बीचमे एकका आतिशय्य समझानेसे, शब्दके उत्तर 'तम' और 'इष्ट' प्रत्यय होते हैं, यथा—(सर्वे इमे पटव , अयम् एवाम् अतिशयेन पटु) पटुतम, पटिष्ट , (सर्वे इमे लघवः ; अयमेवामतिशयेन लघु) लघुतम, लघिष्ट । भाषासु ससृष्ट मधुरतमम् (भाषाश्रोत्रे—भाषाश्रोत्रके बीचमे—ससृष्ट मधुर), आतृ

* "एकाकी चिन्तयेन्नित्यं विविक्ते हितमात्मन ।

एकाकी चिन्तयानो हि पर श्रेयोऽधिगच्छति ॥" मनु० ४ २५८ ।

† Comparative

‡ 'इष्ट', 'ईयसु' और 'इमन्' प्रत्यय परे रहनेसे, एकाधिक-स्वरविशिष्ट शब्दके 'टि' का लोप होता है ।

§ Superlative.

णाम् अयमेव कनिष्ठः (सब भाइयोमे यही छोटा) ।

९३६ । 'इष्ट' और 'ईयस्' परे, 'स्थूल' प्रभृति शब्दके स्थानमे 'स्यत्र' प्रभृति आदेश होता है, यथा—

शब्द	आदेश	उदाहरण
स्थूल	स्यत्र	स्थविष्ट , स्थवीयान्
स्थिर	स्य	स्थेष्ट , स्थेयान्
दूर	द्व	द्विष्ट , द्वीयान्
उत्	व	वृष्ट , वरीयान्
पृथु	प्रथ	प्रथिष्ट , प्रथीयान्
प्रिय	प्र	प्रेष्ट , प्रेयान्
क्षिप्र	क्षेप	क्षेपिष्ट , क्षेपीयान्
मृदु	मृद	मृदिष्ट , मृदीयान्
कृश	कश	कशिष्ट , कशीयान्
बहु	भू	भूविष्ट , भूयान् (निपातने)
बाढ	साध	साधिष्ट , साधीयान्
गुरु	गर	गरिष्ट , गरीयान्
अन्तिक	नेद्	नेदिष्ट , नेदीयान्
दीर्घ	द्राघ	द्राघिष्ट , द्राघीयान्
दृढ	दृढ	दृढिष्ट , दृढीयान्
मृश	मृश	मृशिष्ट , मृशीयान्
युवन्	कन्	कनिष्ट , कनीयान्
(पञ्चे) ,,	यव	यविष्ट , यवीयान्

शब्द	आदेश	उदाहरण
अल्प	कन्	कनिष्ट , कनीयान्
(पक्षे) ,,	०	अलिष्ट , अलीयान्
क्षुद्र	क्षोद	क्षोदिष्ट , क्षोदीयान्
प्रसाम्य	ध	धेष्ट , धेयान्
हृष्य	हृष	हृषिष्ट , हृषीयान्
बहुल	बंध	बहिष्ट , बंधीयान्
वृद्ध	वर्ष *	वर्षिष्ट , वर्षीयान् †

'निष्' और 'इमन्' प्रत्ययनेमां ये सब आदेश होते हैं ।

अनुनाद कर्त्तुं—धनीसे (धनीही अन्या) विद्वान् मान्य ...।

कन्यासे पुत्र प्रिय...। वृक्षोने (वृक्षोकि बीजने) अक्षय वृहत् ...। पत्नीने

* 'वृद्ध' और 'प्रसाम्य'-शब्दके स्थानमें विकल्पसे 'ज्य' होता है । 'ज्य'-आदेशके परवर्ती 'ईयञ्च' के 'ई' के स्थानमें 'आ' होता है । यथा—उदेष्ट , उदायान् ।

† स्थूल स्यव , स्थिरं तत्र स्वाद्, दृशे दव, उरवंर ।

पृथु प्रथ , त्रिष प्र स्वात्, क्षिप्र क्षेरो, नृदुर्नदः ॥

वृथ कश्च, बहुम् स्वाद्, बाट साधो, गुरारं ।

अन्तिक्य मवेनेदो, दापीं शपो, हतो इट ॥

नृशो प्रशो, सुवाङ्मो वा कन् स्वात्, पक्षे युवा मव ।

क्षुद्र क्षोद , प्रसाम्य थो, हृष्वो हृष इतीष्यते ॥

बहुलम मवेद् बंधो, वृद्धो वर्षस्तथा मवेत् ।

विन्वात्मनंष्ठे आदेशा ईयसां च क्मादिमे ॥

चतराम्, चतमाम्, तद्धित प्रत्यय—प्रथमान्तसे । ७७३
 डतर, डतम]

आद्य मधुर. । छ ऋतुभोगे वसन्त सुन्दर .। दुग्धसे चीनी (शर्करा)
 मिष्ट .। व्याघ्रसे सिंह बलवान् .। पशुभोगे सिंह बलवान् । नदीसे
 समुद्र गभीर ..। वायुसेभी मन द्रुतगामि (द्रुत) । वह सुप्तसे
 स्थूल ।

९३७ । 'इष्ट,' 'इयसु' और 'इमन्' प्रत्यय परे, 'मनुप्' और 'विन्'
 प्रत्ययका लोप होता है । यथा—(अयमेपामतिशयेन बलवान्) बलिष्ट ,
 बलीयान् । (अयमेपामतिशयेन मायावी) मायिष्ट , मायीयान् ।

९३८ । चतराम्, चतमाम्—अव्यय-शब्द और तिङन्तपदके
 उत्तर 'तर'-अर्थमे 'चतराम्', और 'तम' अर्थमे 'चतमाम्' प्रत्यय होता
 है, 'च' इत्,* 'तराम्' और 'तमाम्' रहते हैं । यथा—उतराम्, नित-
 राम्, उच्चैन्तराम्, उच्चैन्तमाम् । द्रव्य समझानेसे नहीं होता, यथा—
 उच्चैन्तर तह । (इमौ पचत, अयमनयोरतिशयेन पचति) पचति
 तराम्, (इमे सर्वे पचन्ति, अयमेपामतिशयेन पचति) पचतिनमाम् ।

निर्द्धारणार्थे ।

९३९ । डतर—दोनोके बीचमे एकका निर्द्धारण † सम-
 झानेसे, 'किम्,' 'यद्' और 'तद्' शब्दके उत्तर 'डतर'-प्रत्यय
 होता है, 'ड' इत्, 'अतर' रहता है, यथा—अनयो कतरः
 वैष्णव ? , अनयो यतर द्राह्मण, ततर आगच्छतु ।

९४० । डतम—बहुतोके बीचमे एकका निर्द्धारण सम-

* चकार-इत् (चित्) तद्धित प्रथयान्त शब्द अव्यय । समासप्रत्यय-
 भी तद्धितप्रत्ययमे गण्य ।

† जातिगुणक्रियासंज्ञामि समुदायात् एकदेशस्य पृथक्करण 'निर्द्धारणम्' ।

झानेसे, 'डतम'-प्रत्यय होता है, 'ड्' इत्, 'अतम' रहता है; यथा—एयां कतम शैव. १, एपायतम क्षत्रिय, ततम प्रयानु ।

१४१ । 'एक' और 'अन्य' शब्दके उत्तर 'डतर' और 'डतम' होते हैं । यथा—भवतो एकतर पठतु, भवताम् पुरुनन शृणोतु । तयो अन्यतरो यात, तेषाम् अन्यतमो मृत ।

परिमाणार्थे ।

१४२ । दघट् (दघट्), द्वयसट् (द्वयसट्), मात्रट् (मात्रट्)—'परिमाण' अर्थमे ('तत् प्रमाणम् अन्य' इस अर्थमे) शब्दके उत्तर 'दघट्', 'द्वयसट्' और 'मात्रट्' प्रत्यय होते हैं, * 'ट्' इत्, 'दघट्', 'द्वयस' और 'मात्र' रहते हैं ।

* प्रथमशोद्धमाने स्याद्, द्वितीयश्च तदर्थके ।

तृतीयो मानसामान्ये शास्त्रकारैरुदाहृत ॥

'दघट्' और 'द्वयसट्'—केवल 'ऊर्ध्वपरिमाण' अर्थमे होते हैं (उच्चता वा गाम्भीर्यं—'Reaching to', 'as high or deep as'); और 'मात्रट्'—सामान्यतः सबप्रकार परिमाण अर्थमे होता है ('Measuring as much as,' 'as high or long or broad as') ।

"ऊर्ध्वमेन पयसोर्ताप्यं" काद० ; "कीलालव्यतिकरगुल्फदत्रपट्ट" [माणं]" मालती० ३ १०, "खर्जूरद्वयसट्टमदघट्ट [पूनचक्रम्]" मालती० ५ १४ । "गुल्फद्वयसे मदपयसि" काद० ; "नारीनितम्बद्वयसं वभूव [अम्म.]" २० १६. ४६, "गजपतिद्वयसी सरित" माघ० ६. ५५ । "पद्मदशयोजनमात्रमप्यानमतिचक्राम" काद० ; "तिष्ठन्त पयसि पुमासमंसमात्रे" माघ० ८ २१ ।

यथा—(जानु प्रमाणम् अस्य) जानुद्वयम्, जानुद्वयसम्, जानुमात्र [जलम्], (ऊरु प्रमाणम् अस्य) ऊरुद्वयम्, ऊरुद्वयसम्, ऊरुमात्रम्, (गज प्रमाणमस्य) गजद्वयम्, गजद्वयसम्, गजमात्रम् । (हस्त प्रमाणम् अस्य) हस्तमात्र [पट], (प्रादेश प्रमाणमस्य) प्रादेशमात्र [कुश], (द्रोणः प्रमाणमस्य) द्रोणमात्र [धान्यम्] । ऊरुमात्री भित्ति । *

९४३ । वतुप्—‘परिमाण’-अर्थमे, ‘यद्,’ ‘तद्’ और ‘एतद्’ शब्दके उत्तर ‘वतुप्’ प्रत्यय होता है, ‘उ’ और ‘प्’ इत्, ‘वत्’ रहता है । ‘वतुप्’ परे, ‘यद्’—‘या’, ‘तद्’—‘ता’, और ‘एतद्’—‘एता’ होता है । यथा—(यत् परिमाणम् अस्य) यावान्, (तत् परिमाणमस्य) तावान् † (As much as, as many as—‘यावत्’ standing for ‘as’, and ‘तावत्’ for ‘as much’ or ‘as many’) । (एतत् परिमाणमस्य) एतावान् ‡ ।

* स्वार्थमेभी ‘मात्र’-प्रत्यय होता है, यथा—(तत् एव) तन्मात्रम्, (तावन् एव) तावन्मात्रम् ।

† “पुरे तावन्तमेवास्य तनोति रविःपतपम् ।

दीर्घिकाकमलेन्मेपो यवमात्रेण साध्यते ॥”

कु० २ ३३ Also १० १७. १७. ।

“ते तु यावन्त एताजी, तावाश्च दृश्ये स वै” १० १२. ४५ (यावन्त —यावत्सङ्ख्याका, सावान्—तावत्सङ्ख्याक इत्यर्थ) ।

‡ “एतावदुक्ता भिरते मृगेन्द्रे” १० २ ५१, “एतावान् मे विभवो

(क) 'किम्' और 'इदम्' शब्दके उत्तर 'चतुष्' होकर, 'कियत्', 'इयत्'—ये दो शब्द निपातनसे सिद्ध होते हैं, यथा—
(किं परिमाणमस्य) कियान्, (इद परिमाणमस्य) इयान् । *

(ख) डति—सह्या परिमाण समझानेसे, 'किम्'-शब्दके उत्तर 'डति'-प्रत्यय होता है, 'ड्' इत्, 'अति' रहता है, यथा—(का सह्या परिमाणमपाम्) कति ।

अवयवार्थे ।

१४४ । तयद् (तयप्)—'अवयव'-अर्थमे, सह्यावाचक शब्दके उत्तर 'तयद्'-प्रत्यय होता है, 'ट्' इत्, 'तय' रहता है ; यथा—(चत्वार-अवयवा —विधा —अस्य) चतुष्टयम् (चतुर्विधम् इत्यर्थे) ; पञ्च अवयवा अस्य) पञ्चतयम्—पञ्चतयो †, (शतम् अवयवा अस्य) शततयम् ;

भवन्त सेवितुम्" मालविका० २ ।

* ' कियान् कालस्तैव स्थितस्य सज्जात ?' पद्य० ५, "अय भूता-वासो विमृश कियतो यानि न दशाम्" शान्तिशतकम्, "कियदवाशिष्ट रज न्या ?" शकु० ४ । "मात ! कियतोऽरय ?" वेणी० ५ ९. (अक्रियि-त्करा इत्यर्थे) । "निजहृदि विक्रसन्त सन्ति सन्त कियन्त ?" मर्तु० २, "प=ति पदानि कियन्ति चलन्तो" गीतगो० ६ ३. ।

"इयत् तवायु" दशकु०, "आत्मोदय परजशनिर्द्वय नीतिरितीयसी" माघ० २ ३० ; "इयन्ति वर्षाणि तथा सहोमम-दहृतीव व्रतमासिधारम्" र० १२ ६७, "इयतो दिवसानुस्रव आसीत्" उत्तर० १ ।

† "दृत्तय पञ्चतय्य ऋषि अङ्गिष्ठा" पातञ्जलसूत्रम् १ ५, "चतुष्टयं प्रवृत्ति शब्दानाम्" वृ० २ १७. ।

(सहस्रम् अवयवा अस्य) सहस्रतयम् ।

१४९ । डयट् (अयच्)—'अवयव'-अर्थमे, 'द्वि' और 'त्रि' शब्दके उत्तर विकल्पसे 'डयट्'-प्रत्यय होता है, 'ह्' और 'ट्' इत्, 'अय' रहता है; पक्षे—तयट्, यथा—(द्वौ अवयवौ अस्य) द्वयम्, द्वितयम् * ; (त्रय अवयवा अस्य) त्रयम्, त्रितयम् । †

(क) 'अवयव'-अर्थमे, 'उभ'-शब्दके उत्तर नित्य 'डयट्' होता है, यथा—(उभौ अवयवौ अस्य) उभयम्—उभयी ।

* "द्वयी गति" मुद्रा० ३ (द्विविध उपाय इत्यर्थ) ।

"हुम सानुमता किमन्तर, यदि वायौ द्वितयेऽपि ते चला" १०८. ९०. (द्वितयेऽपि—द्विप्रकारा, अपि इत्यर्थ) । ('द्वय' और 'द्वितय'-शब्द बहुवचनमेव प्रयुक्त होते हैं, See माघ० ३ ५७) ।—"त्रयी वै विद्या—ऋचो यजूषि सामानि" षटपथनाक्षणम् । "त्रिनभामपि ता मुचत्वा परस्परविरोधिनीम्" पञ्चदशी १, १६ ।

† सहस्रयामाश्रमेभी 'तयट्' और 'डयट्' प्रत्यय होते हैं । यथा—

"यीवन, धनसम्पत्ति, प्रमुत्त्वम्, आविवेक्षिता ।

एकैकमप्यनयाय, किमु वत्र बहुवचनम्" हितो० ११, "मासचतुष्टय-स्य भोजनम्" हितो० १. ।

"आधिकं शुशुभे शुभशुभा द्वितयेन द्वयमेव सङ्गतम्" २० ८. ६. । 'यट्द्वितयम्' । "अदेयमासोत् त्रयमेव भूयते, राशिप्रभं छत्रमुभे च चामरे" २० ३ १६, "लोकत्रयम्" ।

"दिष्ट्या शकु-तला साध्वी, सदय-रमिद, भवान् ।

श्रद्धा, वित्त, विधिश्चेति त्रितयं तन्समानम् ॥" शकु० ७. २९ ।

तत् अस्मिन् अधिकम् इत्यर्थे ।

१४६ । ड—‘तत् अस्मिन् अधिकम्’ इस अर्थमे, ‘दशान्-भागान्त शब्दके उत्तर ‘ड’-प्रत्यय होता है, ‘इ’ इत्, ‘अ’ रहता है; यथा—(एकादश अधिका अस्मिन् शते) एकादश शतम् (एकादशाधिकम् इत्यर्थे) , द्वादश शतम्, त्रयोदश शतम्, चतुर्दश शतम् ।

(क) ‘तत् अस्मिन् अधिकम्’ इस अर्थमे, ‘शतान्-भागान्त शब्द और ‘विंशति-’शब्दके उत्तर ‘ड’ होता है । यथा—(त्रिंशत् अधिका अस्मिन्) त्रिंश शतम्, चत्वारिंश शतम्; पञ्चाश शतम्; एक-त्रिंश शतम्, चतुश्चत्वारिंश शतम्, पञ्चत्रिंश शतम् । (विंशति अधिका अस्मिन्) विंश शतम्, एकत्रिंश शतम्, द्वाविंश शतम् ।

तत् कृतम् अनेन इत्यर्थे ।

१४७ । इनि—‘तत् कृतम् अनेन’ इस अर्थमे, ‘इष्ट’-प्रभृति ‘क’-प्रत्ययान्त शब्दके उत्तर ‘इनि’-प्रत्यय होता है, ‘इ’ इत्, ‘इन्’ रहता है; यथा—(इष्टम् अनेन) इष्टो यज्ञे; (अर्घातम् अनेन) अर्घाती शास्त्रे; (गृहीतम् अनेन) गृहीतो उपदेशे, (श्रुतम् अनेन) श्रुतो वेदे, (आसे-विन् अनेन) आसेविता गुरौ; (निराकृतम् अनेन) निराकृतो शत्रौ; (उपकृतम् अनेन) उपकृतो मित्रे, (अवकीर्णम्—उल्लङ्घितम्—अनेन) अवकीर्णो मने ।

जातार्थे ।

१४८ । इत् (इत्च्)—‘तत् अस्य सञ्जातम्’, ‘तत् अस्मिन् सञ्जातम्’ इन दोनों अर्थोंमे ‘तारका’-प्रभृति शब्दके उत्तर ‘इत्’-प्रत्यय होता है, यथा—(तारका अस्मिन् सञ्जाता) तारकितं

[नम.] । (पुष्पाणि अस्या सञ्जातानि) पुष्पिता [लता], (कुसुम)
 कुसुमिता [चूलतिका], (पल्लवा अस्य सञ्जाता) पल्लवित [तरु] ;
 (फलानि अस्य सञ्जातानि) फलित [वृक्ष], (तरु अस्या सञ्जात)
 तरुहिता [नदी], (उत्कण्ठा अस्मिन् सञ्जाता) उत्कण्ठित [मन] ;
 (अन्धकारम् अस्मिन् सञ्जातम्) अन्धकारितं [जगत्], (कलङ्क अस्य
 सञ्जात) कलङ्कित [चन्द्र], (कर्दम अस्मिन् सञ्जात) कर्दमित
 [पत्न्या], (पुष्कानि अस्मिन् सञ्जातानि) पुष्कित [शरीरम्] ;
 (रोमाञ्च) रोमाञ्चित [वपु], (अङ्कुर अस्य सञ्जात) अङ्कुरितं
 [शस्यम्], (व्याधि अस्य सञ्जात) व्याधित [पुरुष], (रोग)
 रोगिता [नारी], (मञ्जरी) मञ्जरित [सहकार], (मुकुल)
 मुकुलित [नयनसरोजम्], (कुङ्मल) कुङ्मलिनम् [ईक्षणम्] ;
 (स्तवक) स्ववक्ति [प्रसूनम्], (कोरक) कोरकित [कुवकम्],
 (किमलय) किसलयित [पादप], (कुवलय) कुवलयि-
 त * ; (निद्रा) निद्रित [शिशु], (उभुक्षा) उभुक्षित.
 [शाकूल], (विपासा) विपासित [पान्थ], (क्षुध्, क्षुधा)
 क्षुधित [बाल], (छल) छलितं [वित्तम्], (दुःख) दुःखितं
 [चेत], (मग) मगित (पीडितम् इत्यर्थे — हृदयम्), (निलक)
 तिलकितं [ललाटम्], (गर्व) गर्वितं [मानसम्], (हर्ष) हर्षित
 [स्वान्तम्], (ज्वर) ज्वरितं [कलेवरम्], (रुप्, वृषा) वृषित-
 [चातक] - (कञ्जल) कञ्जलित [भवन, लोचन वा], (कलोल)

* "पुरमविशदयोष्या मैथिलीदर्शनीनां

कुवलयितगवाक्षा लोचनैरङ्गनानाम् ॥" २० १२ ९३ ।

बहोलित [सरित्पति] ; (शैवल) शैवलितं [सोपानम्] , (कन्द-
ल) कन्दलित (विहसित , प्रवृद्ध इत्यर्थ — भानन्द) , (बिम्ब)
बिम्बित [सूर्यं.] , (प्रतिबिम्ब) प्रतिबिम्बित [मुल्लम्] , (भूच्छां)
भूच्छित [रोगी] , (दीक्षा) दीक्षित [यजमान] , (पण्डा*)
पण्डित , (मुद्रा) मुद्रित (सङ्कुचितम् इत्यर्थ—कुवलयम्) † ।

तन् अस्य पण्यम् इत्यर्थे ।

१४९ । षिण्क (ठक्)—‘तन् अस्य पण्यम्’ इस अर्थमें शब्दके
उत्तर ‘षिण्क’-प्रत्यय होता है, यथा—(लवणम् अस्य पण्यम्) लाव-
णिक (ठञ्—लवणव्यवहारो, लवणविक्रंता इत्यर्थ) ; (तैलम् अस्य पण्यम्)
तैलिक (तैली) , (ताम्बूलम् अस्य पण्यम्) ताम्बूलिक (तम्बोली) ।

तन् अस्य शिल्पम् इत्यर्थे ।

१५० । षिण्क (ठक्)—‘तन् अस्य शिल्पम् †’ इस अर्थमें शब्द-
के उत्तर ‘षिण्क’ होता है, यथा—(मृदङ्ग शिल्पम् अस्य) मादङ्गिक-
(मृदङ्गवादक इत्यर्थ) ; (मुरज शिल्पमस्य) मौरजिक ; (पण्ड
शिल्पमस्य) पाणविक ; (घाणा शिल्पमस्य) वैणिक । अत्र मृदङ्गादि-
पदान तत्तद्वादन लक्ष्यते ।

तन् अस्य प्रहरणम् इत्यर्थे ।

१५१ । षिण्क (ठक्) , कण्, ष्णीक—‘तन् अस्य प्रहरणम्’
इस अर्थमें शब्दके उत्तर ‘षिण्क’ और ‘कण्’ प्रत्यय होते हैं । ‘कण्’ का

* “पण्डा तत्त्वानुगा बुद्धि” हेमचन्द्र ।

† “कन्दरीरमुद्रितमुखे मधुसूदनस्य” गीतगो० १ (मुद्रित—विद्धित) ।

‡ मृत्तिलामोपयोग्यं द्रव्यं तदीयक्रीडालघु शिल्पम् ।

यत्, एण २, षिणक] तद्धित-प्रत्यय—प्रथमान्तसे । ७८१

'ण्' इत्, 'क' रहता है । यथा—(षिणक)—(अग्नि प्रहरणम् अस्य)
आसिक , (प्रास प्रहरणम् अस्य) प्रासिक , (परार्ध प्रहरणमस्य)
पारार्धिक , (तारवारि प्रहरणमस्य) तारवारिक । (कण्)—(धनु
प्रहरणमस्य) धानुक ।

किन्तु 'शक्ति' और 'यष्टि' शब्दके उत्तर 'ष्णीक' (ईकक्) होता है ;
यथा—(शक्ति प्रहरणमस्य) शाक्तीक , (यष्टि प्रहरणमस्य) याष्टीक ।

तत् अस्य प्रयोजनम् इत्यर्थे ।

१९२ । यत्—'तत् अस्य प्रयोजनम्*' इस अर्थमें शब्दके उत्तर
'यत्' प्रत्यय होता है , 'त्' इत्, 'य' रहता है , यथा—(स्वर्ग प्रयो-
जनम् अस्य) स्वर्गम् , (यज्ञ प्रयोजनमस्य) यज्ञम् , (आयु
प्रयोजनमस्य) आयुष्यम् , (काम प्रयोजनमस्य) काम्यम् ।

तत् अस्य शीलम् इत्यर्थे ।

१९३ । एण (एण)—'तत् अस्य शीलम्' इस अर्थमें शब्दके उत्तर
'एण' प्रत्यय होता है , यथा—(गुरोर्दोषाणां छादनम् आवरणं छत्तम् ;
छत्त्र शीलम् अस्य) छात्र , (शिक्षा शीलमस्य) शिक्ष , (तप शीलमस्य)
तापस , (चुर + अ = चुरा—धौर्व्यम् इत्यर्थे ; चुरा शीलमस्य) चौर ।

तत् अस्य प्राप्तम् इत्यर्थे ।

१९४ । एण (अण्), षिणक (टञ्)—'तत् अस्य प्राप्तम्' इस
अर्थमें 'न्तु' शब्दके उत्तर 'एण', और 'समय'-शब्दके उत्तर 'ष्णिक'
प्रत्यय होता है । यथा—(ऋतु अस्य प्राप्त) आर्त्तव [कुल-

* प्रयोजनम्—फल कारणेत्यर्थे ।

मम्] ।* (समय अस्य प्राप्त) सामयिकं (प्राप्तकालम्, समयोचितम्
इत्यर्थ —कार्यम्) ।

निवासार्थे ।

१९५ । ण (अण्)—‘सः अस्य निवासः’, ‘सः अस्य
अभिजनः’† इन दोनो अर्थोमे शब्दके उत्तर ‘ण्य’ होता है; यथा—
(मथुरा निवास अस्य) माथुर , (मिथिला निवास अस्य) मैथिल ;
(उत्कल निवास अस्य) औत्कल , (विदेह निवास अस्य) वैदेह ,
(मद्र निवास अस्य) मद्र , (वङ्गोऽस्य निवास) वङ्ग । ‘अभि-
जन’-अर्थमेभी इसप्रकार , यथा—(गन्धारीऽभ्याभिजनः) गान्धार ‡ । §

सः अस्य देवता इत्यर्थे ।

१९६ । ण (अण्), ण्य, ण्येय (ढक्), इय (घ)—

* “अथ यथासुखमार्तवमुत्सव समनुभूय विलासवतीसख ” २० ९
४८ । “अभिभूय विभूतिमार्तव्याम्” २० ८ ३६, “सर्वीभिर्याति सम्पर्कं
कृताग्नि धीरिवार्त्तनी” विक्रमो० १ १३ ।

† सम्प्रति वासस्थान निवास , पूर्ववासस्थानम् अभिजनः (यत्र पूर्वं
उपितमित्यर्थ) ।

‡ बहुवचनमे, ‘निवास’ और ‘अभिजन’ अर्थमे विहित प्रत्ययका लोप
होता है, यथा—(वङ्ग एषां निवास) वङ्गा । खलित्तमे लोप नहीं होता ;
यथा—(मगध भासा निवास) मागध ।

§ ‘तस्य राजा’—इस अर्थमेभी इमीप्रकार ‘ण्य’-प्रत्यय होता है,
यथा—(विदेहस्य राजा) वैदेह , (कश्मीरस्य राजा) कश्मीर , (नि-
पथस्य राजा) नैपथ । (बहुवचनमे प्रायय-लोप)—कश्मीरा , विदेहा ।

‘सा अस्य देवता’ इस अर्थमें शब्दके उत्तर ‘एण’ और ‘एण्य’ प्रत्यय होते हैं । यथा—(एण)—(शिव देवता अस्य) शैव , (विष्णु देवता अस्य) वैष्णव , (शक्ति देवता अस्य) शाक्त । (एण्य)—(गणपति देवता अस्य) गणपत्य (ण्य) , (प्रजापति देवताऽस्य) प्राजापत्य (ण्य) , (वायु देवताऽस्य) वायव्य (यत्) , (सोम देवताऽस्य) सौम्य (टाण्) ।

‘अग्नि’-शब्दके उत्तर ‘एणेय’ होता है , ‘ए’ और ‘ण्’ इत् , ‘एय’ रहता है , यथा—(अग्नि देवताऽस्य) आग्नेय [वर] , आग्नेयी ऋक् ।

‘महेन्द्र’ शब्दके उत्तर ‘इय’ और ‘एण’ होते हैं , यथा—(महेन्द्र देवताऽस्य) महेन्द्रियम् , महेन्द्रम् [इवि] ।

सा अस्मिन् पौर्णमासी इत्यर्थे ।

१९७ । एण (अण्) , षिण्क (ठक्)—सज्ञा समझानेसे, ‘सा पौर्णमासी अस्मिन् [मासे]’ इस अर्थमें ‘एण’ और ‘एणिक’ प्रत्यय होने हैं । यथा—(एण)—(विशाखरा मन्त्रेण युक्ता पौर्णमासी—वैशाखी ; वैशाखी पौर्णमासी अस्मिन्) वैशाख [माम] , (ज्यैष्ठ्या पौर्णमासी अस्मिन्) ज्यैष्ठ , (आपाढी पौर्णमासी अस्मिन्) आपाड , (माद्री, माद्रपदी च, पौर्णमासी अस्मिन्) माद्र , माद्रपद , (आश्विनी पौर्णमासी अस्मिन्) आश्विन , (पौषी पौर्णमासी अस्मिन्) पौष , (माघी पौर्णमासी अस्मिन्) माघ ।

‘आग्रहायणी’ शब्दके उत्तर ‘एणिक’ होता है ; यथा—(आग्रहायणी पौर्णमासी अस्मिन्) आग्रहायणिक । ‘एणे एण’ इति केचित् यथा—आग्रहायण ।

धावगी, कात्तिकी, फाल्गुनी और चैत्री शब्दके उत्तर विद्वलसे 'ष्णिक' होता है ; पञ्च—'ष्ण' ; यथा—(धावगी पौर्णमासी अस्मिन्) धावगिक, धावग ; (कात्तिकी पौर्णमासी अस्मिन्) कात्तिकिक, कार्तिक, (फाल्गुनी पौर्णमासी अस्मिन्) फाल्गुनिक, फाल्गुन ; (चैत्री पौर्णमासी अस्मिन्) चैत्रिक, चैत्र ।

तद्धित-प्रत्यय—द्वितीयान्तसे ।

वक्ष्यमाण तद्धित प्रत्यय द्वितीयान्तसे होते हैं—

तत् वेत्ति, तत् अधीते इत्यर्थे ।

१६८ । षण् (अण्), षिण्क (ठक्), कण् (बुन्)—'तत् वेत्ति', 'तत् अधीते' इन दोनों अर्थोंमें शब्दके उत्तर 'ष्ण', 'ष्णिक' और 'कण्' प्रत्यय होते हैं । यथा—(षण्)—(व्याकरण वेत्ति, अधीते वा) वैयाकरण, (उपनिषद् वेत्ति, अधीते वा) औपनिषद्, (षिण्क)—(वेद वेत्ति, अधीते वा) वैदिक ; (वेदान्त वेत्ति, अधीते वा) वैदान्तिक, (तर्क वेत्ति, अधीते वा) तार्किक ; (न्याय वेत्ति, अधीते वा) नैयायिक, (पुराण वेत्ति, अधीते वा) पौराणिक ; (मल्लिकार्जुन वेत्ति, अधीते वा) मल्लिकार्जुनिक, (ज्योतिष वेत्ति, अधीते वा) ज्योतिषिक । (कण्)*—(ऋम वेत्ति, अधीते वा) ऋमक, (पद वेत्ति, अधीते वा) पदक, † (शिक्षा वेत्ति, अधीते वा) शिक्षक, ‡ (मोमासा वेत्ति, अधीते वा) मोमासक ।

* यहाँ 'णिन्'-कार्य नहीं होता ।

† 'शिक्षा' और 'मोमासा'-शब्दका अन्त्यस्वर ह्रस्व होता है ।

ण, णीय, णिक, यत्] तद्धित प्रत्यय—द्वितीयान्तसे । ७८५

तत् अधिकृत्य कृतम् इत्यर्थे ।

१९१ । ण (अण्), णीय (छ्), णिक—घन्य समझा-
नेसे, 'तत् अधिकृत्य * कृतम्' इस अर्थमे शब्दके उत्तर 'ण', 'णीय'
और 'णिक' प्रत्यय होते हैं; 'णीय' के 'ण' और 'ण' इत्, 'ईय' रहता
है । यथा—(ण)—(रामस्य भयन्—चरितम्—अधिकृत्य कृतम्)
रामायणम्, (भरतान्—भारतवर्षीयान्—अधिकृत्य कृतम्) भारतम् ;
(भगवन्तम् अधिकृत्य कृतम्) भागवतम् । (णीय)—(वाक्य पदञ्च
अधिकृत्य कृतम्) वाक्यपदीयम्, (किरातम् भजुंनञ्च अधिकृत्य कृतम्)
किराताजुनीयम्, (राघवान् पाण्डवांश्च अधिकृत्य कृतम्) राघवपाण्डवो-
यम् । (णिक)—(अनुशासनम् अधिकृत्य कृतम्) आनुशासनिकम्,
(अश्वमेधम् अधिकृत्य कृतम्) आश्वमेधिकम् । †

तत् अर्हति इत्यर्थे ।

१६० । यत्—'तत् अर्हति' इस अर्थमे शब्दके उत्तर 'यत्'-प्रत्यय
होता है, 'त्' इत्, 'य' रहता है, यथा—(दण्डम् अर्हति इति) दण्डः ;
(छेदमर्हति) छेद्य, (भेदमर्हति) भेद्य, (वधमर्हति) वध्य ;
(कशाम् अर्हति) कश्य ; (अर्धमर्हति) अर्धः, (गुह्यमर्हति) गुह्य ;
(इमम्—इस्तिनम्—अर्हति) इभ्य (धनी इत्यर्थे), (शीर्षच्छेदम्

* अधिकृत्य—प्रस्तुत्य, अवलम्ब्य इत्यर्थे ।

† कहीं कहीं प्रत्ययका लोप होना है; यथा—(वामवदत्ताम् अधिकृ-
त्य कृता आर्यायिद्या) वासवदत्ता, कादम्बरी; शकुन्तला—'तद्धितद्विपि
प्रकृतिलिङ्गता' इति स्त्रीत्वम्; रत्नावली; कुमारसम्मवम्, जानकीहरणम् ।

७८६ व्याकरण-मञ्जरी । [ईय, इय, यत्, प्लेय, णीन, प्लिक, ष्य

अहंति) शोपेच्छेव [चौर] ।

(क) ईय (छु)—'दक्षिणा'-शब्दके उत्तर 'ईय' भी होता है ; यथे—'यत्', यथा—(दक्षिणाम् अहंति) दक्षिणीय, दक्षिण्य* । "निष्क-शतसुवर्गपरिमाणा दक्षिणा देवी दक्षिणायै परिप्राहयति" मालविका० ९ ।

(ख) इय (घ)—'यत्'-शब्दके उत्तर 'इय' होता है ; यथा—(यत्कर्म अहंति) यज्ञिय [देव] । †

तन् वहति इत्यर्थे ।

१६१ । यत्, प्लेय (डक्), णीन (ख), प्लिक (ठक्), ष्य (अण्)—'तत् वहति' इस अर्थमें 'धुर'-शब्दके उत्तर 'यत्', 'प्लेया' और 'णीन' प्रत्यय होते हैं, यथा—(धुर वहति) धुर्यं- (यत्), धौरय (प्लेय), धुरीण ‡ (णीन) ।

'सर्वधुरा'-शब्दके उत्तर 'णीन' होता है ; 'ण्' इत्, 'ईन' रहता है ; यथा—(सर्वधुरा वहति) सर्वधुरीण ।

'हल' और 'सौर'-शब्दके उत्तर 'प्लिक' होता है ; यथा—(हल वहति) हालिक ; (सौर—हाङ्गलं—वहति) सौरिक ।

'रय' और 'धुग'-शब्दके उत्तर 'यत्' होता है, यथा—(रय वहति) रय - "घावन्त्यमी मृगजत्राक्षमयेव रय्या " शकु० १. ८, (युग वहति) युग्य (रयाश्च इत्यर्थे)—"हरियुग्य रथे तस्मै प्रजिघाय पुरन्दर " र० १२. ८४ ।

* 'प्य (यन्)'-भी होता है, यथा—दक्षिण्य ।

† 'अहंत्यर्थे तु शालाया खे शालीन सलज्ज'—(शालाम् अहंति) शालीनः (णीन—ख ; सलज्ज इत्यर्थे) ।

‡ यहाँ 'गित्'-कार्य नहीं होता ।

प्रिणक २, एीन, ष्येय, एण] तद्धित-प्रत्यय—तृतीयान्तसे । ७७७

‘शक्य’-शब्दके उत्तर ‘ष्ण’ होता है, यथा—(शक्य वदति) शक्य ।

तत् व्याप्नोति इत्यर्थे ।

१६२ । प्रिणक (ठक्)—‘तत् व्याप्नोति’ इस अर्थमें कालवाचक-शब्दके उत्तर ‘ष्णिक’ होता है, यथा—(पञ्च व्याप्नोति) पाञ्चिक [पारा-यणम्] ; (मास व्याप्नोति) मासिक [चान्द्रायणम्, अशौचञ्च] ।

द्विगु-सन्नास होनेसे, प्रत्ययका विकल्पसे लोप होता है, यथा—
दाशाहिकम्, दशाहम् ; द्वादशाहिकम्, द्वादशाहम्, शैवार्पिकम्,
त्रिवर्षम्, षाड्वर्षिकम्, षड्वर्षम् ।

(क) एीन* (ख)—(सर्वपथ व्याप्नोति) सर्वपथीन.
[रथ]—सर्वपथीना मति ; (सर्वाङ्ग व्याप्नोति) सर्वाङ्गीण † [ताप] ;
(सर्वकर्माणि व्याप्नोति) सर्वकर्माणि (सकलकर्मक्षम इत्यर्थे—पुत्र) ।

तद्धित-प्रत्यय—तृतीयान्तसे ।

वक्ष्यमाण तद्धित प्रत्यय तृतीयान्तसे होते हैं—

तन कृतम् इत्यर्थे ।

१६३ । प्रिणक (ठक्), ष्येय (ढम्), एण (अण्)—
‘तेन कृतम्’ इस अर्थमें शब्दके उत्तर ‘ष्णिक’ और ‘ष्ण’ प्रत्यय होते
हैं । यथा—(ष्णिक)—(कायेन कृतम्) कायिकम्, (शरीरेण कृतम्)
शारीरिकम् ; (वाचा कृतम्) वाचिकम्, (वचनेन कृतम्) वाचनिकम् ;

* यहाँ ‘णित्’-कार्य नहीं होता ।

† ‘सर्वाङ्गीण.’ इत्यपि दृश्यते ।

७८८ व्याकरण-मञ्जरी । [प्ल २, प्लोय, प्लय, प्लिक, अन्, कन्

(मनया कृतम्) मानसिकम् । (प्ल)—(मक्षिकामि कृतम्) माक्षिकम् ;
(क्षुद्रामि कृतम्) क्षौद्रम् ; (नरयामि कृतम्) सारधम् ;—मधु इत्यर्थं ।

‘पुरय’ शब्दके उत्तर ‘प्लेय’ होता है, यथा—(पुरयेण कृत) पौर
पेय [ग्रन्थ]—“अपौरपेयो वै वेद ” ।

तेन प्रोक्तम् इत्यर्थे ।

१६३ । प्ल (अण्), प्लोय (लृ), प्लय (लृय)—‘तेन
प्रोक्तम्’ इस अर्थमें शब्दके उत्तर ‘प्ल’, ‘प्लोय’ और ‘प्लय’ होते हैं ।
यथा—(प्ल)—(ऋषिमि प्रोक्तम्) ऋषिम्, (मधुना प्रोक्तम्) मधु-
चम्, मानवोदम् (प्लोय), (विष्णुना प्रोक्तम्) वैष्णवम् ; (पत-
ञ्जलिना प्रोक्तम्) पतञ्जलम् ; (कगादेन प्रोक्तम्) कागादम्, (उर-
नसा प्रोक्तम्) औशनसम्, (अङ्घ्रिसा प्रोक्तम्) अङ्घ्रिसम् ; (परा-
शरेण प्रोक्तम्) पाराशरम्, पाराशरीयम् (प्लोय) । (प्लोय)—
(पाणिनिना प्रोक्तम्) पाणिनीयम् ; (जैमिनिना प्रोक्तम्) जैमिनोदम्,
(नारदेन प्रोक्तम्) नारदोदम् ; (वाल्मीकिना प्रोक्तम्) वाल्मीकी-
यम्, (बौधायनेन प्रोक्तम्) बौधायनोयम् । (प्लय)—(दृष्टिस्मृतिना
प्रोक्तम्) वार्हस्पत्यम् ।

तेन रक्तम् इत्यर्थे ।

१६४ । प्ल (अण्), प्लिक (ठक्), अन्, कन्—‘तेन
रक्तम्’* इस अर्थमें रञ्जकद्रव्यवाचक शब्दके उत्तर ‘प्ल’, प्रत्यय होता है ।
यथा—(कपायेण रक्तम्) कापायम् ; (कुलम्बेन रक्तम्) कौलम्बम् ;

* शुद्धस्य वर्णान्तराशयम् इह रक्षे अर्थे ।

(मञ्जिष्ठया रक्तम्) माञ्जिष्ठम् । (हरिद्रिया रक्तम्) हारिद्रिम् (अन्) ।

'लाक्षा' और 'रोचना' शब्दके उत्तर 'णिक्' होता है, यथा—(लाक्षया रक्तम्) लाक्षिकम्, (रोचनया रक्तम्) रौचनिकम् ।

'नीली'-शब्दके उत्तर 'अन्' होता है, 'न्' इत्, 'अ' रहता है, यथा—(नील्या रक्तम्) नीलम् ।

'पीत'-शब्दके उत्तर 'कन्' होता है, 'न्' इत्, 'क' रहता है, यथा—(पीनेन रक्तम्) पीतकम् ।

तेन निर्वृत्तम् इत्यर्थे ।

१६६ । पिणक (ठञ्)—'तेन निर्वृत्तम् (निष्पन्नम्)' इस अर्थमें कालराचक शब्दके उत्तर 'णिक्'-प्रत्यय होता है, यथा—(दिनेन निर्वृत्तम्) दैनिकम्, (मासेन निर्वृत्तम्) मासिकम्, (वर्षेण निर्वृत्तम्) वार्षिकम्; (सबत्सरेण निर्वृत्तम्) सावत्सरिकम् ।

'अहन्' शब्दके स्थानमें 'अह' होता है, यथा—(अह्ना निर्वृत्तम्) आह्निकम् ।

• तेन युक्तम् इत्यर्थे ।

१६७ । षण (श्यण्)—काल समक्षानेमें, 'तेन युक्तम्' इस अर्थमें नक्षत्रवाचक शब्दके उत्तर 'ष्ण' प्रत्यय होता है, यथा—(ज्येष्ठया नक्षत्रेण युक्तम्) ज्यैष्ठम् [अह]; (ज्येष्ठया युक्ता) ज्यैष्ठो [रात्रि, पौर्णमासी वा], (आपादया नक्षत्रेण युक्ता) आपादी, (श्रवणया नक्षत्रेण युक्ता) श्रावणी, (मद्रया नक्षत्रेण युक्ता) माद्री, (मद्रपदया नक्षत्रेण युक्ता) भाद्रपदी; (अश्विन्या नक्षत्रेण युक्ता) अश्विनी, (कृत्तिकाया नक्षत्रेण युक्ता) कार्तिकी; (आप्रहायण्या—मृगशिरसा—नक्षत्रेण युक्ता)

७९० व्याकरण-मञ्जरी । [प्लिक्, चुञ्चु, चण, स्थान, स्थानीय

आग्रहायणी, (मघया नक्षत्रेण युक्ता) माघी ; (फाल्गुन्या नक्षत्रेण युक्ता) फाल्गुनी ; (चित्रया नक्षत्रेण युक्ता) चैत्री ।

'तिष्य' और 'पुष्य'-शब्दके यकारका लोप होता है ; यथा—(तिष्येण नक्षत्रेण युक्ता) तैषी ; (पुष्येण नक्षत्रेण युक्ता) पौषी ।

तेन जीवति इत्यर्थे ।

१६८ । प्लिक् (ठक्)—'तेन जीवति' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'प्लिक्' होता है, यथा—(वेतनेन जीवति) वैतनिक, (वाहनेन जीवति) वाहनिक, (जाटेन जीवति) जालिक, (उपदेशेन जीवति) औपदेशिक, (धनुषा जीवति) धानुक् ('प्लिक्' के स्थानमें 'क') ; (वागुरया जीवति) वागुरिक, (नावा जीवति) नाविक (खेवट) ; (ऋयविक्रयाभ्यां जीवति) ऋयविक्रयिक (ठन्)—'व्यापारो' इति भाषा ।

'आयुध'-शब्दके उत्तर 'ष्णीय' (छ) भी होता है, यथा—(आयुधेन जीवति) आयुधोय, आयुधिक (ठन्) ।

तेन वित्त इत्यर्थे ।

१६९ । चुञ्चु (चुञ्चुप्), चण (चणप्)—'तेन वित्त (कृपात)' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'चुञ्चु' और 'चण' प्रत्यय होते हैं ; यथा—(विद्यया वित्त) विद्याचुञ्चु, विद्याचण ; (ज्ञानेन वित्त) ज्ञानचुञ्चु, ज्ञानचण, (अर्थेन वित्तः) अर्थचुञ्चु, अर्थचण ; (मायया वित्त) मायाचुञ्चु, मायाचण, (अक्षेण वित्त) अक्षचुञ्चु, अक्षचण ; (अक्षेण वित्त) अक्षरचुञ्चु, अक्षरचण (मुन्शी) । वेदान्तचुञ्चु ।*

* स्थान, स्थानीय—'तेन तुल्य' इस अर्थमें शब्दके उत्तर 'स्थान'

यत्, णीन, इय, ष्णिक] तद्धित-प्रत्यय—चतुर्थ्यन्तसे । ७९१

तद्धित-प्रत्यय—चतुर्थ्यन्तसे ।

वक्ष्यमाण तद्धित प्रत्यय चतुर्थ्यन्तसे होते हैं—

तस्मै हितम् इत्यर्थे ।

१७० । यत्, णीन (ख), इय (घ)—‘तस्मै हितम्’ इस अर्थमे शरीरावयव वाचक शब्दके उत्तर ‘यत्’ प्रत्यय होता है, यथा—
(दन्ताय हितम्) दन्त्यम्, (नसे हितम्) नस्यम्* ।

(मूलाय हितम्) मूल्यम् ।

(णीन)—(सर्वजनेभ्यो हितम्) सार्वजनीनम्, सर्वजनीनम्, सार्वजनिकम् (ष्णिक—ठ्), (विश्वजनेभ्यो हितम्) विश्वजनीनम् ।

(इय)—(यज्ञाय हितम्) यज्ञियम् ।

तस्मै प्रभवति इत्यर्थे ।

१७१ । ष्णिक (ठक्)—‘तस्मै प्रभवति’ इस अर्थमे शब्दके उत्तर ‘ष्णिक’ होता है, यथा—(सद्भामाय प्रभवति) साद्भामिक, (सन्नाहाय प्रभवति) सान्नाहिक, (सन्तापाय प्रभवति) सान्तापिक ; (उत्पत्ताय प्रभवति) औत्पतिक ; (सद्भाताय—विनाशाय—प्रभवति) साद्भातिक ।

(क) ‘धनु’ अर्थमे, ‘कार्मुक’-शब्द निरातन सिद्ध, यथा—
(कर्मणे प्रभवति) कार्मुकम् (ठक्) ।

और ‘स्थानीय’ प्रत्यय होते हैं, यथा—(पित्रा तुल्य) पितृस्थान, पितृस्थानीय, अनृस्थानीय, मातृस्थान, मातृस्थानीया [मातृत्वसा] ।

* ‘नासिका’ के स्थानमे ‘नम्’ होता है ।

तादर्थ्ये ।

१७२ । ष्य—'तादर्थ्यं' समक्षान्ते, शब्दके उत्तर 'ष्य' प्रत्यय होता है, यथा—(पादाय इदम्) पाद्यम् (यत्) ; (अर्घाय इदम्) अर्घ्यम् (यत्) ; (अतिये इदम्) आतिष्यम् (ष्य) ; (अग्निदेवतायै इदम्) अग्निदेवत्यम्, अग्निदेवत्यम्, (पितृदेवतायै इदम्) पितृदेवत्यम्, पितृदेवत्यम् ।

तद्धित प्रत्यय—पञ्चम्यन्तसे ।

वक्ष्यमाण तद्धित प्रत्यय पञ्चम्यन्तसे होने हैं—

तत आगत इत्यर्थे ।

१७३ । ष्ण (अष्), षिक् (उक्), क्ण—'तत आगत' इम अर्थमें शब्दके उत्तर 'ष्ण', 'षिक्' और 'क्ण' प्रत्यय होने हैं । यथा—(ष्ण)—(मधुरावा आगत) मधुर । (षिक्)—(तीर्थाव आगत) तीर्थिक ; (नगराव आगत) नागरिक ; (आपगाव आगत) आपणिक । (क्ण)—(उपाध्यायाव आगतम्) औपाध्यायकम् (बुक्), (पितामहाव आगतम्) पितामहकम् (बुक्); (मातृ आगतम्) मातृकम् (ट्), (भ्रातृ आगतम्) भ्रातृकम् (ट्); (पितृ आगतम्) पितृकम् (ट्), पित्र्यम् (य) ।

तस्मात् अनपेतम् इत्यर्थे ।

१७४ । यत्—'तस्मात् अनपेतम्*' इम अर्थमें धर्म, न्याय, आ

* अविशुद्धम् इत्यर्थे ।

और पथिन् शब्दके उत्तर 'थत्' प्रत्यय होता है, यथा—(धर्मात् अनपे-
तम्) धर्म्यम् (धर्मयुक्तम् इत्यर्थे), (न्यायात् अनपेतम्) न्याय्यम् ;
(अर्थात् अनपेतम्) अर्थ्यम्—“स्तुत्य स्तुतिभिरर्थाभिरपतम्ये सरस्वती”
२० ४. ६, (पथ अनपेतम्) पथ्यम् ।

तद्धित-प्रत्यय — पठ्यन्तसे ।

वक्ष्यमाण तद्धित प्रत्यय पठ्यन्तसे होते हैं—

अपत्यार्थे ।

'अपत्य'* अर्थमे ('तम्य अपत्यम्' इस अर्थमे) शब्दके उत्तर
धिण, घ्णाद्यत्, ष्य, घ्ण, ष्येय, घ्णीय प्रभृति प्रत्यय होते हैं । यथा—

१७५ । धिण (इञ्)—अकारान्त शब्दके उत्तर 'धिण' प्रत्यय
होता है, 'द्' और 'ण्' इत्, 'इ' रहता है ; यथा—(दशरथस्य अपत्य
पुमान्) दाशरथि , (शूरस्य अपत्यम्) शौरि , (द्रोणस्य अपत्यम्)
द्रौणि , (गवल्गणस्य अपत्यम्) गावल्गणि (सज्जय), (युधि-
ष्ठिर) यौधिष्ठिरि , (अर्जुन) आर्जुनि , (कृष्ण) कार्ष्णि , (व्यास)
वैपासकि † ।

(क) 'बाहु'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'धिण' होता है, यथा—(बाहो

* पुत्र कन्या प्रभृति सन्तानको 'अपत्य' कहते हैं । 'अपत्य'-शब्द
नित्य झुंकिलिङ्ग । विशेष समझाना हो, तो 'अत्यं पुमान्', 'अपत्य स्त्री'
कहना होता है ।

† 'धि'-प्रत्यय परे रहनेसे, 'व्यास' प्रभृति शब्दके अन्त्य अवयवके
स्थानमे 'अक' (अकृद्) होता है ।

अपत्यम्) बाह्वि ; (छमित्राया अपत्यम्) सौमित्रि ; (बलाकायाः अपत्यम्) बालाकि ।

९७६ । ष्णायन (फक्)—‘नड’-प्रभृति शब्दके उत्तर ‘ष्णायन’-प्रत्यय हाता है, ‘ष्’ और ‘ण्’ इत्, ‘आयन’ रहता है, यथा—(नडस्य अपत्यम्) नाडायन ; (नरस्य अपत्यम्) नारायण ; (अश्वत्स्य अपत्यम्) आश्वलायन ; (दक्ष) दाक्षायण ; (द्रोग) द्रौगायन ; (शकट) शाकटायन , (युगन्धर) यौगन्धरायण । *

९७७ । ष्य (यञ्)—‘गर्ग’ प्रभृति शब्दके उत्तर ‘ष्य’-प्रत्यय होता है, यथा—(गर्गस्य अपत्यम्) गार्ग्य , (वल्मथ्य अपत्यम्) वात्स्य ; (पुलस्ते अपत्यम्) पौलस्त्य , (मण्डु) माण्डव्य ; (यज्ञवल्क्य) याज्ञवल्क्य , (शाण्डिल) शाण्डिल्य ; (वणक) चाणक्य ; (जमदग्नि) जामदग्न्य ; (पराशर) पाराशर्य्य ; (व्याघ्रपाद्—व्यापपद अपत्यम्) वैयाघ्ररथ ।

(दिते अपत्यम्) दैत्य ; (अदिति) आदित्य , (प्रजापति) प्राजापत्य ,—(ष्य) ।

९७८ । षण् (ञ्य्)—‘शिव’-प्रभृति शब्दके उत्तर ‘ष्ण’-प्रत्यय होता है, यथा—(शिवस्य अपत्यम्) शैव ; (ककुत्स्थस्य अपत्यम्) काकुत्स्थ , (विधवगस्य अपत्यम्) वैधवण , (रावण) रावण ; (यम्क) याम्क , (शृषाया अपत्यम्) शृष्यं , (इलाया अपत्यम्) ऐल ।

(क) ‘भृगु’-प्रभृति शब्दके उत्तर ‘ष्ण’ (अण्) होता है ।

* (अनुष्य रघातस्य अपत्यम्) आनुष्यायण (सद्बंशोद्भव इत्यर्थ — पठ्या अलुङ्) ।

मथा—(भृगो अपत्यम्) भार्गव , (मतीचे अपत्यम्) मारीच* ;
(वसिष्ठस्य अपत्यम्) वासिष्ठ ; (कुन्स) कौत्स , (गोतम) गौ-
तम , (अङ्गिरम्) आङ्गिरस ; (विधामित्र) वैधामित्र । (यदो
अपत्यम्) यादव , (वसुदेव) वासुदेव । (कुरो अपत्यम्) कौरव ;
(पाण्डु) पाण्डव , (घतराष्ट्र) घातर्गराष्ट्र । (पूरु) पौरव , (रघु)
राघवः , (मनु) मानव , (द्रुपद) द्रौपद । *

(ख) सङ्ख्यावाचक शब्दके परवर्ती 'मातृ'-शब्दके उत्तर 'ष्ण' होता
है, और 'ष्ण' परे, 'मातृ'—'मातृर्' होता है, यथा—(द्वयो मात्रो
अपत्यम्) द्वैमातृ , (पृष्णां मातृगामपत्यम्) पृष्णमातृ ।

(ग) 'कन्या'-शब्दके उत्तर 'ष्ण' होता है; और 'ष्ण' परे, 'कन्या'—
'कनोत्' होता है, यथा—(कन्याया. अपत्यम्) कानोत् (व्यास , कर्गश्च) ।

(घ) 'विद्'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'ष्ण' (अञ्) होता है; यथा—
(विदस्य अपत्यम्) वैद , (उर्वस्य अपत्यम्) और्वं ; (कश्यपस्य
अपत्यम्) काश्यप ; (कुशिक) कौशिकः ; (भारद्वाज) भारद्वाज ,
(उपमन्यु) औपमन्यव , (शरद्वत्) शारद्वत् , (ऋष्टिपेग) आर्ष्टि-
पेग ; (शुनक) शौनक । (पुनम्बां † अपत्यम्) पौनर्भव , (पुत्रस्य
अपत्यम्) पौत्र , (बुद्धित् अपत्यम्) दौहितः ।

१७९ । एत्येय (ढक्)—स्त्रीप्रत्ययान्त शब्दके उत्तर 'ष्णैय'-प्रत्यय

* अपत्य-प्रत्ययान्त ऐस्वाक, कौरव, मनुष्य और मानुष शब्द निपा-
तनासिद्ध ; यथा—(ऐस्वाको अपत्यम्) ऐस्वाक (अण्), (कुरो अपत्यम्)
कौरव्य (प्य), (मनो अपत्यम्) मनुष्य (यत्), मानुष. (अञ्) ।

† पुनर्भू — पुनर्बिवाहिता स्त्री ।

होता है ; यथा—(गङ्गाया अपत्यम्) गाङ्गेय ; (राधाया अपत्यम्) राधेय ; (विनताया अपत्यम्) वैनतेय ; (मरमा) सारमेय ; (कुन्ती) कौन्तेय , (रोहिणी) रौहिणेय ; (रक्मिणी) रौक्मिणेय ; (अम्बिका) आम्बिकेय , (भगिन्या अपत्यम्) भागिनेय ।

(क) 'शुभ्र'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'प्णेय' होता है , यथा—(शुभ्रस्य अपत्यम्) शौभ्रेय ; (अत्रे अपत्यम्) आत्रेय , (मृदण्डो अपत्यम्) मार्शण्डेय ; (अदिते अपत्यम्) आदिनेय , (विनातु अपत्यम्) वैनात्रेय ।

१८० । ष्णीय (झ)—'स्वस्व' और 'भ्रातृ' शब्दके उत्तर 'ष्णीया'-प्रत्यय होता है ; यथा—(स्वस्व अपत्यम्) स्वस्वीय ; (भ्रातृ अपत्यम्) भ्रात्रीय * ।

(क) 'पितृष्वस्व' और 'मातृष्वस्व' शब्दके उत्तर विकल्पसे 'प्णेय' (ढच्) होता है , 'प्णेय' होनेसे, ऋकारका लोप होता है ; यथा—(पितृष्वस्व अपत्यम्) पैतृष्वसेय , पञ्चे—(ष्णीय—ङ्) पैतृष्वस्वीय ; (मातृष्वस्व अपत्यम्) मातृष्वसेय , पञ्चे—(ष्णीय—ङ्) मातृष्वस्वीय ।

१८१ । यत्—'राजन्' और 'अशुभ्र' शब्दके उत्तर 'यत्'-प्रत्यय होता है ; यथा—(राज् अपत्यम्) राजन्य ; (अशुभ्रस्य अपत्यम्) अशुभ्र्यं ।

१८२ । इय (घ)— जाति समुपानेमे, 'अत्र'-शब्दके उत्तर 'इया'-प्रत्यय होता है ; यथा—(क्षत्रस्य अपत्यम्) क्षत्रिय ।

१८३ । ईन (ख)—'कुल'-शब्दके उत्तर 'ईन' होता है ; यथा—(कुलस्य अपत्यम्) कुलीन । †

* 'प्रतृ' शब्दके उत्तर विकल्पसे 'ध्य' होता है ; यथा—प्रतृध्य ।

† साकुलात् खे साकुलीनः, साकुल्य सकुलाद् यथा ।

खया माहाकुलीनः स्याद्, दौष्कुलेयो ट्वा तथा ॥

९८४ । बहुवचनमे—गर्गादि, यस्कादि* और विदादिके उत्तर विहित अपत्य प्रत्ययका लोप होता है, किन्तु स्त्रीलिङ्गमे नहीं होता । यथा—(गर्गस्य अपत्यानि) गर्गा , (यस्वस्य अपत्यानि) यस्का , (अत्रे अपत्यानि) अत्रय , (विदस्य अपत्यानि) विदा । (स्त्रीलिङ्गमे)—(यस्वस्य अपत्यानि स्त्रिय) यास्वय , (अत्रे अपत्यानि स्त्रिय) आत्रेद्य ।

(क) बहु पुरुष अपत्य समझानेसे, देशानामसे राजानाम शोधक शब्दके उत्तर अपत्य प्रत्ययका लोप होता है, यथा—(अङ्गस्य राज अपत्यानि पुमांस) अङ्गा-; ऐसे—बङ्गा , कलिङ्गा ।

पस्तिद्ध क्षत्रिय-नामके उत्तर विकल्पसे लोप होता है, यथा—(रघो अपत्यानि पुमांस) रघव , राघवा , (कुरो अपत्यानि) कुव , कौरवा , यद्व , पादवा ; (इक्ष्वाको अपत्यानि) इक्ष्वाक्व , ऐक्ष्वाका ; वृष्णय , वार्ष्णेया , भरता , भारता ।

तरुय समूह इत्यर्थे ।

९८५ । षण् (अण्), कर् (कुञ्), षण्य (यञ्), ष्णिक (ठक्)—'तरुय समूह' इस अर्थमे शब्दके उत्तर षण्, कण्, ष्य और ष्णिक होते हैं । यथा—(षण्)—(काकानां समूह) काकम्, (उलूकानां समूह) औलूकम्, (कपोतानां समूह) कपोतम्, (मघूराणां समूह) नायूरम्, (मिश्राणां समूह) भैक्षम्, (अङ्गाराणां समूह) आङ्गारम्, (पदातीनां समूह) पादातम् । (कण्)—(वृद्धानां समूह) षाद्धकम्; (उक्ष्णा—वृषाणा—समूह) औक्षकम्, (उङ्गाणां समूह) औङ्गकम्, (राजन्यानां समूह) राजन्यकम्, (राजपुत्राणां समूह) औद्रकम्, (राजन्यानां समूह) राजन्यकम्, (राजपुत्राणां समूह) औद्रकम् ।

* यस्कादि—यस्क, अत्रि, भृगु, कुत्स, वसिष्ठ, गोतम, आङ्गिरस् ।

७२८ ध्याकरण-मञ्जरी । [ण्य, णिक, तल्, य, खण्ड, काण्ड
 राजपुत्रकम्, (मनुष्याणां समूहः) मानुष्यकम्; (अजानां समूहः)
 आजकम्; (धेनुनां समूहः) धैतुकम् (ठक्) । (ण्य)—(गणिकानां
 समूहः) गणिक्यम्, (ब्राह्मणानां समूहः) ब्राह्मण्यम् (यत्) । (णिक)—
 (अपूरानां समूहः) आपूषिकम्, (हस्तिनां समूहः) हास्तिकम् ।

'केश'-शब्दके उत्तर 'ण्य' और 'णिक' होते हैं; यथा—(केशानां
 समूहः) केश्यम्, केशिकम् ।*

'अश्व'-शब्दके उत्तर 'ण्य' और 'ण्यीय' (छ) होते हैं; यथा—(अश्वानां
 समूहः) आश्वम्, आश्वीयम् ।

(क) तल्—'समूह'-अर्थमे, घाम, जन, गज, वन्धु और सहाय शब्द-
 के उत्तर 'तल्'-प्रत्यय होता है, 'तल्'-प्रत्ययान्त शब्द खोलिङ्ग, यथा—
 (घामाणां समूहः) घामता, (जनानां समूहः) जनता, (गजानां समूहः)
 गजता, (बन्धुनां समूहः) बन्धुता, (सहायानां समूहः) सहायता ।

(ख) य—'पाश' प्रभृति शब्दके उत्तर 'य'-प्रत्यय होता है; 'य'-
 प्रत्ययान्त शब्द खोलिङ्ग, यथा—(पाशानां समूहः) पाश्या, (नृणामां
 समूहः) नृष्या, (वातानां समूहः) वात्या, (धूम्रानां समूहः) धूम्र्या ।

(ग) खण्ड, काण्ड—'समूह'-अर्थमे, यथासम्भव 'खण्ड' और
 'काण्ड' प्रत्यय होते हैं । यथा—(तरुणां समूहः) तरुखण्डः; पाद-
 खण्डः, (कमलानां समूहः) कमलखण्डम्, (कुमुदानां समूहः) कुमुद-

* पाशः, पक्षध्व, हस्तध्व—स्युरेते केशतो गणे ।

केशपाशः, केशपक्षः, केशहस्तस्ततो भवेत् ॥

† 'खण्ड'-के स्थानमे 'ण्ड' भी लिखने ह । 'खण्ड' अथवा 'ण्ड'
 शब्द पु नपुसक लिङ्ग । 'काण्ड' शब्दभी पु-नपुसक लिङ्ग ।

खण्डम् । (दूर्वाणां समूह) दूर्वाकाण्डम्, (तमसा समूह) तमस्काण्डम्, (कर्मणां समूह) कर्मकाण्डम् ।

(घ) ग्राम (ग्रामच्)—‘समूह’-अर्थमे, ‘गुण’ प्रभृति शब्दके उत्तर ‘ग्राम’-प्रत्यय होता है, यथा—(गुणानां समूह) गुणग्राम, (करणानां समूह.) करणग्राम, (इन्द्रियाणां समूह) इन्द्रियग्राम, (शब्दानां समूह) शब्दग्राम, (तत्त्वानां समूह) तत्त्वग्राम ।

तस्य इदम् इत्यर्थे ।

९८६ । षण् (अण्), ष्य (यत्), ईय (लृ)—‘तस्य इदम्’ इस अर्थमे ‘ष्ण’, ‘ष्य’ और ‘ईय’ प्रत्यय होते हैं । यथा—(षण्)—(विष्णो इदम्) वैष्णवम्, (शिवस्य इदम्) शैवम्, (जनपदस्येदम्) जानपदम्, (देवस्येदम्) दैवम्, (महारस्येदम्) आहारम्, (इन्द्रस्येदम्) ऐन्द्रम्, (माहेन्द्रस्येदम्) माहेन्द्रम्, (मनस इदम्) मानसम्, (शरीरस्येदम्) शारीरम्, (माहिषस्येदम्) माहिषम्, (वेणोरिदम्) वैणवम्, (पलाशस्येदम्) पालाशम्, (खादिरस्येदम्) खादिरम्, (विल्वस्येदम्) वैल्वम्, (मुञ्जानाम् इदम्) मौञ्जम्, (गङ्गाया इदम्) गङ्गम्, (हिमवत इदम्) हैमवतम्, (पशुपतेरिदम्) पशुपतम्, (शङ्करस्येदम्) शङ्करम्, (सूरस्येदम्) सौरम्, (चन्द्रस्येदम्) चान्द्रम्, (उपनिषद् इदम्) औपनिषदम्, (पृथिव्या इदम्) पार्थिवम्, (तेजस इदम्) तैजसम्, (रसो इदम्) रौरवम्, (स्पृष्टो इदम्) नैवृष्टवम्, स्पृष्टवम्, (श्वापदस्येदम्) शौवापदम्, श्वापदम्, (क्षिया इदम्) स्त्रैणम्, (पुंस इदम्) पौंसन्* ।

* ‘स्त्री’ और ‘पुंस’ शब्दके उत्तर ‘नष्’ होता है, ‘ण्’ इत्, ‘न’ रहता है ।

(ष्य)—(पितु इदम्) पित्र्यम्, (गो इदम्) गत्र्यम् । (ईय)—(जलस्नेदम्) जलीयम्; (वायो इदम्) वायवीयम्; (भारतवर्षस्नेदम्) भारतवर्षीयम्, (तस्य इदम्) तदीयम्, (एतस्य इदम्) एतदीयम्, (युष्माकम् इदम्) युष्मदीयम्; (अस्माकम् इदम्) अस्मदीयम्, (अन्यस्य इदम्) अन्यदीयम्, (भवत इदम्) भवदीयम् * ।

(क) एकवचनमे—'युष्मद्' के स्थानमे 'त्वद्', और 'अस्मद्' के स्थानमे 'मद्' होता है, यथा—(तव इदम्) त्वदीयम्, (मम इदम्) मदीयम् ।

(ख) 'णीन' (खञ्) और 'ण्य' प्रत्यय परे, 'युष्मद्' के स्थानमे 'युष्माक', और 'अस्मद्' के स्थानमे 'अस्माक' हाता है; यथा—(युष्माकम् इदम्) यीष्माकीनम्, यीष्माकम्; (अस्माकम् इदम्) आस्माकीनम्, आस्माकम् ।

एकवचनमे 'तवद्' और 'ममक' होते हैं, यथा—(तव इदम्) तावकीनम्, तावकम्, (मम इदम्) मामकीनम्, मामकम् ।

(ग) 'ईय' प्रत्यय होनेसे, 'पर', 'स्व' और 'राजन्' शब्दके उत्तर 'कुक्' होता है; 'उ' और 'ङ्' इत्, 'ङ्' रहता है, यथा—(परस्य इदम्) परकीयम्, (राज इदम्) राजकीयम्, 'स्व'-शब्दके उत्तर विकल्पसे—(स्वस्य इदम्) स्वकीयम्, स्वीयम् ।

तस्य विकार इत्यर्थे ।

९८७ । ण्य (अण्)—'तस्य विकार' इस अर्थमे शब्दके उत्तर 'ण्य'-प्रत्यय होता है, यथा—(स्वर्गस्य विकार) मौवर्जं, (रजतस्य

* 'भवत्'-शब्दके उत्तर 'कृ' (टक्) भी होता है, यथा—(भवत इदम्) भावकम् ।

विकार) राजत , (पित्तलस्य विकारः) पैचलः , (मीमरूप्य विकार) सै-
सक , (गुडस्य विकार) मौड ; (मुद्गस्य विकार) मौङ्ग ; (दारो
विकार) दाख , (देवदारो विकार) देवदारख , (इक्षो विकार)
ऐक्षन् , (पयस विकार) पायस , (तिलस्य विकार) तैलम् ।

मयट् ।

९८८ । 'विकार'-अर्थ समझानेसे, शब्दके उत्तर 'मयट्'-
प्रत्यय होता है , (यथा—स्वर्णस्य विकार.) स्वर्णमय
[घट] ; स्वर्णमयी प्रतिमा , (मृदो विकारः) मृन्मयः
[घट] , मृन्मयी प्रतिमा ।

(क) 'प्रचुर्य्य' (बाहुल्य) समझानेसे, शब्दके उत्तर
'मयट्' होता है , यथा—(अन्न प्रचुरम् अस्मिन्) अन्नमय'
[यज्ञः] , (अपूपा प्रचुरा अस्मिन्) अपूपमयम् [श्राद्धम्] ;
(रोगा प्रचुरा अस्मिन्) रोगमयम् [शरीरम्] , (आनन्दः
प्रचुर. अस्मिन्) आनन्दमय [आत्मा] ।

(ख) 'व्याप्त' अर्थ समझानेसे, शब्दके उत्तर 'मयट्' होता
है , यथा—(जलेन व्याप्तम्) जलमयम् [जगत्] , (धूमेन
व्याप्तम्) धूममयम् [गृहम्] ।

(ग) 'ससर्ग' समझानेसे, शब्दके उत्तर 'मयट्' होता है ;
यथा—(घृतेन ससृष्टम्) घृतमयम् [व्यञ्जनम्] , (तिलेन
ससृष्टम्) तिलमयम् [तर्पणम्] ।

(घ) 'अपृथग्भाव' (अभेद, एकत्व) समझानेसे (अ-
र्थात् 'स्वरूप'-अर्थमे) शब्दके उत्तर 'मयट्' होता है ; यथा—

(विष्णोः अपृथग्भूतम्—विष्णुस्वरूपम्) विष्णुमयम् [जगत्] ;
 (वाग्भ्यः अपृथग्भूतम्—वाक्स्वरूपम्) वाङ्मयम् [शास्त्रम्],
 (चित् अपृथग्भूतः—चित्स्वरूपः) चिन्मयः [पुरुषः] ।

(छ) 'पुरीष' ममज्ञानेसे, 'गो' शब्दके उत्तर 'मयद्' होता है ;
 यथा—(गो पुरीषम्) गोमयम् ।

(च) 'हिरण्य' शब्द निपातन सिद्ध ; यथा—(हिरण्यस्य वि-
 कार) हिरण्यम् ।

तस्य भाव इत्यर्थे ।

९८९ । षण् (अण्), ष्य (ष्यञ्), कण् (कुञ्)—
 'तस्य भाव' इस अर्थमे शब्दके उत्तर 'ण्य', 'ष्य' और 'कण्' प्रत्यय
 होते हैं । यथा—(ष्य)—(कुमारस्य भाव) कौमारम् , (शिशो
 भाव) शैशवम् , (वृद्धस्य भाव) वार्द्धकम् , वार्द्धक्यम् (ष्य) ;
 (स्थविरस्य भाव) स्थाविरम् , (गुप्तो भाव) गौरवम् , (लघो
 भाव) लाघवम् ; (उष्ट्र भाव) सौष्टवम् , (ऋजो भाव) अर्जवम् ;
 (मृदोर्भाव) मार्दवम् , (पटोर्भाव) पाटवम् ; (उरभेर्भाव) सौर-
 भम् , सौरभ्यम् (ष्य) । (ष्य)—(स्थिरस्य भाव) स्थैर्यम् ; (धी-
 रस्य भाव) धैर्यम् , (गम्भीरस्य भाव) गाम्भीर्यम् , (कृशस्य
 भाव) काश्यम् , (जडस्य भाव) जटवम् , (शीतस्य भाव) शै-
 त्यम् , (उष्णस्य भाव) औष्ण्यम् , (हृदस्य भाव) हार्दम् ; (म-
 न्दस्य भाव) मान्द्यम् , (लमगस्य भाव) सौभाग्यम् , (दुर्भगस्य
 भाव) दौर्भाग्यम् ; (मधुरस्य भाव) माधुर्यम् , माधुरी (ण्य) ;
 (भूर्लस्य भाव) भौर्लम् ; (विषमस्य भाव) वैषम्यम् , (समस्य

भाव) साम्यम्, (कातरस्य भाव) कातर्यम्, (कर्कशस्य भाव)
 कार्कश्यम्, (बालस्य भाव) बाल्यम्; (शुक्लस्य भाव) शौक्ल्यम्,
 (समनसो भाव) सौमनस्यम्, (दुर्मनसो भाव) दौर्मनस्यम्,
 (विमनसो भाव) वैमनस्यम्, (प्रवीणस्य भाव) प्रावीण्यम्,
 (उदासीनस्य भाव) औदासीन्यम्, (कृपणस्य भाव) कार्पण्यम्,
 (मद्यस्य भाव) माद्यस्यम्, (उदारस्य भाव) औदार्यम्;
 (विगुणस्य भाव) वैगुण्यम्, (सन्नस्य भाव) सौजन्यम्, (स्थूलस्य
 भाव) स्थौल्यम्, (अधिक्त्वस्य भाव) आधिक्यम् । (कण्)—(रमणी-
 यस्य भाव) रामणीयकम्, (कमनीयस्य भाव) कामनीयकम् ।

तस्य भावः, तस्य कर्म इत्यर्थे ।

११० । ष्य (ष्यञ्), ष्य (ष्यञ्)—‘तस्य भाव’ ‘तस्य
 कर्म’ इन दोनो अर्थोंमें शब्दके उत्तर ‘ष्य’ और ‘ष्यञ्’ होते हैं । यथा—

(ष्य)—(ब्राह्मणस्य भाव, कर्म वा) ब्राह्मण्यम्, (चोरस्य भाव,
 कर्म वा) चौर्यम्, (अलसस्य भाव, कर्म वा) आलस्यम्, (सख्यु
 भाव, कर्म वा) सख्यम् (य), (दृढस्य भाव, कर्म वा) दृढ्यम् (य),
 दौढ्यम्; (सेनापते भाव, कर्म वा) सेनापत्यम् (यक्), (पुरोहितस्य
 भाव, कर्म वा) पुरोहित्यम् (यक्), (अधिपते भाव, कर्म वा)
 आधिपत्यम् (यक्), (शूरस्य भाव, कर्म वा) शौर्यम्, (वीरस्य
 भाव, कर्म वा) वीर्यम्, (छदितस्य—नृस्य—भाव, कर्म वा) सौहित्यम्*
 (यक्), (सारथेभाव, कर्म वा) सारथ्यम्, (आस्तिकस्य भाव,

* “अहेरिव गणादुभीत, सौहित्यावरकादिव ।

कुणपादिव च छांभ्यस्त देवा ब्राह्मण विदु ॥” महाभा० ।

कर्म वा) आस्तित्वम् , (नास्तित्वम् भाव , कर्म वा) नास्तित्वम् ;
 (पण्डितत्व भाव , कर्म वा) पाण्डित्यम् ; (वणिजो भाव , कर्म वा)
 वाणिज्यम् , (अनुकूलत्व भाव , कर्म वा) आनुकूल्यम् ; (प्रतिकूलत्व
 भाव , कर्म वा) प्रातिकूल्यम् , (अतृप्तत्व भाव , कर्म वा) अतृप्त्यम् ;
 (कुशलत्व भाव , कर्म वा) कौशल्यम् , कौशलम् (ष्य) ; (चरत्व
 भाव , कर्म वा) चापत्यम् , चापत्यम् (ष्य) , (निपुणत्व भाव , कर्म
 वा) नैपुण्यम् , नैपुण्यम् (ष्य) , (विपुणत्व भाव , कर्म वा) पैपुण्यम् ,
 पैपुण्यम् (ष्य) , (वतृत्व भाव , कर्म वा) चातृत्वम् , चातृत्वम् (ष्य) ;
 (सहायत्व भाव , कर्म वा) साहाय्यम् , साहाय्यम् (कर्-बुत्) ।
 (ष्य)—(शुचे भाव , कर्म वा) शौचम् * ; (अशुचे भाव , कर्म
 वा) अशौचम् , (सुने भाव , कर्म वा) मौनम् , (अकृतत्व भाव , कर्म
 वा) आकौशल्यम् ; (पुरुषत्व भाव , कर्म वा) पौरुषम् ; (सभ्रातृ भाव ,
 कर्म वा) सौभ्रातृत्वम् , (दुभ्रातृ भाव , कर्म वा) दौभ्रातृत्वम् ; (छहद भाव ,
 कर्म वा) सौहृदम् ; (दुहृद भाव , कर्म वा) दौहृदम् ।

भावार्थे ।

१९१ । त्व, तल्—'तस्य भाव' इस अर्थमे शब्दके उत्तर
 'त्व' और 'तल्' प्रत्यय होते हैं । 'त्व' प्रत्ययान्त शब्द श्लो-
 लिङ्ग, 'तल्' प्रत्ययान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग । यथा—(प्रमो-भाव)
 प्रमुच्यम् , प्रमुच्यता ; (भीरो भाव) भीरुत्वम् , भीरुता , (मनुष्यत्व
 भाव) मनुष्यत्वम् , मनुष्यता ; (अमरत्व भाव) अमरत्वम् , अमरता ;

* "अमश्यपरिहारस्तु, संसर्गश्चावनिन्दितै ।

स्वधर्मे च व्यवहृत्तान्, शौचमेतत् प्रकीर्तितम् ॥" बृहस्पति ।

(पशोर्भाव) पशुत्वम्, पशुता, (घृग्ण्य भाव) शूरत्वम्, शूरता ;
 (कातरस्य भाव) कातरत्वम्, कातरता, (चपलस्य भाव) चपल
 त्वम्, चपलता, (नास्तिकस्य भाव) नास्तिकत्वम्, नास्तिकता ;
 (अलसस्य भाव) अलसत्वम्, अलसता, (अन्धस्य भाव) अन्ध-
 त्वम्, अन्धता, (मूर्खस्य भाव) मूर्खत्वम्, मूर्खता, (मूकस्य
 भाव) मूकत्वम्, मूकता, (राज्ञो भाव) राजत्वम्, राजता ;
 (यूनो भाव) युवत्वम्, युवता, (न्यूनस्य भाव) न्यूनत्वम्, न्यूनता ।

९९२ । इमन् (इमनिच्)— 'तस्य भाव' इति अर्थमे 'नील'-
 प्रभृति शब्दके उत्तर विकल्पसे 'इमन्'-प्रत्यय होता है, पक्षे—
 'त्वा' और 'तल्' । यथा—(नीलस्य भाव) नीलिमा, नीलत्वम्,
 नीलता, (पीतस्य भाव) पीतिमा, पीतत्वम्, पीतता, (रक्तस्य
 भाव) रक्तिमा, रक्तत्वम्, रक्तता, (शुक्लस्य भाव) शुक्लिमा, शुक्ल-
 त्वम्, शुक्लता, (वक्रस्य भाव) वक्त्रिमा, वक्रत्वम्, वक्रता, (उष्णस्य
 भाव) उष्णिमा, उष्णत्वम्, उष्णता, (जडस्य भाव) जडिमा, जडत्वम्,
 जडता, (मधुरस्य भाव) मधुरिमा, मधुरत्वम्, मधुरता, (लघोर्भाव)
 लघिमा, लघुत्वम्, लघुता, (अणोर्भाव) अणिमा, अणुत्वम्, अणुता,
 (तनोर्भाव) तनिमा, तनुत्वम्, तनुता, (स्वादोर्भाव) स्वादिमा,
 स्वादुत्वम्, स्वादुता, (पदोर्भाव) पदिमा, पदुत्वम्, पदुता ।
 (९३६ सूत्रानुसार)—(स्थिरस्य भाव) स्थेमा, स्थित्वम्, स्थिरता,
 (पृथोर्भाव) प्रथिमा, पृथुत्वम्, पृथुता; (प्रियस्य भाव) प्रेमा,
 प्रियत्वम्, प्रियता, (सृदोर्भाव) सृदिमा, सृदुत्वम्, सृदुता, (कृश-
 स्य भाव) कृशिमा, कृशत्वम्, कृशता, (गुरोर्भाव) गरिमा, गुस्त्वम्,

गुस्ता ; (दीर्घस्य भाव) द्राधिमा, दीर्घत्वम्, दीर्घता, (दृढस्य भाव) द्रधिमा, दृढत्वम्, दृढता ; (क्षुद्रस्य भाव) क्षोदिमा, क्षुद्रत्वम्, क्षुद्रता, (इस्वस्य भाव) इसिमा, इस्वत्वम्, इस्वता, (महतो भाव) महिमा, महत्त्वम्, महत्ता ।

(क) 'बहु'-शब्दके उत्तर 'इमन्'-प्रत्यय होनेसे, 'भूमन्' निपातनसे सिद्ध होता है ; यथा—(बहोर्भावे) भूमा ।

तस्य मूलम् इत्यर्थे ।

१९३ । जाह (जाहच्)—'तस्य मूलम्' इस अर्थमे, 'कर्ण'-प्रमृति शब्दके उत्तर 'जाह'-प्रत्यय होता है, यथा—(कर्णस्य मूलम्) कर्णजाहम्—“अपि कर्णजाहविनिवेशितानन ” माट्ती० १. ८, (अङ्गो-मूलम्) अक्षिजाहम्, भ्रूजाहम्, नखजाहम्, केशजाहम्, पादजाहम्, शृङ्गजाहम्, दन्तजाहम्, ओष्ठजाहम् ।

(क) ति—'मूल'-अर्थमे, 'पक्ष'-शब्दके उत्तर 'ति' प्रत्यय होता है ; यथा—(पक्षस्य मूलम्) पक्षति ।

पुरणार्थे ।

१९४ । डट्—'पुरण'-अर्थमे ('तस्य पूरण' इस अर्थमे) सङ्ख्यावाचक शब्दके उत्तर 'डट्' प्रत्यय होता है ; 'ड्' और 'ट्' इत्, 'अ' रहता है, यथा—(एकादशाना पूरण) एकादश, द्वादश ; त्रयोदश ; चतुर्दश, पञ्चदश, षोडश, सप्तदश, अष्टादश ।

१९५ । मट्—'पुरण'-अर्थमे, नकारान्त सङ्ख्यावाचक शब्दके उत्तर 'मट्' होता है, 'ट्' इत्, 'अ' रहता है, यथा—(पञ्चाना पूरण) पञ्चम ; (सप्तानां पूरण) सप्तम, (अष्टाना पूरण) अष्टम, (नवा-

नां पूरण) नवम , (दशाना पूरण) दशम ।

अन्य बहुधावाचक शब्द पूर्वमे रहनेमे नहीं होता , यथा—(एका-
दशाना पूरण) एकादश , द्वादश ; त्रयोदश ।

९९६ । थद्—'पूरण'-अर्थमे, 'चतुर', 'पप्' और 'कति' शब्दके
उत्तर 'थद्' होता है, 'द्' इत्, 'थ' रहता है, यथा—(चतुर्णां पूरण)
चतुर्थ , (पण्णां पूरण) षष्ठ , (कतीना पूरण) कतिथ ।*

९९७ । तीय—'पूरण'-अर्थमे 'द्वि'-शब्दके उत्तर 'तीय' होता है,
यथा—(द्वयोः पूरण) द्वितीय ।

९९८ । 'पूरण' अर्थमे, तृतीय, तुरीय और तुष्य निपातन सिद्ध ;
यथा—(त्रयाणां पूरण) तृतीय , (चतुर्णां पूरण) तुरीय , तुष्य ।

९९९ । तमद्—'पूरण'-अर्थमे, 'विंशति' प्रभृति सक्रयावाचक शब्दके
उत्तर विकल्पसे 'तमद्' होता है, 'द्' इत्, 'तम' रहता है, पश्चे—'डट्';
यथा—(विंशते पूरण) विंशततितम, विंश , एकविंशतितम, एक-
विंश , द्वाविंशतितम, द्वाविंश , त्रयोविंशतितम , त्रयोविंश . त्रिंश-
त्तम , त्रिंश ; चत्वारिंशत्तम , चत्वारिंश , पञ्चाशत्तम, पञ्चाश ।

(क) 'शत'-प्रभृति शब्दके उत्तर नित्य 'तमद्' होता है, यथा—
(शतस्य पूरण) शततम , (सदस्रस्य पूरण) सदस्रतम , (अयु-
तस्य पूरण) अयुततम ।†

* 'कतिपय' शब्दके उत्तरमां होता है ; यथा—(कतिपयाना पूरण)
कतिपयय . ।

† मास, अर्द्धमास और सवत्सर—इन तीनोंके उत्तरमां होता है,
यथा—(मासस्य पूरण) मामतम , (अर्द्धमासस्य पूरण) अर्द्धमास-

(ख) 'पष्टि' प्रभृति सङ्ख्यावाचक शब्दके उत्तर नित्य 'तमट्' होता है; यथा—(पष्टे पूरण) पष्टितम , सप्ततितम , अशोतितम ; नवतितम ।

अन्य सङ्ख्यावाचक शब्द पूर्वमे रहनेसे नहीं होता , तत्र १९९ सूत्रानुसार कार्त्थ्य होगा , यथा—(एकपष्टे पूरण.) एकपष्टितम , एकपष्ट द्विपष्टितम , द्वापष्ट ।

१००० । तिथुक्—'डट्' परे रहनेसे, 'पूरण'-अर्थमे, बहु, गण, पूग और सप्त शब्दके उत्तर 'तिथुक्' होता है, 'ठ' और 'क्' इत्, 'तिथ्' रहता है, यथा—(यहुना पूरण) बहुतिथि —“वाले गते बहुतिथे” शकु० १३, (गगाना पूरण.) गगतिथि , (पूगाना पूरण) पूगतिथि ; (सप्ताना पूरण) सप्ततिथि ।

१००१ । इथुक्—'डट्' परे रहनेसे, 'पूरण'-अर्थमे, 'वतुप्' प्रत्ययान्त शब्दके उत्तर 'इथुक्' होता है, 'ठ' और 'क्' इत्, 'इथ्' रहता है, यथा—(यावतां पूरण.) यावतिथि ; तापतिथि ; पुत्रावतिथि ; कियतिथि , ह्यतिथि ।

१००२ । 'पितृव्य' प्रभृति शब्द निपातन सिद्ध , यथा—(पितु भ्राता) पितृव्य (व्य—व्यत्), (मातु भ्राता) मातृव्य (वृत्—वृत्च्), (पितु पिता) पितामह (डामह—डामहच्), (मातु पिता) मातामह , (पितु माता) पितामही , (मातुमाता) मातामही ।

तद्धित-प्रत्यय—सप्तम्यन्तमे ।

वर्धमान तद्धित-प्रत्यय सप्तम्यन्तसे होते हैं—

तम ; (सवःसरस्य पूरण) सवत्सरतम ।

तत्र भव इत्यर्थे ।

१००३ । प्ल (अण्), प्लिक (ठञ्), प्लय (यत्), प्लीय (छ), प्लोय (ढक्), प्लीन (ख), कण् (ठञ्)—
 'तत्र भव' * इस अर्थमें, शब्दके उत्तर ये प्रत्यय होते हैं । यथा—(प्ल)—
 (मधुराया भव) माधुर , (कलिङ्गे भव) कालिङ्ग , (शरदि भव)
 शारद , (हेमन्ते भव) हैमन्त , हैमन्तिक (प्लिक) , (वसन्ते
 भव) वासन्त , वासन्तिक (प्लिक) , (निशाया भवम्) नैशम् ,
 नैशिकम् (प्लिक) , (प्रदोषे भवम्) प्रादोषम् , प्रादोषिकम् (प्लिक) ;
 (मध्यन्दिने भवम्) माध्यन्दिनम् , (मनसि भवम्) मानयम् ,
 मानसिकम् (प्लिक) ; (अन्तरे भवम्) आन्तरम् , आन्तरिकम्
 (प्लिक) ; (शरीरे भवम्) शारीरम् , शारीरिकम् (प्लिक) ,
 (भूमौ भव) भूमि , (शर्वार्थो भवम्) शार्वरम्—“शार्वरान्धकार-
 पूरः” दशकु० ; “शार्वरस्य तमसो निपिद्वये” कु० ८ ५८ । (प्लिक)—
 (वर्षे वर्षासु वा भव) वार्षिक ; (मासे भव) मासिक , † (स्वत्सरे
 भव) सांवत्सरिक , (अकाले भव) आकालिक—“आकालिकीं
 वीक्ष्य मधुप्रवृत्तिम्” कु० ३. ३४ ; (सर्वकाले भवम्) सावकालिकम् ,
 (इह भवम्) ऐहिकम् , (अध्यात्म भवम्) आध्यात्मिकम् , (अधि-

* यहाँ 'भव'-शब्द—जात, स्थित, सङ्क्रान्त, आविर्भूत इत्यादि अनेक
 अर्थ समझाता है ।

† 'देय'-अर्थमें भी कालवाचक शब्दके उत्तर 'प्लिक' होता है, यथा—
 (मासे देयम्) मासिकम् , (वर्षे देयम्) वार्षिकम् ; (सांवत्सरे देयम्)
 सावत्सरिकम् ।

८१० व्याकरण-मञ्जरी । [एय, एणीय, एयेय, एीन, कण्

भृतं भवम्) आधिभौतिकम् ; (अधिदेवं भवम्) आधिर्देविकम् ; (ना-
रे भव) नागरिक , नागरक (कर्-बुर्) । (एय)—(दिशि
भवम्) दिश्यम् , (वर्गे भव) वर्ग्यं , वर्गीय (एणीय),—“उद्गाहना
हृद्विरे मुहुरात्मवर्षा ” भाष० ८ १८ , (यूधे भव) यूध्य , यथा—
श्वयूध्या , (वंशे भव) वश्य —“इतरेऽपि खोर्वदना ” २० १८. ३६ ;
(अग्रे भव) अग्र्य , (रहसि भवम्) रहस्यम् ; (आर्द्रौ भवम्)
आघम् ; (अन्ते भवम्) अन्त्यम् , (दिशि भव) दिश्य ; (कण्ठे
भवम्) कण्ठ्यम् ; (दन्ते भवम्) दन्त्यम् ; (ताली भवम्) ताल्यम् ;
(ओष्ठे भवम्) औष्ठ्यम् ; (प्रावि भवम्) प्राच्यम् ; (ग्रामे भव)
ग्राम्य , ग्रामीण (णीन) । (एणीय)—(जिह्वामूढे भवम्) जिह्वानू-
रायन् , (अङ्गुली भवम्) अङ्गुलीयम् ; (कवर्गे भव) कवर्गीय [वर्गे] ,
पवर्गीय ; (शरदि भवा) शारदीया (ङ्) । (एयेय)—(कोत्रे
भवम्) कोत्रेयम्* [वननम्] ; (नद्यां भवम्) नादेयं [जङ्गम्] ;
(अहौ भवम्) आह्येयम् (ङ्) - (घोवाषां भवम्) घोवेयम् (ङ्) ,
घेवम् (एण)—कण्ठमूपगम् इत्यर्थं । (एीन)—(कुटे भव) कुली-
न ; (दुष्कृते भव) दुष्कुलीन , दौष्कुलेय . (एयेय) । (कण्)—
(कदाचिद् भवम्) कादाचित्कम् , (सम्प्रति भवम्) साम्प्रतिकम् ;
(अरण्ये भव) आरण्यक . (मनुष्य , पन्था , ग्रन्थ —वेदैकदेश ; इस्ती
वा—बुर्) , आरण्य [एणु —ण] ।

(इय—य)—(राष्ट्रे भव) राष्ट्रिय ।

(क) 'हिनता-प्रभृति शब्द निरातन-मिद्ध ; यथा—(हेमन्ते भवम्)

तनद्, त्यण्, त्य] तद्धित-प्रत्यय—सतम्यन्तसे । ८११

दैननम्, (पुन पुन भवम्) पौन पुनिकम्, (प्रतीचि भवम्)
प्रतीच्यम्, (उदीचि भवम्) उदीच्यम्, (तिराचि भवम्) तिराच्यम् ।

१००४। तनद्—'भव' अर्थमे, कालवाचक अश्यय-शब्दके
उत्तर 'तनद्'-प्रत्यय होता है, 'द्' इत्, 'तन' रहता है, यथा—
(अद्य भवम्) अद्यतनम्; (प्रातः भवम्) प्रातस्तनम्, प्रगे-
तनम्, (साय भवम्) सायन्तनम्—सायन्तनी, (द्रोषा—रात्रौ
—भवम्) द्रोषातनम्—द्रोषातनी, दिवातनम्, पुरातनम्;
चिरन्तनम्, सदातनम्*; अधुनातनम्, इदानीन्तनम्, तदानी-
न्तनम्, श्वस्तनम्, ह्यस्तनम् ।

(क) सप्तमी-विभक्तिमे, 'पूर्वाङ्' और 'अपराङ्' शब्दके उत्तर विभ-
'ल्पसे 'तनद्' होता है, यथा—(पूर्वाङ्के भवम्) पूर्वाङ्गतनम्, पूर्वाङ्केतनम्,
पूर्वाङ्गिकम् (ष्णिक) ; (अपराङ्के भवम्) अपराङ्गतनम्, अपराङ्के-
तनम्, अपराङ्गिकम् (ष्णिक) ।

(ख) 'ऊर्द्ध' प्रभृति शब्दके उक्ता नित्य 'तनद्' होता है, यथा—
(ऊर्द्धे भव) ऊर्द्धतन, (उपरि भव) उपरितन, (अधो भव)
अधस्तन ; (प्राक् भव) प्राक्तन, (पूर्वे भव) पूर्वतन ।

१००५। त्यण् (त्यक्)—'दक्षिणा', 'पश्चात्' और 'पुरम्' शब्दके उत्तर
'त्यण्'-प्रत्यय होता है, 'ण्' इत्, 'त्य' रहता है, यथा—(दक्षिणा—दक्षिणस्या
दिशि—भव) दक्षिणात्य, (पश्चात् भव) पश्चात्य ; (पुर भव) पौरस्त्य ।

१००६। त्य (त्यप्)—अमा, इह, क और तसिल् तथा चल्-
प्रत्ययान्त शब्दके उत्तर 'त्य'-प्रत्यय होता है । यथा—(अमा—सह—

* निपातनात् 'दा' स्थाने 'ना'ऽऽदेशे—सनातनम् ।

८१२ व्याकरण-मञ्जरी । [म, डिम, ष्य, षिण्क, ष्येय, णीन्

भव) अमात्य ; इहत्य , कृत्य । (तसिल् प्रत्ययान्त) ततस्त्य , अतस्त्य ; कुतस्त्य । (षल्-प्रत्ययान्त) तप्रत्य ; अत्रत्य , कुप्रत्य ।

१००७ । म—‘आदि’ और ‘मध्य’ शब्दके उत्तर ‘म’ प्रत्यय होता है ; यथा—(आदौ भव) आदिम , (मध्ये भव) मध्यम ।

१००८ । डिम (डिमच्)—‘अप्र’, ‘अन्त’ और ‘पश्चात्’ शब्दके उत्तर ‘डिम’ प्रत्यय होता है , ‘ट्’ इत् , ‘इम’ रहता है , यथा—(अग्रे भव) अग्रिम , अग्रिय (इय—घ) , अर्थाय (ईय—ठ) , (अन्ते भव) अन्तिम , (पश्चात् भव) पश्चिम ।

तत्र साधुः इत्यर्थे ।

१००९ । ष्य (यत्) , षिण्क (ठक्) , ष्येय (ढक्) , णीन् (खक्)—‘तत्र साधु *’ इस अर्थमें शब्दके उत्तर ष्य, षिण्क, ष्येय और णीन् प्रत्यय होते हैं । यथा—(ष्य)—(कर्मणि साधु) कर्मण्य , (शरणे—रक्षणे—साधु) शरण्य , (सभायां साधु) सम्य (य) । (षिण्क)—(वितण्डाया साधु) वेतण्डिक , (सट्टाया साधु) साट्टधिक , (सद्भवे साधु) साद्बहिक ; (मद्भामे साधु) साद्भामिक (ट्) । (ष्येय)—(पथि साधु) पाथेयम् ; (अतिथौ साधु) आतिथेय † । (णीन्)—(सयुगे—रणे—साधु) सांयुगीन् ।

* साधु —प्रवीण , योग्यो वा इत्यर्थे ।

† “प्रत्युज्जगामातिथेमातिथेय ” २० ५ २ (आतिथेय —अतिथि-सेवक इत्यर्थे) , “तमातिथेयी बहुमानपूर्वया सपर्यया प्रत्युदियाय पार्वती” कु० ५ ३१ । “आतिथेय कर्तुं नाश्रमत्” माघ० १४ ३८ (आतिथेयम्-अतिथिस्त्वारम् इत्यर्थे) , “सज्जातिथेया वयम्” महावीर० २.४९ (सज्-सम्पन्नम् आतिथेय विष्टरपाचार्यादिकैः ये ते तयोक्ता इत्यर्थे) ।

१०१० । 'पिणक' प्रभृति प्रत्यय जिन अर्थोंमें दिखलाये गये, उनके सिवा औरभी नामा अर्थोंमें दिये जाते हैं । कई स्थलोंमें उदाहरण प्रदर्शित किये जाते हैं । यथा—

(अस्ति परलोक ईश्वरो वा इति मतिर्यस्य स) आस्तिक , (नास्ति परलोक ईश्वरो वा इति मतिरस्य) नास्तिक , (दिष्टम्—भाग्येयम् एव सर्वसाधनम्—इति यस्य मति स) दृष्टिक (देवपर इत्यर्थ) ।

(समाज रक्षति) सामाजिक । (शकुनान् हन्ति) शाकुनिक । (अर्थं गृह्णाति) आर्थिक । (धर्मं चरति) धार्मिक । (हस्नात् पृच्छति) सौस्नातिक * , (सुखगरं पृच्छति) सौखशायनिक † । (वशं गत) वश्य । (मशयम् आपन्न) सोशयिक (मशय प्राप्त —सन्देहविषय — पदार्थ इति यावत्) । ‡ (परदारान् गच्छति) पारदारिक । (अश्वानम् अल—हृष्टु—गच्छति) अश्वनीन , अश्वन्थ § , (अभ्यमित्रम्—अमित्रव्य अभिमित्रान्—अल—सम्यक् गच्छति) अभ्यमित्राण , अभ्यमित्र्य , अभ्यमित्राय । (पारं गच्छति) पारीण , (पारावार गच्छति) पारावारीण (पारगामी इत्यर्थ) । (आप्रपदं प्राप्नोति) आप्रपदीन [पट —पादापपद्यन्त लम्बमान इत्यर्थ] । (अनुपद—पादापामप्रमत्ता—

* "सौस्नातिको यस्य भवत्यस्मिन्" २० ६. ६१. ।

† "शृग्वदीननुशृङ्खन्त सौखशायनिकानृषीन्" २० १०. १४ ।

‡ 'वरं साशयिकात् निष्कात् अशायिक कार्याणम्' ।

§ गच्छन्त्यर्थे योजनात् ठक्, तेन यौजनिक्ः स्मृत ।

पथश्च स्यात् तदर्थे च, पथिकः—पथिकी द्वियाम् ।

नित्यं आतीति पान्थ- स्यात्, पथो णेन निपास्यते ॥

बद्धा) अनुसन्दीना [उपानत्—वृट् जूना] । (सर्वांब्राणि भक्षयति) सर्वांब्रीन [भिक्षु] । (समां समा प्रसूते) समाम्भ्रीता [गौ—प्रतिवर्षं प्रसूता इत्यर्थ —निपातने] ।

(चक्षुषा प्राह्यम्) चाक्षुषं [रूपम्], (श्रवणेन प्राह्य) श्रावण [शब्द], (रमनया प्राह्य) रासन. [रस], (त्वचा प्राह्य) त्वाच [रूपम्] । (चक्षुषा निर्वृत्तम्) चाक्षुष [प्रत्यक्षम्], (श्रवणेन निर्वृत्तम्) श्रावणम्, (रमनया निर्वृत्तम्) रासनम्, (त्वचा निर्वृत्तम्) त्वाचम् । (रथेन चरति) रथिक , (अश्वेन चरति) आश्विक । (सहसा—यत्ने—प्रवर्तते) साहसिक [चौर] । (गृहपतिना संयुक्त) गार्हपत्य [अग्नि] । (सप्तभि पदे—ठच्चारिते—अवाप्यम्) साप्तपदीनं [सप्त्यम्] * । (नावा ताप्यां) नाव्या [नदी] । (तुल्या सम्मितम्) तुल्यम् । (वयमा तुल्य) वयम्य । (कुशाग्रेण तुल्या) कुशाग्रीया [मति—अतिसूना इत्यर्थ] । (काकतालेन तुल्यम्) काकतालीयम्, अजाकृपाणीयम्, अन्धकवर्त्तकीयम् ।

* 'सद्य जना साप्तपदीनमाहु' ।

† काकश्च तालश्च काकतालम् । तेन लक्षणया काकस्य निवृत्ता तालेन अतर्कितोपनत चित्रीयमाण संयोग उच्यते । एवम् अजाया कृपाणेन आकस्मिक संयोग—अजाकृपाणम् । अन्धकश्च वर्त्तका—पक्षिभेद—च अन्धकवर्त्तकम् इति अन्धस्य वर्त्तकया उपरि अतर्कित पादद्वयास उच्यते ।

एव घुष्पाक्षरीय स्यादनुद्देश्यफलोदये ।

“साधयति तत्प्रयोजनमशस्तत् तस्य काकतालीयम् ।

देवात् कृपमन्पक्षरमुत्तिरति पुणोऽपि काष्ठेषु ॥” मुमक्षिवाकलि ।

(हिमवत प्रभवति) हेमवती [गङ्गा] , (विदूरात्—पर्वतविशेषात्—प्रभवति) वैदूर्य (मणि) ।

(आमलक्या फलम्) आमलकम् , (वदर्या फलम्) वदरम् , (सञ्चत्यस्य फलम्) आञ्चत्यम् , (न्यप्रोधस्य फलम्) नैयप्रोधम् । (हृदयस्य प्रियम्) हृद्यम् (मनोज्ञम् इत्यर्थ — 'हृदय' के स्थानमे 'हृद्'-आदेश) । (सर्वभूमे ईश्वर) सार्वभौमः , (पृथिव्या ईश्वर) पार्थिव । (इन्द्रस्य*—आत्मन—लिङ्गम्—अनुमापकम्) इन्द्रियम् ।

(पयसि संस्कृतम्) पायसम् । (भाण्डागारे नियुक्त) भाण्डागारिक । (समाने तीर्थे—गुरौ—वसति) सतीर्थ्य । (समाने उदरे शयित) समानोदर्थ्य । (सर्वांश्च भूमिषु विदित) सार्वभौमः , (पृथिव्यां विदित) पार्थिव । (लोके विदित) लौकिक , (सर्वलोकेषु विदित) सार्वलौकिक । (उदरे एव प्रसित —सक्त) औदरिक (आयून इत्यर्थ —पेटू) ।

घटने कर्मणीत्यर्थे कर्मठस्तु निपात्यते ।

अव्यय-तद्धित ।

वारार्थे ।

१०११ । कृत्वसुच्—क्रियाकी "अभ्यासृत्तिगणन" अर्थात् कितनी बार वह क्रिया अनुष्ठित हुई, उसकी गणना समझानेसे, सहायावाचक शब्दके उत्तर 'कृत्वसुच्' प्रत्यय होता है, 'उ' और 'च्' हव, 'कृत्वस्' रहता है, यथा—(पञ्च वारान् भुङ्क्ते) पञ्चकृत्व भुङ्क्ते, (सप्त वारान् स्वपिति) सप्तकृत्व स्वपिति, (शत वारान् पठति) शतकृत्व पठति । "त्रि सप्तकृत्वो

* इन्द्रनि परमैश्वर्यम् अनुभवति इति कदाचिन् कर्मोदयवशात् ऐश्वर्य-रहितोऽपि तच्छक्तियोगात् इन्द्र आत्मा ।

जगतीपतीना हन्ता जामदग्न्य" भा० ३ १८ ।

१०१२ । सुच्—उक्त अर्थमे, 'द्वि', 'त्रि' और 'चतुर्' शब्दके उत्तर 'सुच्'-प्रत्यय होता है, 'ड' और 'च्' इत्, 'स्' रहता है, यथा—(द्वौ वारौ भुङ्क्ते) द्वि भुङ्क्ते, (त्रीन् वारान् सन्ध्यामुपास्ते) त्रि सन्ध्यामुपास्ते, (चतुरो वारान् ध्यायति) चतु ध्यायति ('चतुर्'-शब्दके अन्त्यवर्णका लोप होता है) ।

(क) 'एक'-शब्दके उत्तर 'सुच्' करनेसे, दोनो मिलके 'सकृत्' होता है, यथा—(एक वारं भुङ्क्ते) सकृत् भुङ्क्ते ।* यहाँ अभ्यावृत्ति सम्भव नहीं, गणनमात्र समझाता है ।

१०१३ । घाच् (घा)—उक्त अर्थमे, 'बहु'-शब्दके उत्तर विकल्प से 'घाच्'-प्रत्यय होता है, 'च्' इत्, 'घा' रहता है, पक्षे—'कृत्रसुच्' ; यथा—बहुधा बहुकृत्व वा भुङ्क्ते ।

प्रकारार्थे ।

१०१४ । घाच् (घा)—'त्रिधा'-अर्थमे, सह्यवावाचक शब्दके उत्तर 'घाच्' होता है । यथा—(एका विधा) एकधा, (द्वे विधे) द्विधा, (तिस्रो विधा) त्रिधा, (चतस्रो विधा) चतुर्धा, (पञ्च विधा) पञ्चधा । अथवा—(एकेन प्रकारेण) एकधा, (द्वाभ्यां प्रकाराभ्यान्) द्विधा इत्यादि । चतुर्धा कतेति (चतुर प्रकारान्, चतुर्भि प्रकारैर्वा इत्यर्थं) । †

* "सकृदशो निपतति, सकृत् कन्या प्रदीयते ।

सकृदाह ददानीति, श्रोष्येतानि मतां सकृत् ॥" मनु० ९ ४७ ।

† ऐक्यमेकधा वा स्याद्, द्वेष द्वेषा द्विधा तथा ।

(क) 'डति' प्रत्ययान्त शब्दके उत्तरभो होता है ; यथा—(वति-भि प्रकारैः) कतिषा ।

वीप्सार्थे ।

१०१५ । चशस् (शस्)—'वीप्सा' समझानेसे, सङ्ख्यावाचक और एकदेशवाचक शब्दके उत्तर विकल्पने 'वशस्' प्रत्यय होता है, 'च' इव, 'शस्' रहता है । यथा—(सङ्ख्यावाचक)—द्वौ द्वौ, द्वाभ्या द्वाभ्यां वा ददाति—द्विश ददाति, पञ्च पञ्च, पञ्चभिः पञ्चभि वा ददानि—पञ्चश ददाति । (एकदेशवाचक)—पाद पाद, पादेन पादेन वा ददाति—पादश ददाति, अर्द्धम् अर्द्धम्, अर्द्धेन अर्द्धेन वा ददाति—अर्द्धश ददाति ।

'डति'-प्रत्ययान्त शब्दके उत्तरभो होता है, यथा—कतिषा ।

(क) बहुर्थ और अल्पार्थ शब्दके उत्तर विकल्पने 'वशम्' होता है, यथा—बहु ददाति—बहुश ददाति, भूरि ददाति—भूरिश ददाति, अल्प ददाति—अल्पश ददाति, स्तोत्रं ददाति—स्तोकश ददाति ।

कारकके उत्तर होता है, अन्यत्र नहीं होता, यथा—'बहुना स्वामी' यहाँ 'बहुश स्वामी' नहीं होगा ।

सुन्पार्थे । औपम्पार्थे ।

१०१६ । वतिच् (वति)—'सादृश्य' समझानेसे, शब्दके उत्तर 'वतिच्'-प्रत्यय होता है, 'इ' और 'च्' इत्, 'वत्' रहता है । यथा—(चन्द्र इव मुखम्) चन्द्रवत् मुखम्; (हिमम् इव शीतलम्) हिमवत् शीतलम्, (समुद्र इव गम्भीर) समुद्रवत् गम्भीर, (पर्वत इव उन्नत) पर्वतवत् उन्नत । (ब्राह्मण इव अधीते)

माहागवत् अर्धाते , (क्षत्रिय इव युध्यति) क्षत्रियवत् युध्यति ; (पितरम् इव पूजयति) पितृवत् पूजयति [उपाध्यायम्] , (कर्णेन इव शृण्वन्ति) कर्णवत् शृण्वन्ति [चक्षुषा मयां] , (विप्राय इव देहि) विप्रवत् देहि [दरिद्राय अपि] , (सर्गात् इव विभेति) सर्पवत् विभेति [खलात्] ; (देवदत्तस्य इव भवन्म्) देवदत्तवत् भवन [यददत्तस्य] ; (रामस्य इव पितृभक्ति) रामवत् पितृभक्ति [भरतस्य] , (पुत्रे इव स्निहति) पुत्रवत् स्निहति [शिष्ये] , (राजा इव) राजवत् , (आत्मा इव) आत्मवत् । *

(विभक्तिस्थानी प्रत्यय)

१०१७ । तसिल्—शब्दके उत्तर विहित पञ्चमी और सप्तमी विभक्ति के स्थानमे विकल्पमे 'तसिल्-प्रत्यय होता है , 'इ' और 'ए' इव , 'तम्' रहता है । यथा—(पञ्चमी) गृहात् गृहत , ग्रामात् ग्रामत , नगरात् नगरत , सर्वस्मात् सर्वत , विश्वस्मात् विश्वत , उभयस्मात् उभयत , भवत् भवत , एरुस्मात् एरुत ; अन्यस्मात् अन्यत , पूर्वस्मात् पूर्वत , परस्मात् परत , दक्षिणस्मात् दक्षिणत ; उत्तरस्मात् उत्तरत ; हस्तात् हस्तत , वृक्षात् वृक्षत ; मेघात् मेघत ; जलात् जलत । (सप्तमी) पूर्वस्मिन् पूर्वत ; दक्षिणस्मिन् दक्षिणत , उत्तरस्मिन् उत्तरत , प्रथमे प्रथमत ; परस्मिन् परत ; अग्रे अग्रत , आदौ आदित , मध्ये मध्यत , अन्ते अन्तत , पृष्ठे पृष्ठत , पार्श्वयोः पार्श्वत , सर्वस्मिन् सर्वत ।

* उपमेय-पदमे जो विभक्ति रहती है , उपमान-पदमेभी वही विभक्ति होती है ।

† व्याकरणोके मतमे , सब विभक्तियोंके स्थानमेही 'तसिल्' होता है ।

(क) 'परि' और 'अभि' उपसर्गके उत्तर नित्य 'तमिल्' होता है, यथा—परित्, अभित् ।

(ल) ओहाक् और र्ह् घातुके प्रयोगमें 'तमिल्' नहीं होता, यथा—वाह्ण्याच् हीयते, पर्वताच् अवरोहति ।

१०१८ । त्रल्—द्वि, युष्मद्, अस्मद् भिन्न सर्वनाम शब्द और 'बहु' शब्दके उत्तर सप्तमीके स्थानमें विकल्पसे 'गल्' प्रत्यय होता है, 'ल्' इत्, 'त्र' रहता है, यथा—सर्वस्मिन् सर्वत्र, उभयस्मिन् उभयत्र, एकस्मिन् एकत्र; अन्यस्मिन् अन्यत्र, इतरस्मिन् इतरत्र, पूर्वस्मिन् पूर्वत्र, परस्मिन् परत्र, अपरस्मिन् अपरत्र; बहुषु बहुत्र ।

१०१९ । 'तसिल्' और 'त्रल्' प्रत्यय होनेसे, एतद् के स्थानमें 'अ', 'यद्' के स्थानमें 'य', 'तद्' के स्थानमें 'त', और 'किम्' के स्थानमें 'कु' होता है, यथा—एतस्मात् अतः, एतस्मिन् अत्र, यस्मात् यतः, यस्मिन् यत्र, तस्मात् ततः, तस्मिन् तत्र, कस्मात् कुतः, कस्मिन् कुत्र ।

'इ' और 'कुइ' निपातन सिद्ध, यथा—कस्मिन्—क, कुइ ।

(क) 'इदम्' शब्दके स्थानमें 'इ' होता है, * यथा—अस्मात् इत् । सप्तमीके स्थानमें 'इ' होता है, यथा—अस्मिन् इइ ।

१०२० । दा—'काल' अर्थमें, 'एक' और 'सर्व' शब्दके उत्तर सप्तमीके स्थानमें 'दा' प्रत्यय होता है, 'दा' होनेसे, 'सर्व' के स्थानमें विकल्पसे 'स' होता है, यथा—(एकस्मिन् काले) एकदा, (सर्वस्मिन् काले) सदा, सर्वदा ।

(क) दा, हिल्—अन्य, किम् और यद्—इन तीन सर्वनाम

* 'दानीम्'-प्रत्यय होनेसेभी होता है ।

शब्दोंके सप्तमीके स्थानमे 'दा' और 'हिंल्' प्रत्यय होते हैं, 'ए' इत्, 'हिं' रहता है, यथा—(अन्यस्मिन् काले) अन्यदा, अन्यर्हि ।

(ख) दा' और 'हिंल्' होनेसे, 'स्मि' के स्थानमे 'क', और 'यद्' के स्थानमे 'य' होता है, यथा—(कस्मिन् काले) कदा, कर्हि, (यस्मिन् काले) यदा, यर्हि ।

(ग) दा, हिंल्, दानीम्—'तद्' शब्दके सप्तमीके स्थानमे 'दा', 'हिंल्' और 'दानीम्' प्रत्यय होते हैं, 'दा', 'हिंल्' और 'दानीम्' होनेसे, 'तद्' शब्दके स्थानमे 'त' होता है, यथा—(तस्मिन् काले) तदा, तर्हि, तदानीम् ।

(घ) दानीम्—'इदम्'-शब्दके सप्तमीके स्थानमे 'दानीम्' होता है, यथा—(अस्मिन् काले) इदानीम् ।

(ङ) अजुना, एर्हि—निराजन मिद्ध, यथा—(अस्मिन् काले) अजुना, (अस्मिन् एतस्मिन् वा काले) एर्हि ।

१०१ । एद्युस् (एद्युस्वृ)—'दिन' समझानेसे, 'पूर्व'-प्रभृति शब्दके उत्तर 'एद्युस्' प्रत्यय होता है; यथा—(पूर्वस्मिन् अहनि) पूर्वेद्यु, (अन्यस्मिन् अहनि) अन्येद्यु, (अपरस्मिन् अहनि) अपरेद्यु, इतरेद्यु, अन्यतरेद्यु, अधरेद्यु, उत्तरेद्यु, उभयेद्यु । *

१०२ । 'दिन' समझानेमे, विभक्तिमहित 'पूर्व'के स्थानमे 'द्यस्', 'समान' के स्थानमे 'सद्यस्', 'इदम्' के स्थानमे 'अद्य', और 'पर'के स्थानमे 'द्यस्' और 'परेद्यस्' होते हैं, यथा—(पूर्वस्मिन् अहनि) द्य, (समाने अहनि)

* 'उभय'-शब्दके उत्तर 'द्युस्' भी होता है, यथा—(उभयस्मिन् अहनि) उभयेद्यु ।

सद्य (अस्मिन् अहनि) अद्य , (परस्मिन् अहनि) श्र , परोषवि ।

१०२३ । 'वर्ष' समझानेसे, विभक्तिसहित 'इदम्'के स्थानमे 'ऐषमम्', 'पूर्व' के स्थानमे 'परत्', और 'पूर्वतर'के स्थानमे 'परारि' होता है, यथा— (अस्मिन् वर्षे) ऐषम , (पूर्वस्मिन् वर्षे) परत् , (पूर्वतरे वर्षे) परारि । *

१०२४ । धात् (धात्)—'प्रकार' अर्थमे, तृतीयाके स्थानमे 'धात्' प्रत्यय होता है, 'त्' इत्, 'धा' रहता है; यथा—(सर्व प्रकार) सर्वेयत् , (अन्येन प्रकारेण) अन्यथा , (इतरेण प्रकारेण) इतरथा , (उभयेन प्रकारेण) उभयथा , (अपरेण प्रकारेण) अपरथा ।

(क) 'धात्' होनेसे, 'यद्'-शब्दके स्थानमे 'य', और 'तद्'-शब्दके स्थानमे 'त' होता है, यथा—(येन प्रकारेण) यथा , (तेन प्रकारेण) तथा ।

(ख) कथम्, इत्थन्—निपातन सिद्ध; यथा—(केन प्रकारेण) कथम् , (अनेन एतेन वा प्रकारेण) इत्थम् ।

१०२५ । अस्तात् (अस्ताति)—'पर' प्रभृति शब्दको सप्तमी, षष्ठमी और प्रथमानेके स्थानमे 'अस्तात्' प्रत्यय होता है, यथा—(परस्मिन् परस्मात् परो वा) परस्तात् ।

(क) 'अस्तात्' सहित 'अपर'-शब्दके स्थानमे, 'पश्चात्' निपातन-सिद्ध, यथा—(अपरस्मिन् अपरस्मात् अपरो वा) पश्चत् । †

(ख) 'अस्तात्'-सहित 'ऊर्द्ध'-शब्दके स्थानमे, 'उपरि' और 'उपरिष्ठा-

* अस्मिन् वर्षे ऐषम स्यात्, पूर्ववर्षे परदृमवेत् ।

तथा पूर्वतरे वर्षे परारि स्यान्निपातितम् ॥

† 'अर्द्ध' शब्द परे रहनेसे, 'अपर' शब्दके स्थानमे विकल्पमे 'पश्च' आदेश होता है, यथा—(अपरम् अर्द्धम्) पश्चाद्धम्, अपराद्धं वा ।

८२२ व्याकरण प्रज्ञरी । [अस्तात्, असि, अतसु, आति,
एनप्, आच्, आहि
त्—निपातन-सिद्ध, यथा—(ऊर्ध्वं ऊर्ध्वात् उर्ध्वो वा) उपरि, उपरिधात् ।

१०२६ । अस्तात्, असि—'पूर्व', 'अधर' और 'अवर' शब्दकी सप्तमी, पञ्चमी तथा प्रथमाके स्थानमे, 'अस्तात्' और 'असि' प्रत्यय होते हैं, 'इ' इत्, 'अस्' रहता है ।

(क) 'अस्तात्' और 'असि' होनेसे, 'पूर्व' के स्थानमे 'पुर', और 'अधर' के स्थानमे 'अध' होता है, यथा—(पूर्वस्मिन् पूर्वस्मात् पूर्णो वा) पुरस्तात्, पुर, (अधरस्मिन् अधरस्मात् अधरो वा) अधस्तात्, अध ।

(ख) 'अस्तात्' और 'असि' होनेसे, 'अवर' के स्थानमे विकल्पसे 'अव' होता है, यथा—(अवरस्मिन् अवरस्मात् अवरो वा) अवस्तात्, अवरस्तात्, अव, अवर ।

१०२७ । अतसु (अतसुच्)—दिग्वाचक और देशवाचक 'दक्षिण' और 'उत्तर' शब्दकी सप्तमी, पञ्चमी और प्रथमाके स्थानमे 'अतसु' प्रत्यय होता है; 'उ' इत्, 'अतस्' रहता है, यथा—(दक्षिणस्मिन् दक्षिणस्मात् दक्षिणो वा) दक्षिणत्, (उत्तरस्मिन् उत्तरस्मात् उत्तरो वा) उत्तरत् ।

१०२८ । आति—'उत्तर', 'अधर' और 'दक्षिण' शब्दकी सप्तमी, पञ्चमी और प्रथमाके स्थानमे 'आति' प्रत्यय होता है, 'इ' इत्, 'आत्' रहता है, यथा—(उत्तरस्मिन् उत्तरस्मात् उत्तरो वा) उत्तरात्, अधरात्, दक्षिणात् ।

(क) एनप्—'अदूर'-अर्थमे, 'एनप्' भी होता है, यथा—(उत्तरस्मिन् उत्तरो वा) उत्तरेण; अधरेण, दक्षिणेन । पञ्चमीके स्थानमे नहीं होता ।

१०२९ । आच्, आहि—'दक्षिण' और 'उत्तर' शब्दकी सप्तमी और प्रथमाके स्थानमे 'आच्' और 'आहि' प्रत्यय होते हैं; 'च्' इत्, 'आ' रहता है, यथा—दक्षिणा, दक्षिणाहि; उत्तरा, उत्तराहि ।

('चि्व'-प्रभृति प्रत्यय) अमृततद्भावार्थे ।

१०३० । चि्व—कृ, भू और अस् धातुके योगसे, 'अमृततद्भाव'*-अर्थमे, शब्दके उत्तर 'चि्व' प्रत्यय होता है, 'चि्व' का समान् इत्, कुट् भी नहीं रहता ।

(क) 'अमृततद्भाव' अर्थमे प्रत्यय होनेसे, शब्दके अन्तस्थित इम्बन्ध्वर दीर्घ होता है, यथा—(अलघु लघु करोति) लघुकरोति ; (अलघु लघु भवति) लघुभवति, (अलघु लघु स्यात्) लघुस्यात् ।

(ख) 'अमृततद्भाव'-अर्थमे प्रत्यय होनेसे, शब्दके अन्तस्थित अवर्ण-के स्थानमे 'ई' होता है, यथा—(अशुक्ल शुक्ल करोति) शुक्लीकरोति, (अशुक्ल शुक्ल भवति) शुक्लीभवति, शुक्लीस्यात् ।

(ग) 'अमृततद्भाव' अर्थमे प्रत्यय होनेसे, शब्दके अन्तस्थित प्रका-रके स्थानमे 'शी' होता है, यथा—(अश्रोतार श्रोतारं करोति) श्रोत्री-करोति, श्रोत्रीभवति, श्रोत्रीस्यात् ।

(घ) 'अमृततद्भाव' अर्थमे प्रत्यय होनेसे, अरम्, मनम्, चक्षुम्, चेतम्, रहस, रजम्—इनके अन्त्यवर्णकर लोप होता है ; यथा—अरुकरोति, अरु-भवति, अरुस्यात्, विमनीकरोति, विमनीभवति, उच्छ्वकरोति, उच्छ्व-भवति, उचेतीकरोति, उचेतीभवति, विरहीकरोति, विरहीभवति, विरजीकरोति, विरजीभवति ।

१०३१ । सातिच् (साति)—'कात्स्न्य' (साकल्य) समझानेसे,

* अमृतका तद्भाव, अर्थात् जो जैसा नहीं रहता, उसका वैसा होना, जैसे जो वस्तु शुक्ल नहीं रहती, उसका शुक्ल होना ।

‘अभूततद्भाव’-अर्थमे, कृ, भू, अस् धातुके योगसे, विकल्पने ‘सातिच्’-प्रत्यय होता है, ‘इ’ और ‘च्’ इत्, ‘सात्’ रहता है । यथा—(अजलं कृत्स्न—सकल—लवण जल करोति) जलसात् करोति ; (कृत्स्न लवणं जलं भवति) जलसात् भवति , (कृत्स्न लवणं जलं स्यात्) जन्मात् स्यात् । (अभस्मं समस्तं भस्मं करोति) भस्ममात् करोति , मम्ममात् भवति , भस्ममात् स्यात् । पक्षे—‘चि्व’ , यथा—जलीकरोति, जलीभवति, जलीस्यात्, भस्मीकरोति, भस्मीभवति, भस्मीस्यात् । “अग्निसात् कृत्वा” ।

(क) ‘अधीनता’-अर्थमे, कृ, भू, अस् और ‘सम्’ पूर्वक पद धातुके योगसे, ‘मातिच्’ होता है ; यथा—(राज अधीन करोति) राजसात् करोति , (राज अधीन भवति) राजमात् भवति , (राजोऽधीनं स्यात्) राजमात् स्यात् , (राजोऽधीनं सम्पद्यते) राजमात् सम्पद्यते । (आत्मनि अधीनं करोति) आत्ममात् करोति ।

(ल) सातिच्, प्राच् (प्रा)—‘देय’ समझानेसे, कृ, भू, अस् और ‘सम्’ पूर्वक पद धातुके प्रयोगसे, ‘सातिच्’ और ‘प्राच्’ प्रत्यय होते हैं, ‘च्’ इत्, ‘प्रा’ रहता है , यथा—(ब्राह्मणाय देयं करोति) ब्राह्मणमात् करोति, ब्राह्मणमात् करोति , ब्राह्मणमात् भवति, ब्राह्मणमात् भवति ; ब्राह्मणमात् स्यात्, ब्राह्मणमात् स्यात् , ब्राह्मणमात् सम्पद्यते, ब्राह्मणमात् सम्पद्यते ।*

१०३२ । डाच्—‘ङ’ धातुके योगसे, द्वितीय, तृतीय, शम्भ और

* “भस्ममात् कृतवत् पितृद्विष पात्रिमाच वसुधां ससागराम्” २० १२. ८६, “विभज्य मेहनं यदपि सात् कृतं” नै० १. १६, “विप्रसादहत भूयसी भुव” माप० १४ ३६, “राजा स यज्जा विदुषप्रजत्रा कृत्वाऽध्वराज्येऽनन् २५ राज्यम्” नै० ३ २४. ।

बीज शब्दके उत्तर, 'कर्षण'-अर्थमें 'डाच्'-प्रत्यय होता है, 'इ' और 'इ' इव, 'आ' रहता है; यथा—द्वितीयाकरोति, तृतीयाकरोति (द्वितीय दूर्तार्थ कर्षण करोति इत्यर्थं), शब्दाकरोति (अनुलोमकृष्ट धे'। पुन प्रति लोम कर्षति इत्यर्थं); बीजाकरोति * (बीजैः सह कर्षति इत्यर्थं) ।

(क) 'गुण'-शब्द अन्तमें रहनेसे, सङ्ख्यावाचक शब्दके उत्तर, 'हृ'-धातुके योगसे, 'कर्षण'-अर्थमें 'डाच्' होता है; यथा—द्विगुणाकरोति त्रिगुणाकरोति धेत्रम् (द्विगुण त्रिगुणं कर्षतात्यर्थं) ।

(ख) व्यथन'-अर्थमें, 'सत्र' और 'निष्पत्र' शब्दके उत्तर 'डाच्' होता है, यथा—सत्राकरोति मृगं व्याध (मयत्र इत्स्व अस्य शरीरे श्रेयसायन् व्यथयति इत्यर्थं); निष्पत्राकरोति (शरीरात् नाम् अपरपाद्यं निष्कामयन् व्यथयतीत्यर्थं) । "एकश्च मृग सपत्राकृत, अन्यश्च निष्पत्राकृत अपरत्" दशकु० ।

(ग) 'यापन' (क्षेपण, अतिवाहन) समझनेसे, 'समय'-शब्दके उत्तर 'डाच्' होता है; यथा—समयाकरोति (समय यापयति इत्यर्थं) ।

(घ) 'निष्कोषण'-अर्थमें, 'निष्कुला'-शब्दके उत्तर 'डाच्' होता है; यथा—निष्कुलाकरोति दाडिमम् (निष्कुलाति—दाडिमस्य अन्त-रवयान् बहिर्नि मारयति इत्यर्थं) ।

(ङ) 'आनुलोम्य' (आनुवृत्त्य) अर्थमें, 'हन्' और 'प्रिय' शब्दके उत्तर 'डाच्' होता है; यथा—हत्वाकरोति प्रियाकरोति मित्रम् (अनुकृत्वाद्येन आनन्दयतीत्यर्थं) ।

* "व्योमनि बीजाकुक्षे, चित्र निर्मानि सु दूर पवने ।

रचयति रेखा सलिले, चरति श्लेयस्तु संस्कारम् ॥" मामिनो० १.९६ ।

† कोषसे बहिष्करण ।

(च) 'प्रातिलोभ्य' (प्रातिदृश्य) मन्त्रज्ञानेते, 'दु' छा-शब्दके उत्तर 'डाच्' होता है, यथा—दु-छारुतेति नृत्य स्वामिनम् (पांडपतीत्यर्थ) ।

(छ) 'पाक्'-अर्थमे, 'ग्ल'-शब्दके उत्तर 'डाच्' होता है ; यथा—ग्लारुतेति मांसम् (ग्लेन पत्रतीत्यर्थ) ।

(ज) 'शयय'-मित्र अर्थमे, 'मन्या' शब्दके उत्तर 'डाच्' होता है ; यथा—मन्यारुतेति भाण्ड वणिक् (मयंतदवश्य क्रेपमिति प्रतिजानांते सत्यद्वार-द्रव्यप्रदानादिनेत्यर्थ) । (भाण्डम्—पण्यद्रव्यम् । सत्यद्वार—व्याना ।)

(झ) 'भुण्डन' अर्थमे, 'नद्र' और 'नद्र' शब्दके उत्तर 'डाच्' होता है , यथा—भद्रारुतेति, नद्रारुतेति (सुगडति इत्यर्थ) ।

अनिश्चयार्थे ।

१०२३ । चित्, चन—विभक्त्यन्त 'किम्'-शब्दके उत्तर 'अनिश्चय'-अर्थमे 'चित्' और 'चन' प्रत्यय होते हैं , यथा—कश्चित्, कश्चित्, केनचित्, कस्मैचित्, कस्माश्चित्, कस्य-चित्, कस्मिश्चित् ; कुतश्चित्, क्वचित्, कुत्रचित्, कश्चन, किञ्चन, कञ्चन, कुतश्चन, क्वचन, कुत्रचन ।

प्रश्न ।

कौन प्रत्यय और कौनसा पद होगा, कहो—

हृत्पुत्र । जो व्याकरण पदता है । विमहा ज्ञान है । विमहा खान (खे-तम्) है । अतिशय प्रिय । कोइ नकुप्य । जो पण्डित नहीं था, वह पण्डित हुआ है । कुठ कम पांच बर्षका लटका । जिय लताका पुत्र हुआ है । पांच पांच बरके ।

सम्पूर्ण ।

“सरस्वती श्रुतमहती न हीयताम्” ।

नीति-प्रबन्धः ।

('शेख सादी'-कृत-पन्द्-नामा '('करीमा' ,
पारसी-निबन्धादेतद्ग्रन्थकर्त्राऽनूदितः)

विद्या-माहात्म्यम् ।

मानवोऽत्र समुत्कर्षं विद्यया प्रतिपद्यते ।
न पत्रेन पदव्या वा न धनेन न सम्पदा ॥ १ ॥
वर्त्तिवत् क्षपणीयोऽयमात्मा विद्याकृते सदा ।
विद्यामृते परिह्वानुं नेश्वरः शक्यते यत ॥ २ ॥
भवन्ति खलु धीमन्तो विद्योपादाननन्पराः ।
तीव्रोऽस्ति सतत यस्माद्विद्याया भव्य आपणु ॥ ३ ॥
अनन्तकालसन्तत्या यो जातः क्विल पुण्यभाक् ।
अङ्गीकृता शुभोर्दका तेन विद्यार्थिताऽनिशम् ॥ ४ ॥
विद्याजन्तविधिर्नून त्वयि कश्चिद्व्यतां गत ।
पुनर्देशान्तरमन्या तदर्थमिह युज्यते ॥ ५ ॥
गच्छ, चेलाञ्जलं दिव्यं विद्याया धारय निररम् ।
अनन्त स्वर्गलोक त्वां विद्यायाऽप्यनि ॥ ६ ॥
नान्यदभ्यन्यतां विद्यामृते, चेदसि बुद्धिमान् ।
स्यादालस्यहता नूनं विद्याहीना स्थितिर्यतः ॥ ७ ॥
विद्यैव तव पर्याता लोकेऽर्था च परत्र च ।
विद्यया कर्मजात ते गता कि, त्त्वावताम् ॥ ८ ॥

(च) 'प्रानिलोम्य' य-प्रशंसा ।

उष् होता ई, य्वा-चित्त । विनय नयसम्मतम् ।

(७) सुहृद् सर्वे भुवि पञ्चजनास्त्वय ॥ ९ ॥
शूलाम्यो गौरवं पुस्तं प्रवर्द्धयति सर्वत ।

विश्वम्भसो दिव्या जायते किल भास्करात् ॥ १० ॥
विनय स्यात् पतिपतो मैत्र्यस्यापायवर्जित ।

परमोत्कर्षमाप्नोति मिश्रतागौरवं यत ॥ ११ ॥

विनयोऽभ्युदित कुर्व्यान्मानय मञ्जुलाशयम् ।

विनयो महतामेकं प्ररुष्ट लक्षणं मतम् ॥ १२ ॥

मनुष्यो य स नियत यत्नाद्विनयमाश्रयेत् ।

मनुष्यत्वं विना कापि न मनुष्यो विरोचते ॥ १३ ॥

विनय कुरतेऽवश्यमाहृतो मतिमान् नरः ।

शितो धरण्यामाधत्ते शाखा फलभरानता ॥ १४ ॥

विनयस्त्वय जायेन नित्यं सम्मानवर्द्धकः ।

स्थानञ्च त्रिदिवे दद्यात् तुभ्यमभ्युन्नने सुखम् ॥ १५ ॥

विनयो भवति स्वर्गंकारस्य किल कुञ्चिका ।

उन्ननेर्गौरवस्यान्ने तथा रम्यप्रसाधनम् ॥ १६ ॥

वर्त्तते पुरुषस्तेषु ^{महापुरुषे} नृगेच्छितं शिरः ।

तस्माद्विनयसम्प्राप्ते ^{को} हृदयप्रादिणी भवेत् ॥ १७ ॥

विनयो यस्य लोकस्य स्वभासत्वेन जायते ।

प्रतिपत्ता महत्त्वेन चासी भवति लाभवान् ॥ १८ ॥

विनयस्यां प्रियं कुर्व्याऽऽजगत्यामिह सर्वथा ।

पुरतो मनसां

मर्त्येषु विनयान्नेव

यद्धारये स्यमुद्दानं

॥ २० ॥

उदप्रशिरसामत्र विनयः

भिद्भुकश्चेद्विनीत स्यात् संसिद्धिरियमस्य हि ॥ २१ ॥

दया-प्रशंसा ।

अयि चेतो दयारूप पात्रं येन प्रसारितम् ।

दयारान्येषिता नून पभूयासौ नरः कृती ॥ २२ ॥

दया प्रत्यातनामान त्वा विद्भ्याद्धरातले ।

दया सम्पादयेच्छ्वत् तव क्षेममनोरध

दयां विहाय नैवान्यत् कृत्यं जगति विद्य

अस्यास्तीव्रतरः कश्चिदापणश्च नो ह्य

दया नीवि प्रमोदानामक्षया परिक

दया स्थिरा जीवितस्य फल

दयया जगत्क्षिप्तं

कीर्तिसम्भृतमाधत्स्य वि

दयायां सर्वकालेषु वास्त

यतश्चित्तविनिर्माता काश्च

दान-

दानमाद्रियतेऽजस्र दक्षि

यतो दानेन मनुजः सौभाग्य

दानेन दयया चाधिक्रियतां ति